

## दो शब्द

‘भविष्य पुराण’ के इस द्वितीय खण्ड में अधिकांश उन मुख्य घटनाओं का वर्णन मिलता है जो पिछले एक हजार वर्ष में हमारे देश में घटित हुई हैं। उनमें पुराणकार ने प्रधान स्थान आल्हा-ऊदल और पृथ्वीराज के युद्धों को दिया है। यद्यपि आजकल भारतवर्ष के कई प्रदेशों में ‘आल्हा’ का काफी प्रचार है, पर ढोलक पर गाने वालों ने धीरे-धीरे उसमें परिवर्तन करके एक निराली ही चीज बना दी है। तो भी उसकी मूल कथा ‘भविष्य पुराण’ के वर्णन से अधिकांश में मिलती-जुलती ही है।

‘भविष्य पुराण’ में इस कथा को इतना अधिक महत्त्व देने से हम यह अनुभव करते हैं कि वास्तव में आल्हा-ऊदल तथा पृथ्वीराज का संग्राम भारतवर्ष का भाग्य-विधायक था और उसे केवल युद्ध की एक कहानी या लोक-काव्य की तरह पढ़ लेना पर्याप्त नहीं। इसमें भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय सन्निहित है और उससे हमको एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा प्राप्त हो सकती है।

एक अध्याय में “कबीर, नरसी, पीषा और नानक” के पूर्व जन्मों का वर्णन देकर उनको प्राचीन युगों के प्रसिद्ध व्यक्तियों से संबन्धित सिद्ध किया है। किसी व्यक्ति के प्राचीन समय में होने वाले विभिन्न जन्मों का वर्णन तो सच्चे योगी ही जानने में समर्थ हो सकते हैं, पर हम इतना कह सकते हैं कि जिस प्रकार ‘आल्हा-ऊदल’ के संग्राम भारतवर्ष की राजनैतिक परिस्थिति में परिवर्तन उत्पन्न करने वाले थे, उसी प्रकार कबीर और नानक के प्रचार-कार्य ने भारतवर्ष के सांस्कृतिक इतिहास को एक नया मोड़ दिया। इससे देश में ‘छल-मठ’ का प्रसार

हुआ जिसके परिणाम स्वरूप प्राचीन ढग के वामनापरव कर्मकाण्डों में कमी आई और ब्राह्मणों का प्रभाव एक बड़े वर्ग पर से हट गया। नरसी और पीपा जी ने विशेष रूप से गुजरात में भक्तिमार्ग को फैलाया और इसके फल स्वरूप भी कर्मकाण्ड की प्रबलता में अन्तर पड़ा।

शकराचार्य, रामानुज और चैतन्य भी भारतीय धार्मिक-जगत की महान विभूतियाँ हैं और हम कह सकते हैं कि वर्तमान समय में भारत-वर्ष के अधिकांश निवासियों में जो धार्मिक प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं वे इन्हीं तीनों की देन हैं। 'भविष्य पुराण' में इनका जो वर्णन दिया गया है वह पौराणिक ढग का रहस्यमय होने पर भी इनके महत्त्व को दर्शाता है। शकराचार्य और रामानुज दोनों को भगवान शकर के अंश से समुत्पन्न बताया है, और दोनों में शास्त्रार्थ होने का वर्णन भी किया है।

चैतन्य महाप्रभु 'यज्ञ भगवान' के अंश से थे और उनका आविर्भाव स्लेच्छों द्वारा की जाने वाली धर्म हानि का निवारण करने के निमित्त हुआ था। चैतन्य-चरित्र में जगन्नाथ जी का वर्णन बड़ा अद्भुत है और उनको भगवान का स्वरूप मानते हुए भी बौद्ध धर्म वाली से मिला जुना दिखाया गया है। पुराणकार के मतानुसार इसी कारण जगन्नाथ जी में सब वर्णों के मनुष्य वर्ण-भेद का विचार त्याग कर एक साथ खान पान करते हैं। वहाँ वैदिक कर्मों का भी प्रचार नहीं है। यह सब वहाँ पर किसी समय बौद्ध लोगों की अत्यन्त प्रबलता थी, इस लिये 'भविष्यपुराण' के मतानुसार उनकी सत्ता को मिटाने के उद्देश्य से 'भगवान' ने भी वहाँ वैसा ही भेष और आचार विचार ग्रहण किया है, जो उस देश के निवासियों को प्रभावित करके भारतीय धर्म के भीतर रख सके।

इसमें सन्देह नहीं कि शकराचार्य, रामानुज, चैतन्य जैसी विभूतियों, जिन्होंने उस पंडित यात्रा अथवा बेल गाडी के युग में समस्त देश की

आत्मा को हिला कर रख दिया, सामान्य श्रेणी की नहीं हो सकती । वे ईश्वर की विशेष देवी शक्ति से ही संयुक्त होती हैं । भक्तिमार्ग वाले उनको 'अशावतार' के रूप में मानते हैं और दार्शनिक विचार वाले 'महामानव'—'युग पुरुष' आदि के नाम से उनका स्मरण करते हैं । इस में तनिक भी सन्देह नहीं कि भारतवर्ष पर विधर्मियों का जो भयंकर राजनैतिक और सांस्कृतिक आक्रमण हुआ उनसे यहाँ के धर्म और संस्कृति की रक्षा इन "देवी अवतारों" ने ही की । उन्हीं के प्रभाव से फिर उत्तर भारत में रामानन्द, कबीर, नानक, दादूदयाल आदि तथा महाराष्ट्र में नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास आदि सन्तों की परम्परा आरम्भ होगई । कई वैष्णव आचार्य भी कर्म क्षेत्र में आगे बढ़े । इन सब ने निःशस्त्र होते हुये भी केवल अपने आत्मबल और बुद्धिबल से मुसलमान बादशाहों की कट्टरता और अत्याचारों तथा उनके विद्वानों के बौद्धिक आक्षेपों का इस प्रकार मुकाबला किया कि इस्लाम का महान शक्तिशाली विजय रथ, जिसने दो चार सौ वर्षों के भीतर ही पूरब में ईरान, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, मंगोलिया आदि को पूर्ण रूप से अपना अनुयायी बना लिया और पश्चिम में मिश्र से लेकर स्पेन तक अपने धर्म का झण्डा गाढ़ दिया, वह भारतवर्ष में आकर असफल हो गया । उसने इधर-उधर लूटमार और कुछ राज्यों पर सैनिक विजय अवश्य प्राप्त करली, पर वह भारतीय धर्म को न दबा सका वरन् धीरे धीरे स्वयं उससे प्रभावित हो गया । इसी 'पराजय' को याद करके मुसलमानों के सुप्रसिद्ध जातीय नबि 'हाली' ने लिखा है कि 'दोने हिलाली' का जो महान शक्तिशाली वेडा सन्तों समुदायों को पार कर आया, वह गंगा के मुहाने में आकर डूब गया । जिन महामानवों ने अपनी आत्मशक्ति से सत्तार में इतना बड़ा चमत्कार कर दिखाया उनको "लोकोत्तर देवी शक्ति" मान कर कौन नमस्कार नहीं करेगा ।

इस प्रकार वर्तमान युग का वर्णन करते-करते पुराणकार ने भारत में अगरेजों के आगमन और कलकत्ता में उनकी राजधानी स्थापित होने

तक का उल्लेख कर दिया है। इसके बाद उन्होंने यह भी लिख दिया है कि अगर जेओ के पश्चात् यहाँ तिब्बत की तरफ से आने वाले चीन वालों का प्रभाव बढ़ेगा ( पृष्ठ २८२ )। आज परिस्थितियों के फल स्वरूप ऐसी स्थिति पैदा होती जाती है और देश के अनेक भागों में चीन के पक्षपातियों का जोर बढ़ता जाता है। इन सब दृष्टियों से 'भविष्य पुराण' का महत्व स्वीकार करना ही पड़ता है, चाहे वह कभी और कैसे भी लिखा गया हो। पाठक इस पुराण का अध्ययन करके अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत हो सकेंगे इसमें सन्देह नहीं।

—प्रकाशक



# विषय-सूची

१ पृथ्वीराज द्वारा गुर्जर राज्य-ग्रहण	६
२ जयन्तावतार वृत्तान्त वर्णन	३०
३ चण्डिका देवी वाक्य वर्णन	३३
४ बलखानि विवाह वृत्तान्त वर्णन	३५
५ ब्रह्मानन्द का विवाह वृत्तांत	४७
६ हंस का पद्मिनी वर्णन	५८
७ इंदुल-पद्मिनी का विवाह	६३
८ चन्द्र भट्ट का भाषा ग्रन्थ	७३
९ महावती का युद्ध वर्णन	८०
१० कृष्णाशस्य शोभा सवाद	१०७
११ समस्त नृपो का संग्राम और नाश	१२०
१२ व्यास द्वारा भविष्य कथन	१६०
१३ अजमेर के तोमर नरेशो का वर्णन	१६८
१४ शुक्ल वंश चरित्र	१७२
१५ परिहर भूप वंश वर्णन	१८४
१६ भगवदवतारादि वृत्तांत	१८०
१७ दिल्ली के म्लेच्छ राजा	१८६
१८ चैतन्य और शंकराचार्य उत्पत्ति	२०६
१९ रामानुजोत्पत्ति वर्णन	२२१
२० कबीर-नरश्री-पीपा-नानक-वृत्तांत	२४०
२१ चैतन्य वर्णन में जगन्नाथ माहात्म्य	२५५
२२ अकबर बादशाह वर्णन	२६६
२३ किल्किला के शासको का वर्णन	२८४
२४ उत्तर पर्व—मङ्गलाचरण	२८३
२५ ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और वर्णन	२८८
२६ सांसारिक जीवन के दोष	३०४

२७ अघर्म और पापो के भेद	३२२
२८ शुभाशुभ गति और यम-यातना	३३०
२९ शकट व्रत का माहात्म्य	३४८
३० तिलक व्रत का माहात्म्य	३५३
३१ अशोक व्रत का माहात्म्य	३५८
३२ बृहत्तपोव्रत का माहात्म्य	३६१
३३ यमद्वितीया व्रत का माहात्म्य	३६२
३४ अशून्यशयन व्रत का माहात्म्य	३६७
३५ गोप्पद तृतीया व्रत का माहात्म्य	३७१
३६ हरिताली तृतीया व्रत का माहात्म्य	३७४
३७ ललिता तृतीया व्रत का माहात्म्य	३७९
३८ अक्षय तृतीया व्रत का माहात्म्य	३८६
३९ विनायक चतुर्थी का व्रत माहात्म्य	३८९
४० शान्ति व्रत का माहात्म्य	३९६
४१ नागपंचमी व्रत का माहात्म्य	३९८
४२ श्री पंचमी के व्रत का माहात्म्य	४०९
४३ विशोवपष्ठी व्रत का माहात्म्य	४१९
४४ कमलपष्ठी व्रत का माहात्म्य	४२२
४५ विजय सप्तमी माहात्म्य	४२४
४६ आदित्य मंडल विधान	४२९
४७ अचला सप्तमी व्रत माहात्म्य	४३१
४८ युष्माष्टमी व्रत माहात्म्य	४३९
४९ जन्माष्टमी व्रत माहात्म्य	४४९
५० दशावतार चरित्र माहात्म्य	४६१
५१ गोवत्स द्वादशी माहात्म्य	४६७
५२ भीष्म पंचम व्रत माहात्म्य	४८१
५३ अनन्त चतुर्दशी व्रत माहात्म्य	४८९
५४ ग्रन्थ परिचय और समाप्ति	४९९

# भविष्य पुराण

## (द्वितीय खण्ड)

॥ पृथ्वीराज द्वारा गुर्जर राज्य-ग्रहण ॥

कस्मिन्मास्यभवद्युद्ध तयो कतिक्षितानि च ।  
तत्पश्चात्स्वपुरी प्राप्य तदा किमभवन्मुने ॥१  
पौषमास्यभवद्युद्ध तयो शतदिनानि च ।  
ज्येष्ठे मासि गृह् प्राप्ता दध्मुर्बाद्यान्यनेकश ॥२  
श्रुत्वा परिमलो राजा स्वसुताञ्जयिनो बलीन् ।  
ददौ दानानि विप्रेभ्य सुख जात गृहे गृहे ॥३  
इति श्रुत्वा महीराजो बलखानि महाबलम् ।  
तत्रागत्य नमस्कृत्य वचन प्राह नम्रधी ॥४  
अर्द्धकोटिमित द्रव्य मत्त प्राप्त सुखी भव ।  
माहिष्मत्याश्च राष्ट्र मे देहि वीर नमोस्तु ते ॥५  
वर्षे वर्षे च तद्द्रव्य गृहाण बलवन्प्रभो ।  
इति श्रुत्वा तथा मत्वा बलखानिगृह् ययौ ॥६  
वयस्त्रयोदशाब्दे च कृष्णाशे बलवत्तरे ।  
यथा जाता हरेर्लीला भृगुश्चेष्ट तथा शृणु ॥७

इस अध्याय में पृथ्वीराज के द्वारा करके विनिमय से बलखानि से गुर्जर राज्य के ग्रहण करने के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है ।

२७ अघमं और पापो के भेद	३२२
२८ शुभाशुभ गति और यम-यातना	३३०
२९ शकट व्रत का माहात्म्य	३४८
३० तिलक व्रत का माहात्म्य	३५३
३१ अशोक व्रत का माहात्म्य	३५८
३२ वृहतपोव्रत का माहात्म्य	३६१
३३ यमद्वितीया व्रत का माहात्म्य	३६२
३४ अशू-यशयन व्रत का माहात्म्य	३६७
३५ गोप्पद तृतीया व्रत का माहात्म्य	३७१
३६ हरिताली तृतीया व्रत का माहात्म्य	३७४
३७ ललिता तृतीया व्रत का माहात्म्य	३७६
३८ अक्षय तृतीया व्रत का माहात्म्य	३८६
३९ विनायक चतुर्थी का व्रत माहात्म्य	३८८
४० शान्ति व्रत का माहात्म्य	३९६
४१ नागपंचमी व्रत का माहात्म्य	३९८
४२ श्री पंचमी के व्रत का माहात्म्य	४०६
४३ विशोकषष्ठी व्रत का माहात्म्य	४१६
४४ कमलषष्ठी व्रत का माहात्म्य	४२२
४५ विजय सप्तमी माहात्म्य	४२४
४६ आदित्य मंडल विधान	४२६
४७ अचला सप्तमी व्रत माहात्म्य	४३१
४८ बुधाष्टमी व्रत माहात्म्य	४३६
४९ जन्माष्टमी व्रत माहात्म्य	४४६
५० दशावतार चरित्र माहात्म्य	४६१
५१ गोवत्स द्वादशी माहात्म्य	४६७
५२ भीष्म पंचक व्रत माहात्म्य	४८१
५३ अनन्त चतुर्दशी व्रत माहात्म्य	४८६
५४ ग्रन्थ परिचय और समाप्ति	४८६

राका चद्रे तु सप्राप्ते राहुग्रस्ते तमोमये ।

काश्या समागता भूपा नानादेश्या. कुलं: सह ॥१४॥

भाद्रपद मास की त्रयोदशी तिथि के दिन आह्लाद अपने छोटे भाई के सहित हाथी-रथ और अश्वों से सकुल घन लेकर गया के लिये गया था ॥८॥ कृष्णाश विन्दुल पर आरुढ हुआ—वत्सज ने हरिणी पर आमारोहण किया—देव ने पपीहक पर सवारी की और सुखखानि करालक पर समाहूढ हुआ था ॥९॥ ये चारों दो दिन के अन्त में गया के क्षेत्र में पहुँच गये थे । पूर्णिमा के अन्त में पुरस्कृत करके पौडशधाढ करने लगे ॥१०॥ सौ-सौ हाथियों को—समलकृत रथों को—सहस्र अश्वों को जोकि हेम की मालाओं से सुभूषित थे—बहुत सी धेनु—सुवर्ण—रत्न—वस्त्र—जो अनेक प्रकार के थे, इन सब का वहाँ दान किया था । सुफल वाले होकर उन्होंने स्वर्ग के लिये मन में विचार किया था ॥११-१२॥ लाक्षावर्त्ति नाम धारिणी जो वेश्या थी वह बदरिकाश्रम को चली गई थी । उमने अपने प्राणों का बहा पर ही परित्याग कर दिया था और फिर वह अप्सरात्व को प्राप्त होगई थी ॥१३॥ चन्द्रमा ने राका तिथि में राहु द्वारा ग्रस्त हो जाने पर तमोमय समय में वे अनेक देशों के राजा लोग अपन कुलों के सहित काशी में आगये थे ॥१४॥

हिमालयगिरौ रम्ये नानाघातुविचित्रिते ।

तत्र शादूँलवशीमोनेत्रसिंहो महीपति ॥१५॥

रत्नभानौ हते शूरे नेत्र मिहो भयातुर ।

नवतु गे समासाद्य तोपयामास वासवम् ॥१६॥

द्वादशाब्दान्तरे देवो ददौ ढक्वामृत मुदा ।

पार्यत्या निर्मित यत्तु वासवाय स्वसेविने ॥१७॥

ददौ ढक्वामृत राज्ञे पुनः प्राह शुभ वच ।

अस्य शब्देन भूपाल त्व सैन्य जीवयिष्यसि ॥१८॥

क्षय शीघ्र गमिष्यति शत्रवस्ते महाभटा ।

प्राप्ते ढक्वामृते तस्मिन्नेत्रसिंहो महाबलः ॥१९॥

ऋषियो ने कहा—उन दोनों का किस मास में युद्ध हुआ था और कितने दिन तक हुआ था । उसके पीछे अपनी पुरी में प्राप्त होकर फिर उस समय में क्या हुआ था ? हे मुने । यह बतलाइये ॥१॥ सूतजी ने कहा—उन दोनों का युद्ध पौष मास में हुआ था और वह सौ दिनरात बराबर होता रहा था । ज्येष्ठ मास में वे घर में पहुँचे थे और वहाँ अनेक प्रकार के वाद्य बजाये थे ॥२॥ राजा परिमल ने अपने बलवान् पुत्रों को जप वाले श्रवण करके उसने ब्राह्मणों को दान दिया था और उस समय में घर-घर में बड़ा सुख उत्पन्न होगया था ॥३॥ यह सुन कर महीराज महान् बलवान् बलवानि के यहाँ आया और उसको नमस्कार करके नम्रबुद्धि वाले उसने यह वचन कहा—आधा करोड़ धन आप मुझ से प्राप्त करके सुख होजाइये । हे वीर । माहिष्मती का राष्ट्र मुझे दे दो । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥४॥ हे प्रभो । आप वर्ष में वह द्रव्य ग्रहण करें । यह सुन कर और उसको उसी प्रकार से मान करके बलवानि गृह में चला गया था ॥५॥ तीरह वर्ष की आयु में अधिक बलवान् कृष्णाण के होने पर हे भृगु श्रेष्ठ । हरि की जिस प्रकार से लीला हुई थी उसका उस प्रकार से अब श्रवण करो ॥६॥

भाद्रे शुक्ले त्रयोदश्या चाह्लाद सानुजो ययौ ।

गयार्थं धनमादाय हस्त्यश्वरथसङ्कुलम् ॥८॥

कृष्णाशो विन्दुलारूढो वत्सजो हरिणीस्थितः ।

देव पपीहकारूढ सुखखानि करालके ॥९॥

चत्वारो द्विदिनान्ते च गयाक्षेत्रं समाययुः ।

पूर्णिमाते पुरस्कृत्य षोडशश्राद्धकारिणः ॥१०॥

शत शत गजाश्चैव भूषिताश्च रथास्तथा ।

ददुर्हयान्सहस्रं च हेममालाविभूषितान् ॥११॥

धेनूहिरण्यरत्नानि वासांसि विविधानि च ।

दत्त्वा तं सुफलीभूय स्वर्गे हाय दधुर्मनः ॥१२॥

लक्षार्वातिस्तु या वेश्या ययौ वदरिकाश्रमम् ।

प्राणास्तत्र परित्यज्य साप्सरस्त्वमुपागता ॥१३॥

राका चद्रे तु सप्राप्ते राहुग्रस्ते तमोमये ।

काश्या समागता भूपा नानादेश्याः कुलैः सह ॥१४॥

भाद्रपद मास की त्रयोदशी तिथि के दिन आह्लाद अपने छोटे  
ई के सहित हाथी-रथ और अश्वों से सकुल घन लेकर गया के लिये  
या था ॥८॥ कृष्णाश विन्दुल पर आरुढ़ हुआ—यत्सज ने हरिणी पर  
मारोहण किया—देव ने पपीहक पर सवारी की और सुखजानि  
रालक पर समाारुढ़ हुआ था ॥९॥ ये चारो दो दिन के अन्त में गया  
क्षेत्र में पहुँच गये थे । पूर्णिमा के अन्त में पुरस्कृत करके पौडशाब्द  
रने लगे ॥१०॥ सौ-सौ हाथियों को—समस्तकृत रथों को—सहस्र  
अश्वों को जोकि हेम की मालाओं से सुभूषित थे—बहुत सी धेनु—सुवर्ण-  
रत्न-वस्त्र-जो अनेक प्रकार के थे, इन सब का वहाँ दान किया था ।  
फुल वाले होकर उन्होंने स्वर्ग के लिये मन में विचार किया था  
॥११-१२॥ लालावर्त्ति नाम धारिणी जो वेश्या थी वह बदरिकाश्रम  
में चली गई थी । उसने अपने प्राणों का बहा पर ही परित्याग कर  
देया था और फिर वह अप्सरात्व को प्राप्त हो गई थी ॥१३॥ चन्द्रमा  
राका तिथि में राहु द्वारा ग्रस्त हो जाने पर तमोमय समय में वे अनेक  
देशों के राजा लोग अपने कुलों के सहित काशी में आगये थे ॥१४॥

हिमालयगिरी रम्ये नानाघातुविचित्रिते ।

तत्र शार्दूलवशीयोनेत्रसिंहो महीपति ॥१५॥

रत्नभानी हस्ते शूरे नेत्र सिंहो भयातुरः ।

नवतुंगे समासाद्य तोपयामास वासवम् ॥१६॥

द्वादशाब्दान्तरे देवो ददौ ढक्कामृत मुदा ।

पावत्या निर्मित यत्तु वासवाय स्वसेविने ॥१७॥

ददौ ढक्कामृत राज्ञे पुनः प्राह शुभ वचः ।

अस्य शब्देन भूपाल त्व संन्य जीवयिष्यसि ॥१८॥

क्षय शीघ्रं गमिष्यति शत्रवस्ते महाभटा ।

प्राप्ते ढक्कामृते तस्मिन्नेत्रसिंहो महाबलः ॥१९॥

नगर कारयामास तत्र सर्वजनैर्युतम् ।

योजनान्तं चतुर्द्वारं दुराघर्षं परं सदा ॥२०॥

नेत्रसिंहगढ नाम्ना विख्यातं भारत भुवि ।

काश्मीरान्ते कृतं राज्ये तेन शृंगसमं ततः ॥२१॥

हिमालय पर्वत में जोकि परम रमणीक और अनेक प्रकार की धातुओं से चित्रित है वहाँ पर शार्दूल वंश में होने वाला नेत्रसिंह नाम का राजा था ॥१५॥ रत्नमानु शूरवीर के ह्रास हो जाने पर नेत्रसिंह भय से आतुर होगया था । वह नवतुङ्ग स्थान में जाकर वहाँ उसने इन्द्र को सन्तुष्ट किया था ॥१६॥ चारह वर्ष के अन्त में उस देव ने प्रसन्नता से ढक्कामृत दिया था जो कि पार्वती ने अपनी सेवा करने वाले वासव (इन्द्र) के लिए निमित्त किया था ॥१७॥ इन्द्र ने राजा को वह ढक्कामृत देकर फिर यह शुभ वचन कहा—हे भूपाल ! इसमें यह विशेषता है कि इसके वादन करने पर इस के शब्द से तुम मृत सेना को जीवित कर लोगे ॥१८॥ महान्मठ भी तेरे यदि कोई शत्रु होंगे तो वे शीघ्र ही क्षय को प्राप्त हो जायेंगे । महान् बलवान् नेत्रसिंह ने उस ढक्कामृत को प्राप्त करके वहाँ पर समस्त जनो से युक्त एक नगर निर्माण कराया था जो एक योजन के अन्त तक विस्तार वाला था, जिसमें चार बड़े द्वार थे और सदा शत्रुओं को वह दुराघर्ष था ॥१९॥ २०॥ भारत में इस पृथ्वी पर वह नेत्रसिंह गढ—इस नाम से प्रसिद्ध होगया था । उसने फिर शृंग समान काश्मीर के अन्त में राज्य किया था ॥२१॥

पालितं नेत्रसिंहेन तत्पुरं पुत्रवन्मुने ।

नेत्रपाल इति व्यातो ग्रामोऽसौ दुग्धं परं ॥२२॥

सोऽपि राजा समायातो नेत्रसिंहो महाबलः ।

कन्यां स्वर्णवतीं तस्य रेवत्यशसमन्विता ।

कामाक्ष्या वरदानेन सर्वभायाविशारदा ॥२३॥

दृष्ट्वा तां सुन्दरीं कन्यां बाले दुसदृशाननाम् ।

भूर्जिताश्रमवन्मूपा रूपधौवनमोहिता ॥२४॥



दृष्ट्वा ता च तथाह्लादः सर्वरत्नविभूषिताम् ।  
 पोडशाब्दवयोर्युक्ता वामिनी रतिरूपिणीम् ।  
 मूर्च्छितश्चापतद्भूमौ सा त दृष्ट्वा मुमोह वै ॥२५॥  
 दोलामारुह्य तत्सन्धौ नृपान्तिकमुपाययु ।  
 आह्लादस्तु समुत्थाय महामोहत्वमागतः ॥२६॥  
 दृष्ट्वा तथाविधं वधुं कृष्णाशः प्राह दुःखितः ।  
 किमयं मोहमायातो भवति त्वविशारदः ॥२७॥  
 रजो रागात्मकं विद्धि प्रमाद मोहजं तथा ।  
 ज्ञानासिना शिरस्तम्य छिधि स्वमजिनः सदा ॥२८॥

इति श्रुत्वा वचो भ्रातुस्त्यक्त्वा मोह ययौ गृहम् ।  
 भोजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्सहस्र वेदतत्परान् ॥२६॥  
 दुर्गामाराधयामास जप्त्वा मध्यचरित्रकम् ।  
 मासान्ते च तदा देवी दत्त्वाभीष्ट हृदि स्थितम् ॥२७॥  
 मोहयामास ता कन्या विवाहार्थमनिन्दिता ।  
 स्वप्ने ददर्श सा बाला रामाश देवकीसुतम् ॥२८॥  
 प्रातर्बुद्धा तु संचित्य महामोहमुपाययौ ।  
 तदा ध्वात्वा च कामाक्षी सर्वाभीष्टप्रदायिनीम् ॥२९॥  
 पौषमासे तु संप्राप्ते शुककठे सुपत्रिकाम् ।  
 बद्धा त प्रेषयामास शुक पत्रस्थित प्रियम् ॥३०॥  
 स गत्वा पुष्पविपिन महावतिपुरीस्थितम् ।  
 नरशब्देन वचन कृष्णाशाय शुकोब्रवीत् ॥३१॥  
 वीर तेष्वरजो बधुर्नाम्नाह्लादो महाबल ।  
 तस्मै हि प्रेषिता पत्री स्वर्णवत्या हितप्रदा ॥३२॥  
 ता ज्ञात्वा च पुनस्तस्या उत्तर देहि मत्प्रियम् ।  
 अथ वा पत्रमालिष्य तत्स्व मे कुरु कठके ॥३३॥

अपने भाई कृष्णाश के यह वचन श्रवण करके, उसने उस मोह का त्याग कर दिया और फिर गृह को चला गया था । वेदों में तत्पर श्रेष्ठ एक सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराकर मध्यम चरित्र का जप करके उसने दुर्गा की आराधना की थी । एक मास के अन्त में उस समय देवी ने जो हृदय में स्थित अभीष्ट था उसे देकर उस कन्या को देवी ने जो कि अनिन्दित थी विवाह करने के लिये मोहित कर दिया था । उस बाला ने स्वप्न में रामाश देवकी के पुत्र को देखा था ॥२६-३१॥ प्रातः काल में जाग कर चित्तन किया तो बड़ा भारी मोह हो गया था । तब समस्त अभीष्टों के प्रदान करने वाली कामाक्षी देवी का ध्यान किया और पौष मास में प्राप्त होने पर एक तोता के कण्ठ में पत्रिका को बाधकर पत्र स्थित प्रिय शुक को भेजा था ॥३२-३३॥ वह महावती पुरी में स्थित जो एक पुष्प विपिन था वहां पहुँचा और मनुष्य की

पापी मे कृपाण के निवे गुह ने लखा बोले ॥३४॥ उग गुह मे  
पहा-हे गीर ! तुम्हारे छोटे भाई आह्लाद मे जोरि मान् बतपाव है  
स्वर्णवती के हित प्रज्ञा करो पापी पत्रिका भेजी है । गो भव भाग  
ममताकर फिर उगवा उत्तर मेरे द्विप के लिए मुझे दे दो । भवना एव  
पत्र निग्न कर उगे धाप मेरे गले मे बाधनी ॥३५-३६॥

इति श्रुत्वोद्यो वीरो गृहीत्या पत्रमुत्तमम् ।  
ज्ञातयाम्नाय गृत्तांगमाह्लादाय पुनर्दंढी ॥३७  
जम्बुवाध नृपो वीरो रुद्रदत्तपते वली ।  
अजैयोन्यनृपैर्वीर स्वया मुधि निपातितः ॥३८  
तथाविध मत्पितरमिन्द्रदत्तवर रिपुम् ।  
तमेधं जहि संप्राप्ते मम प्राणिग्रह गुरु ॥३९  
इति ज्ञात्वा स आह्लादस्तामाश्वास्य हृदि स्थिताम् ।  
शुक्कठे बधघातु लिपित्वा पत्रमुत्तमम् ॥४०  
स शुक्कः पन्नगः पूर्वं पुण्डरीकेन शापितः ।  
रेवत्यशस्य वार्यं च गृत्वा मोक्षत्वमागतः ॥४१  
मृते तस्मिन्नुदुके रम्ये देवी स्वर्णवती तदा ।  
दाहयित्वा ददौदान विप्रेभ्यस्तस्य तृप्तये ॥४२

यह सुन कर उदयपीर ने उस उत्तम पत्र को ग्रहण करके उगमे  
जो वृत्तान्त था उसे जान लिया और आह्लाद के निवे फिर दे दिया  
था ॥३७॥ जम्बुव राजा धीर था और बनवान् तथा रुद्र वा दत्त वर-  
दानी था जोकि अन्य नृपो के द्वारा अजैय था, हे वीर ! उसे तुम ने  
गुह में गिरा दिया था ॥३८॥ उसी प्रकार के मेरे पिता को जो इन्द्र  
वा दत्त वरदानी एव रिपु है । उसे सधाम मे इसी प्रकार से मारकर  
मेरा प्राणिग्रहण करो ॥३९॥ यह जानकर उस आह्लाद ने हृदय मे  
स्थित उसको आश्वासन दिया था । और एव उत्तम पत्र लिखकर शीघ्र  
ही शुक् के वण्ठ मे बांध दिया ॥४०॥ वह शुक् पहिले पन्नग था जोकि  
पुण्डरीक के द्वारा शापित था । उसन श्वेत्यश का वार्य करके मोक्षत्व  
प्राप्त किया था ॥४१॥ उस रम्य शुक् के मर जाने पर तब देवी स्वर्ण-

वती ने उसका दाह कराकर उसकी तृप्ति के लिए ब्राह्मणों को दान दिया था ॥४२॥

माधमासि च संप्राप्ते पचम्या कृष्णपक्षके ।  
 आह्लाद सप्तलक्षैश्च सैन्यं साढं ययौ मुदा ॥४३॥  
 तालनाद्याश्च ते शूरा स्वस्व वाहनमाश्रिता ।  
 आह्लाद रक्षयन्तस्ते ययु पचदशाहकम् ॥४४॥  
 वगदेश समुल्लङ्घ्य शीघ्रं प्राप्ता हिमालयम् ।  
 रूपेण पत्रकर्तारं बलघ्नानिरुवाच तम् ॥४५॥  
 गच्छ त्वं वीर ववची करालाश्व समास्थित ।  
 पचशस्त्रसमायुक्तो राजानं शीघ्रमावह ॥४६॥  
 युद्धचिह्नं तनौ कृत्वा मामागच्छ त्वरावित ।  
 तथा मत्वा शिष्यद्वयं ययौ शीघ्रं स रूपेण ॥४७॥  
 स ददर्श सभां राज्ञो बहुशूरसमन्विताम् ।  
 पार्वतीयं नृपं साढं सहस्रं बलवत्तरैः ॥४८॥  
 स उवाच नृपत्रेष्ठ नेत्रसिंह महाबलम् ।  
 त्वत्सुतायां विवाहाय बलघ्नानिमहाबल ।  
 सप्तलक्षैर्लङ्घ्यं संप्राप्तस्तव राष्ट्रक ॥४९॥

माघ मास के आने पर कृष्ण पक्ष की पचमी में आह्लाद सात लाख सैन्य के साथ बड़े ही आनन्द से गया था ॥४३॥ और तालनाद्यादि जो शूर य य भी अपने-बाहनों पर सवार होगये थे । वे सब आह्लाद की रक्षा करते हुए पन्द्रह दिन में गये थे ॥४४॥ वगदेश को सापसर माघ ही हिमालय में पहुँच गये थे । उस पक्ष वर्त्ता रूपेण स बलघ्नानि न बहा ॥४५॥ ह वीर । तू बवच घाटी कराल भय पर ममारुद्ध होकर जा और पच शस्त्र समायुक्त होकर राजा को शीघ्र बुलाने ॥४६॥ भयानक मुद्र का चिह्न कर के शीघ्रता से युक्त होकर मरे पाग आना । गया ही मानकर वह सिगण्डी का अश रूपेण प्राप्त बना गया था ॥४७॥ उमन बहुत म शूर वीरों से युक्त राजा का गमा का बहा दिया था । बहा राजा जयर्त्ता के अधिप बलघ्नानि

महर्षी राजाओं के भाव मन्त्र में लिखत था ॥४८॥ यह वह! पटुपत्त  
महायज्ञान नेत्रमिन्द्र राजा ने बोला—मुझगी पुत्री के भाव विवाह  
करने के लिये महारू बचपानि मान मान मेरा के कहित मुझारे  
गगन में आगता है ॥४९॥

तस्मात्तु मृगुतां शीघ्रमाह्लादाय ममर्षय ।  
शुल्ल मे देहि नृपते मुद्धरूप मुदायणम् ॥५०॥  
इति श्रुत्वा यचमन्य म राजा क्रोधमूर्च्छितः ।  
पटुनाधिपमाज्ञाय भूप पूर्णबलं गता ।  
अग्रतम वपाट च तस्य वचनहेतवे ॥५१॥  
पाशहस्ताश्चूरगत पटुनाधिपगक्षिणाम् ।  
दृष्ट्वा म रूपणो वीरः गृह्णमुद्धमचीतरत् ॥५२॥  
हत्वा तन्मुकुट राज्ञो गृहीत्वापाशगो वली ।  
बलप्राप्तिं तु सप्राप्य चिह्नं तस्मै न्यवेदयत् ॥५३॥  
इति श्रुत्वा प्रसन्नात्मा सप्त लक्षदत्तैर्युतः ।  
अग्रतमगरी सर्वा नेत्रसिंहेन रक्षिताम् ॥५४॥  
नेत्रसिंहस्तु बलवान्पार्यन्तीमनृपैः सह ।  
हिमतुंगतल प्राप्य मुद्धार्यो तान्समाह्वयत् ॥५५॥  
सहस्रं च गजास्तस्य हया लक्षं महाबलाः ।  
सहस्रं च नृपाः शूराश्चतुर्लक्ष पदातिभिः ॥५६॥

इसलिए तुम बहुत ही शीघ्र अपनी सुता को आह्लाद के लिये  
समर्पित करदो । हे नृपते ! मुद्ध रूप मुदायण शुल्ल मुझे दे दो ॥५०॥  
इस प्रकार के उसके वचन को श्रवण कर राजा क्रोध से मूर्च्छित होगया  
और पटुन के अधिप राजा को जो कि पूर्ण बल वाला था क्रोध से  
आज्ञा दी कि उसने बन्धन के लिये किवाड बन्द करदो ॥५१॥ हाथ  
म पाश लेने वाले पटुनाधिप के द्वारा रक्षित एक सौ शूरो को देखकर  
उस रूपण वीर ने राग से मुद्ध किया था ५२॥ राजा के उस मुकुट का  
हनन करके और ग्रहण करके वह वली आकाश गामी होकर बलवानि  
के पास पहुँच गया और वह चिन्ह उसे दे दिया था ॥५३॥ यह सुनकर

परम प्रसन्न चित्त उसने सात लाख दल से युक्त होकर नेत्रसिंह के द्वारा सुरक्षित समस्त नगरी को घेर लिया था ॥५४॥ नेत्रसिंह भी बलवान् था उसने पर्वतीय नृपों के साथ हिमगुप्तल में जाकर युद्धार्थी होते हुए उनको बुलाया था ॥५५॥ एक सहस्र उनके हाथी थे एक लक्ष महाबली अश्व—एक सहस्र नृप जो बड़े शूर थे और चार लाख पदाति थे । इनके साथ वह आया था ॥५६॥

योगसिंहो गजैः सार्द्धं बलखानि समाह्वयत् ।

भोगसिंहो हयैः सार्द्धं कृष्णांशं च समाह्वयत् ॥५७॥

विजयो नृपपुत्रश्च सर्वभूपतिभिः सह ।

देवसिंहस्तथा म्लेच्छै रूपणं च समाह्वयत् ॥५८॥

तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोस्तत्र दारुणम् ।

निर्भयाश्चैव ते शूराः पावंतीयाः समंततः ।

जघ्नुस्ते शत्रवीं सेनां द्विलक्षां वीरपालिताम् ॥५९॥

प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा चत्वारो मदमत्तकाः ।

दिव्यान्श्वान्समारुह्य चक्रुः शत्रोर्महावधम् ।

पुनरजीवितं सर्वं ढक्कामृतरवाढलम् ॥६०॥

युद्धाय संमुखं प्राप भृगुश्रेष्ठ पुनः पुनः ।

अहोरात्रं रणश्चासीत्तेषां तलैव दारुणः ॥६१॥

एवं सप्ताह्नि संजाते युद्धे भीरुभयंकरे ।

उपायैर्वहुभिर्वीराश्चक्रुश्चैव रणं बहुम् ॥६२॥

पुनस्ते जीवमापन्ना जघ्नुस्ताम्रिपुसंन्यपान् ।

तालनाद्यास्तु ते शूरा दुःखितास्तत्र चाभवन् ।

निराशां विजये प्राप्य कृष्णांशं शरणं ययुः ॥६३॥

योगसिंह ने हाथियों के साथ बलखानि को बुलाया था । भोगसिंह ने अश्वों के साथ होकर कृष्णांश को ढेर दी थी । विजय और नृप के पुत्र समस्त भूपतियों के साथ थे । देव सिंह ने म्लेच्छों के साथ होकर रूपण को युद्ध के लिए नलकार दी थी ॥५८॥ उन दोनों की सेनाओं में बड़ा बड़ा ही दारुण युद्ध हुआ था । वे पर्वतीय शूर सभी ओर से

बड़े निर्भय थे । उन्होंने शत्रु की वीर पालित दो लाख सेना का हनन किया था । अपने बल की प्रभमन देखकर चारो मदमत्तक अपने दिव्य अश्वो पर समाबद्ध होकर शत्रु का महावध करने लगे थे । किन्तु वे ढक्कामृत की ध्वनि से पुन जीवित हो जाते थे ॥५६-६०॥ हे भृगुश्रेष्ठ ! उसका बल बार-बार युद्ध करने के लिये समुद्योत हो जाता था । इस तरह उनका एक अहोरात्र वहा पर ही बड़ा दाहण युद्ध हुआ था ॥६१॥ इस तरह सात दिन भीरुआ को महान् भयकर युद्ध के होने पर वीरो ने बहुत से उपायो के द्वारा बहुत कुछ युद्ध किया था ॥६२॥ जिन शत्रु के सैन्यो को वे मार देते थे वे फिर जीवित हो जाया करते थे । वहा पर तालन आदि जो महाशूर थे वे बहुत ही अधिक दुःखित होगये थे । उम युद्ध मे विजय की मवशा निराशा देखकर सब कृष्णाश की शरण मे गये थे ॥६३॥

तानाश्रास्य स कृष्णाशस्तत्र दिव्यहये स्थित ।  
 नभोमार्गेण बलवान्स्वर्णवत्यतिक ययौ ॥६४॥  
 हर्म्योपरि स्थिता देवी सर्वशोभासमन्विताम् ।  
 नत्वोवाच वच श्लक्ष्ण किंकरोहमिहोदय ।  
 शरण्या त्वामुपागच्छ कामाक्षीमिव भामिनि ॥६५॥  
 वृत्तान्त कथयामास यथासीच्च महारण ।  
 शमेण कर्शिता वीरा निराशा जीवनेऽगमन् ॥६६॥  
 साह चोदर्यासह त्व कामाक्ष्या मन्दिर व्रज ।  
 अह च स्वालिभि सार्धं नवम्या पूजने रता ॥६७॥  
 ढक्कामृतस्य वाद्येन पूजये सर्वकामदाम् ।  
 इति श्रुत्वा स बलवान्स्वसैन्य प्रति चागमत् ॥६८॥  
 अर्धशेपा रणात्सेना पराजाप्य च दुद्रुवु ।  
 पट्टनाप्यपुरे प्राप्ता जय प्राप्य महाबला ॥६९॥  
 पराजिते रिपौ तस्मिन्नेत्रसिहसुते सह ।  
 गृहमागत्य वरवान्विप्रेभ्यो गोघन ददौ ॥७०॥

उस कृष्णाक्ष ने उन सबको आश्वासन देकर वह अपने दिव्य अश्व पर समास्थित हुए और नभो मार्ग से वह बलवान् स्वर्णवती के समीप में गया था ॥६४॥ अपने महल के ऊपर स्थित सब प्रकार की शोभा से समन्वित उस देवी को प्रणाम करके यहाँ मैं उदय नामक विचार हूँ यह परम श्लक्ष्ण वचन उस देवी से कहे थे । हे भामिनि ! कामाक्षी देवी की भाति शरण्या आपके पास आया हूँ । उमने समस्त घृत्तान्न वह मुनाया था जिम तरह वह महापुद्ग ही रहा था । अम से वर्णित हुए वीर अपने जीवन में निराश होगये हैं ॥६५-६६॥ उस देवी ने कहा हे उदयसिंह ! तुम कामाक्षी देवी के मन्दिर में बले जाओ और मैं भी अपनी गहेन्द्रियो के साथ नवमी तिथि के दिन देवी के पूजन में रत होकर ढक्कामृन् के बाद्य से समस्त कामनाओं की प्रदान करने वाली कामाक्षी का पूजन करती हूँ । यह मुनवर यह बलवान् अपनी सेना में आगया था ॥६७-६८॥ रण से अर्ध शेष सेना को पराजित करके ये भाग गये और पट्टनाढ्यपुर में महापवनवान् जय प्राप्त करके पट्टंच गये थे ॥६९॥ नेत्रसिंह के पुत्रों के साथ रिपु के पराजित हो जाने पर बलवान् ने यह में आकर ब्राह्मणों को भी और धन का दान दिया था ॥७०॥

नवम्या पितर प्राह देवी स्वर्णवती तदा ।

कामाक्षीमेवनेनाणु कुरु यागोत्साव मम ।

यत्प्रगादसु विजयी दुर्जयेभ्योऽभवद्भुवाम् ॥७१॥

इति श्रुत्वा पिता प्राह स्वप्नो दृष्टस्तथा मया ।

पूजनाङ्गगत राजा नो चेद्विष्णो हि क्षीमने ॥७२॥

पित्रोर्वाच निजायां तु मा गुप्ता पितुराज्ञया ।

दृजामृन्मय बाधेन कामाक्षीमन्दिर ययी ॥७३॥

कृत्वाशो मायराग्न्य वधून् रता ममागतः ।

दृजामृन् च नारीभ्यो मृत्नीरा स्त्रिणो ययी ॥७४॥



तानागतान्स बलवान्दृष्ट्वा खड्गं गृहीतवान् ।  
 पचपचाशतः शूराननयद्यमसादनम् ॥७६॥  
 कृष्णाशस्त्वरितो गत्वा रूपणो यत्र तिष्ठति ।  
 ढक्कामृतं च सप्राप्य हयारूढो ययौ सभाम् ॥७७॥  
 हृते ढक्कामृते दिव्ये नेत्रसिहो भयातुर ।  
 ऐन्द्र यज्ञ तथा कृत्वा हवनाय परोऽभवत् ॥७८॥

नवमी तिथि में उस समय स्वर्णवती ने पिता से कहा था कि कामाक्षी के सेवन के द्वारा शीघ्र मेरा यागोत्सव करिये । जिसके प्रसाद से आप दुर्जयो से विजयी हुए हैं ॥७६॥ यह सुन कर पिता ने कहा कि आज मैंने इस प्रकार का स्वप्न देखा है कि पूजन से राजाओं का भगल होता है और किसी भी शोधनकार्य में विघ्न नहीं होता है, यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो अवश्य ही विघ्न होता है ॥७७॥ इस प्रकार से पिता के द्वारा कही गई उस सुता ने रात्रि में पिता की आज्ञा से ढक्कामृत के वाद्य के साथ कामाक्षी के मन्दिर में गमन किया था ॥७८॥ वहाँ कृष्णाश मालाकार की वधू होकर आगया था । वह ढक्कामृत वाद्य को स्त्रियों से लेकर तुरन्त ही चला गया था ॥७९॥ इसी अन्तर में वाहनो से समुत्त साठ वीर ढक्का के लिए शीघ्र गये थे जोकि समस्त शस्त्रों से समुद्यत थे ॥८०॥ उनको आते हुए देख कर उस बलवान् ने खग ग्रहण कर लिया था । पचपन शूरो को उसने यमराज के घर पहुँचा दिया था ॥८१॥ कृष्णाश शीघ्रवह गया जहाँ रूपण स्थित था और उस ढक्कामृत को प्राप्त करके हया रूढ होकर सभा में गया ॥८२॥ उस दिव्य ढक्कामृत के हृत होने पर नेत्रसिंह भय से आतुर होगया और उसने ऐन्द्र यज्ञ किया तथा हवन करने के लिए तत्पर होगया था ॥८३॥

प्रभाते समनुप्राप्ते ते वीरा स्वबलैः सह ।

तरसा प्रययुः सर्वे गजोष्ट्रहयसस्थिताः ।

दिनान्ते प्राप्तवत्तश्च यत्राभूत्समहारण ॥८४॥

कृष्णाश पूजयित्वा त दध्मौ ढक्कामृतं वली ।

तच्छब्देन मृता वीरा पुनरुज्जीवितास्तदा ॥८५॥

राजन्नय स बलवानाह्लाद सानुजै सह ।  
 मत्पत्नी न स्थितो वीर कुले हीनत्वमागत ॥८८॥  
 आर्याभीरो स्मृता तेषां किं त्वया विदितं न हि ।  
 यदि देया त्वया कन्या तर्हि त्वं हीनतां व्रज ॥८९॥  
 अतस्त्वं वचनं चेदं कुलयोग्यं शृणुष्व भो ।  
 चतुरो बालकाभ्यो चास्तालनेन समन्वितान् ॥९०॥  
 वञ्चयित्वा विवाहार्थं शिरास्येषां समाहर ।  
 मण्डपात्ते मखं कृत्वा चामुण्डायै समर्पय ॥९१॥

यह कह कर स्वयं देव ने उमा का परम प्रिय ढक्कामृत का हरण करके बह्मि में समाक्षिप्त करके दुर्गा को सन्निवेदित कर दिया था ॥८५॥ उस सुरो के स्वामी के चले जाने पर उस राजा ने ब्राह्मणों के साथ मेल करने के लिये बहा महीपति की ओर गमन किया था ॥८६॥ उस तरह आये हुए राजा को देखकर कृष्णाण और महीपति ने आह्लाद से कहा— सब बलों के साथ सदा भान करने के योग्य है ॥८७॥ हे राजन् ! यह परम बलवान् आह्लाद अपने अनुजों के साथ कुल में हीनता को प्राप्त होकर मेरी पत्ति में स्थित नहीं है ॥८८॥ उनको आर्या आभीरी स्मृत है क्या यह आपको विदित नहीं है ? यदि आपको कन्या देनी है तो तुम भी हीनता को प्राप्त हो जाओ ॥८९॥ इसलिये तुम इस वचन के योग्य हो, सुनिये चारों नीच बानों को तालन के साथ वञ्चित करके विवाह के लिये इनके शिरो को समाहृत करो और मण्डप के अन्त में मख करके उन्हें चामुण्डा के त्रिये समर्पित कर दो ॥९० ९१॥

त्वत्कन्यया समाहृता वीरा वै रेवती हि सा ।  
 पञ्चात्कन्या स्वयं हत्वा कुलकल्याणमावह ॥९२॥  
 नो चेद्भूवा क्षयं यायात्सकुलो जवुको यथा ।  
 इत्युक्त्वा स ययौ साद्धं यत्राह्लादस्य वाधव ॥९३॥  
 इति श्रुत्वा स शल्याशं सुयोधनमुखेरितम् ।  
 तथेत्युक्त्वा वोत्सवं कृत्वा मण्डपात्ते विधानतः ।

आह्लादस्य समीप स गत्वैद्वतचनाय हि ।  
 तमाह दडवत्पादौ गृहीत्वा नृपतिस्स्वयम् ॥६४॥  
 भवन्तोशावताराश्च मया ज्ञाताः सुरोत्तमात् ।  
 निरस्त्रान्पञ्च गुष्माश्च पूजयित्वा यथाविधि ।  
 रामाशाय स्वकन्या च दास्यामि कुलरीतित ॥६५॥  
 इत्याह्लाद समादिश्य स नृपश्छलमाश्रित ।  
 दुर्गात्सवे ययौ गेह तद्वधाय समुद्यत ॥६६॥  
 सहस्र मण्डपे भूपान्सस्थाप्य स्वबलं सह ।  
 तालनाद्याश्च पट् शूरान्मण्डपाते समाह्वयत् ॥६७॥  
 विवाहप्रथमावर्त्ते योगसिंहोऽसिमुत्तमम् ।  
 वरमाहत्य शिरसि जगज्जं बलवान्रुपा ॥६८॥

तुम्हारी कन्या के द्वारा धीर समाहृत हैं वह कन्या रेवती है ।  
 इसके पीछे स्वयं कन्या का हनन करके अपने कुल के कल्याण को प्राप्त  
 करो ॥६२॥ नहीं तो आप राजा जम्बुक की भाँति सकुल क्षय को प्राप्त  
 हो जायेंगे । इतना कह कर जहाँ आह्लाद के बाणध्व ये वहाँ साथ  
 चला गया था ॥६३॥ ऐसा ही होगा—यह कह कर वह शन्याश  
 सुयोधन के मुख से कथित को सुन कर मण्डपान्त में उत्सव करके  
 वचन करने के लिये आह्लाद के समीप में गया और राजा ने स्वयं  
 उसके चरणों में दण्ड की भाँति पड़ कर उसके चरण ग्रहण करके कहा—  
 ॥६४॥ आप सब अशावतार हैं, यह मैंने सुरोत्तम से ज्ञान प्राप्त कर  
 लिया है । इसलिये अब आप सबकी, जबकि आप निरस्त्र हो जावें,  
 यथाविधि पूजा करके मैं अपनी कुल की रीति से रामाश के लिये  
 अपनी कन्या का दान करूँगा ॥६५॥ वह राजा छल का आश्रय लेकर  
 इस तरह आह्लाद को समादेश करने दुर्गा के उत्सव में उसके वध के  
 लिये समुद्यत होकर गृह को चला गया था ॥६६॥ अपने बलों के साथ  
 एक सहस्र भूषों को मण्डप में बिठा कर तालन आदि को वहाँ बुलाया था  
 ॥६७॥ विवाह प्रथमावर्त्त में योगसिंह ने अपना उत्तम खड्ग ले कर वर के  
 माथे में प्रहारकर क्रोध से बलवान् ने गर्जन किया था ॥६८॥

तमाह तालनो घीमान्न योग्य भवता कृतम् ।  
 श्रुत्वाह नेत्रसिंहस्त कुलरीतिरिय बलिन् ।  
 निरायुधं परं साद्धं शस्त्रिणा सगरो हि नः ॥६६॥  
 इति श्रुत्वा योगसिंह कृष्णाशस्त समारुहत् ।  
 भोगसिंह तथाकृष्य बलखानिगृहीतवान् ॥१००॥  
 विजय तृतीयावर्त्ते सुखखानिन्यरुद्ध वै ।  
 चतुर्थावर्त्तेके शत्रुं नृप पूर्णबल शठम् ।  
 रूपणस्त गृहीत्वाशु युयुधे तद्वलं सह ॥१०१॥  
 पचमे बहुराजान तालनश्च समारुहत् ।  
 पष्ठावर्त्ते नेत्रसिंह तथाह्लादो गृहीतवान् ॥१०२॥  
 सप्राप्ते तुमले युद्धे बहुशूराः क्षय गता ।  
 निरायुधा पङ्क्त्यः सक्षम्य व्रणमुत्तमम् ।  
 निरायुधाभिपून्स्वान्वाश्रक्तुः शक्तिप्रपूजकाः ॥१०३॥  
 एतस्मिन्नन्तरे देवः कालदर्शी समागतः ।  
 नभोमार्गेण तानश्वास्तेभ्य आगत्य सददौ ॥१०४॥  
 बिन्दुल चैव कृष्णाशो देवस्तत्र मनोरथम् ।  
 रूपणश्च करालाश्व चाह्लादस्तु पपीहकम् ॥१०५॥  
 हरिणी बलखानिश्च तद्भ्राता हरिनागरम् ।  
 सिहिनी तालन शूर समारुह्य रणोद्यतः ॥१०६॥

उस समय घीमान तालन ने उससे कहा—आपने यह कार्य नहीं किया है । यह मुन वर नेत्रसिंह ने उससे कहा—हे बलिन् ! यह तो हमारे कुल की रीति है कि निरायुध वरो के साथ शस्त्रधारियों का हमारा युद्ध होता है ॥६६॥ यह श्रवण कर कृष्णाश ने उस योग सिंह को समारुद्ध किया था और उसी प्रकार से बलखानि ने भोगसिंह को तीस वर ग्रहण कर लिया था ॥१००॥ तृतीयावर्त्त में सुखखानि ने निरुद्ध कर लिया था और चौथे आवर्त्त में पूर्ण बल वाले शत्रु शठ नृप को रूपण ने ग्रहण कर उसके बल के साथ शीघ्र ही समारुद्ध कर लिया था । पाँचवें आवर्त्त में बहुराजा को तालन ने समारुद्ध कर लिया था ।

पष्ठ आवर्त्त में नेत्रसिंह को आह्लाद ने ग्रहण कर लिया था ॥१०१-१०२॥ उस समय तुमुल सग्राम के संप्राप्त होने पर बहुत से शूर क्षय को प्राप्त हो गये थे । बिना आयुध वाले इन छै बलियो ने उत्तम व्रण को सहन कर शक्ति के प्रपूजको ने अपने-अपने शत्रुओं की यिना आयुधों वाला कर दिया था ॥१०३॥ इसी अन्तर में काल का दर्शी देव वहाँ आ गया था । नभो भाग से आ कर उनके लिये उन अश्वों को दे दिया था ॥१०४॥ कृष्णाश ने बिन्दुल को देव ने मनोरथ नाम वाले को, रूपण ने करालाश्व को और आह्लाद ने पपीहक को प्राप्त किया था ॥१०५॥ बलखानि ने हरिणि को और उसके भाई ने हरिनागर को, तालन ने सिंहनी को प्राप्त किया था । ये शूर समावृद्ध हो कर रण के लिये उद्यत हो गये थे ॥१०६॥

रात्रौ तन्मृपते सेना हत्वा बद्ध्वा च तत्पतिम् ।  
 दोला गेहाञ्च निष्काश्य सप्तभ्रमरकारिताम् ॥१०७॥  
 स्वसैन्यं ते समाजग्मुर्निर्भया बलवत्तरा ।  
 ता-सर्वान्नेत्रसिंहादीन्ष्टुपा पाहोति जल्पित ॥१०८॥  
 निगडैरेकत कृत्वा पञ्च भूपान्हि वचकान् ।  
 कारागारे महाघोरे तत्र ता-स-न्यवासयन् ॥१०९॥  
 नेत्रसिंहो वरो भ्राता सुन्दरारण्यभूमिप ।  
 हेतु ज्ञात्वाभयौ शीघ्र मायावी लक्षसैन्यक ॥११०॥  
 तत्रागत्य हरानन्दो नाम्ना तानयुधद्वली ।  
 नेत्रसिंहस्य सैन्यं च चतुर्लक्ष तदागमत् ॥१११॥  
 पञ्चलक्षे रणो घोर सप्तलक्षयुतैरभूत् ।  
 पञ्चाहोरात्रमात्रं च तथोश्चासीत्स सकुल ।  
 अट्टं सैन्यं रिपोस्तत्र हतशेषमद्रुवत् ॥११२॥  
 विस्मितः स हरानन्दो रुद्रमायाविशारदः ।  
 बलाधिवयमुताञ्जित्वा शिवध्यानपरोऽभवत् ॥११३॥  
 रचित्वा शावरी माया नानारूपविधारिणीम् ।  
 पापाणभूता सबलावृत्वा भूपासमाययौ ॥११४॥

रात्रि में उस नृपति की सेना का हनन करके और उसके पति को बाँध करके तथा दोला को घर से निकलवा करके जोकि सात भाँवरकारि तथा वे बलवान् निर्भय हो कर अपनी सेना में आ गये थे । उन सब नेत्रसिंहादि को देख कर 'रक्षा करो'—इस प्रकार से कहा गया था ॥१०७-१०८॥ इन पाँचो वचक भूपो को निगडो से एकत्रित करके महान् घोर कारागार में वहाँ पर उन्हें रख दिया था ॥१०९॥ नेत्रसिंह वर भ्राता, जो सुन्दर अरण्या भूमि का स्वामी था, इसका हेतु जान कर वहाँ वह मायावी एक लाख सेना लेकर शीघ्र ही आ गया था ॥११०॥ वहाँ आकर बलवान् हरानन्द नाम वाले ने उनसे युद्ध किया था और नेत्रसिंह की चार लाख सेना उस समय वहाँ आ गई थी ॥१११॥ सात लाख समुक्तो के साथ पाँच लाख सेना के साथ घोर युद्ध हुआ था । पाँच अहोरात्र पर्यंत उन दोनों का बड़ा ही सकुल वहाँ हुआ था । वहाँ पर रिपु की आधी सेना, जो हतशेष थी, वहाँ से भाग खड़ी हुई थी ॥११२॥ रुद्रमाया का विशारद वह हरानन्द बड़ा ही विस्मित हुआ था । अधिक बल से युक्तो को जान कर वह शिव के ध्यान में तत्पर हो गया था ॥११३॥ वहाँ नाना रूपों के विद्यारण करने वाली शावरी माया की रचना करके उन सब भूपो को पायाण भूत बना कर वहाँ आ गया था ॥११४॥

समुत भ्रातर ज्येष्ठ नृप पूर्णबल तत ।

मोचयित्वा ययी गेह कृतकृत्यो महाबली ॥११५॥

आह्लाद निगडैर्वन्दा मायया जडता गतम् ।

नेत्रसिंह स बलवान्ययी स्व दुर्गमुद्यत ।

त प्रशस्यानुज वीरो विप्रेभ्यश्चददौ घनम् ॥११६॥

तदा स्वर्णवती दीना वद्ध ज्ञात्वा पतिं निजम् ।

रूपगणाद्यान्मोहिताश्च शम्भुमायावशानुगान् ॥११७॥

रुरोदोच्चंस्तदा देवी ध्यायती कामरूपिणीम् ।

तदा नृप जगदात्री मूर्च्छितास्तानबोधयत् ॥११८॥

ते सर्वे चेतना प्राप्ताः प्राहुः स्वर्णवती मुदा ।

ववास्थितो बधुराह्लादो देवि त्व कारण वद ॥११८॥

यथा वदः स्वय स्वामी कथयामास सा तथा ।

अह शुकी भवाम्यद्य भवान्बिन्दुलसस्थितः ॥१२०॥

इसके पश्चात् उसने पुत्र के सहित राजा को, ज्येष्ठ भाई को और पूर्ण बल को छुड़वा कर महाबली कृतकृत्य होकर अपने घर को चला गया था ॥११५॥ माया से जड़ता को प्राप्त हो जाने वाले आह्लाद को निगडो से बाँध कर वह बलवान् नेत्रसिंह उद्यत हो कर अपने दुर्ग को चला गया था । उस वीर ने अपने छोटे भाई की बहुत प्रशंसा की और विप्रों को धन का दान दिया था ॥११६॥ तब वह दीन स्वर्णवती अपने पति को वद जान कर तथा कृष्णाशादि सबको बन्धु-माया के वशानुग एव मोहित जान कर कामरूपिणी देवी का ध्यात करती हुई बहुत ऊँचे स्वर से वह रोने लगी । उस समय वह जगत् की धात्री देवी प्रसन्न हो गई थी और उसने उन सब मूर्छितों को बोधित कर देने की कृपा की थी ॥११८॥ वे सब चेतना को प्राप्त होकर बड़ी प्रसन्नता से स्वर्णवती से बोले—बन्धु आह्लाद कहाँ आस्थित है ? हे देवि । तू इसका कारण बतला दे ॥११९॥ जिस प्रकार से उसका स्वामी स्वय वद हो गया था, उसने वह सभी वृत्तों को बह दिया था । मैं आज शुकी हूँ, आप बिन्दुल पर सस्थित हो जाइये ॥१२०॥

इत्युक्त्वा सा शुकी भूत्वा कृष्णाशेन समन्विता ।

यत्रास्ते तत्पतिर्वदस्तत्र सा वामिनी मयी ॥१२१॥

कृष्णाशोऽपि हयास्त्रो नभोमार्गेण चाप्तवान् ।

अभीरी मूर्तिमासाद्य स्वामिन प्रति सा ययौ ॥१२२॥

आश्वास्य त यथायोग्य कृष्णाश प्रत्यवर्णयत् ।

कृष्णाशस्तत्र बलवान्हुत्वा दुर्ग निवासिन ॥१२३॥

रक्षवाञ्छितसाहस्रान्हुत्वा भ्रातरमाययौ ।

पौलिमा मधुयुक्ता च ज्ञात्वा सर्वे स्वरान्विता ॥१२४॥

अयोध्या शीघ्रभागम्य स्नात्वा वै सरयू नदीम् ।  
 होलिकादाहसमये शीघ्र वेण्या समागता ॥१२५॥  
 स्नानध्यानादिका निष्ठाः कृत्वा गेहमुपाययुः ।  
 सागरस्य तटं प्राप्य कृत्वा ते च महोत्सवम् ।  
 चैत्रस्य कृष्णपञ्चम्या स्वगेह पुनराययुः ॥१२६॥  
 दूता उष्ट्रसारूढास्तत्क्षेमकरणोत्सुकाः ।  
 वैशाखे शुक्लपञ्चम्या स्वगेह पुनराययुः ॥१२७॥  
 मलना भूपतिश्चैव गेहे गेहे महोत्सवम् ।  
 कारयित्वा विधानेन ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ॥१२८॥

यह कह कर वह शुकी हो गई और कृष्णाश से समन्वित होकर  
 जहाँ उसका पति बद्ध था वहाँ वह कामिनी चली गई थी ॥१२९॥  
 कृष्णाश भी हय पर आरुढ़ होकर आकाश मार्ग से वहाँ प्राप्त हो गया ।  
 वह आभीरी मूर्ति को प्राप्त कर स्वामी के पास चली गई थी ॥१३०॥  
 उसका यथोचित रूप से आश्वासन करके कृष्णाश के प्रति वर्णन किया था,  
 बलवान् कृष्णाश ने वहाँ पर दुर्ग के निवास करने वाले सौ सहस्र रक्षकों का  
 हनन करके भाई को ले आया था । मधुयुक्ता पूर्णिमा को जान कर सब  
 स्वरान्वित होकर शीघ्र अयोध्या में आ गये और वहाँ सरयू नदी में स्नान  
 किया था । फिर होलिका के दाह के समय में शीघ्र वेणी में आ पहुँचे थे  
 ॥१३१-१३५॥ वहाँ भी स्नान, ध्यान आदि समस्त निष्ठाओं को पूर्ण  
 कर अपने घर में प्राप्त हो गये थे । सागर के तट पर जाकर उन्होंने  
 एक महोत्सव किया था । चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की पंचमी में पुनः वे  
 अपने गृह को प्राप्त हो गये थे ॥१३६॥ दूत ऊँटों पर बैठे हुए उनके  
 शोमनरण के लिये बहुत उत्सुक थे । वैशाख मास की शुक्ल पक्ष की  
 पंचमी में पुनः अपने घर में आ गये थे ॥१३७॥ मलना और भूपति के  
 यहाँ तथा घर-घर में बड़ा महोत्सव हुआ था । इस तरह महान् उत्सव  
 सम्पन्न करा कर ब्राह्मणों को धन का दान दिया था ॥१३८॥



## ॥ जयन्तावतारवृत्तांतवर्णन ॥

चतुर्दशाब्दे कृष्णांशे यथा जातं तथा शृणु ।  
 जयन्तः शक्रपुत्रश्च जानकीशापमोहितः ।  
 कलौ जन्मत्वमापन्नः स्वर्णवत्युदरेऽवसत् ॥१॥  
 चैत्रशुक्ल नवम्यां च मध्याह्ने गुरुवासरे ।  
 स जातश्चन्द्रवदनो राजलक्षणलक्षितः ॥२॥  
 जाते तस्मिन्सुतश्रेष्ठे देवाः सर्पिगणास्तदा ।  
 इन्दुलोयं महीं जातो जयन्तो वासवात्मजः ।  
 इत्थंचुर्वचनं तस्मादिन्दुलो नाम चाभवत् ॥३॥  
 आह्लादो जातकर्मादीन्कारयित्वा शिशोर्मुंदा ।  
 ब्राह्मणेभ्यो ददौ स्वर्णधेनुवृन्दं हयान्गजान् ॥४॥  
 इन्दुले तनये जाते द्विभासांते महीतले ।  
 योगसिंहस्तदागत्य रवर्णवत्यै ददौ धनम् ॥५॥  
 नेत्रसिंह सुतं दृष्ट्वा मलनास्नेहसंयुता ।  
 पप्रच्छ कुशलप्रश्नं भोजयित्वा विधानतः ॥६॥  
 शतवृन्दाश्च नर्तक्यो नानारागेण संयुताः ।  
 तत्रागत्यैव ननृतुर्यत्र भूपसुतः स्थितः ॥७॥

इस अध्याय में जयन्त के अवतार के वृत्तान्त का वर्णन तथा उस की इन्दुल नाम से ख्यातिका और इन्दुल के चरण का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—जब कृष्णांश की अवस्था का चौदहवाँ वर्ष हुआ था उस समय जो जिस प्रकार से हुआ था उसका जब श्रवण करो । जयन्त इन्द्र का पुत्र था और वह जानकीजी के शाप से मोहित हो गया था । इसी से उसने कलियुग में जन्म ग्रहण किया था और वह स्वर्णवती के उदर में आकर वस गया था अर्थात् गर्भ में आगया था ॥१॥ चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि और गुरुवार के दिन मध्याह्न में वह चन्द्रमा के समान मुख वाला समुत्पन्न हुआ था जोकि राजा के समस्त लक्षणों से लक्षित था ॥२॥ उस श्रेष्ठ सुत के समुत्पन्न होने पर

उस समय मे ऋषिगणों के सहित देवगण ने यह इन्द्र का पुत्र जयन्त इन्दुल इस नाम से यहाँ भूमि पर उत्पन्न हुआ है ऐसा कहा था इसी से उसका इन्दुल नाम होगया था ॥३॥ आह्लाद ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उसका जातकर्म आदि सस्कार कराकर ब्राह्मणों को स्वर्ण, धेनु अश्व और हाथियों का दान दिया था ॥४॥ इन्दुल पुत्र के उत्पन्न होने पर इस महीतल म दो मास के अन्त मे योगसिंह ने बहा आकर स्वर्णवती को धन दिया था ॥५॥ नेत्रसिंह के पुत्र को देखकर मलना स्नेह से परिपूर्ण होगई थी और उसे विधान पूर्वक भोजन कराकर उससे कुशल पूछा ॥६॥ एक सौ नक्षत्रियों के समूह ने नाना प्रकार के रागों से युक्त होकर बहा आकर नृत्य किया था जहा पर वह राजा का पुत्र स्थित था ॥७॥)

सप्तरात्रमपित्वा स योगसिंहो ययौ गृहम् ।

पण्मासे च सुते जाते देवेन्द्र स्नेहकातर ॥८॥

पुत्रस्नेहेन त पुंस स जहार स्वमायया ।

सहृद्य बालक श्रेष्ठमिन्द्राण्यै च समर्पयत् ॥९॥

स्नेहप्लुता शची देवी स्वस्तनी तमपाययत् ।

देव्या दुग्ध स वै पीत्वा षोडशाब्दासमोभवत् ॥१०॥

इन्दु पीयूषभवनं गृह्णाति वपुषा स्वयम् ।

अत स इन्दुलो नाम जयन्तश्च प्रकीर्तित ।

स बाल स्वपितुर्विद्या पठित्वा श्रेष्ठतामगात् ॥११॥

विनष्टे बालके तस्मिन्देवी स्वर्णवती तदा ।

हरोदोर्ध्वस्तदा दीना हा पुत्र क्व गतोऽसि भो ॥१२॥

ज्ञात्वाह्लाद तथा भूत दशग्रामे तथाविधे ।

रोद्र कालाहलो जानी रदना च नृणा मुने ॥१३॥

आह्लाद स्वकुर्न सार्द्ध निराहारो यतन्द्रिय ।

शारदा शरण प्राप्नश्चिरात् तत्र चावसत् ॥१४॥

मात रात्रि पयसत यागसिंह बहा पर निबाम बरखे अपन घर को चला गया था । जब ई माग का पुत्र हागया तो दशग्राम स्नेह म कानर होगया था और अपन पुत्र क स्नेह क कारण माया

कर के उसने उस इन्दुल का हरण कर लिया था । उस श्रेष्ठ बालक को सहित करके वहा इन्द्राणी के लिये समर्पित कर दिया था ॥८-६॥ स्नेह से लुप्त होकर शची ने उसे अपने स्तनो को पिला दिया था । देवी शची के दुग्ध को पीकर वह बालक सोलह वर्ष के बालक के समान परिपुष्ट हो गया था ॥९॥ वह स्वयं वपु के द्वारा पीयूष के भवन इन्दु को ग्रहण करता है इसलिए जय त इन्दुल इस नाम से कहा गया है । वह बालक पिता की विद्या पढ़कर श्रेष्ठता को प्राप्त हो गया था ॥११॥ उस बालक के धिनष्ट हो जाने पर उस समय देवी स्वर्णवती अत्यन्त दीन होकर उच्च स्वर से रो उठी थी—हा पुत्र ! तू कहा चला गया है ? ॥१२॥ उस प्रकार के दशग्राम में ऐसा होगया—यह जान कर आह्लाद भी होने लगा । इस तरह रोने वाले मनुष्यों का वहा पर अत्यन्त रौद्ररूप वाला हे मुने ! कोलाहल उत्पन्न होगया था ॥१३॥ आह्लाद अपने कुल के लोगों के साथ निराहार होकर यत्तेन्द्रिय होगया था और वह शारदा देवी के शरण में गया तथा तीन रात्रि तक वहाँ पर ही निवास किया था ॥१४॥

तदा तुष्टा स्वयं देवी वागुवाचाशरीरिणी ।

हे पुत्र स्वकुलै साद्व मा शुचस्त्व सुत प्रति ॥१५॥

इन्द्रपुत्रो जय तश्च स्वर्गलोकमुपागत ।

दिव्यविद्यां पठित्वा स त्रिवपति गमिष्यति ॥१६॥

यावत्त्व भूतलेऽवात्सीस्तावत्स भूतले वसेत् ।

तत्पश्चात्स्वर्गतिं प्राप्य जयन्तो हि भविष्यति ॥१७॥

इत्युक्ते वचने देव्या निदशोकास्ते तदाभवन् ।

दशग्रामपुर प्राप्य समूषु ज्ञानं तत्परा ॥१८॥

तब देवी शारदा प्रसन्न हुई और बिना शरीर वाली वाणी ने कहा— हे पुत्र ! तू अपने कुल वालों के साथ सुत के लिये शोक मत कर ॥१५॥ यह इन्द्र का पुत्र जयन्त था जो इस समय मैं स्वर्गलोक में प्राप्त होगया है । वहा वह दिव्य विद्या की पढ़कर तीन वर्ष के अन्त में जायगा ॥१६॥ इसने पश्चात् अब तब तू इस भूतल में रहेगा तभी तब वह

भी भूतल में वास करेगा । इसके अनन्तर वह स्वर्गति प्राप्त कर पुन जयन्त के रूप में इन्द्र का पुत्र हो जायगा ॥१७॥ शारदा देवी के द्वारा कहे गये इन वचनों का श्रवण कर वे सब फिर शोक से रहित होगये थे । फिर दशग्रामपुर में जाकर सब ज्ञान में तत्पर होकर रहने लगे थे ॥१८॥

## ॥ चण्डिकादेवीवाक्यवर्णन ॥

इन्दुले स्वर्गसंप्राप्ते ते वीरा शोककातरा ।  
 शारदा पूजयामासु सर्वलोकनिवासिनीम् ॥१॥  
 जप्त्वा शप्तशती स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं प्रेमभक्तितः ।  
 ध्यानेनानन्दमापन्नास्तदा सप्तशतेहनि ॥२॥  
 सामन्तद्विजपुत्रश्च चामुण्डो नाम विश्रुतः ।  
 सोऽष्टवर्षवया भूत्वा पूजयामास चण्डिकाम् ॥३॥  
 द्वादशाब्दे ततो जाते त्रिचरित्रस्य पाठतः ।  
 परोक्षार्थं तु भक्तानां साक्षान्मूर्तित्वमागता ॥४॥  
 कुड्केय च भो भक्ता पूरयामि च तामहम् ।  
 यूयं तु मनसोपायैः कुरुध्वं पूरणे मतिम् ॥५॥  
 सुखधानिस्तु बलवान्मधुपुष्पस्तथा फलं ।  
 कुण्डिका पूरयामास न पूर्णत्वमुपागता ।  
 बलधानिस्तथा भासंभूतशर्मा तु रक्तकं ॥६॥

इस अध्याय में चण्डिका देवी के वाक्यों का वर्णन किया जाता है । भूतबी न बड़ा—इन्दुन के स्वर्ग में चले जाने पर वे समस्त वीर शीघ्र में वापस होकर शारदा भागती देवी की जोकि समस्त लोकों में ही निवास करने वाली है, पूजा करने लगे थे ॥१॥ तीनों तमसों में प्रेम और भक्ति के भाव से युक्त होकर सप्तशती स्तोत्र का जप करके ध्यान में वे आनन्द की प्राप्ति होगये ॥ तब सप्तरत्न दिन में नामग्न दिन का पुत्र चामुण्ड—इस नाम से विश्रुत का वह याद द देने की अस्मिता वाला होकर चण्डिका का पूजन करता था ॥२-३॥ जब

बारह वर्ष की अवस्था होगई तो तीनों चरित्रों के पाठ से भक्तों की परीक्षा के साक्षात् भूतित्व को प्राप्त होगई थी ॥४॥ मह कुण्डिका है । हे भक्तगण ! मैं उसको पूरित करती हूँ । तुम लोग भी मनसोपायों के द्वारा इसके पूरण करने में मति करो ॥५॥ बलवान् सुखखानि ने मधुपुष्पों से और फलों से इसको पूरित किया था किन्तु मह पूर्णत्व को प्राप्त नहीं हुई थी । बलखानि ने मांस से और मूल शर्मा ने रक्त से पूरित किया था तो भी यह पूर्णत्व को प्राप्त नहीं हुई थी ॥६॥

देवकी च तदा हव्यंश्चन्दनादिभिरर्चनैः ।

कुण्डिकां पूरयामास न पूर्णत्वमुपगता ॥७॥

आह्लादश्चैव सर्वांगैरुदयः शिरसा स्वयम् ।

कुण्डिकां पूरयामास तदा पूर्णत्वमागता ॥८॥

उवाच वचनं देवी स्वभक्तान्भक्तवत्सला ।

सुखाखाने भवान्वीरो भविष्यति सुरप्रियः ॥९॥

बलखानिमहावीरो दीर्घं काले स मृत्युभाक् ।

मूलशर्मा तु बलवाप्रक्तबीजो भविष्यति ॥१०॥

देवकी च भवेद्देवी चिरकालं स्वलोकगा ।

आह्लादश्चैव कृष्णांशस्तयोर्मध्ये द्वयं वरम् ।

एकस्तु देवदत्तोक्तो यलाधिक्यो द्वितीयकः ॥११॥

निष्कामोऽयं देवसिंहो मृतो मोक्षत्वमाप्नुयात् ।

इत्युक्त्वान्तर्दधे माता ते सर्वे तृप्तिमागताः ॥१२॥

देवकी ने उस समय हव्यों से—चन्दन आदि अर्चन की वस्तुओं से इस कुण्डिका को पूरित किया था किन्तु तब भी यह पूर्ण नहीं हुई थी ॥७॥ और आह्लाद ने अपने समस्त अंगों से और उदयसिंह ने स्वयं शिर से कुण्डिका को पूर्ण किया था और उस समय में यह पूर्णत्व को प्राप्त होगई थी ॥८॥ अपने भक्तों पर प्यार करने वाली देवी ने भक्तों से कहा—हे सुखाखानि ! आग सूरों के प्रिय वीर होंगे ॥९॥ महान्वीर बलखानि दीर्घ समय में मृत्यु को प्राप्त होने वाला होगा । मूलशर्मा बलवान् रक्त बीज होगा ॥१०॥ देवकी देवी होगी और चिरकाल तक

अपने लोक में गमन करने वाली होगी । आह्लाद और कृष्णाक्ष उन दोनों के मध्य में दोनों ही श्रेष्ठ हैं । इनमें एक तो देव के समान कहा गया है और दूसरा बलादिव्य वाला था ॥११॥ यह देवसिंह निष्काम था जो मृत होकर मोक्षत्व को प्राप्त हो गया था । यह कह कर वह माता अन्नार्थान होगई और वे सब तृप्ति को प्राप्त होगये थे ॥१२॥

### ॥ बलखानिविवाहवृत्तान्तवर्णन ॥

प्राप्ते सप्तदशाब्दे च कृष्णाक्षे सत्र चाभवत् ।  
 शृणु त्व मुनिशार्दूल दृष्ट यद्योगदर्शनात् ॥१॥  
 रत्नभानौ मृते राज्ञि मरुधन्वमहीपति ।  
 गजसेन स्तदा विप्र पृथ्वीराजभयातुर ॥२॥  
 आराध्य पावक देव यज्ञध्यानव्रतार्चनै ।  
 द्वादशाब्दे सदाचार प्रेमभक्त्या ह्यतोपयत् ॥३॥  
 तदा प्रसन्नो भगवान्पावकीय हय शुभम् ।  
 ददौ तस्मै सुतौ चोभौ कन्या च गजमुक्तिकाम् ॥४॥  
 पावकास्ते हि चत्वारः समुद्रभूता महीतले ।  
 अग्निवर्णा महावीरा सर्वलक्षणलक्षिता ॥५॥  
 अष्टादशवयोभूताः सर्वे ते मुनिपु गव ।  
 जातमात्रा देवसमा सर्वविद्याविशारदाः ॥६॥  
 अष्टादशाब्दवयसा सा कन्या वरवर्णिनी ।  
 दुर्गायाश्च वर प्राप्ता धर्माशस्त्वा वरिष्यति ॥७॥

इस अध्याय में कृष्णाक्ष की सत्रह वर्ष की अवस्था में बनखानि में विवाह में वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । श्री सूतजी ने कहा— कृष्णाक्ष की सत्रह वर्ष की अवस्था प्राप्त हो जाने पर वहा पर जो कुछ भी हुआ था उसका अब थवण करो । हे मुनि शार्दूल ! जो योग दर्शन से देखा था ॥१॥ रत्नमानु राजा ने मृत हो जाने पर मरुधन्व का राजा गजसेन उस समय हुआ था । हे विप्र ! वह पृथ्वीराज के मय से बहुत

आतुर रहता था ॥२॥ उसने पावक (अग्नि) देव की यज्ञ-ध्यान व्रत और अर्चनों के द्वारा आराधना की थी और बारह वर्ष पर्यन्त सदाचार से युक्त रह कर प्रेम एवं भक्ति के भाव से उस देव को प्रसन्न कर लिया था ॥३॥ उस समय पावक भगवान् ने उस पर प्रसन्न होकर एक पावकीय शुभ अश्व उसको दिया था तथा दो पुत्र और एक गज भुक्तिका कन्या दी थी ॥४॥ वे चारों ही पावक थे जोकि इस महीसल में समुत्पन्न हुए थे । ये अग्नि के समान वर्ण वाले—महान् वीर और समस्त शुभ लक्षणों से लक्षित थे ॥५॥ हे मुनि श्रेष्ठ ! ये सब अठारह वर्ष की अवस्था वाले थे और उत्पन्न होते ही देवता सदृश एवं समस्त विद्याओं के महापण्डित थे ॥६॥ वह वर वर्णिनी कन्या अठारह वर्ष की अवस्था वाली थी । उसने दुर्गा देवी से यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि घर्माश तेरा वरण करेगा ॥७॥

शार्ङ्गलवशी स नृप कृतवान्वै स्वयवरम् ।  
 नानादैश्या नृपा प्राप्ता सुताया रूपमोहिता ॥८॥  
 मार्गशीर्षे सिते पक्षे चाष्टम्या चद्रवासरे ।  
 तस्या स्वयवरश्चासीत्सानृपान्प्रति चाययौ ॥९॥  
 विद्यद्वर्णं मुखं तस्याश्चचलायास्तथागतम् ।  
 दृष्ट्वा मुमोह घर्माशो बलघ्नानिर्महीपति ॥१०॥  
 सापि दृष्ट्वा च त वीर मुमोह गजमुक्तिका ।  
 बुद्ध्वा तस्मै ददौ माला वैजयन्ती शुभानना ॥११॥  
 तारकाद्याश्च भूपाला सर्वशस्त्रास्त्रसयुता ।  
 ररघु सर्वतो वीर ते बलात्कन्याकार्थिनः ॥१२॥  
 तमाविधान्पुनान्दृष्ट्वा भूपान्पचशतान्वली ।  
 स शीघ्रं खड्गमुत्सृज्य शतभूषणिरास्यहन् ॥१३॥  
 सर्वतो बध्यमान त बलघ्नानि स तारक ।  
 तद्गुणान्या ददौ खड्गं स तदये द्विधाभवत् ॥१४॥

शार्ङ्गल वन में हाने वाले उस राजा ने स्वयवर किया था । उस समय उस सुता के रूपभावष्य से मोहित होकर अनेक देशों के राजा

वहा प्राप्त हुए थे ॥८॥ मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में अष्टमी तिथि में चन्द्रवार के दिन उस कन्या का स्वयम्बर हुआ था और वह समस्त राजाओं की ओर वरण करने के लिये वहा आई थी ॥९॥ उस चंचला का मुख विद्युत् के वर्ण के समान था । उस का आगमन देख कर ही धर्माश्रमहीपति बलखानि मोहित होगया था ॥१०॥ उस गजमुक्ता ने भी बलखानि को देखा और उस वीर पर वह भी मोहित होगई थी । उस शुभानना ने उसे समझ कर वैजयन्ती माला जोकि वरण करने के लिए वहा वह लेकर आई थी उसके गले में डालदी थी ॥११॥ तारक आदि जो भूपाल वहा थे जोकि समस्त शस्त्र और अस्त्रों से सयुक्त थे उन्होंने उस वीर को सभी ओर से रोक लिया था क्योंकि वे सब बलपूर्वक उस कन्या को लेने की इच्छा वाले हो रहे थे ॥१२॥ उस बली ने जब देखा कि ये पाँच सौ राजा मुझ से इस गजमुक्ति को बलात् छीन लेने के इच्छुक हो रहे हैं तो उसने शीघ्र ही अपना खग निकालकर एक सौ राजाओं के मस्तक काट डाले थे ॥१३॥ सब ओर से बध्यमान उस बलखानि को उस तारक ने उसकी भुजाओं में खग दे दिया था और वह उसके अंग में दो होगया था ॥१४॥

महीराजसुतो ज्येष्ठो दृष्ट्वा खड्गं तथा गतम् ।

अपोवाह रणाच्छूरस्तत्पश्चात्ते नृपा ययुः ॥१५॥

पराजिते नृपवले बलखानिमहाबल ।

ता कन्या शिविकारूढा स्वगेह सोऽनयद्वली ॥१६॥

ता गच्छती सुता दृष्ट्वा गजसेनो महीपतिः ।

महीपत्याशया प्राप्ता ज्ञात्वा त स्त्रियाघमम् ॥१७॥

जबुकध्न महावीरं मायया तममोहयत् ।

जाते निद्रातुरे वीरे दुर्गायाः क्षापमोहिते ॥१८॥

निगडंस्त ववघ्नाशु दृढैर्लोहभयं रपा ।

लोहदुर्गं च संप्राप्य ग्रामरूपं महीपतिः ॥१९॥

चाडालाश्च समाहूय कठिनास्तत्रवामिनः ।

वधायाज्ञापयामास तस्य दंढरेवसः ॥२०॥



ते रौद्रास्तं समाबध्य ताडयामासुरुज्जिताः ।

तत्ताडनात्तदा निद्रा तत्रैव विलयं गता ॥२१॥

महीराज के पुत्र ने जोकि ज्येष्ठ था उस प्रकार से गये हुए खंग को देखकर रण से वह शूर अपोवाहित होगया था और इसके पश्चात् वे राजा भी चले गये थे ॥१५॥ समस्त नृपों के बल के पराजित हो जाने पर महान् बलवान् बलवानि ने उस कन्या को शिविका में आरुढ़ कराकर अपने घर में ले गया था ॥१६॥ उस कन्या को जाती हुई देख कर महीपति गजसेन महीपति की आज्ञा से उसे क्षत्रियों में अधम जान कर बहा आया था ॥१७॥ जम्बुक के मारने वाले उस महावीर को माया से मोहित कर दिया था । दुर्गा के शाप से मोहित उस वीर के निद्रा से आतुर हो जाने पर क्रोध से लोहे की निगड़ों से उसे शीघ्र ही बाँध दिया था । महीपति ने ग्रामरूप लोहदुर्ग को उसे पहुँचा दिया था ॥१८-१९॥ और वहा पर रहने वाले कठिन चाण्डालों को बुलाकर अनेक प्रकार के दण्डों के साथ उसके वध करने की आज्ञा देदी थी ॥२०॥ उन महारौद्र ऊर्जितों ने उसे अच्छी तरह से बाँधकर पीटना शुरु कर दिया था । उनके उस ताड़न करने से उस समय वह निद्राविलीन होगई थी ॥२१॥

दृष्ट्वा ततस्तु चंडालान्वलखानिरताडयत् ।

तलमुष्टिप्रहारेण चांडाला मरण गताः ॥२२॥

मृते पंचशते रौद्रे तच्छेषा दुद्रुवुर्भयात् ।

कपाटं सुदृढं कृत्वा नृपांतिकमुपाययुः ॥२३॥

स नृपः कारणं ज्ञात्वा हस्तबद्धो महाबली ।

उवाच तत्र गत्वासौ वचनं कार्यतत्परः ॥२४॥

भवान्महाबलो वीर चांडालैर्बन्धनं गतः ।

दस्युभिलुंठितस्तत्र निद्रावश्यो वनं गतः ॥२५॥

मत्सुता भवने प्राप्ता दिष्ट्या त्वं जीवित गतः ।

उद्वाह्य मत्सुतां शीघ्रं स्वगेहं यातुमर्हसि ।

इति श्रुत्वा प्रियं वाक्यं तं प्रशस्य तथाकरोत् ॥२६॥

वलखानिविवाहवृत्तात्तवर्णन ]

मण्डपे वेदवर्माणि विवाहार्थं चकार स ।  
जाताया मण्डपार्चाया पत्रमाह्लादहेतवे ॥२७॥  
तदाज्ञया लिखित्वासौ गजसेनोऽग्निसेवक ।  
उष्ट्राख्यं समाहूय शीघ्र पत्रमचोदयत् ॥२८॥

इसके पश्चात् बलखानि ने उन चाण्डालो को देख कर उहे पीटा था । मुष्टि के तल प्रहार से ही वे चाण्डाल मर गये थे ॥२२॥ पाँच सौ रौद्रो के मरने पर जो शेष रह गये वे सब मय से भाग गये थे, विवाहो को दृढ़ बन्ध करके राजा के पास पहुँच गये थे ॥२३॥ उस राजा ने कारण को जान कर उस महान् बली ने हस्त बढ होकर काय मे तत्पर वहाँ जाकर यह वचन बोला—हे धीर ! आप महान् बल वाले हैं चाण्डालो के द्वारा वधन को प्राप्त हुए थे दस्युओ के द्वारा सूटे भी गये थे और निद्रावश्य होकर वन मे गये थे । मेरी पुत्री तो भवन मे प्राप्त हो गई, बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आप जीवित हैं । अब आप मेरी पुत्री से शीघ्र विवाह करके अपने घर मे जाने के योग्य होते हैं । इस प्रकार के इन परम प्रिय वचनो को सुन कर उसकी प्रशंसा कर बैसा ही किया था ॥२४ २५॥ उसने एक मण्डप का निर्माण करा के उसमे विधिवत् विवाह के समस्त कर्म किये थे । मण्डप की अर्चा हो जाने पर आह्लाद के लिये उसकी आज्ञा से एक पत्र लिख कर इस अग्नि के सेवक गजसेन ने एक उष्ट्राख्य को बुला कर शीघ्र ही उस पत्र को प्रेरित कर दिया था ॥२७ २८॥

वलखानेविवाहोऽत्र भवासौ यसमवित ।  
सप्राप्य योग्यद्रव्याणि भुक्त्वा त्व तृप्तिमावह ॥२९॥  
इत्युक्ते निशि जाताया बलखानिमहाबल ।  
भोजन कृतवास्तत्र विपजुष्ट नृपार्पितम् ॥३०॥  
गरल तेन सभुक्त न ममार वराच्छुभात् ।  
तत काले च सप्राप्ते दृष्ट्वा मोहत्वमागतम् ।  
पुनर्वध निगडंस्ताडयामास वेतस ॥३१॥

विपदोपमसृक्द्वाराग्निस्मृतं सर्वदेहतः ।

तदा बुबोधवलवान्भूपति प्राह नम्रधीः ॥३२

राजन्किमीदृशं जातं त्वत्सैन्यं ताडने रतम् ।

स आह भो महावीर मत्कुले रीतिरीदृशी ।

यातनां प्रथमं प्राप्य तदनूद्वाहितो भवेत् ॥३३

इत्युक्ते सति भूपाले गजमुक्ता समागता ।

पितरं प्राह वचनं कोऽयं तत्ताडने गतः ॥३४

नृपः प्राह सुते शीघ्रं याहि त्वं निजमन्दिरे ।

कृपिकरोयमायातो द्रव्यार्थं ताडने गतः ॥३५

यह बलखानि का विवाह है अतः आप सैन्य से युक्त होकर यहाँ प्राप्त होवें और द्रव्यों का उपभोग करके आप सृष्टि को प्राप्त करें ॥३२॥ इस प्रकार कहने पर राजा हो जाने पर बलखानि ने भोजन वहाँ किया था जो राजा के द्वारा समर्पित किया गया था और विप से जुष्ट था ॥३०॥ उसने गरल को भी खा लिया था किन्तु शुभ वर के होने के कारण से वह मरा नहीं था । इसके पश्चात् काल के आने पर मोहत्व को प्राप्त हुए उसको देख कर पुनः निगड़ों से उसे बाँध लिया था और बेटों से पीटा था ॥३१॥ वह जो खिलाये हुए विप का दोष था वह रक्त के द्वारा समस्त शरीर से निकल गया था । तब वह बलवान् ज्ञान वाला हो गया और नम्र बुद्धि वाला होकर राजा से बोला ॥३२॥ हे राजन् ! यह इस तरह कैसे हुआ कि तुम्हारे सैनिक मुझे ताड़न करने में रत हो रहे थे ? उसने कहा—हे महावीर ! मेरे कुल में इसी तरह की रीति होती है । पहिले पूर्ण यातना प्राप्त करके ही पीछे उद्वाहित हुआ करता है ॥३३॥ भूपाल के इस प्रकार से कहने पर वहाँ गजमुक्ता आ गई थी और वह अपने पिता से बोली—यह कौन था, जो उसके ताड़न करने में गया था ? राजा ने कहा—हे सुते ! तुम शीघ्र अपने मन्दिर में जाओ । यह कृपिकर आया था जो कि द्रव्य के लिये ताड़न में गया था ॥३५॥

इति श्रुत्वा बचो घोर बलखानिमंहावलः ।  
 छित्त्वा तद्व घन घोर खड्गहस्तः समाययौ ॥३६॥  
 शूरान्पचशत त च रुद्ध्वा शस्त्रैः समततः ।  
 प्रजघ्नतस्तु तान्सर्वान्विलखानिव्यनाशयत् ॥३७॥  
 गजसेन सुतो ज्येष्ठ सूर्यद्युतिरुपागतः ।  
 वद्ध्वा पुनस्त बलिन गर्तमध्ये समाक्षिपत् ॥३८॥  
 तथा गत पतिं दृष्ट्वा गजमुक्ता सुदुःखिता ।  
 निशि तत्र गता देवी दत्त्वा द्रव्यं तु रक्षकान् ॥३९॥  
 पतिं निष्काश्य रुदती व्यजन पतये ददौ ।  
 रात्रौ रात्रौ तथा प्राप्ता व्यतीत पक्षमानकम् ॥४०॥  
 एतस्मिन्न तरे वीरश्चाह्लाद सप्तलक्षकैः ।  
 सैन्यं सहाययौ क्षीघ्रं श्रुत्वा तत्रैव कारणम् ॥४१॥  
 बलखानिर्गतो गर्तं रुरोध नगरी तदा ।  
 गर्जं पोडशाहस्नैर्गजसेनो रण ययौ ॥४२॥

इस प्रकार के घोर वधन को महाबली बलखानि ने सुना और उसके उस घोर वधन को काट कर वह हाथ में खड्ग ले कर वहाँ आ गया था ॥३६॥ फिर पाँच सौ शूरो ने उसे अवरोध किया जो कि चारों ओर से शस्त्रों से युक्त थे तब बलखानि ने उन्हें मारते हुए सबको विनष्ट कर दिया था ॥३७॥ गजसेना का ज्येष्ठ पुत्र सूर्यद्युति आ गया था । उस बली को बाँध कर फिर एक गर्त के मध्य में डाल दिया था ॥३८॥ उस प्रकार की दशा में रहने वाले अपने पति को देख कर गजमुक्ता अत्यन्त दुःखित हुई थी । वह देवी रात्रि में वहाँ पहुँची और रक्षकों को द्रव्य देकर रोती हुई उसने अपने पति को निकाल कर उसे एक व्यजन दिया था । इस तरह वह रात-रात में वहाँ प्राप्त हो जाया करती थी । उसे इस प्रकार से एक पक्ष व्यतीत हो गया था ॥३९-४०॥ इस बीच में आह्लाद सात लाख सेना के साथ वहाँ उस कारण को सुन कर क्षीघ्र आगया था ॥४१॥ उसने यह सुना कि बलखानि गर्त में पड़ा है

तो उस नगरी को उसी समय घेर लिया था । सोलह सहस्र गजों की सेना को लेकर गजसेन युद्ध करने गया था ॥४२॥

त्रिलक्षैश्च हयैः साढ्यं सूर्यद्युतिरुपाययी ।

कांतामलस्तदा प्राप्तस्त्रिलक्षैश्च पदातिभिः ॥४३॥

तयोश्चासीन्महद्युद्धमहोरात्रं हि सैन्ययोः ।

रक्षिते तालनाद्यै च गजसेनाद्यके तदा ॥४४॥

द्वितीयेऽह्नि समायाते गजसेनो महाबलः ।

प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पावकीयं समारुहत् ।

दाहयामास तत्सैन्यं तालनाद्यैश्च पालितम् ॥४५॥

भस्मीभूतं बलं दृष्ट्वा तालनः शत्रुसम्मुखे ।

गत्वा भल्लेन भूपालं ताडयामास वेगतः ॥४६॥

मूर्छितं नृपमाज्ञाय सूर्यद्युतिरुपाययी ।

पावकीयं समारुह्य दाहयामास तालनम् ॥४७॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरी देवो चाह्लादकृष्णकौ ।

वदन्धतू रूपाविष्टौ सूर्यद्युतिमरिदमम् ॥४८॥

सुबद्धं भ्रातरं ज्ञात्वा हयं कांतामलोऽरुहत् ।

देवसिंहं च संमोह्यकृष्णांशं प्रति सोऽगमत् ।

गृहीत्वा त स कृष्णांशं तस्य तेजः समाहरत् ॥४९॥

तीन लाख अश्वों के साथ वहाँ सूर्यद्युति भी आ गया था । उस समय में कांतामल भी तीन लाख पदातियों को लेकर प्राप्त हो गया था ॥४३॥ उन दोनों सेनाओं का एक अहोरात्र तक महान् युद्ध हुआ था । तप्तनादि के और गजसेनादि के रक्षित रहने पर वह युद्ध था ॥४४॥ द्वितीय दिन के होने पर महाबलवान् गजसेन ने अपनी सेना को भग्न देख कर पावकीय पर समारोहण किया था । तालनादि के द्वारा जो रक्षित सेना थी, उसको उन्होंने जला दिया था ॥४५॥ शत्रु के सम्मुख में भस्मीभूत सेना को देख कर तालन ने जाकर भाले से भूत पर प्रहार किया था । राजा को मूर्छित जान कर वहाँ सूर्यद्युति आ गया था । अपने पावकीय पर समारुह्य होकर तालन को दग्ध किया

१। इसी बीच म देवभूर आह्लाद कृष्णच न रोष से आविष्ट होकर  
रिदम मूयच्छति को बाँध लिया था । भाई को सुबद्ध जान कर वास्ता  
न हथ पर समाहृत हो गया था । उसने देवसिंह को समोहित करने  
के वह कृष्णाश च प्रति गया था । उसने उस कृष्णाश को पकड़ कर  
प्रा तत्र समाहृत कर लिया था ॥४६४६॥

सप्तलक्षयल सर्वं बलिभूतमभूत्तदा ।

आमरत्यात्सआह्लादस्तदा तु समजीवयत् ॥५०॥

गजसेनस्याद्वैसैन्य तंश्च सर्वविनाशितम् ।

विजय नृपति प्राप्य हृषितो गहमाययौ ॥५१॥

बलिभूत च कृष्णाश इष्टाह्लाद मुदु पित ।

दुर्गा देवी स तुष्टाव मनसा रणमूर्द्धनि ॥५२॥

तदा देवी वच प्राह वत्स ते पुत्र एव च ।

स्वर्गादागत्य सर्वाणि पुनरुज्जीवयिष्यति ॥५३॥

इत्युक्ते वचने देव्या इन्दुलो वासवाज्ञया ।

तदा ऋदसम रूप धृत्वा विद्याविशारद ।

तमारुह्य ह्य तत्र समागत ॥५४॥

वधञ्ज। पुदधृता बाहा मेघा इव समतत ।

पावकशमयामा सुस्त्रयस्ते देवतोपमा ॥५५॥

शमीनृने तदा बह्वी स्वमुखात्सहयो मुदा ।

लालामुद्राहयामास तया ते जीवितास्तत ॥५६॥

एत पक्ष में वह जो सात लाख सेना थी वह सब बलिभूत हो गई

। तब अमरत्य से उस आह्लाद ने जीवित किया था ॥५०॥ गजसेन

। बाघी सेना उन्होंने विनाशित कर दी थी । नृपति विजय पाकर

पत होकर घर में आ गया था ॥५१॥ कृष्णाश को बलिभूत देख कर

ह्लाद अत्यन्त दुःखित हुआ था । उसने रण के मूर्द्धनि में ही मन से

देवी की स्तुति की थी ॥५२॥ तब देवी ने यह वचन कहा—हे पुत्र ।

त पुत्र स्वर्ग से आकर इनको फिर जीवित कर देगा ॥५३॥ देवी के

रा इतना कहने पर इन्द्र की आज्ञा से वह इन्दुल बारह वष की

अवस्था वाले के समान रूप धारण कर विद्याओं में विशारद वह बड़वाभूत अश्व पर सवार होकर वहाँ आ गया था ॥५४॥ उसके अङ्ग से बाह्र भेड़ों के समान चारों ओर से उद्भूत हुए थे । उन तीनों देवों ने समान ने पावक को एकदम शान्त कर दिया था ॥५५॥ उस समय में पावक के शमन हो जाने पर उस अश्व ने अपने मुख से लार निकाली थी उससे वे सब मृत हुए जीवित हो गये थे ॥५६॥

जीविते सप्तलक्षे तु शमीभूते हि पावके ।  
 गजसेनः सुताभ्या च प्रयातः सर्वतोदिशम् ॥५७॥  
 लक्ष संन्य तु ये शिष्टास्ते सर्वेऽपि भयातुरा ।  
 दुद्रुधुर्भागवश्रंष्टदिव्य रूपत्व धारिणः ॥५८॥  
 वैचित्सन्यासिनो भूत्वा वैचिद्वं ब्रह्मचारिणः ।  
 जीवत्व प्राप्त्यन्तस्ते तथान्ये सक्षय गता ॥५९॥  
 वदध्या तान्गजसेनादीस्त्रीञ्छूरान्स च तालन ।  
 वृष्णाशेन समायुक्त इन्द्रदुर्गं समाययौ ॥६०॥  
 यलग्नानि च निध्वाद्य तालनस्तदनंतरम् ।  
 पृष्टवान्यारण सर्वं श्रुत्वा तन्मुखतो यचः ।  
 तान्वीरास्तद्व्याप्राप्त वेतसं स्तम्भघनैः ॥६१॥  
 गजमुत्ताग्रया विप्र सेनापतिरुदारधीः ।  
 तालनस्तान्समुत्तृज्य विद्याहार्यं समाययौ ।  
 यमग्रानिहंयादौ गजमुत्ताच मरुपे ॥६२॥  
 गजमेनस्तदादि र्गर्भोजनं स्तानमोजयत् ।  
 त्रिगन्ध सौद्रुर्गं तान्नपाटः मुद्वीरुता ।  
 रक्षानुरान्त्सु संभ्याप्य रथय रथपर ययौ ॥६३॥

रूप धारण करके उन्होंने प्राण बचाये थे । अय जो थे वे सब क्षय को प्राप्त हो गये थे ॥५६॥ तब तानन न उन गजसेन आदि तीन शूरो को बाँध कर कृष्णाश से समायुक्त होकर इन्द्र दुर्ग म आ गये थे । बलखानि को निकाल कर उसक बाद म ममस्त कारण पूछा और उसे उसके मुख से सुनकर उन घोरा को स्तम्भो से बाँध कर वेता से पीटा था । हे विप्र ! गजमुक्ता की आज्ञा से उदारघो सेनापति ने उनको छोड़ कर विवाह के निये बह आ गया थे । बलखानि अश्व पर समावृद्ध था और गजमुक्ता मण्डप म थी ॥६० ६२॥ गजसेन ने फिर दिव्य भोजनो से उनको भोजन कराया था और रोह दुर्ग म उनको ठहरा कर सुदृढ किवाड़ तगवा दिये थे । एक लाख शूरो को वहाँ सस्थापित करके स्वयं रुद्रपुर को चला गया था ॥६३॥

ते रात्रौ लोहदुर्गेषु ह्युपित्वा यत्नतोवलात् ।

प्रभाते च कपाटे न द्वार दृष्ट्वा तदाव्रवीत् ।

द्वारमुद्घाटयाशु त्व नो चेप्राणास्त्यजिष्यसि ॥६४॥

इति सेनापति श्रुत्वा लक्षणैरान्समादिशत् ।

नानायत्नैश्च हतव्या शत्रवो भयकारिण ॥६५॥

इति श्रुत्वा तु ते शूरा शतव्यस्तं सुरोपिता ।

एकैक क्रमशो जघ्नुर्वृन्द ते वैरतत्परा ॥६६॥

हते दशसहस्रे तु कृष्णाशो विदुल हयम् ।

समारुह्य जघानाशु स्वखड्गे महद्वलम् ॥६७॥

हतशेषा भयार्ताश्च सहस्राशोतिसम्मिता ।

इन्द्रदुर्गं प्रति प्राहुर्यथा जातो बलक्षय ॥६८॥

श्रुत्वा भयातुरो राजा स्वसुताभ्या समन्वित ।

गजमुक्ता पुरस्कृत्य बहुद्रव्यसमन्विताम् ।

स्वपाप क्षालयामास दत्त्वा कन्या विधानत ॥६९॥

पोडशोष्टाणि स्वर्णानि गृहीत्वाल्हाद एवम् ।

ययी स्वगेहं महितं पुनर्भ्रातृसमन्वित ॥७०॥



वे रात्रि में उस लोह-दुर्ग में रहकर यत्न बल से प्रभात होने पर द्वार को कपाट से रुद्ध देख कर उस समय बोले—जल्दी से द्वार को खोल दो नहीं तो प्राणी को त्याग देगा ॥६४॥ सेनापति ने यह सुन कर एक लाख सेना को आज्ञा दी, अनेक प्रकार के यत्नों से ये भयकारी शत्रु मार देने चाहिये ॥६५॥ यह सुन कर उन दूरो ने तोपें वहाँ लगा दी थी । उन्होंने एक एक वृन्द को क्रम से मार डाला था, क्योंकि वे बैर में पूर्णतया तत्पर थे ॥६६॥ जब दस सहस्र हत हो गये तो वृष्णाश विन्दुल अश्व पर समासूढ होकर उसने अपने खड्ग से उस विशाल सेना का हनन शीघ्र ही कर दिया था ॥६७॥ जो मरने से बच गये थे, सहस्र अशीति प्रमाण वाले इन्द्र-दुर्ग के प्रति चले गये और वहाँ सब कहा कि कैसे इतनी बड़ी सेना का क्षय हो गया था ॥६८॥ यह सुन कर राजा भय से आतुर हो गया था, अपना दोनों पुत्रों के साथ समन्वित होकर बहुत से धन में युक्त गजमुक्ता को आगे करके विधानपूर्वक कन्या का दान करके उमने अपन बिये हुए पाप का क्षालन किया था ॥६९॥ उग आह्लाद न मोनह ऊँट गुवर्ण ग्रहण किया था और फिर पुत्र-भार्द्व ने गर्मा वत होकर पूजित हो अपन घर को चला गया था ॥७०॥

संप्राप्ते गेहमाह्लादे देवी स्वर्णवती स्वयम् ।

द्रुदुन स्वावमारोप्य सलाप वरुण बहु ॥७१॥

मृगारु अ त्वया पुत्र पुनरुज्जीविता गतु ।

धन्याह कृतकृत्यास्मि जयन्त तव दर्शनान् ॥७२॥

इति श्रुत्वाङ्गुणे योरो नत्वाह जननी मुदा ।

अनृण नाधिगच्छामि त्वनो मान वदाधन ॥७३॥

मप्राप्तमत्माह्लाद राजा परिमन गुधो ।

यासानि वादयामाग विप्रेभ्यश्च ददौ धनम् ॥७४॥

आज सुफल हो गई हूँ ॥७२॥ यह सुन कर वीर इन्दुल ने अपनी माता को सानन्द प्रणाम किया और कहा—हे माता ! मैं तुमसे अनृण कभी भी नहीं होऊँगा ॥७३॥ आह्लाद के घर पर आ जाने पर सुधी राजा परिमल ने बहुत से बाघों को बजवाया था और ब्राह्मणों को धन का दान दिया था ॥७४॥

## ॥ ब्रह्मानन्द का विवाह वृत्तान्त ॥

कृष्णाशोऽष्टादशाब्दे तु यथाजातं तथा शृणु ।  
 मृते कृष्णामुरारे तु भूपती रत्नभानुना ॥१  
 महीराजः सुदुःखार्तो लक्षचण्डीमकारयत् ।  
 होमान्ते तु तदा देवी वागुवाच नृप प्रति ॥२  
 चर्षेवर्षे तु ते सप्त भविष्यत्यगसम्भवाः ।  
 कुमाराः कौरवाशाश्च द्रौपद्यशा सुता नृप ॥३  
 इत्युक्ते वचने तस्मिन्नाज्ञी गर्भमथो दधौ ।  
 कर्णाशश्च सुतो जायस्तारको बलवत्तरः ॥४  
 द्वितीयाब्दे तथा जाते दुःशासनशुभाक्षतः ।  
 नृहरिरिति विख्यातस्तृतीयाब्दे तु चाभवत् ॥५  
 उद्धर्षाशः सरदनो दुर्मुखाशस्तु मर्दनः ।  
 विकर्णाशः सूर्य्यकर्मा भीमश्राशो विविशते ॥६  
 चर्द्धनश्चित्रवाणाशो वेला तदनु चाभवत् ।  
 यथा कृष्णा तथासैव रूपचेष्टागुणैर्मुने ॥७

इस अध्याय में पृथ्वीराज के सप्त कौरवाश पुत्र की प्राप्ति के वृत्तांत का वर्णन तथा ब्रह्मानन्द के विवाह का वर्णन किया जाता है । श्रीमूतजी ने कहा—अब उस कृष्णाश के अठारहवें वर्ष के होने पर जो कुछ हुआ था उसका श्रवण करो । रत्नभानु के द्वारा कृष्ण कुमार भूपति के मृत हो जाने पर सुदुःखार्त महीराज ने लक्ष चण्डी का अनुष्ठान कराया था । होम हो जाने के अन्त में उस समय राजा से देवी ने यह

वचन कहे थे । देवी ने कहा—वर्ष—वर्ष मे सात अग से सम्भूत कुमार होंगे । हे नृप ! वे कौग्वाश और द्रौपद्यश पुत्र होंगे ॥१-३॥ उस के इस वचन के कहने के बाद रानी ने गर्भ को धारण किया था । अधिक बलशाली कर्णाश पुत्र तारक समुत्पन्न हुआ था ॥४॥ द्वितीय वर्ष के होने पर दुष्शासन के शुभाश से नृहरि इस नाम से विख्यात हुआ था । तृतीय वर्ष के होने पर उद्धर्णाश सरदन—दुर्मन्त्राश भर्दन—विकर्णाश सूर्य वर्मा—और भीमाश विविशत उत्पन्न हुए ॥५-६॥ चित्रवाणाश विवर्द्धन और इसके पीछे बेला समुत्पन्न हुई थी । जैसी कृष्णा थी बिल्कुल उसी तरह की । हे मुने ! रूप लावण्य—नेष्टा और गुण गण से यह हुई थी ॥७॥

भुवि तस्या च जाताया भूकम्पो दारुणोऽभवत् ।  
 अट्टाट्टहासमशिव चामुंडा खे चकार ह ।  
 रक्तवृष्टि पुरे चासीद स्थिशर्करया युता ॥८  
 ब्राह्मणाश्च समागत्य जातकर्मदिका क्रियाम् ।  
 कृत्वा नाम तथा चक्रे शृणु भूमिप साक्षरम् ॥९  
 इला च शशिनो माता विकल्पेनाऽभवद्भुवि ।  
 तस्माद्वेलेति विख्याता कन्येय रूपशालिनी ॥१०  
 जाताया सुताया स पिता विप्रेभ्य उत्तमम् ।  
 ददौ दान मुदा युक्तो वासासि विविधानि च ॥११  
 द्वादशाब्दवय प्राप्ते सा सुता वरणिनी ।  
 उवाच पितर नम्रा शृणु त्व पृथिवीपते ॥१२  
 भडपे रक्तधाराभिर्यो मा सस्नापयिष्यति ।  
 द्रौपद्या भूषण दाता स मे भर्ता भविष्यति ॥१३  
 स्वर्णपत्रे तदा राजा पद्य वेलामखोद्भवम् ।  
 लिखित्वा तारक प्राह त्वमन्वेपय तत्पतिम् ॥१४

इस भूमण्डल में जब उसने जन्म ग्रहण किया था उग समय में एक महादारण भूकम्प हुआ था और चामुण्डा देवी ने आकाश में अशिर अट्टाट्टहास किया था । पुर में रक्त की वृष्टि हुई थी जोरि अस्त्रियों की

शकरा से युक्त थी ॥१८॥ ब्राह्मणा न आकर उसकी जाति कम आदि किया को सम्पन्न करके उसका नामकरण किया था । हे भूमिप ! इस का अक्षरो व महित धवण करो । इला शक्ती की माता थी जो विकल्प से भूमि न हुई थी इसलिये बेला इस नाम से विख्यात हुई है । यह रूप शानिनी तुम्हारी क्या बेला नाम धारिणी है ॥१९॥ उस सुता के समुत्पन्न होत पर पिता ने ब्राह्मणों को बहुत उत्तमदान बड़ी प्रसन्नता क साथ दिया और अनेक प्रकार के वस्त्र दिये ॥१९॥ जब उस वर-धनिनी कन्या की बारह वर्ष की अवस्था हो गई थी उसी विनम्र होकर पिता से कहा—ह पृथिवीपते ! सुनिधे मण्डप म रक्त की धाराओं स जो मुझे सन्नायन करायेगा वह द्रौपदी को वस्त्रों को देन वाला मेरा स्वामी होगा ॥१२-१३॥ तब राजा ने सुवर्ण के पत्र पर बेला के मुख स निकला हुआ पद्य लिखवा कर तारक से कहा—इसका पति तुम ही खोजो ॥१४॥

साद्धं लक्ष्मय द्रव्य गृहीत्वा लक्षसंयक ।  
नृपातर ययौ शीघ्र तारक पितुराज्ञया ॥१५॥  
सिधुस्थाने धायदेशे भूप भूप ययो वली ।  
न गृहीत नृपै कैश्चित्तद्वाक्य घोरमुत्वरणम् ।  
महीपति स सप्राप्य मातुल तद्वचोऽब्रवीत् ॥१६॥  
श्रुत्वा स आह भो वीर ब्रह्मानन्दो महाबल ।  
स च वाक्य प्रगृह्णीयादाह्लादयै सुरक्षित ॥१७॥  
वि त्वया विदित नैव चरित तस्य विधुतम् ।  
भवापद्वधु सहित वृष्णाशार्द्यविवाहित ॥१८॥  
त सर्वे वरागास्तस्य ब्रह्मानन्दस्य धीमत ।  
नास्ति भूमडले वश्चित्तद्वलेन समो नृप ॥१९॥  
इति श्रुत्वा ययौ तूण तारक स्ववर्त्त सह ।  
तत्पद्य वययित्वाय हस्तवद्धस्तदामवत् ॥२०॥  
वृष्णास्तु गृहीत्वाशु पद्य वाक्यमुवाच ह ।  
अह विवाहयिष्यामि ब्रह्मानन्द नृपात्मनम् ॥२१॥

साथ में तीन लाख घन और एक लाख सेना लेकर पिता की आज्ञा से तारक दूसरे राजाओं के पास शीघ्र चला गया था । वह बली सिन्धु देश में और आर्य देश में एक-एक राजा के पास गया था किन्तु राजाओं में से किसी ने भी उसके परम घोर इस उल्लङ्घन वाक्य को ग्रहण नहीं किया था । वह फिर मातुल महीपति के पास प्राप्त होकर उस वचन को बोला था ॥१५-१६॥ वह मुन कर बोला—हे वीर ब्रह्मानन्द महात्मा बलवान् है । वह इस वाक्य को ग्रहण कर लेगा क्योंकि वह आह्लाद आदि से पूर्णतया मुरझित है ॥१७॥ क्या आपको उसका विषय में प्रसिद्ध चरित विदित नहीं है ? आप छै वन्धुओं के सहित वृष्णाशादि के द्वारा विवाहित हैं ॥१८॥ वे सब घोरान् ब्रह्मानन्द के वश में रहने जाते हैं, इस भूमण्डल में उसके बल के समान कोई भी नृप नहीं है ॥१९॥ यह श्रवण कर ताम्र अश्विनी सेना के साथ तुरन्त ही गया था । उस पथ को उसके आगे वह कर हाथ बाँधकर वहाँ उपस्थित हो गया था ॥२०॥ वृष्णाश ने ग्रहण करने पथ को पड़ा और शीघ्र ही यह वचन बोला—मैं नृपोत्तम ब्रह्मानन्द को विवाहूँगा ॥२१॥

सैन्यैर्द्वादशलक्षैश्च सहितस्तालनो बली ।

आययी देहलीग्रामे महीराजानुपालिते ॥२८

उस समय सभी चुप होगये थे, उस तारक ने द्विजों के साथ अभि-  
षेक करके अपने घर को फिर वापिस लौट आया था ॥२२॥ माघ  
मास के शुक्ल पक्ष में त्रयोदशी तिथि में सुवासर के दिन में वर और  
कन्या दोनों को शुभ लग्न विवाह की निश्चित हुई थी । लालन के साथ  
लक्षण सात लाख बल के सहित बली परिमल आदि के साथ महावती  
पुरी को प्राप्त होगया था ॥२३-२४॥ एक लाख सेना से युक्त और  
कृष्णाक्ष से समन्वित आह्लाद, एक लाख सेना से युक्त सुरखानि के  
सहित बलखानि, लाख सेना से समन्वित और योग तथा भोग से युक्त  
नेत्रमिह और रण को जीतने वाला बली बाल जिसके साथ दो लक्ष सेना  
थी—इन सबको मिलाकर बारह लाख सेना का स्वामी बलवान् तालन  
महाराज के द्वारा भनी भाति सुरक्षित देहली नगर में आकर प्राप्त हो  
गया था ॥२५-२७॥ तालन मिहिनी नाम की बडवा पर सस्यित था  
और इस प्रकार से बारह लाख सेना से वह सहित होकर आया  
था ॥२८॥

देवो मनोरथारूढोविंदुलस्थः स कृष्णक ।

बडवामृतमासाद्य स्वर्णवत्याः सुतो गतः ॥२९

रूपराजश्च परालस्थ आह्लादश्च पपीहके ।

बलखानि वपोतस्थो हरिणस्थोऽनुजस्ततः ॥३०

रणजिन्मलनापुत्रः सस्थितो हरिनागरे ।

पञ्चशब्दगजारूढो महावत्यधिपो गतः ॥३१

विमानवरमारुह्य धीवरैः शतवाहिकं ।

मणिमुक्ताम्बुजंमयं मह्यं वाद्यैर्युतम् ॥३२

अयुतंश्च पनाकंश्च वेत्रपाणिमहकं ।

सह्यं शिविनाभिश्च पञ्चसाहस्रकं रथं ॥३३

शार्ङ्गमंहिपोऽम्बु तथा पञ्चमह्यकं ।

सर्वतोऽपिभृत रथ्य ब्रह्मानन्द समागतः ॥३४

श्रुत्वा कोलाहल तेषा महीराजो नृपोत्तम ।

विस्मित स बभूवान् शिविराणि मुदा ददौ ॥३५॥

मनोरथ नामक अश्वपर देव समारूढ था और कृष्णाश अपने विदुल नामधारी अश्व पर समारोहण किये हुआ था । स्वर्णवती का पुत्र बडबामृत को प्राप्त करके वहा गया था ॥३६॥ रूपण करान नाम वाले अश्व पर सवार था और आह्लाद पपीह्व पर सस्थित था—बल-ह्वानि कपोतक नाम वाले दिव्य वाहन पर था और उसका अनुज हरिण पर सस्थित था । मन्ना का पुत्र रणजित् हरिनागर नामक वाहन पर स्थित था । महावली का स्वामी पञ्च शब्द नामक गज पर समारूढ ही पर गया था ॥३७॥ शतबाह्वि धीवरो के सहित श्रेष्ठ विमान पर आरोहण करके जोकि मणि—मुक्ता और सुवर्ण से परिपूर्ण था तथा सहस्र वाद्यो से युक्त था । दश सहस्र पताकाओं से एवं सहस्र वेद पाणिमो से और एक सहस्र शिविकाओं से तथा पाच सहस्र रथो से युक्त था । महिषो के द्वारा समूढ शकटो से युक्त जोकि पाच सहस्र सख्या मे थे बहुत ही सब प्रकार से सुसंस्कृत एवं रमणीक विमान था उस पर ब्रह्मानन्द आया था । उनका सबका कोलाहल सुन कर नृपोत्तम महीराज बहुत ही विस्मित हुआ था और उसने बड़ी प्रसन्नता से उनको रहने के लिये बड़ा शिखर प्रदान किये थे ॥३८-३९॥

दुग्द्वारि क्रिया रम्या कृत्वा विधिविधानत ।

द्रौपद्या भूषण देहि वेलायै स तमव्रवीत् ॥३६॥

इदुलस्तु ययौ स्वर्ग वासव प्रति चाब्रवीत् ।

द्रौपद्या भूषण सव देहि मह्य सुरोत्तम ॥३७॥

कुबेरात्स समानीय दिव्यमाभूषण ददौ ।

इदुल प्रहरान्ते च प्राप्त पित्रे न्यवेदयत् ॥३८॥

आह्लादस्तु स्वय गत्वा वेलायै भूषण ददौ ।

प्राप्ते ब्राह्म मूर्ते तु विवाहस्तत्र चाभवत् ॥३९॥

संप्राप्ते प्रथमावर्ते तारक खड्गमाददौ ।

आह्लादस्तु समासाद्य युयुधे बहुलीलया ॥४०॥

नृहरिस्तु द्वितीये च कृष्णाश प्रति चारुघत् ।

तथा सरदन वीर बलखानिरुपाययौ ॥४१॥

मदन सुखखानिस्तु चतुर्थावर्तकेऽरुघत् ।

रणजित्सूर्यवर्माण स भीम रूपणो बली ।

देवस्तुवर्धन वीर सप्तावर्ते क्रमाद्ययौ ॥४२॥

दुर्ग के द्वार पर पूण विधि-विधान के साथ परम रम्य क्रिया को सम्पन्न करके उसने उससे कहा कि बेला के लिये द्रौपदी का भूषण दीजिए । उस समय इन्दुन स्वर्ग में गया और वहा इन्द्र से बोला कि हे सुरोत्तम ! द्रौपदी के समस्त भूषण मुझे प्रदान कीजिए ॥३६-३७॥ उस समय इन्द्र ने कुबेर से लाकर समस्त द्रौपदी के भूषण जो कि परम दिव्य थे प्रदान कर दिये । इन्दुन एक ही प्रहर के अन्त तक वहा से वापिस आ गया और वे समस्त आभूषण पिता को लाकर दे दिये थे ॥३८॥ आह्लाद ने स्वयं जाकर बेला के लिये वे भूषण दिये थे । फिर ब्रह्म मुहूर्त प्राप्त होने पर वहा विवाह हुआ था ॥३९॥ प्रथम आवर्त अर्थात् केरा समाप्त होने पर तारक ने अपना खड्ग ग्रहण किया था । उस समय आह्लाद उसके समीप में पहुँच गया और बहुत प्रकार से उससे युद्ध किया था ॥४०॥ द्वितीय आवर्त के होने पर नृहरि न कृष्णाश से युद्ध आरम्भ कर दिया । फिर वनपानि वीर सरदन से युद्ध करने लगा ॥४१॥ चतुर्थ आवर्त के समय में सुख खानि मदन से युद्ध कर रहा था । इस प्रकार से रणजित् सूर्यवर्मा से और यती रूपण भीम से तथा देव वीरवर्धन से क्रम से सप्त आवर्त में युद्ध के लिए गये थे ॥४२॥

गतभूपान्खड्ग घरागनसेनादिकास्तदा ।

लक्षणाया समाजम्मुमंडपे बहुविस्तृत ॥४३॥

भग्नभूत नृपवल राजा दृष्ट्वा रूपांन्यत ।

महीराजो ययौ रुद्धो गज चारिभयकरम् ॥४४॥

जित्वा तान्नेत्रमिहादीच्छब्दबेधो नृपोत्तम ।

लक्षण प्रययौ शास्त्र बोधिनी हस्तिनी म्पिनम् ॥४५॥



शिव मनसि सस्थाप्य जित्वा बद्धा रूपान्वित ।

अगमत्तमुपगृह्य दर्शयामास त नृपम् ॥४६॥

श्रुत्वा परिमलो राजा कृष्णाश भीरुको ययौ ।

वृत्तान्त कथयामास चाह्लादादिपराजयम् ॥४७॥

अजित स च कृष्णाशो नभोमार्गेण मन्दिरम् ।

गत्वा जगर्ज बलवा योगिन्यान् ददायक ॥४८॥

तदा स लक्षणो वीरस्त्यक्त्वा बध्नन्मुत्तमम् ।

विष्णु मनसि सस्थाप्य महीराजं समाययौ ॥४९॥

इस प्रकार से लक्षणादि ने गजसेनादिक शतखड्गधारी भूपो को उस बहुत विस्तृत मण्डप में आकर घेर लिया और श्रुद्ध करने लगे ॥४३॥ राजा ने अपने बल को भग्न होता हुआ देखा तो रोष युक्त होकर वह अरिमो के लिये महान् भयङ्कर हाथी पर आरुढ़ होकर महीराज स्वयं गया था ॥४४॥ वह राजा शतभेदी था उसने नेत्रसिंह आदि को जीतकर वह बौद्धिनी नामक हस्तिनी पर स्थित लक्षण के पास शीघ्र ही पहुँच गया था ॥४५॥ मन में भगवान् शिव का ध्यान करके रोष से अशुद्ध हो उसे जीत कर बाध दिया और उसे पकड़ कर उस नृप को जाकर दिखा दिया था ॥४६॥ राजा परिमल ने सुनकर भीरुक हो कृष्णाश के पास गया था । वहाँ आह्लादि के पराजय का समस्त वृत्तान्त कह दिया था ॥४७॥ वह अजित कृष्णाश आकाश भाग से मन्दिर में जाकर योगिनीयो को आनन्द का देने वाला वह बलवान् गर्ज था ॥४८॥ उस समय में वीर लक्षण ने उत्तम बध्न को त्याग कर मन में विष्णु को सस्थापित करके महाराज के पास गमन किया था ॥४९॥

गृहीत्वा चागमा दोला स्वयं शिविरमाप्तवान् ॥५०॥

एतस्मिन् तरे सर्वे त्यक्त्वा भूच्छां समतत ।

खड्गमुद्धेन ताञ्जित्वा बद्धा ताभिर्गर्दहं ॥५१॥

सान्वयाञ्छतभूपाश्च हत्वा तद्रुधिरावहे ।

द्रौपदी स्नापयामासुर्वैलारूपा बल्लोत्तमाम् ॥५२॥

विवाहान्ते च ते सर्वे शिविराणि समाययुः ।

समुत्सृज्य सुतान्सप्त सुभोज्यैस्ते ह्यभोजयन् ॥५३॥

भुक्तवत्सु सुवीरेषु साहस्रास्तै सुतै सह ।

रुधुः सर्वतो जघ्नुरस्त्रशस्त्रैः समततः ॥५४॥

सहस्रशूरास्तान्हत्वा पुनर्वद्धा महावलान् ।

शिविराणि समाजग्मुस्तेषा हास्यविशारदाः ॥५५॥

दशलक्षसुवर्णानि गृहीत्वा नृपतिर्वली ।

वेला नवोढामादाय गत्वा नत्वा तमब्रवीत् ॥५६॥

वहा उस अगम दोला का ग्रहण कर स्वयं शिविर में प्राप्त हो गया था ॥५०॥ इस बीच में सब सभी ओर से मूच्छा का त्याग कर के छद्म युद्ध से उन्हें जीत कर निगहो से दृढ़ता से बाघवर घशों के सहित वहा सी भूपो को मारकर उनके रुधिर की धाराओं से बला में उत्तम बेला के स्वरूप में समास्थित उस द्रौपदी का स्नपन करा दिया ॥५२॥ विवाह हो जाने के अन्त में वे सब अपने शिवरो में आ गये थे । सात सुतो को वहाँ पर ही छोड़ आये जिनको कि सुभोज्यों से भोजन कराया गया था ॥५३॥ उन सुवीरों के भोजन कर लेने पर उन सुतो के साथ साहस्रो ने उन्हें रोक लिया था और सब ओर से शस्त्र-अस्त्रों के द्वारा उन्हें मारा था । उन सहस्र शूरो को मारकर और फिर महाबली को बाघवर उनके हास्य विशारद शिविरो में चले आये थे ॥५४-५५॥ बनी नृपति न दगनाग सुवर्ण की मुद्रा ग्रहण करके और नवोडा बेला को लेकर जाकर नमस्कार करके उगसे बहा ॥५६॥

प्रद्योतमुत हे राजेंद्रलक्षणोऽग्री महाबलः ।

मम परनी ममादाय दासी वत्तु ममिच्छति ॥५७॥

इति श्रुत्वा परिमलः सर्वं भूषसमन्वितः ।

यहुषा बोधितञ्च न बुबोध तदा नृपः ॥५८॥

तदा महामनी बेला विलसाप भृश मुहुः ।

तच्छुभ्याम च कृष्णान्ग. महिषो बलग्यानिना ।

तामाश्रम्य मदा बेला नभोमार्गेण आययौ ॥५९॥

लक्षण तर्जयित्वासी गृहीत्वा चागमन्मुदा ।  
 नभोमार्गेण गेहं त कृष्णाशं समपेयत् ॥६०॥  
 पुनस्त्यक्त्वा सप्त सुतान्सहितान् नृपतेस्तु ते ।  
 शपथं कारयामासुदम्भं प्रति महाबला ।  
 उपित्वा दशरात्राते दध्युर्गन्तुमनो मुने ॥६१॥  
 महीराजस्तु बलवान्गृहीत्वा भूपते पदौ ।  
 स उवाचाश्रुपूर्णाक्षस्तदा परिमल नृपम् ॥६२॥  
 महाराज वधूस्ते च वेल्लेय द्वादशान्दिका ।  
 पितृमातृवियोगं च न क्षमती तु बालिका ॥६३॥

हे प्रद्योत सुत ! हे राजन् ! यह लक्षण महान्बल वाला है ।  
 मेरी पत्नी लाकर यह दासी करना चाहता है ॥५७॥ यह सुनकर  
 समस्त भूपो से समक्षित परिमल ने बहुत प्रकार से समझाया था किंतु  
 उस समय नृपति उसे समझ नहीं आई थी ॥५८॥ तब महासती बेला  
 ने बहुत ही अधिक विलाप बार बार किया था । यह सुन कर बल  
 खानि के साथ कृष्णाश ने उस बेला का समाश्वासन करके वह आशान  
 मार्ग से आया था ॥५९॥ इस ने लक्षण को डाटकर उसे लेकर यह  
 प्रसन्नता से नभामार्ग से घर में आगया था और फिर कृष्णाश ने उसे  
 घर में भेज दिया था ॥६०॥ फिर नृपति के सहित सात सुतों का  
 त्याग करके महाबली दम्भ के प्रति शपथ कराई थी । दशरानि के  
 पश्चात् वहाँ रह कर हे मुने ! उन्होंने जाने का मन किया था ॥६१॥  
 बलवान् महीराज ने भूपति के चरणों को ग्रहण कर आँसुओं से आँखों  
 को भर कर उस समय राजा परिमल से कहा ॥६२॥ हे महाराज !  
 यह आपकी वधू बेला केवल बारह वर्ष की है यह बच्ची मात्रा पिता  
 के वियोग को सहन करन में असमर्थ है ॥६३॥

तस्मात्ता त्व परित्यज्य गच्छ गेहं सुखी भव ।  
 पतियोग्या यदा भूतात्तदा त्वा पुनरेष्यति ॥६४॥  
 इत्युक्त्वा च वचो राजा स स्नेहादवमस्पृशत् ।

चूर्णीभूते परिमले चाह्लादस्तत्र दुःखित ।  
 महीराज स पस्पर्श स राजा चूर्णतागतः ॥६५॥  
 भग्नास्थी भूपती चोभौ पावकीयैश्चिकित्सकं ।  
 सुखवती गृहं प्राप्य कृतकृत्यत्वमागतौ ॥६६॥  
 मलना स्वसुत दृष्ट्वा प्राप्तमुद्वाहित गृहे ।  
 कृतवोत्सव बहुविध विप्रेभ्यश्च ददौ धनम् ।  
 होम वै कारयामास चण्डिकाया प्रसादतः ॥६७॥  
 सभाया लक्षणो वीरो यात्राकाले तमन्ववीत् ।  
 अगमा जयचन्द्राय मत्वाजित्वा हृता तु ताम् ।  
 नभोमार्गेण संप्राप्तौ योगिनौ च शिवाज्ञया ॥६८॥  
 जहतुस्तौ च माजित्वा तत्तीक्ष्णभयमोहितम् ।  
 अद्याह धात गच्छामि चिरजीव नृपोत्तम ।  
 इत्युक्तवत् तं नत्वा ययुर्भूपा स्वमालयम् ॥६९॥

इस लिए आप इसको यही छोड़ कर घर पधारें और सुखी रहें ।  
 जब पति के योग्य हो जायगी तब इसे तुम्हारे पास में भेज देंगे ॥६४॥  
 राजा ने यह वचन कह कर स्नेह से उसे अपनी गोद में स्पर्श किया  
 था । परिमल के चूर्णीभूत होने पर वहाँ आह्लाद अत्यन्त दुःखित  
 हुआ था । उसने महीराज का स्पर्श किया तो वह राजा भी चूर्णता  
 को प्राप्त हो गया था ॥६५॥ भग्न अस्थि वाले दोनों भूपों को पावकीय  
 चिकित्सकों के द्वारा सुख वाले किया गया था । वे घर जाकर कृत-  
 कृत्यत्व को प्राप्त हुए । मलना ने अपने पुत्र को उद्वाहित और घर में  
 प्राप्त हुआ देख कर बड़ा उत्सव किया था और उसने बहुत धन विप्रों  
 को दान में दिया था । चण्डिका के प्रसाद से उसने होम भी कराया  
 था ॥६६-६७॥ यात्रा काल में सभा में वीर लक्षण ने उससे कहा—  
 जयचन्द्र के लिए अगमा मानकर हृता उस को जीतकर शिव की  
 आज्ञा से योगी दोनों नभो मार्ग से संप्राप्त हुए थे उसके अत्यन्त  
 तीक्ष्ण भय से मोहित भुज को जीत कर उन दोनों ने त्याग दिया ।  
 हे धात ! आज मैं जाता हूँ हे नृपोत्तम ! आप चिर काल तक

जीवित रहें । इस प्रकार से कहने वाले उस को प्रणाम करके भूप अपने घर को चले गये थे ॥६८ ६९॥

## ॥ हस का पद्मिनी वर्णन ॥

विशाब्दे चैव कृष्णाशेयथा जात तथा शृणु ।

सागराख्यसरस्तीरे कदाचिदिदुलो बली ।

जप्त्वा सप्तशतीस्तोत्र तत्र ध्यानान्वितोऽभवत् ॥१॥

एतस्मिन्तरे हसा आकाशाद्भूमिमागता ।

तेषा च रुतशब्दैश्च स ध्यानादुत्थितोऽभवत् ॥२॥

वक्ष्यमाण वच प्राहुर्धन्योऽय दिव्यविग्रह ।

पर्वताना हिमगिरियन वृद्धावन तथा ॥३॥

महावती पुरीणा च सागर सरसामपि ।

नारीणा पद्मिनी नारी नृणा श्रेष्ठस्त्वमिदुल ॥४॥

भो इन्दुल महाप्राज्ञ मानसे सरसि स्थिता ।

वय श्रुत्वा श्रियो वाक्य नलिनी सागर गता ॥५॥

दृष्ट्वा तत्र शुभा नारी सर्वाभरणभूषिताम् ।

सप्ताल्लिभिर्युक्ता रम्या गीतनाट्य विशारदाम् ॥६॥

दृष्ट्वा मोहत्वमापन्ना वय देशान्तर गता ।

विलोकिता नरा सर्वेऽनास्माभिजगतीतले ।

त्वत्समी न हि कोऽप्यत्र पद्मिनी सदृशो वर ॥७॥

इस अध्याय में इन्दुन के प्रति हसों के द्वारा पद्मिनी का वृत्तांत कहने का अनंतर उससे लिये सिंहन देश में जाकर युद्ध आदि के वृत्तांत का वर्णन किया जाता है । सूतजी बोले—जब कृष्णाक्ष की छवस्या का बीसवां वर्ष हुआ तो उस समय में जिस प्रकार स जो कुछ हुआ था अब तुम लोग उसका श्रवण करो । सागर नामक सरोवर के तट पर किमी समय में बनवान् इन्दुन था । उसने वहाँ पर सप्तशती के स्तोत्र का जप किया और ध्यान में युक्त होगया था ॥१॥ इसी बीच में कुछ हस आकाश से उड़कर भूमि में आगय थ । उनकी आरत ध्वनि सुनाई

दी तो वह ध्यान स उठ बैठा था॥२॥ उन्होंने यह आगे कहा जाने वाला  
वचन कहा—यह दिव्य शरीर वाला परम धन्य है, पर्वतों के मध्य में हिम-  
गिरि तथा वृन्दावन वन है पुरियों में महावती पुरी और सरो में सागर जैसे  
उत्तम है वैसे ही नारियों में पद्मिनी नारी है और नरो में इन्दुल ही सर्व  
श्रेष्ठ है॥३-४॥ हे महाप्राज्ञ ! हे इन्दुल ! हम लोग भानस सरोवर में  
स्थित ये श्री के वाक्य सुनकर नलिनी सागर को गये थे॥५॥ वहा पर  
हम लोगो ने समस्त आभूषणों से सुसूचित शुभ नारी को देखा था जो  
साठ सहस्रियों से युक्त थी—परम रम्य और गीत एव नाट्य की पण्डिता  
थी ॥६॥ उसे देख कर हम मोहत्व को प्राप्त होगये थे और फिर अन्य  
देश को चले गये थे । इस जगती तल में हमने नर तो बहुत से देखे थे  
किन्तु पद्मिनी का तुल्य नर अन्य कोई भी मुम्हारे समान नहीं है । उस  
पद्मिनी के एकमात्र तुमही योग्य नर हो ॥७॥

तस्मात्स्व न समारुह्य ता देवी द्रष्टुमर्हसि ।  
तथैत्युक्त्वा शक्रसुतो हसराज समारुहत् ॥८॥  
सिंहलद्वीपके रम्ये ह्यार्यसिंहो नृपः स्थितः ।  
तत्सुता पद्मिनी नाम्ना रूपयौवनशालिनी ।  
रागिण्यः सप्त विख्यातास्तत्सद्व्यः प्रमदोत्तमाः ॥९॥  
नलिनीसागरे रम्ये गिरिजामदिर शुभम् ।  
तत्र स्थिता च ता देवीमिन्दुल स ददर्श ह ॥१०॥  
सापि त मुन्दर दृष्ट्वा हसदेहे समास्थितम् ।  
समो ह्याहूय त देव तेन साद्वं मरीरमत ॥११॥  
वर्षमेक ययौ तत्र नानालीलामु मोहितः ।  
नक्त दिव न बुबुधे रममाणस्तथा सह ॥१२॥  
भक्तिगर्वत्वमापन्ने चाह्लादे जगदबिका ।  
दृष्ट्वा चान्तदंघ्रे देवी गर्वाचरणकु ठिता ॥१३॥  
तस्य प्राप्न महद्दुःखमाह्लादस्य जयैषिणः ।  
स कीर्तिपुरपर्वीर वीर्यतोऽभूत्स्व मदिरे ॥१४॥

इसलिए आप हम पर समारोहण करके उस देवी को देखने के योग्य होते हैं । ऐसा ही होगा—यह कह कर वह इन्दुल का पुत्र हंस राज पर समारूढ होगया था ॥८॥ सिंहल द्वीप में जो अत्यन्त रमणीक है वहां आर्य-सिंह नृप स्थित है उसकी पुत्री पद्मिनी नाम गाली है जो रूपलावण्य से युक्त है । उसकी सात सखिया राग गान करने वाली जो प्रमदाओमें अति उत्तम हैं परम विख्यात थी ॥९॥ परम रम्य नालिनी सागर में एक शुभ गिरजा का मन्दिर है । वहां पर स्थित उस देवी को इन्दुल ने देखा था ॥१०॥ उसने भी उस अति सुन्दर और हंस के शरीर पर स्थित देखा था । फिर उसने उसे सम्मोहित कर के और बुलाकर उसके साथ रमण किया था ॥११॥ अनेक प्रकार की लीलाओं में मोहित होकर वहां एक वर्ष भीत गया था । उस पद्मिनी के साथ रमण करने वाले इसकी रात दिन का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा था ॥१२॥ आह्लाद को भक्ति करने का जब गर्व होगया तो उस पर जगदम्बिका यह देखकर अतर्धान न हो गई थी क्योंकि वह देवी गर्व पूर्ण आचरण से कुष्ठित होगई थी ॥१३॥ उस जब की इच्छा रखने वाले आह्लाद को बहुत अधिक दुःख हुआ था । उससे अपने मन्दिर में किन्हीं पुरुषों के द्वारा कहा गया था ॥१४॥

इन्दुल रूपसपन्न लङ्कापुरनिवासिन ।

राक्षसास्तं समाहृत्य स्वर्गेह शीघ्रमाययु ॥१५॥

इति श्रुत्वा वचो घोर सकुलो विललाप ह ।

हाहाशब्दो महाश्वासीत्तपा तु रुदता मुने ॥१६॥

कृष्णाशो रुदित प्राहाह्लाद ज्येष्ठ शृणुष्व भो ।

जित्वाह राक्षसान्सर्वास्तालनाद्यं समन्वित ।

इन्दुल त्वा समेप्यामि भवाद्ययपरो भवेत् ॥१७॥

बलघानिश्च कृष्णाशो देवसिंहश्च तालन ।

सप्तलक्षवत् साढं लवा प्रतिययुमुंदा ॥१८॥

मागप्राप्ताश्च ये भूपा ग्रामया राष्ट्रपास्तथा ।

यथायाग्य बलि रम्य प्राप्य तस्मै न्यवदयन् ॥१९॥

ये भूपा मदमत्ताश्च जित्वा तास्तालनो बली ।  
चद्धा तैश्च समागच्छत्सेतुवध शिवस्थलम् ॥२०॥  
पूजयित्वा च रामेश रामेण स्थापित शिवम् ।  
सिंहलद्वीपमगमन्पण्मासाभ्यन्तरे तदा ॥२१॥

रूप से सम्पन्न इन्दुल को सकापुर के निवास करने वाले राक्षस  
समाह्वन करके अपने घर में शास्त्र आगये हैं ॥१५॥ इस घोर वचन को  
सुन कर वह समस्त कुल के सहित बिलाप करने लगा था । हे मुने !  
उन सबके होने का महान् हाहाकार शब्द बहा होगया था ॥१६॥  
कृष्णाक्ष ज्येष्ठ आह्लाद को रीत हुए देख कर उससे बोला—सुनो, मैं  
तालन आदि से समन्वित होकर उन समस्त राक्षसों को जीत कर तुमको  
इन्दुल लादूंगा आप धीरज धारण करने वाले होजावें ॥१७॥  
बलवानि—कृष्णाक्ष—देवसिंह और तालन सात लाख सेना के साथ  
बड़ी प्रसन्ता से लवा की ओर चले गये थे ॥१८॥ मार्ग में प्राप्त होने  
वाले जो राजा ग्रामप तथा राष्ट्रप थे उन सबसे यथायोग्य बलि प्राप्त  
पारक जा रह थे । उन्होंने उसको बलि को निवेदन किया था ॥१९॥  
जो राजा मद में मत्त हो रह थे उनको बली तालन ने जीत लिया था ।  
उन्हें बांध कर उनके साथ शिववास्थल जो सेतुवध था वही आगया  
था ॥२०॥ श्रीराम क द्वारा स्थापित शिव श्री रामस्वर की पूजा करके  
सब छे मास व अर सिंह द्वीप में बना गया था ॥२१॥

नन्दिनीमागर प्राप्य तत्र वासमकारयन् ।  
पन सप्रेषयामाम बलस्थानिर्नृपाय च ॥२२॥  
आप्यमिह महाभाग स्वपोतान् दहि तीर्णवान् ।  
भवाश्च स्वर्गं गाढं लवा प्रति व्रजायुना ।  
ना चेत्वा मवन जित्वा राष्ट्रमग वरोम्यहम् ॥२३॥  
इति श्रुत्वा पत्रञ्चा भूपतिरन्तर ।  
रक्षितं नरपुत्रेण मुदोय ममुपाययौ ॥२४॥  
इन्दुन मनन मय मम्याप्य शर उत्तम ।  
स्तभगमाग ततः य तालनार्थं मुरक्षितम् ॥२५॥



दिवसे सुखशर्मा च त्रिलक्षं स्वदलैः सह ।  
 आर्य्यसिंहस्य तनयो महद्युद्धमचीकरत् ॥२६॥  
 निशामुखे च सप्राप्ते शक्रपुत्रो महाबलः ।  
 शतपुत्रैः क्षत्रियाणां साद्वं युद्धाय चाययौ ॥२७॥  
 तेषां हया हरिद्वर्णा योगिवेषधरा बलात् ।  
 महतीं ते सहस्रं च रिपोः सेनां व्यनाशयन् ।  
 तत्पश्चाद्गोहमासाद्य तदा तैः सुखितोऽवसत् ॥२८॥  
 एव जाताश्च पण्मासास्तयोयुद्धं हि सेनयोः ।  
 क्रमेण सक्षयं प्राप्तं बलस्थानेर्महद्वलम् ॥२९॥

वहाँ पर नलिनी सागर पर पहुँच कर सब ने अपना निवास स्थान  
 किया था । और बलस्थान ने यहाँ के राजा के लिये एक पत्र भेजा  
 था ॥२२॥ हे महाभाग ! आर्यसिंह ! आप अपने तीर्थंकर अर्थात् तीर्थ  
 जाने वाले जहाजों को हमको दो और आप भी अपनी सेना के साथ अव  
 सवा कर चली । नहीं तो सेना के सहित तुमको जीत कर मैं तुम्हारे  
 राष्ट्र का भग्न कर दूँगा ॥२३॥ यह पत्र के लिखित बखर्कों को सुनकर  
 अधिक बलवान् भूपति जो विष्णु के पुत्र के द्वारा रक्षित था युद्ध के लिये  
 आगया ॥२४॥ इन्दुल ने स्तम्भ मन्त्र को उत्तम ढर में सम्पादित  
 करके तालन आदि के द्वारा जो सुशिक्षित सेना थी उसे स्तम्भित कर दिया  
 था ॥२५॥ और मुग्धशर्मा ने जोकि आर्यसिंह का पुत्र था तीन लाख  
 अपनी मना के साथ दिन में महान् युद्ध किया था ॥२६॥ रात्रि के  
 आरम्भ में इन्द्र का पुत्र महान् बलवान् क्षत्रियों के शत पुत्रों के साथ युद्ध  
 के लिये आया था ॥२७॥ उन्हें अश्व हर करने के थे और योगी के  
 वेष धारण करने वाले थे उन्होंने शत्रु की सभी भारी एवं मजबूत मना को  
 बल में विनष्ट कर दिया था । इस पक्ष पर ॥ आकर उन्होंने मुग्ध  
 में निवास किया था ॥२८॥ इस प्रकार में उस दोनो राजाओं का ही माग  
 परस्पर युद्ध हुआ था । कम न बचता था जो का बहुत बहो गया था न  
 न के साथ ही प्राप्त हाथों की ॥२९॥

## ॥ इ दुल-पद्मिनी का विवाह ॥

दृष्ट्वा संन्यनिपात च बलखानिमंहावल ।  
 सप्राप्य मानसी पीडा युद्धार्थं विमुखोऽभवत् ॥१॥  
 देवसिंह समाहूय त्रिवालज महामतिम् ।  
 त मत्र मत्रयामास कार्यसिद्धिर्यथा भवेत् ।  
 श्रुत्वोवाच महायोगी देवसिंहो महावल ॥२॥  
 महेन्द्रतनय वश्रित्सर्वशस्त्रास्त्रकोविद ।  
 त्वत्सैन्य रोधयित्वा वै दिव्यास्त्रेण दिवामुखे ।  
 रात्रौ स्वय समागम्य वरोति बलसक्षयम् ।  
 अतस्त्व मत्महायेन तालनेन समन्वित ।  
 कृष्णाशेन सभागम्य शक्रपुत्र शुभाननम् ।  
 विजयी भव शीघ्र हि नो चेद्याया यमक्षयम् ॥४॥  
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवसिंहस्य भाषितम् ।  
 यत्न चकार बलवान्भ्रातृमित्रसमन्वित ॥५॥  
 एकविंशब्दकृष्णाशो सप्राप्ते युद्धकोविदे ।  
 सेना निवेशयामास पोतेषु हयवाहन ॥६॥  
 अर्द्धं सैन्य च तसैव स्थापयित्वा महावल ।  
 अर्द्धं सैन्यन कृष्णाशो दक्षिणा दिशमागमत् ॥७॥

इस अध्याय में पद्मिनी के जन्म और उसके साथ इन्दुल के विवाह के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—बलखानि ने अपनी सेना का निपातन देख कर मानसी पीडा की प्राप्ति की थी और वह फिर युद्ध से विमुख हो गया ॥१॥ तीनो काल की बातों को जानने वाले महान् मतिमान् देवसिंह को बुला कर उस मन्त्र की मन्त्रणा की थी जिससे कार्य की सिद्धि हो सके । महान् बलवान् देवसिंह यह सुनकर बोला, जो कि एक महान् योगी भी था ॥२॥ कोई महेन्द्र का पुत्र है जो समस्त शस्त्र एवं अस्त्र की विद्या का बड़ा पण्डित है । उसने तुम्हारी सेना को अवरुद्ध करके रक्खा है और दिवामुख में किसी दिव्य

स्र के द्वारा ही यह स्तम्भन किया गया है । वह रात्रि में स्वयं यहाँ आकर सेना का सक्षय किया करता है ॥३॥ इसलिये तुम मेरी सहायता [ तालन से मिल कर कृष्णाश के द्वारा शुभानन शक्र के पुत्र के पास आकर शीघ्र ही विजयी बनो, अन्यथा यमक्षय को प्राप्त हो जाओगे ॥४॥ इस प्रकार का देवसिंह का कहा हुआ वचन सुन कर बलवान् ने भाई-मित्र आदि से सम्बन्धित होकर यत्न किया ॥५॥ युद्ध में परम प्रवीण पण्डित कृष्णाश के हक्कीसर्वे वयं के प्राप्त हो जाने पर हय वाहन ने पोतो में सेना को निवेशित किया ॥६॥ उस महान् बलवान् ने आधी सेना वही पर स्थापित की थी । उस आधी सेना के साथ वह कृष्णाश दक्षिण दिशा को गया ॥७॥

हयारूढाश्च ते शूरा. सर्वे युद्धसमन्विताः ।

कपाट दृढमुद्धाट्य नगरान्तमुपाययुः ॥८

हत्वा ते रक्षिण. सर्वैर्लुंठयित्वा पुर शुभम् ।

रिपोर्दुर्गं समासाद्य चक्रुः शत्रोर्महाक्षयम् ॥९

राज्ञोऽन्तः पुरमागत्य कृष्णाशो बलवन्तरः ।

ददर्श सुन्दरी बाला पद्मिनी पद्मलोचनाम् ।

सप्तालिभिर्युक्ता रम्या गीतनृत्यविशारदाम् ॥१०

बलाद्दोला समारोप्य लुंठयित्वा रिपोर्गृहम् ।

जगाम सिबिरे तस्मिन्यत्र जातो महारण ॥११

बलघ्नानिस्तु बलवान्देवतालनसयुतः ।

जघान शत्रुवी सेनामिन्दुलाखेण पालिताम् ॥१२

सुखवर्माणमागत्य सेनाध्यक्ष रिपो. सुतम् ।

सर्वतस्त स्वकीयास्त्रैर्जघ्नुस्ते मदबिह्वलाः ॥१३

हृते तस्मिन्महावीर्ये जयन्तः क्रोधमूर्च्छितः ।

सेनामुज्जीवयाचक्रे शक्रपुत्र. प्रतापवान् ॥१४

इस पर जो भी शूर वीर थे वे सभी युद्ध समन्वित थे । उन्होंने रट कपाट को खोल कर वे फिर नगर के अन्त में प्राप्त हो गये थे ॥८॥ उन्होंने वहाँ के गमस्त रक्षियों को मार कर उग शुभपुर को

छूट कर रिपु के दुर्ग में पहुँच गये और फिर उन्होंने शत्रु का महान् क्षय किया ॥६॥ बलवान् कृष्णाश राजा के अन्त पुर में पहुँच कर वहाँ उसने परम सुन्दरी पद्म के समान नेत्रों वाली बाला पद्मिनी को देखा, जो कि अपनी सात सहेलियों से युक्त थी, अत्यन्त ही रम्य और गीत एव नृत्य की विभारद थी ॥१०॥ उसको बलपूर्वक दोला में समारोपित करके और शत्रु के घर को खूब अच्छी तरह छूट कर उस शिविर में चला गया जहाँ यह महायुद्ध हो रहा था ॥११॥ बलवान् बलवानि ने देवसिंह और तालन से युक्त होकर इन्दुल के अस्त्र के द्वारा जो पालित सेना थी, उस शत्रु की सेना का हनन कर दिया ॥१२॥ सेना का अध्यक्ष शत्रु का पुत्र, जो सुखवर्मा था उसके पास जाकर सब ओर से उन मद से विह्वलों ने अपन अस्त्रों के द्वारा उसका भी हनन कर दिया । उस महान् वीर्य वाले के हत हो जाने पर जयन्त क्रोध से मूर्छित हो गया और उस प्रताप वाले शक्र के पुत्र ने सेना को उज्जीवित कर दिया ॥१४॥

श्याल च सुखवर्माण सजीव्य स्वगृह ययौ ।

तत्र दृष्ट्वा जनान्सर्वा बहुरोदनतत्परान् ॥१५॥

विस्मित स ययौ गेह यथा पूर्व तथाविध ।

न ददर्श प्रिया तत्र सखीभि सहिता मुने ॥१६॥

आर्म्यसिंहगृह गत्वा पृष्टवान्सर्वकारणम् ।

शारवा सलुठित गेह शत्रुभि दालकोविदै ॥१७॥

हरोद सुभृश वीरो हा प्रिये मदविह्वले ।

दर्शयाद्य मुख रम्य त्वत्पतिस्त्वा समुत्सुक ॥१८॥

इत्यव रोदन कृत्वा वडवोपरि सस्थित ।

घनुस्तूणीरमादाय खड्ग शत्रुविमोहनम् ।

एवावी स ययौ क्रुद्धो निशि यत्र स्थितो रिपु ॥१९॥

एतस्मिन्समय वीरो बलखानिमहाबल ।

दृष्ट्वा ता सुन्दरी बाला विललाप भृश मूढ ॥२०॥

हा इन्दुल महावीर हा मद्व घो प्रियकर ।

त्वद्योग्येय शुभा नारी रूपयीवनशालिनी ॥२१॥

उसने अपने सारे सुखवर्मा को संजीवित करके वह अपने गृह को चला गया । वहाँ उसने समस्तजनो को अत्यधिक रुदन करने में तत्पर देखा । तब उसे बड़ा विस्मय हो गया और वह पूब की भाँति ही घर के अन्दर गया तो वहाँ उसने हे मुने । अपनी प्रिया को सखियों के सहित नहीं देखा ॥१५ १६॥ आर्यसिंह के घर में जाकर उसने समस्त कारण पूछा और शत्रुओं के द्वारा जो कि शस्त्र चलाने के बड़े पण्डित थे, घर को लूटा हुआ जान कर वह रुदन करने लगा—हा मद्विह्वले । हा प्रिये । आज तू अपना वह सुरम्य मुख मुझे दिखला दे, यह तेरा पति तेरे मिलने के लिये अत्यधिक उत्सुक हो रहा है ॥१७ १८॥ इस प्रकार से रुदन करके वह अपनी बड़वा पर सस्यित हो गया और उसने शत्रु के विमोहन करने वाला खड्ग तथा धनुष और तूणीर ग्रहण किया । वह एकाकी ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर निशा के समय में वहाँ पहुँचा जहाँ कि शत्रु स्थित था ॥१९॥ इसी समय में महान् बलवान् वीर बलवानि उस सुंदरी बाला को देखकर बार बार बहुत विलाप करने लगा ॥२०॥ हा इन्दुल । हा महावीर । हा मेरे बंधो । हे प्रिय कर । तरे योग्य यह शुभ नारी रूप लावण्य से युक्त है ॥२१॥

दर्शन देहि मे शीघ्र गृहाणाद्य शुभाननाम् ।

इत्युक्त्वा भूर्विष्ठतो भूत्वा मानसे पूजयञ्छिवाम् ॥२२॥

तस्मिन्काले च सप्राप्त शक्रपुत्रो महाबल ।

जघान शत्रुवी सेना कृष्णाशेनैव पालिताम् ॥२३॥

दृष्ट्वा सैन्यनिपात च तालननो वाहिनीपति ।

सिंहनाद ननादोद्ध संहियुपरि सस्थित ॥२४॥

न जय सैन्यनाशेन तव वीर भविष्यति ।

मा हत्वा र्जाह मत्सैन्य योगि बालस्वरूपक ॥२५॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य शक्रपुत्रो भयवर ।

जघान हृदये वाणान्स तु खड्गेन चाच्छिनत् ।

स्वभल्लेन पुनर्वीरो दशयामास वक्षसि ॥२६॥

इन्दुले मूर्च्छिते तस्मिन्वडवा दिव्यरूपिणी ।

आकाशोपरि सप्राप्य जयन्त समबोधयत् ॥२७॥

तदा स बालस्त्वरित. कालास्त्रं चाप आदधे ।

तेन जातो महाञ्छब्दस्तालन. स ममार ह ॥२८॥

तुम यहाँ आकर मुझे अपना दर्शन शीघ्र ही दो और आज शुभ मुख वाली को ग्रहण करो । यह विलाप भरे शब्दों को कह कर वह मूर्च्छित होगया और मन में शिवा की अर्चना भी कह कर रहा था ॥२२॥ उसी समय में महा बलवान् शक्र (इन्द्र) का पुत्र भी वहाँ पहुँच गया था । उसने कृष्णाश के द्वारा सुरक्षित सेना का हान कर दिया था ॥२३॥ अपनी सेना का निपात देख कर सेनापति तालन ने बड़े ऊँचे स्वर से सिंह नाद किया था जोकि उस समय में मिहिनी के ऊपर स्थित था ॥ २४ ॥ उसने कहा—हे वीर ! इस सैन्य के नाश कर देने से तेरा जय कभी भी नहीं होगा । हे योगिन ! हे बाल स्वल्प वाले ! मुझको पहिले मारकर तभी मेरी सेना का हनन करा ॥२५॥ इन्द्र के पुत्र ने जोकि बहुत ही भयकर था इस प्रकार क उसके वचन को सुन कर हृदय में वाणों को मारा था किन्तु उसने अपने खग से उन को काट दिया था । फिर वीर ने अपने भाले से वक्ष स्थल में चोट मारी थी ॥२६॥ तब इन्दुल के मूर्च्छित हो जाने पर वह दिव्य रूप वाली वडवा आकाश में ऊपर जाकर पहुँच गई और उसने जयन्त को सम्बोधित किया था । तब उस बालक ने शीघ्र गामी होकर चाप में वानास्त्र को धारण किया था । उससे महान् शब्द समुत्पन्न हुआ और वह तालन मर गया था ॥२७-२८॥

मृतेऽसेनापती तस्मिन्कृष्णाशो मदविह्वल ।

नभोमार्गेण सप्राप्य जगज्जं च मुहुर्मुहु ॥२९॥

इन्दुल क्रोधताम्राक्षस्त्वाग्नेय शरमाददे ।

वह्निभूत नमस्तत्र स्वयोगेन महाबल ।

कृत्वा शीघ्रं ययौ शत्रुं स तु वायव्यमादधे ॥३०॥

स्वयो गेनैव कृष्णांशः पीत्वा वायव्यमुत्तमम् ।

पुनर्जंगाम तत्पाश्वं कलंकः स हरेः स्वयम् ॥३१॥

तथाविध रिपुं दृष्ट्वा शक्रपुत्रो महाबलः ।

गन्धर्वास्त्रं समादाय मोहनायोपचक्रमे ॥३२॥

पुनर्योगवलेनैव तदस्त्रं संक्षयं गतम् ।

वारुणं शरमादाय तस्योपरि सदाक्षिपत् ॥३३॥

स्वयोगेनैव कृष्णांशो जलं सर्वं मुखेऽकरोत् ।

एवं सर्वाणि चास्त्राणि पीत्वा पीत्वा पुनःपुनः ॥३४॥

ययौ शीघ्रं प्रसन्नात्मा बाहुशाली यतेन्द्रियः ।

इन्दुलस्तु तदाक्रुद्धोऽश्विनो त्यक्त्वा भुवि स्थितः ।

चर्म खड्गं गृहीत्वाशु खड्गयुद्धमचीकरत् ॥३५॥

सेनापति उस तालन के मृत हो जाने पर कृष्णांश मद-विह्वल हो गया और वह आकाश के मार्ग से जाकर बार-बार गर्जने लगा था ॥३६॥ क्रोध से लाल नेत्र वाले इन्दुल ने आग्नेय अस्त्र का आधान किया था । उस महान् बलवान् ने अपने योग से वहाँ समस्त आकाश को वह्निभूत करके शीघ्र ही शत्रु के पास गया था और फिर उसने वायव्य अस्त्र का आधान किया था ॥३७॥ कृष्णांश ने अपने योग से ही वायव्य का पान कर लिया था जोकि एक उत्तम अस्त्र था । तब हरि की ही एक कला स्वरूप था स्वयं पुनः उसके पास गया था ॥३८॥ महा बलवान् इन्द्र के पुत्र ने उस प्रकार के शत्रु को देख कर गन्धर्वास्त्र लिया जोकि मोहन के लिए उपयोग किया ॥३९॥ फिर योग के बल से ही उसका अस्त्र संक्षय को प्राप्त होगया । फिर वारुण शर लेकर उसके ऊपर फँका था ॥४०॥ कृष्णांश ने अपने योग से ही उस सम्पूर्ण जल को मुख में कर दिया था । इस प्रकार उसके समस्त अस्त्रों को बार-बार पी-पी करके समाप्त कर कर दिया ॥४१॥ फिर वह बाहुशाली प्रसन्न आत्मा वाला और यतेन्द्रिय इन्दुल उस समय क्रुद्ध होगया और उसने

अश्विनी का त्याग कर वह भूमि में स्थित होगया था। उसने शीघ्र ही चर्म और खग को ग्रहण करके खग को युद्ध किया था ॥३५॥

एतस्मिन्न तरे प्राप्ता देवाद्याः सर्वभूमिपाः ।

ददृशुस्तन्महद्युद्धं सर्वविस्मयकारणम् ॥३६॥

प्रातःकाले च सप्राप्ते बलखानिर्महाबलः ।

ददर्श बालक रम्य जटाजिनसमन्वितम् ॥३७॥

भ्रमेण कश्चितो वीरः शत्रुपुत्रं प्रतापवान् ।

बलखानेः पितुर्बन्धो शपथं कृतवान्स्वयम् ॥३८॥

स्वखङ्गेनैव कृष्णाश शिरस्तव हराम्यहम् ।

नो चेन्मे दूषिता माता नाम्ना स्वर्णवती सती ।

इत्युत्तवा खड्गमादाय मयी शीघ्रं रुपान्वितः ॥३९॥

बलखानिस्तु तं ज्ञात्वा त्यक्त्वास्त्रं प्रेमकातरः ।

पुत्रातिक मुपागम्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥४०॥

हे इदुल महाभाग पितृमातृयशस्कर ।

आह्लादप्राणसदृश स्वर्णवत्यगमानस ॥४१॥

पूर्वं हत्वा च मा वीर स्वपितृव्यं ततः पुनः ।

तथैवोदर्यसिंहं च देवसिंहं तथा कुलम् ।

सुखी भव महावीर गेहे वै सुखवर्मण ॥४२॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ज्ञात्वा च स्वकुलं शिशुः ।

त्यक्त्वा खड्गं पतित्वा च स्वपितृव्यस्य पादयोः ।

कृतवान्रोदनं गाढमपराधनिवृत्तये ॥४३॥

इसी बीच में देवादि समस्त भूमिपाल वहाँ प्राप्त हो गये थे ।

उन्होंने वह महान् सबको विस्मय का कारण स्वरूप युद्ध देखा था ॥३६॥ प्रातः काल के सम्प्राप्त होने पर महान् बनी बलखानि ने जटा और अजिन (भृगुचर्म) में युक्त एवं रम्य बालक को देखा था ॥३७॥

धम में अत्यन्त कश्चित वीर एवं प्रतापवान् इन्द्र का पुत्र हो गया । उमने पिता के बन्धु बलखानि की स्वयं शपथ की थी ॥३८॥ उमने कहा—हे कृष्णाश ! मैं अपने ही खग से तेरा सिर काटूँगा नहीं तो नाम



से सती स्वर्णवती माता दूषित हो जायगी । इस तरह कह कर खग लेकर शीघ्र ही स्थावित होकर चला गया था ॥३६॥ बलहानि ने उसे जान कर प्रेम से कातर हो कर अस्त्र त्याग दिया और पुत्र के समीप में जाकर वह यह वचन बोला—॥४०॥ हे इन्दुल ! हे महाभाग ! हे पिता और माता यश को करने वाले ! तुम आह्लाद के प्राण सहश हो और स्वर्णवती के अंग के मानस हो ॥४१॥ पहिले तुम मुझ भारदो और फिर अपने पितृव्य कृष्णाश का वध करना । उसी प्रकार से उदयसिंह और देवसिंह तथा समस्त कुल का हनन करना । हे महावीर ! तुम वहा सुख वर्मा के घर में ही सुखमय जीवन बिताना । यह उसके वचन सुन कर उस शिशु ने अपने सम्पूर्ण कुल को समझ कर अपना हाथ का खग त्याग दिया था और वह फिर अपने चाचा के चरणों में गिर गया था । उसने अपन किए हुए अपराध की निवृत्ति के लिये बहुत अधिक रुदन किया था ॥४२ ४३॥

उवाच मधुर वाक्य शृणु तात मम प्रिय ।  
 नारीय दूषिता वेदैर्नृणा मोहप्रदायिनी ॥४४  
 देवो वा मानुषो वापि पन्नगो वापि दानव ।  
 आर्यं नारीमयैर्जालैर्बन्धनाय समुद्यत ॥४५  
 सोहमाजमशुद्धस्य पितुराह्लादकस्य च ।  
 गेहे जातो जयतश्च शक्रपुत्र स्वयं विभो ॥४६  
 पश्चिन्या जनित मोहं गृहीत्वा ज्ञातवान्न हि ।  
 क्षमस्व मम मन्दस्य शेषमज्ञानजं पितु ॥४७  
 इत्युक्त्वा स पुनर्वालो रुरोद स्नेहकातरः ।  
 सेनामुज्जीवयामास तालनं च महाबलम् ॥४८  
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णाशे वचनं शिशो ।  
 परमानन्दमागम्य हृदये तमरोपयत् ।  
 उत्सव कारयामास तत्र देशे जनेजने ॥४९

फिर वह मधुर वचन बोला—हे मेरे प्रिय तात ! मेरे वचन श्रवण कीजिए । इस नारा को वेनो ने दूषित बताया है । यह नरो को मोह

के प्रदान करने वाली होती है ॥४४॥ चाहे कोई देव हो या मनुष्य हो अथवा पद्मग हो किम्बा दानव हो, हे आर्य ! नारीमय जालो से तुरन्त बन्धन में आने के लिये समुद्यत हो जाया करते हैं । ॥४५॥ वह मैं जन्म से लेकर परम शुद्ध पिता आह्लाद के गेह में समुत्पन्न शक्र का पुत्र जयन्त भी हे विमो ! स्वयं पद्मिनी के द्वारा जनित मोह में फँसकर सब कुछ भूल गया और मैंने यह कुछ भी नहीं जाना था । पिता के विषय में जो कुछ मैंने अज्ञान वश होकर मन्द बुद्धि से किया उस सबको अब क्षमा कर दीजिएगा । ॥४६-४७॥ इतना कह कर वह बालक फिर स्नेह से कातर हो कर बड़े जोर से रो उठा । उसने सम्पूर्ण सेना को और महान् बलवान् तालन को उज्जीवित कर दिया ॥४८॥ इस प्रकार के उस शिशु के वचन को कृष्णाश ने सुन कर परम आनन्द को प्राप्त कर उसे अपने हृदय से लगा लिया । फिर इस देश में और घर-घर तथा जन-जन में उत्सव कराया ॥४९॥

आर्य्यसिहस्तु तच्छ्रुत्वा नापात्रव्यहसन्वितः ।  
 ददौ कन्या विधानेन पद्मिनीमिदुलाय वै ॥५०॥  
 शत हयास्तथा नागान्मुक्तामणि विभूषितान् ।  
 कन्यार्ये तान्ददौ राजा जामात्रे बहुभूषणम् ॥५१॥  
 प्रस्थानमकरोत्तेषां स प्रेम्णा वाक्यगद्गदः ।  
 ते तु सर्वे मुदा युक्ताः स्वगेहं शीघ्रमाययुः ॥५२॥  
 उपित्वा मासमेकं तु तस्मिन्मार्गे भयानके ।  
 कीर्तिसागरमासाद्य चक्रुस्ते बहुघोत्सवम् ॥५३॥  
 आह्लादन्तु प्रसन्नात्मा सुतं पत्नी समन्वितम् ।  
 दृष्ट्वा विप्रान्समाहूय ददौ दानान्यनेकशः ॥५४॥  
 दशहाराध्यनगरं संप्राप्तः स्वशुलैस्सह ।  
 कृष्णाशस्य महाकीर्तिर्जाता लोके जने जने ॥५५॥  
 पृथ्वीराजस्तु तच्छ्रुत्वा विस्मय परमं ययौ ।  
 सा तु वै पद्मिनी नारी दुर्लभाः शायमोहिता ॥५६॥

अप्सरस्त्व स्वयं त्यक्त्वाभूमौ नारीत्वमागता ।

द्वादशाब्दप्रमाणेन सोषित्वा जगतीले ॥ ५७

यक्षमणा मरणं प्राप्य स्वर्गलोकमुपाययी ।

नव मासान्कृतो वासस्तयाचाह्लादमदिरे ॥ ५८

राजा आर्यसिंह ने यह समस्त वृत्तान्त श्रवण करके अनेक भाँति के द्रव्यों से समान्वित होकर उस पद्मिनी कन्या का विधि-विधान के साथ इन्दुल को दान कर दिया ॥ ५७ ॥ सौ अश्व तथा हाथी जो कि मुक्ता और मणियों से समङ्कृत थे राजा ने कन्या के अर्थ में उनका दान कर दिया और जामाता के लिए बहुत-से भूषण दिये थे । ॥ ५९ ॥ फिर उसने प्रेम से गद्गद् वाक्य वाला होकर उनका प्रस्थान अर्थात् विदाई की । वे सब भी आनन्द से युक्त होकर शीघ्र अपने घर को आ गये थे ॥ ६० ॥ एक मास के समय तक उस परम भयानक मार्ग में निवास करते-करते कीर्ति सागर में आकर उन्होंने बहुत बड़ा एक उत्सव किया ॥ ६१ ॥ आह्लाद बहुत ही प्रसन्न मन वाला जबकि उसने अपने पुत्र इन्दुल को पत्नी से युक्त देखा था । फिर उसने सुयोग्य ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें अनेक प्रकार के बहुत से दान दिये थे ॥ ६२ ॥ इसके पश्चात् वह अपने दशहाराध्य नगर को अपने कुल के साथ प्राप्त हुआ था । तब से जो वृष्णाक्ष था उसकी कीर्ति बहुत अधिक लोक में जन-जन में छा गई थी ॥ ६३ ॥ जब राजा पृथ्वीराज ने यह समाचार सुना तो उसको इसका अति अधिक विस्मय हुआ था । वह पद्मिनी नारी जो थी दुर्वासा के शाप से मोहित होगई थी और उसने उस शाप के कारण से ही अपने अप्सरापन का स्वयं त्याग करके इस भूमण्डल में नारीत्व का रूप धारण किया था । दशवर्ष के प्रमाण पय त यह इस जगती तन में निवास करके राजयक्ष्मा रोग से मृत्यु प्राप्त करके फिर स्वर्ग लाभ को चली गई थी । उसने उस आह्लाद के घर में वेदन नौ ही मास पर्यन्त निवास किया था ॥ ६४ ॥

## ॥ चन्द्र भट्ट का भाषा ग्रन्थ ॥

कृष्णाशे च गृह प्राप्ते चेन्दुले च विवाहिते ।  
 महीपतिस्सदा दुःखी देहली प्रति चागमत् ॥१॥  
 वृत्तात् च नृपस्याग्रे कथयित्वा स तारकः ।  
 परं विस्मयमापन्नः कृष्णाशचरितं प्रति ॥२॥  
 एतस्मिन्नंतरे मन्त्री चन्द्रभट्ट उदारधी ।  
 भूमिराज वचः प्राह शृणु पार्थिवसत्तम ॥३॥  
 मया चाराधिता देवी वैष्णवी विश्वकारिणीः ।  
 त्रिवर्षाति च तुष्टाभूद्वरदा भयहारिणी ॥४॥  
 तथा दत्तं शुभं ज्ञानं कुमतिष्ठवसकारकम् ।  
 ततोऽहं ज्ञानवान्भूत्वा कृष्णाशं प्रति भूपते ।  
 चरितं वर्णयामास तस्य कल्मषनाशनम् ॥५॥  
 इत्युक्त्वा स च शुद्धात्मा ग्रंथं भाषामयं शुभम् ।  
 माहात्म्यं देविभक्तानां श्रावयामास वै सभाम् ॥६॥  
 तच्छ्रुत्वा भूमिराजस्तु विस्मितश्चाभवत्क्षणात् ।  
 महीपतिस्तदा प्राह दिव्याश्ववलदर्पितः ।  
 उदयो नाम बलवान्यस्यैवं वर्णिता कथा ॥७॥

इस अध्याय में राजा पृथ्वीराज के समय में चन्द्रभट्ट के द्वारा भाषा ग्रन्थ का वर्णन किया गया है । श्री सूतजी ने कहा—कृष्णाश के घर में प्राप्त हो जाने पर तथा इन्दुल के विवाहित हो जाने पर महीपति सदा दुःखी होकर देहली के प्रति आया था ॥१॥ उस तारक ने सब वृत्तात् नृप के आगे कह कर कृष्णाश के चरित्र के प्रति परम विस्मय को प्राप्त हुआ था ॥२॥ इसी बीच में मन्त्री उदार बुद्धि वाला चन्द्रभट्ट ने भूमिराज के प्रति यह वचन कहा—हे पार्थिवो मे परम श्रेष्ठ ! मुनिये ॥३॥ मैंने इस विश्व की रचना करने वाली वैष्णवी देवी की आराधना की है । वह देवी तीन वर्ष के अन्त में वरदान देने वाली और समस्त भयों का हरण करने वाली प्रसन्न हुई थी ॥४॥ उसने मुझे

कुमति के ध्वंस करने वाला शुभ ज्ञान प्रदान किया । हे भूपते ! तभी से मैं उस कृष्णाक्ष के विषय में ज्ञान रखने वाला हुआ हूँ । उसने सम्पूर्ण कल्मषों का विनाश कर देने वाला उसके चरित्र का वर्णन किया था ॥५॥ इतना कह कर परम शुद्ध आत्मा वाले उसने एक भाषामय शुभ ग्रन्थ उस सभा को देवी के भक्तों का माहात्म्य सुनाया था ॥६॥ यह श्रवण करके भूमिराज क्षण भर के लिये परम विस्मय से युक्त हो गया । उस समय महीपति ने कहा—दिव्य अश्व केवल अत्यन्त दय वाला, उदय नाम वाला बहुत ही बलवान् था जिसकी यह इस प्रकार की कथा वर्णित की गई है ॥७॥

चत्वारो वाजिनो दिव्या जलस्थलखगाश्च ते ।

शीघ्र ताश्च समाहृत्य स्वयं भूप वली भव ॥८॥

इति श्रुत्वा स नृपति श्रुतवाक्यविशारदम् ।

आहूय कुन्दनमल प्रेपयामास सत्वरम् ॥९॥

महावती समागत्य स दूतो भूपति प्रति ।

उवाच वचन प्रेम्णा महीराजस्य भूपते ॥१०॥

वाजिनस्ते हि चत्वारो दिव्यरूपा शुभप्रभा ।

दर्शनार्थं तव वधूर्वैला नाम ममात्मजा ॥११॥

तमाहूतान्ह्यान्मभूष देहि मे विष्मय त्यज ।

नो च द्वे लाग्निना सर्वे क्षय यास्यति सैन्यपा ॥१२॥

इति श्रुत्वा वचो धीर स भूपो भयकातर ।

आह्लादादीन्समाहूय वचन प्राह नम्रधी ।

ह्यास्वान्स्वान्मुदा देहि मदीय वचन कुरु ॥१३॥

इति श्रुत्वा स आह्लादीध्यात्वा सयमयी शिवाम् ।

उवाच मयुर वाक्य शृणु भूप शिवप्रिय ॥१४॥

चार अश्व बहुत ही दिव्य थे जो जल-स्थल और आकाश में गमन करने वाली शक्ति रखते हैं । हे भूप ! आप शीघ्र ही उनको लाकर स्वयं एक बलवान् हो जाओ ॥८॥ इतना सुनकर वह राजा ने श्रुत-वाक्य के परम प्रवीण पण्डित कुन्तलमय को बुला कर शीघ्र ही भोज

दिया ॥६॥ महावती मे पहुँच कर दूत ने भूपति के प्रति महाराज भूपति के वचन बड़े ही प्रेम के साथ कहे थे ॥१०॥ चार अश्व दिव्य रूप वाले और शुभ कान्ति वाले हैं । उनका दर्शन करने के लिये आपकी वधू और मेरी पुत्री बेला नाम वाली ने उन्हें बुलवाया है । उसके द्वारा आहूत उन अश्वों को हे भूप ! मुझे प्रदान कर दीजिये और इसमें कुछ भी विस्मय न करें । यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो बेला की अग्नि से समस्त सेनापति क्षय को प्राप्त हो जायेंगे ॥११-१२॥ इस प्रकार के उस दूत के द्वारा कहे हुए वचनों को सुनकर, जो कि अत्यन्त ही घोर थे, राजा भय से कातर हो गया था और आह्लाद आदि सबको बुला कर नम्र बुद्धि वाला होकर कहा—आप लोग अपने-अपने अश्वों को आनन्दपूर्वक दे दो और यह मेरा वचन इस समय मान लो ॥१३॥ इस प्रकार के भूप के आज्ञा से युक्त वचनों को सुन कर आह्लाद ने सर्वमयी शिवा का ध्यान किया था और कहा—हे शिवप्रिय राजन् ! आप यह वाक्य श्रवण कर लीजिए ॥१४॥

यत्र न.सस्थिताःप्राणास्तत्र ते वा जिनःस्थिताः ।  
 न दास्यामो वय राजन्सत्यं सत्यं न चान्यथा ॥१५॥  
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य राजा परिमलो बली ॥१६॥  
 शपथं कृतवान्घोर शृण्वतां बलशालिचाम् ।  
 भोजनं ब्रह्मासस्य पानीयं गोऽमृजोपमम् ॥१७॥  
 शय्या स्वमातृसदृशी ब्रह्महृत्योपमा सभा ।  
 मम राष्ट्रे च युष्माभिर्वासः पापमयो महान् ॥१८॥  
 इति श्रुत्वा तु शपथं देवको शोकतत्परा ।  
 चकार रोदनं गाढं सगेहजनविग्रहा ॥१९॥  
 पचविंशत्यब्दे प्राप्ते कृष्णाक्षे योगतत्परे ।  
 भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां तद्गेहादमृततत्पराः ॥२०॥  
 निर्ययुः कान्यकुब्जं ते जयचन्द्रेण पालितम् ।  
 स्वर्णवत्या पुष्पवत्या सहिताश्चित्ररेखया ॥२१॥

आह्लाद ने कहा—जहाँ पर हमारे प्राण हैं वहाँ पर ही वे अश्व भी स्थित हैं । हे राजन् । हम उसे नहीं देंगे । यह बिल्कुल सत्य है और पूर्ण सत्य है इस में अन्यथा कुछ भी नहीं होगा ॥१५॥ इस प्रकार का आह्लाद का दिया हुआ उत्तर वचन सुन कर बलवान् राजा परिमल ने समस्त बलशालियों के श्रवण करते हुए एक परम घोर शपथ की थी कि आप लोगों का मेरे राष्ट्र में रह कर भोजन करना ब्राह्मण के मांस के तुल्य है और जल पान करना गौ के रक्त के पान के समान है, शयन करना माता की शय्या पर शयन करने की भाँति है और मभा ब्रह्म हत्या के सदृश है, सभी प्रकार से मेरे राज्य में तुम लोगों के द्वारा किया गया बास महान् पाप से परिपूर्ण होगा ॥१६ १८॥ यह घोर परिमल के द्वारा दिनाई हुई शपथ का श्रवण करके देवकी शोक में तत्पर होगई और गेह तथा जन विग्रह के साथ गहरा रुदन करने लगी थी ॥१६॥ योग में तत्पर कृष्णाश के पच्चीस वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर भाद्र पद मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी में उसके घर से अपने तत्पर ये सभी निकल गये थे और वे काश्व्य पुण्ड्र देश में जयचन्द्र के द्वारा रक्षा की गई थी । स्वर्णवती पुष्पवती और चित्ररेखा के सहित सब थे ॥२०-२१॥

इ दुल प्रययौ शीघ्रमयुताश्वबलैस्सह ।  
कराल ह्यमारुह्य पचशब्द च तत्पिता ।  
कृष्णाशो विदुलारूढो देवकीमनुसययौ ॥२२  
त्यक्त्वा ते भूपतेर्ग्रामि सर्वसपत्समन्वितम् ।  
पथि श्र्यहमुपित्वा ते जयचन्द्रभुपाययु ॥२३  
नत्वा त भूपति प्रेम्णा गदित्वा सर्वकारणम् ।  
उपित्वा शीतलास्थाने पूजयामासुरम्बिकाम् ॥२४  
जयचन्द्रस्तु भूपालो देवसिंहेन वर्णित ।  
सम्प्यश्च न ददौ वृत्तिं भूमा परिमलाज्ञया ॥२५  
मु ठिनो देवसिंहस्तु गत्वा कृष्णाशमुत्तमम् ।  
उदित्वा कारण सर्वं न श्रुत्वा रोपमादधौ ॥२६

त्वरित विदुलारूढो ह्यपचशतावृतः १

लुठयामास नगरपालितलक्षणेन तत् ॥२७॥

दृष्ट्वा तलक्षणो वीरो हस्तिनः पृष्ठमास्थितः १

शरेण ताडयामासकृष्णा सहृदयदृढम् ॥२८॥

इन्दुल भी दश सहस्र अश्वों के बल के साथ शीघ्र कराल नामक अश्व पर समारूढ होकर तथा उसके पिता यत्न शब्द पर सवार होकर चले गये थे । कृष्णाश अपने विन्दुल घोड़े पर समारोहण कर देवकी पीछे २ चला गया था ॥२२॥ उन सबने उस परिमल भूपति के ग्राम को जोकि नव प्रकार की सम्पत्तियों से समन्वित था त्याग करके मार्ग में तीन दिन निवास करके थे सब राजा जयचन्द्र के समीप में प्राप्त हो गये थे ॥२३॥ उन्होंने प्रेम के साथ उस राजा को प्रणाम करके त्याग करने का समस्त कारण बता दिया था । वहाँ पर शीतलादेवी के स्थान में निवास करते हुए उन्होंने अम्बिकादेवी की पूजा की थी ॥२४॥ देवसिंह के द्वारा राजा जयचन्द्र का स्तवन किया गया था । राजा परिमल की आज्ञा में उनसे लिए उपाय कोई भी वृत्ति नहीं दी थी ॥२५॥ देवसिंह बहुत ही कुण्ठित होकर कृष्णाश के समीप में पहुँचा था जोकि अति उत्तम था । उसने सब कारण बताया तो उसे सुनकर उसे बहुत ही क्रोध आगया था ॥२६॥ शीघ्र ही वह विन्दुल पर समारूढ होकर और साथ ही अश्वों में युक्त होकर लक्षण के द्वारा पालित नगर को उसने छूट दिया था ॥२७॥ वीर लक्षण ने वहाँ उसको देखकर वह हाथी के पीछे पर सवार होकर आया और उसने अपने शर से कृष्णाश के हृदय में दृढ़ता के साथ ताडन किया था ॥२८॥

निष्फलत्वं गतो वाणो विष्णुमन्त्रेण प्रेरितः ।

विस्मितः स तु भूपालो बाह्नाद्भूमिमागतः ॥२९॥

नत्वा तच्चरणौ दिव्यौ कुलिशादिभिरन्वितौ ।

तुष्टावदडवद्भूत्वा लक्षणो गद्गदगिरा ॥३०॥

चण्वविद्धि मा स्वामिन्विष्णुपूजनतत्परम् ।

जानेह त्वा महाबाहो वृष्णश्चक्रवर्तारकम् ॥३१॥



त्वदृते को हि मे दाणं निष्फल कुरुते भुवि ।  
 क्षमस्व मम दौरात्म्यं नाथ ते मायया कृतम् ॥३२॥  
 इत्युक्त्वा तेन सहितो जयचन्द्र महीपतिम् ।  
 गत्वा त कथयामास यथा प्राप्तः पराजयम् ॥३३॥  
 नृपस्तयोः परीक्षार्थं यौ तु छायाविमोहिता ।  
 गजौ कुवल्यापीडौ त्यक्तवाञ्छीतलास्थले ॥३४॥  
 तदाह्लादोदयौ वीरौ गृहीत्वा तौ स्वलीलया ।  
 चकृषतुर्वलात्पुच्छे क्रोशमास पुन पुनः ॥३५॥

किन्तु वह विष्णु मन्त्र के द्वारा उसका प्रेरित किया हुआ बाण  
 बिल्कुल ही निष्फलता को प्राप्त होगया था । तब तो वह भूपाल अत्यन्त  
 विस्मित होकर भूमि पर वाहन से उतर आया था ॥३२॥ फिर उसने  
 कुलिश आदि दिव्य लक्षणों से समन्वित उसके चरणों में प्रणाम किया  
 और भूमि में दण्ड की भाँति पड़कर अपनी गदगद वाणी के द्वारा  
 लक्षण ने उसकी स्तुति की थी ॥३०॥ लक्षण ने कहा—हे स्वामिन् !  
 आप मुझ को भी सर्वदा भगवान् विष्णु के पूजा में तत्पर रहने वाला  
 वैष्णव ही जानें । हे महागुह्यो वाले ! मैं अब आपको पहिचान गया हूँ  
 कि आप कृष्ण शक्ति के ही अवतार वाले देव हैं ॥३१॥ आपके बिना  
 इस भूमण्डल में अन्य कोई भी नहीं है जो मेरे इस बाण को निष्फल कर  
 देवे । हे नाथ ! मेरी इस दुरात्मता को अब आप क्षमा कर दें जेकि मैंने  
 आपकी ही माया से मोहित होकर आपके साथ की है ॥३२॥ इतना  
 कह कर वह उसी कृष्णाश के साथ राजा जयचन्द्र के पास गया और  
 उससे सब वृत्तान्त कह सुनाया था कि किस प्रकार से उसकी पराजय  
 वहा युद्ध में हुई थी ॥३३॥ राजा ने उन दोनों की परीक्षा करने  
 के लिये उस शीतला के स्थल में दो कुवल्यापीड हाथियों को जोकि  
 छाया से विमोहित थे छोड़ दिया था ॥३४॥ उस समय आह्लाद और  
 उदय आदि वीरों ने उन दोनों को अपनी सीला से ही ग्रहण कर लिया  
 था और बलपूर्वक बार-बार एक-दूसरे पर पड़ पड़ कर उन्हें खींच  
 लिया था ॥३५॥

मृती कुवल्यापीडौ दृष्ट्वा राजा भयातुर ।  
 ददौ राजगृह ग्राम तयोरर्थे प्रसन्नधी ॥३६॥  
 इपशुल्के तु संप्राप्ते लक्षणो नाम वै बली ।  
 नृपाजया ययौ शीघ्रं तंश्च दिग्विजयं प्रति ॥३७॥  
 सप्तलक्षवलेस्साढं तालनाद्यैश्च संयुत ।  
 चाराणसो पुरीं प्राप्य हरोध नगरीं तदा ॥३८॥  
 रुद्रवर्मा च भूपालो गौडवशयशस्कर ।  
 पचायुतं स्वसै यैश्च साढं युद्धार्थमाप्तवान् ॥३९॥  
 याममात्रेण तं जित्वा षोडशाब्दस्य वै करम् ।  
 कोटिमुद्रामयं प्राप्य जयचद्राय चार्पयत् ॥४०॥  
 भागधेश पुनर्जित्वा नाम्ना विजयकारिणम् ।  
 विशत्यब्दकरं प्राप्य स्वभूपाय समर्पयत् ॥४१॥  
 पचकोटीश्च वै मुद्रा राजतस्य पुनययौ ।  
 अ ग देशपतिं भूप मायावर्माणमुत्तमम् ॥४२॥  
 सैन्यायुतयुतं जित्वा विशत्यब्दस्य वै करम् ।  
 कोटिमुद्राश्च संप्राप्य स्वभूपाय समर्पयत् ॥४३॥

४ क्षोत्रो कुवल्यापीडा हाथी मर ही गये थे । इसे देखकर राजा बहुत अधिक भय से आतुर होगया था । तब तो राजा ने परम प्रमत्त होकर उन दोनों के लिये राजगृह नामक ग्राम दे दिया था । ॥३६॥ भाग्विनमासके शुक्ल पक्ष के सम्प्राप्त होनेपर लक्षण नाम धारी बलवान् ने राजा की आज्ञा से उनको साथ लेकर दिग्विजय करने के लिये शीघ्र प्रस्थान किया था ॥३७॥ सात लाख सेना के साथ और तालन आदि से समुत होकर वे चाराणसो पुरी में पहुँचे और वहाँ जाकर ममस्त पुरी की अवलोकन कर लिया अर्थात् घेर लिया था ॥३८॥ यहाँ पर रुद्र वर्मा नाम वाला राजा था जो कि षोडश वर्ष के यज्ञ के करने वाला था । वह पचास हजार अपनी मत्ता के साथ युद्ध करने के लिये प्राप्त हुआ था । ॥३९॥ उसको एक ही प्रहर में उठोने जीत कर मानहथ वर का कर एक करोड़ मुद्रा के रूप में प्राप्त करने राजा

जयचन्द्र के अर्पण कर दिया था । ॥४०॥ और पाँच करोड़ मुद्रा फिर राजा से गई थीं । इसके अनन्तर अङ्ग देश के स्वामी परम श्रेष्ठ माया वर्मा भूप को जोकि दश सहस्र सेना से युक्त था, जीतकर उससे बीस वर्ष का कर एक करोड़ मुद्राएँ प्राप्त की थीं और वे सब भी अपने राजा के लिये लाकर समर्पित करदी थी ॥४१-४३॥

वंगदेशपति वीरो लक्षणो वै युतश्च तैः ।  
 लक्षसैन्ययुतं भूपं कालीवर्मणिमुत्तमम् ।  
 अहोरात्रेण तं जित्वा महायुद्धेन लक्षणः ॥४४॥  
 विशत्यब्दकरं प्राप्य कोटिं स्वर्णमयं तदा ।  
 प्रेषयामास भूपाय जयचंद्राय वै मुद्रा ॥४५॥  
 उष्ट्रदेशं ययौ वीरः पालितं तैर्महःबलैः ।  
 धोयीकविस्तन्नृपो लक्षसैन्यसमन्वितः ॥४६॥  
 जगन्नायाज्ञया प्राप्तस्तैश्च सार्द्धं रणोन्मुखे ।  
 तयोश्चासीन्महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।  
 अहोरात्रप्रमाणेन कृष्णाणेन जितौ नृपः ॥४७॥  
 विशत्यब्दकरं सर्वं कोटिस्वर्णसमन्वितम् ।  
 संप्राप्य प्रेषयामास कान्यकुब्जाधिपाय वै ॥४८॥  
 पुण्ड्रदेशं ययौ वीरो लक्षणो बलवत्तरः ।  
 नृपं नागपतिं नाम पंचायुतबलैर्युतम् ।  
 दिनमात्रेण तं जित्वा कोटिमुद्रा गृहीतवान् ॥४९॥

फिर वीर लक्षण उन सबके साथ अङ्ग देश के पति राजा काली वर्मा के पास पहुँच गये जोकि एक उत्तम भूप था और एक लाख सेना से समन्वित था । लक्षण ने उसके साथ महा युद्ध किया था और एक अहोरात्र में उसको जीत लिया था ॥४४॥ उस समय वहाँ से भी बीस वर्ष का इच्छा कर जोकि एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ थी प्राप्त करलीं और बड़ी प्रसन्नता से वे सभी राजा जयचन्द्र के पास भेज दी गई थीं ॥४५॥ फिर वह वीर उष्ट्र देश अर्थात् आन्ध्र या उत्कल देश में गया था जोकि महान् बचवानो के द्वारा मुरझिन था । वहाँ पर धोयी कवि

नाम धारी भूष था और वह एक लाख मेना से समन्वित था ॥४६॥  
वह जगन्नाथ स्वामी की आज्ञा से उन सबके साथ युद्ध में सम्मुख प्रात  
हुआ था । उन दोनों का बड़ा भयानक तुमुन युद्ध हुआ था जोकि  
अत्यन्त रोमाञ्चकारी था । उस राजा को भी कृष्णाश ने सिर्फ एक ही  
अहोरात्र में जीत लिया था ॥४७॥ उससे भी बीस वर्ष का एक करोड़  
स्वर्ण समन्वित धन प्राप्त किया था उसे भी काय कुब्ज देश के स्वामी  
राजा जयचन्द्र के लिये प्रेषित कर दिया था ॥४८॥ फिर अधिक बल-  
वान् लक्षण वीर पुण्ड्र देश में पहुँचा था । वहाँ पर नागपति नाम वाला  
राजा था जोकि पचास हजार सेना की शक्ति से समन्वित था । उसे एक  
ही दिन में पराजित करके एक करोड़ का कर उससे भी ग्रहण  
किया था ॥४९॥

महेंद्रगिरिमागत्य नत्वा त भागव मुनिम् ।  
नतो निवृत्त्य ते सर्वे नेत्रपालपुर ययु ॥५०॥  
योगसिंहस्तदागत्य कृष्णाश प्रति भार्गव ।  
कोटिमुद्रा ददौ तस्मै मप्तरात्रम्बामयत् ॥५१॥  
वीरसिंहपुर जग्मुस्ते वीरा मदवत्तरा ।  
रुर्गुर्नगरी सर्वा हिमतु गोपरि स्थिनाम् ।  
पालिता गोरखान्येन योगिना भक्तसारणात् ॥५२॥  
भूपानुज प्रगीरश्च सैन्यायुतसमन्वित ।  
त्रयबान्दारुण युद्ध लक्षणम्यैव सेनया ॥५३॥  
प्रत्यह बलवान्द्वारो हत्वा शूरमहन्वयम् ।  
सायकाले गृह प्राप्य योगिन तमपूजयत् ॥५४॥  
पूजनात्स प्रसन्नात्मा सैन्यमुज्जीव्य भूपते ।  
दत्त्वा गजप्रल तेभ्य पुनर्योगं करोति वै ॥५५॥  
साद्वं माया गनस्तत्र युद्धघना बलशालिनाम् ।  
तदा ते तु निम्न्याहा देवमिह तमब्रुवन् ॥५६॥  
विजयानं यय भूप ब्रूहि नस्तत्त्वमग्रत ।  
इति श्रुत्वा न शयाच्च शृणु कृष्णाश मे वच ॥५७॥

योगिन गोरख नाम पराजित्य स्वनृत्यत ।

पुनर्युद्ध कुरु त्व वै ततो जय मवाप्स्यसि ॥५८॥

इसके अनन्तर वे सब महेन्द्र गिरिपर आगये थे । वहाँ उन्होंने भागवत मुनि को प्रणाम किया था और वहाँ से लौटकर वे सब नेत्रपाल के पुर को चले गये थे ॥५८॥ हे भागवत ! उस समय योग सिंहुने आकर कृष्णाश को एक बरोड मुद्राएँ दी थी और सात रात्रि तक वहाँ उनका निवास भी कराया था ॥५९॥ इसके पश्चात् अधिक मद से पूर्ण वे सब वीर धीरमिह पुर को चल गये थे । वहाँ हिमनुज पर स्थित समस्त नगरी को उहाने घेर लिया था जोकि गोरखाख्य योगी के द्वारा सुरक्षित थी और उसका कारण भक्त का होना ही था ॥६०॥ वहाँ के राजा का छोटा भाई प्रधीर था जो दश सहस्त सना से समन्वित था । उसने लक्षण की ही मना के साथ बहुत ही दारुण युद्ध किया । उन बनवान शूर ने प्रतिदिन एक सहस्र शूरा का हनन किया । यह मायका न म घर पर आकर उन योगी की पूजा करता ॥६१॥ उन पूजन करने से यह परम प्रसन्न होकर राजा की मृता सना को पुन उज्जीरित कर देना और उन्हें एक हाथी का बल भी प्रदान करता । इस तरह यह पुनर्योग किया करता ॥६२॥ इस तरह वहाँ बनशालियों को युद्ध करत हुए डेढ़ मास का समय व्यतीत हो गया था । तब तो ये अत्यन्त निरन्ताह हाथर दर्वामिह से बहने लग ॥६३॥ हे भूप ! आप ही बनशाल्ये और तत्त्व से समझाइय कि इस युद्ध में हमारा विजय कैसे हुआ करता है । इसका गुन कर उमन कहा—हे कृष्णाश ! हमारी बात गुण, तुम अपने गुण की वना स यागी गोरख को पराजित करा और फिर युद्ध करो तब तो तुम जय प्राप्त कर सकोगे ॥६४-६५॥

इत्युत्तामन्न हि कृष्णाद्या मृत्वा योगमय वपु ।

स्यापयित्वा रणे सेना पात्रिता लक्षणेन वै ॥६६॥

प्रातः तांचे ययुस्त ये मन्दिर तम्य योगिन ।

कृष्णागो नतं रश्मिनीदेवुनाद्यविजारद ॥६७॥

देवसिंहो मृदगाढ्यो वीणाधारी च तालन ।  
 कास्यधारो तदाह्लादो जनो गीता सनातनीम् ॥६१॥  
 तदर्थं हृदये कृत्वा गोरखस्सवयोगवान् ।  
 वर वृणुत तानाह ते तच्छ्रुत्वाऽब्रुवन्वच ॥६२॥  
 नमस्यामो वयं तुभ्य यदि देयो वरस्त्वया ।  
 देहि सजीविनी विद्यामाह्लादाय महात्मने ॥६३॥

५५३ प्रकार से वे सब कृष्णाश आदि कहे गये थे और इस कहने के पश्चात् उन सबने योगमय वषु धारण किया था । युद्ध स्थल में सेना को स्थापित कर दिया जो कि लक्षण के द्वारा पूर्णतः रक्षित की गई ॥५६॥ प्रातः काल में वे सब उस योगी के मंदिर में गये । कृष्णाश नृत्य करने वाला था तथा वह वैष्णु वाद्य का विशारद भी था अर्थात् वही बहुत हा अच्छी बजाने वाला था ॥६०॥ देवसिंह मृदङ्ग से युक्त और तालन वीणा के धारण करने वाला था । आह्लाद कास्य बजाने वाला था और उसने सनातनी गीता का गान किया था ॥६१॥ सब प्रकार के योग का ज्ञाता जो गोरख योगी था, वह उस सनातनी गीता के अर्थ को अपने हृदय में समझता जाता था । वह परम प्रमत्त हो गया और उनसे बोला—वरदान माँग लो । यह उसका वचन सुन कर उन्होंने कहा—हम सब आपको नमस्कार करते हैं । यदि आप प्रसन्न होकर हमको वरदान देना चाहते हैं तो इस महान् आत्मा वाले आह्लाद के लिये सजीविनी विद्या प्रदान कर दीजिये ॥६२ ६३॥

इति श्रुत्वा हृदि ध्यात्वा तानुवाच प्रसन्नधी ।  
 विद्या सजीविनी तुभ्य वरंमात्रं भविष्यति ।  
 तत्पश्चान्निष्कलीभूयागमिष्यति मदतिकम् ॥६४॥  
 अद्यप्रभृति मा वीर मया त्यक्तमिदं जगत् ।  
 यत्र भवति हरि शिष्यस्तत्र गत्वा शये ह्यहम् ॥६५॥  
 द्रुमुस्तारुहिता याणी जम्बुस्ते रणमूर्द्धनि ।  
 जित्वा प्रगीरमिह च वारमिह तयैव च ॥६६॥

हत्वा तस्यायुत सै य लुण्ठयित्वा च तद्गृहम् ।

कृत्वा दासमय भूप लक्षण प्रययौ मुदा ॥६७॥

कोशल देशमागत्य जित्वा तस्य महोपतिम् ।

सैन्यायुत सूयधर करयोग्यमचीकरत् ॥६८॥

षोडशाब्दं प्राप्य मुद्राकोट्ययुत मुदा ।

नैमिषारण्यमागम्य तत्रोषु स्नानतत्परा ॥६९॥

होलिकाया दिने रम्ये लक्षणो बलवत्तर ।

दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो महोत्सवमकारयत् ॥७०॥

यह श्रवण करके और हृदय में ध्यान करके वह प्रमत्त बुद्धि वाला गोरख उनसे बोला—यह सजीवनी विद्या तुमको एक वष भर की होगी इसके पश्चात् यह निष्फल हो जायगी और फिर यह मेरे पास ही लौट कर आ जायगी ॥६४॥ हे वीर ! आज मैंने इस जगत् का त्याग कर दिया है । अब जहाँ पर मेरा शिष्य भक्त हरि है वहाँ जाकर मैं शयन करूँगा ॥६५॥ इतना उन सबसे कह कर वह योगी अतर्धान हो गया और व सव रण स्थल में आ पहुँचे थे । फिर उन्होंने प्रतीरसिंह और धीरसिंह की जीतकर उस ही दस हजार सेना का वध कर दिया और उसका सम्पूर्ण धर की छूट लिया । उस राजाको अपना पूरा दास बना कर रक्षण वहाँ से बड़ा प्रसन्नता के साथ रवाना हो गया ॥६६ ६७॥ फिर इसका पश्चात् कौशल नामक देश में गया और वहाँ के महोपति की जीतकर एक अयुत सेना से युक्त सूयधर की कर देन का योग्य बना दिया । ॥६८॥ यहाँ से सोनह वष का इकट्ठा कर दस सहस्र मुद्रा प्रसन्नता से प्राप्त की । फिर नैमिषारण्य में आकर वहाँ स्नान में तत्पर होकर निवास करने लग गये ॥६९॥ होला का गुँदर दिन में बनवान् लक्षण १ महाराज कराया और ब्राह्मणों का बहुत स दान दिये थे ॥७०॥

तदा वयं च भुनय ममाधिस्तात्र भूपति ।

यदा स लक्षणं प्राप्ता नमिषारण्यमुत्तमम् ॥७१॥

स्नात्वा सर्वाणि तीर्थानि मनस्य द्विजदत्तना ।

प्रा मरुत्तपुर जम्बूद्वीपवृष्णाटमोदि ॥७२॥

इति ते कथित विप्र यथा दिग्विजयोभवत् ।  
 शृणु विप्र कथा रम्या बलखानिर्यथा मृत ॥७३॥  
 मार्गकृष्णस्य सप्तम्या भूमिराजो महाबल ।  
 महीपतेश्च वाक्येन सामत प्राह निर्भय ॥७४॥  
 मया श्रुतस्ते तनय शारदावरदपित ।  
 रक्तबीजत्वमापन्नस्त मे देहि कृपा कुरु ॥७५॥  
 इत्युक्तस्स तु सामन्तस्तेन गजैव सत्कृत ।  
 चामुण्ड नाम तनय समाहूयान्नवीदितम् ॥७६॥  
 पुन र्व नृपते कार्यं सदा कुरु रणप्रिय ।  
 इति श्रुत्वा पितुर्वाक्य स वै राजानमब्रवीत् ॥७७॥  
 देह्याज्ञा भूपते मह्य शीघ्र जयमवाप्स्यसि ।  
 इति श्रुत्वा स होवाच बलखानिमहाबल ॥७८॥  
 मच्छिरीपवन छित्वा गृहीत्वा राष्ट्रमुत्तमम् ।  
 सुस्थितो निर्भयो गेहे बहुशाली यतेंद्रिय ॥७९॥

उस समय मे हम सब और मुनिगण सब समाधि मे स्थित हो गये,  
 जिस समय राजा लक्षण उस उत्तम नैमिषारण्य मे प्राप्त हुआ था ॥७१॥  
 वहाँ पर समस्त तीर्थों मे स्नान करके और द्विजों तथा देवों का सम्पक्  
 प्रकार से वृत्त करके चैत्र मास की अष्टमी तिथि मे फिर वापिस काय-  
 कुब्ज देश को चले गये ॥७२॥ हे विप्र ! यह समस्त वृत्तांत हमने  
 तुमको सुना दिया है जैसे कि वह दिग्विजय हुआ था । हे विप्र ! अब  
 तुम एक परम सुन्दर कथा का श्रवण करो, जिसमे यह बताया जायगा  
 कि बलखानि को मृत्यु किस प्रकार से हुई ॥७३॥ भागशीय मास की  
 कृष्ण पक्ष की सप्तमी मे महान् बलवान् भूमिराज महीपति के वाक्य  
 से निभय होकर सामन्त से बोला ॥७४॥ मैंने सुना है कि आपका पुत्र  
 शारदा देवी के वरदान पाने से बड़ा धमण्डी है और रक्त-बीजत्व को  
 प्राप्त हो गया है, आप उसको मुझे दे दो ऐसी कृपा अवश्य ही करिए  
 ॥७५॥ इस प्रकार से कहा गया वह सामन्त उसने द्वारा राजा की ही  
 आज्ञा सत्कार किया गया । चामुण्ड नाम का जो पुत्र था, उसे बुना



कर उससे यह बोला—॥७६॥ हे पुत्र ! तू नृपति का कार्य सर्वदा निष्ठर होकर कर, क्योंकि तू तो बहुत रणप्रिय वीर है। इस प्रकार के पिता के वाक्य सुन कर वह राजा से बोला ॥७७॥ हे भूपते ! आप मुझे आज्ञा प्रदान करें तो बहुत ही शीघ्र जय की प्राप्ति हो जायेंगे। यह सुनकर वह बोला कि बलखानि महान् बलवान् है। उसने मेरा शिरीष वन काट कर और उत्तम राष्ट्र ग्रहण करके वह बहुशाली एव यत्नेन्द्रिय घर में निभय होकर सुस्थित हो रहा है ॥७८ ७९॥

यदि त्व बलखानि च जित्वा मे ह्यर्पयिष्यसि ।  
 हत्वा वा तस्य सकल राष्ट्र त्वयि भविष्यति ॥८०॥  
 इत्युक्त्वा रक्तबीज त समाहूय स्वक बलम् ।  
 सप्तलक्ष ददौ तस्मै स तत्प्राप्य मुदा ययौ ॥८१॥  
 उपित्वा त्रिदिन मार्गे शिरीषाख्यमुपागत ।  
 वरोध नगरी सर्वा बलखानेर्महात्मन ॥८२॥  
 चामु डागमन श्रुत्वा बलखानिमहाबल ।  
 पूजयित्वा महामाया दत्त्वा दानान्यनेकश ।  
 लक्षसैन्येन सहित प्रययौ नगराद्वहि ॥८३॥  
 तस्यानुजो महावीरस्सुखयानिवलै सह ।  
 हरिणी ता समारुह्य शत्रुसैन्यमचिक्षपत् ॥८४॥

यदि तुम उस महाबली बलखानि को जीत कर मुझे सौंप देगा अथवा उसे मार देगा तो उसका समस्त राष्ट्र तरा ही हो जायगा अर्थात् तुम्हें दे दिया जायगा। उस रक्तबीज से यह कह कर अपनी सात लाख सेना उसको दे दी थी। वह भी उस सेना की प्राप्ति करके प्रसन्नता से चल दिया था ॥८० ८१॥ वह तीन दिन तक मार्ग में पड़ाव डाल कर शिरीषाख्यपुर में पहुँच गया। उसने फिर महात्मा बलखानि की जो पुरी थी, उसका सब ओर से घेरा डाल दिया था ॥८२॥ चामण्ड वा आगमन सुन कर महान् वन वाले वनखानि ने महामाया देवी का पूजन किया और अनक प्रकार व दान विप्रों को दिय थे। फिर वह एक नाव बना नेकर नगर से बाहिर आया था ॥८३॥ उस बलखानि का छोटा

भाई सुखखानि था, वह भी एक महान् वीर था । वह सेना के साथ हरिणी पर समारूढ होकर वहाँ पहुँचा और शत्रु की सेना पर दूट पड़ा ॥८४॥

बलखानि कपोतस्थो नाशयित्वा रिपोर्वलम् ।

लक्षसैन्य मुदा युक्तश्चामुड प्रति चागमत् ॥८५॥

तयोश्चासीन्महद्युद्ध स्वस्वसैन्यक्षयकरम् ।

अहोरात्रप्रमाणेन निहता क्षत्रिया रणे ॥८६॥

प्रातः काले तु संप्राप्ते कृत्वा स्नानादिका क्रिया ।

जग्मतुस्तौ रणे वीरौ धनुर्बाणविशारदौ ॥८७॥

रथस्थो बलखानिश्च चामुण्डो गजपृष्ठगः ।

चक्रतुस्तुमुलघोर नरविस्मयकारकम् ॥८८॥

बाणैर्बाणाश्च सच्छिद्य देवोभक्तौ च तौ मुदा ।

अन्योन्य बाहूने हत्वा भूतलत्वमुपागतौ ।

खड्गचर्मधरौ वीरौ युयुधाते परस्परम् ॥८९॥

यावन्तौ रक्तबीजागात्सजाता रक्तविदवः ।

तावन्तः पुरुषा जाता रक्तबीजपराक्रमा ॥९०॥

तैश्च वीरैर्मदोन्मत्तैर्वलखानिस्समततः ।

सरुद्धोऽभूदध्रुगुश्रेष्ठ शारदा शरणययौ ॥९१॥

बलखानि कपोत नामक बाहन था समास्थित था । उसने शत्रु की सेना का नाश किया, जो कि एक लाख थी । फिर प्रसन्नता से वह चामुण्ड की ओर आया ॥८५॥ उन दोनों का महान् युद्ध हुआ, जो अपनी अपनी सेनाओं के क्षय का करन वाला था । वह युद्ध एक अहोरात्र पण्यत हुआ और उस रण में क्षत्रिय बहून स भारे गये थे ॥८६॥ प्रातः काल के सम्प्राप्त होने पर स्नान आदि की क्रिया समाप्त करके धनुर्बाण के चन्दा की विद्या के परम पण्डित वे दोनों वीर युद्ध-स्थान में गये थे ॥८७॥ बलखानि तौ अपन एक रथ में बैठा हुआ था और चामुण्ड हाथी की पीठ पर समारूढ था । उन दोनों ने फिर ऐसा घोर तुमुल युद्ध किया कि वह मनुष्यों का एकदम विस्मय में डाल देने वाला था ॥८८॥ वे दोनों ही दबो के परम भक्त थे । उनमें बाणों से आगों को बाट कर

बड़े ही आनन्द से एक दूसरे के बाहनो को मार डालता और फिर वे इस भूमि पर उतर आये थे । दोनों ही वीर खड्ग और चर्म (ढाल) के धारण करने वाले थे और दोनों आपस में युद्ध कर रहे थे ॥८६॥ रक्तबीज के अंग से जितनी ही रक्त की बूँदे निकली थी, उतने पुरुष वही उत्पन्न हो गये थे जो कि रक्तबीज के तुल्य ही पराक्रम वाले थे ॥८७॥ उन मद से उन्मत्त वीरो ने बलखानि को चारो ओर से सरुद्ध कर लिया । हे भृगु-श्रेष्ठ ! तब वह बलखानि शारदा देवी की शरण में गया था ॥८९॥

एतस्मिन्न तरे वीर सुखखानिस्ततोऽनुज ।

आग्नेय शरमादाय रक्तबीजानदाहृत ॥८२॥

पुरा तु सुखखानिश्च हभ्यैर्देव च पावकम् ।

पचाब्दाः पूजयामास तदा तुष्टस्वय प्रभु ॥८३॥

पावकीय शर रम्य शत्रुसंहारकारकम् ।

ददौ तस्मै प्रसन्नात्मा तेनासावभवज्जयी ॥८४॥

बलखानिस्तु बलवानदृष्ट्वा शत्रुविनाशनम् ।

पराजित च चामुण्ड बद्ध्वा गेहमुपागतम् ॥८५॥

कृत्वा नारीमय वेष स भीतो ब्रह्महृत्पया ।

क्षोलामारोप्य बलवान्प्रेषयामास शत्रवे ॥८६॥

हतशेष पञ्चलक्ष सैन्य गत्वा च देहलीम् ।

वृत्तान्त कथयामास यथा जातो महारण ॥८७॥

नारीवेष च चामुण्ड स दृष्ट्वा पृथिवीपति ।

क्रोधाविष्टश्च बलवान्महीपतिमुवाच ह ॥८८॥

इस बीच में वीर सुखखानि ने जो कि बलखानि का छोटा भाई था, आग्नेय अस्त्र ग्रहण किया और जो भी रक्तबीज वहाँ पर थे उनको उससे जला दिया था ॥८२॥ पहिले सुखखानि ने द्रव्यो के द्वारा पावक देव की पाँच वष पर्यन्त पूजा की, तब वह देव प्रभु स्वयं प्रसन्न हुए थे ॥८३॥ उनने परम प्रसन्न होकर एक अत्यन्त सुन्दर पावकीय शर उसको प्रदान किया, जो कि शत्रुओं का संहार करने वाला था, उससे ही यह जयी हो गया ॥८४॥ बलवान् बलखानि ने शत्रु के विनाश को देखकर घर में प्राप्त पराजित चामुण्ड को बाँध कर उसका नारीमय

वेप करक, ब्रह्महत्या से भीत होकर उसको एक दोला में बिठा कर बलवान् ने शत्रु के पास ही भेज दिया ॥६५-६६॥ मरने से बची हुई सना के सैनिकों ने देहली समस्त वृत्तांत कह सुनाया, जिस तरह से वह युद्ध वहा पर हुआ था ॥६७॥ पृथ्वीपति ने नारी के वेप वाले चामुण्ड को देख कर वह बहुत ही क्रोध में आविष्ट हो गया । फिर वह महीपति से बोला ॥६८॥

कथ जयो मे भविता सुखखानौ च जीविते ।  
श्रुत्वा महीपति प्राह च्छाना कायंमाकुरु ॥६९॥  
ब्राह्मी माता तयोर्ज्ञेया शुद्धा सैव पतिव्रता ।  
दूतीभिः कारणं ज्ञात्वा पुनर्युद्धं कुरुष्व भो ॥१००॥  
इति श्रुत्वा महीराजो दूतीस्ताश्छलकोविदाः ।  
आहूय प्रेयामास बलखानिगृहं प्रति ॥१०१॥  
ब्राह्मण्यस्तास्तदा भूत्वा बलखानिगृहं ययुः ।  
ससुता ता व्रतस्याशु पप्रच्छुर्विनयान्विताः ॥१०२॥  
तव पुत्रौ महावीरौ दिष्ट्या श क्षयकरोः ।  
तयोर्मृत्युः कथं भूयाज्जीवता शरदा शतम् ॥१०३॥  
तदा ब्राह्मी वचः प्राह पावकीय शरः शुभः ।  
सुखखानेर्जीवकरो बलखाने पदाह्वकः ॥१०४॥  
इति ज्ञात्वा तु ता दूत्यः प्रययुर्देहलीं प्रति ।  
वधयित्वा नृपस्याग्रे धनं प्राप्य गृहं ययुः ॥१०५॥  
महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा महादेवमुमापतिम् ।  
पार्थिवं पूजनं चक्रे सहस्रदिवसान्मुदा ॥१०६॥

सुखखानि जब तक जीवित है मेरा जय कैसे हो सकता है । महीपति ने यह सुन कर कहा—छत्र से काय करना चाहिये ॥६९॥ उन दोनों की माता ब्राह्मी है जो परम शुद्ध पतिव्रता जाननी चाहिए । दूनियो के द्वारा वारण को जान कर फिर युद्ध करो ॥१००॥ यह सुन कर महीराज ने उन दूतियों को जो कि छत्र के काय करने में बहुत ही प्रवीण थीं बुलाया और उन्हें बलखानि के घर की ओर के प्रेषित कर

दिया ॥१०१॥ वे उस समय ब्राह्मणी बन कर ही बलस्थानि के घर में गयी । उन्होंने मुता के साथ उसकी प्रशंसा करके विनय से मुक्त होकर पूछा था ॥१०२॥ आपके दोनों पुत्र महान् वीर हैं, जो कि शत्रुओं का क्षय करने वाले हैं, यह बड़ी प्रसन्नता की बात है । सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहते हुए उन दोनों की मृत्यु फिर किस तरह होगी ? ॥१०३॥ तब उस ब्राह्मणी ने यह वचन कहा—पावकीय बड़ा ही शुभ शर है, जो कि सुखखानि के जीवन का करने या रखने वाला है और बलस्थानि का पदाह्वक है ॥१०४॥ इस प्रकार से यह सब बातें जान कर वे दूतियाँ देहली के प्रति वापिस चल दी । उन्होंने नृप के समक्ष में सब कह दिया और बहुत-सा धन प्राप्त करके वे अपने घरों में चली गई थी ॥१०५॥ महीराज ने यह सुन कर उमा के पति महादेव का पार्ष्विणों के द्वारा एक सहस्र दिन तक प्रसन्नता से पूजन किया था अर्थात् शिव का पार्ष्विण पूजन किया था ॥१०६॥

### ॥ महावती का मुद्ध वर्णन ॥

श्रावणे मासि संप्राप्ते देहलीं च महीपतिः ।  
 नागोत्सवाय प्रययौ सदैव कलहप्रियः ॥१॥  
 दृष्ट्वा नागोत्सवं तत्र गीतनृत्यसमन्वितम् ।  
 महीराज्यं नमस्कृत्य वचनं प्राह नम्रधीः ॥२॥  
 राजन्महावतीग्रामे कीर्तिसागरमध्यगे ।  
 वामनोत्सवमत्यं तं यवव्रीहिसमन्वितः ।  
 पश्य त्वं तत्र गत्वा च ममैव वचनं कुरु ॥३॥  
 इति श्रुत्वा महीराजो धुं धुकारेण संयुतः ।  
 सप्तलक्षवलयुं कृत्वा मुण्डेन समन्वितः ।  
 प्राप्तः शिरीषविषिने तत्र वासमकारयत् ॥४॥  
 महीपतिस्तु नृपतिं नत्वा वै चन्द्रवंशिनम् ।  
 उवाच वचनं दुःखी धूर्तो मायाविशारदः ॥५॥

राजप्राप्तो महीराजो युद्धार्थी त्वामुपस्थित ।  
चन्द्रावली च तनया ब्रह्मानन्द तवात्मजम् ।  
दिव्यलिंगं स संपूज्य बलात्काराद्गृहीष्यति ॥६॥  
तस्मात्स्व स्वबलं साधं मया सह महामते ।  
छद्मना त पराजित्य नगरेऽस्मिन्सुखी भव ॥७॥

इस अध्याय में महावती पुरी में युद्ध के वृत्तांत का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—आवण मास के प्राप्त हो जाने पर सदा ही कहलू से प्यार करने वाला महीपति नागोत्सव के देखने के लिये देहली चला गया था ॥१॥ वहाँ पर नागोत्सव को देख कर जो कि गीत और नृत्य से युक्त सम्पन्न हुआ, फिर उस महीपति ने महीराज को नमस्कार करके नम्रता के साथ यह वचन कहा था ॥२॥ हे राजन् कीर्तिसागर के मध्य में रहने वाले महीवती ग्राम में जो वामनोत्सव होता है वह अत्यन्त ही अच्छा है । यवप्रोहि समन्वित होकर आप वहाँ जाकर उसे देखें । यह मेरा वचन आप अवश्य ही करें ॥३॥ यह सुन कर महाराज धुधुकार से युक्त होकर सात लाख सेना लेकर और चामुण्ड से समन्वित होकर शिरीष वन में प्राप्त हो गया था । वहाँ पर उसने निवास कराया था ॥४॥ वहाँ पर भी महीपति पहुँच गया और चन्द्रवशी राजा को प्रणाम करके उसने उससे कहा—जो बहुत ही दुखी, भूरी और माया का पण्डित था ॥५॥ हे राजन् ! महीराज युद्ध करने की इच्छा लेकर यहाँ तुम्हारे पास आ गया है । यह अब आपकी चन्द्रावली कन्या को तथा आपके पुत्र ब्रह्मानन्द को दिव्य लिंग की पूजा करके बलात्कार पूर्वक छीन कर ले जायगा ॥६॥ इसलिए हे महामते ! आप अपनी सेना के साथ मेरे सहयोग के द्वारा छल से उसे पराजित कर दो और फिर अपने इस नगर में परम सुख के साथ निवास करियेगा ॥७॥

इति श्रुत्वा दैववशो राजा परिमलो बली ।

चतुलक्षबलैस्साधं निशीथे च समागत ॥८॥

शयितान्क्षत्रियाञ्छूरान्हत्वा पचसहस्रकान् ।  
 शतघ्नी रोषणी चक्र बहुशूरविनाशिनीम् ॥६  
 तदोत्थाय महीराज कटिमावध्य सभ्रमात् ।  
 वैरिण परम मत्वा महद्युद्धमचीकरत् ॥१०

युद्धय त्यो सेनयोस्तत्र मलना पुत्र गृद्धिनी ।  
 शारदामादराद्गत्वा पूजयामास भक्तित ॥११

देविदेवि महादेवि सबदु खविनाशिनि ।  
 हर मे सकला बाधा कृष्णाश वोधयाशु च ॥१२

जप्त्वायुतमिम मल हुत्वा तर्पणमाजने ।  
 कृत्वा सुष्वाप तद्वेश्मस्तदा तुष्टा स्वय शिवा ॥१३

मलने महती बाधा क्षय यास्याति मा शुच ॥१४

यह सुनकर देव के अशीभूत बली परिमल राजा अपनी चार लाख सेना के साथ आधी रात में वहा आगया ॥५॥ वहा सोते हुए पाच सहस्र क्षत्रियो को मार दिया था । फिर बहुत से शत्रुओं का विनाश करने वाली शतघ्नी को रोषणी किया अर्थात् तोप चलाई । तब महीराज ने सम्भ्रम से उठकर कटि को बाधकर उसे परम वीरी मान कर उस से महान युद्ध किया था ॥६ १०॥ वहा पर दोनों सेनाओं के युद्ध करने पर मलना विचारी पुत्र की दुखिया ने शारदा के पास जाकर बड़ ही आत्तर से और भक्ति के भाव से उसका पूजन किया ॥११॥ हे देवि । हे महादेवि । तू सबके दु खों का विनाश करने वाला है । इस समय मेरी सम्पूर्ण बाधा का हरण करो और शीघ्र ही कृष्णाश को यह बात जतलादे ॥१२॥ उसने इस मल को दस हजार बार जप करके फिर हवन किया और यथाविधि तपण तथा माजन भी किया । वहा उस रात्रि में वही पर सो गई । तब शिवा प्रसन्न हुई और स्वय आकर कहा—हे मलन । तेरी महती बाधा क्षय को प्राप्त हो जायगी तू इसकी चिन्ता मत करे ॥१३ १४॥

इत्युक्त्वा शारदा देवी कृष्णाश प्रति चागमत् ।  
 पुन ते जननी भूमिमहीराजेन पीडिता ।  
 क्षय यास्यति शीघ्रं च तस्मात्त्व ता समुद्धर ॥१५॥  
 इति श्रुत्वा वचो देव्यास्स वीरा विस्मयान्वित ।  
 देवकी प्रति संप्राप्त कथयामास कारणम् ॥१६॥  
 सा तु श्रुत्वा वचो घोर स्वर्णवत्या समन्विता ।  
 रुरोद भृशमुद्विग्ना विलप्य बहुधा सती ॥१७॥  
 कृष्णाशस्तु तदा दुःखी देवसिंहमुवाच ह ।  
 किं कतव्यं मया वीर देह्याज्ञा दारुणे भये ॥१८॥  
 तच्छ्रुत्वा तन सहितो लक्षणेन समन्वित ।  
 ययौ दिग्भिज्जयार्थेन व्याजेन च महावतीम् ॥१९॥  
 तालनो भीमसेनाद्य सेनापतिरुदारधी ।  
 सप्तलक्षवलैस्साढं विनाह्लादेन सययौ ॥२०॥  
 कल्पक्षेत्रे मुपागम्य योगिनस्ते तदामवन् ।  
 सेना निवेशयामास विपिनं तत्र दारुणे ॥२१॥

मनना से इतना बहकर वह शारदा देवी कृष्णाश के प्रति गई वह उमने कृष्णाश से कहा—हे पुन । तेरी जननी भूमि इस समय और महीराज के द्वारा सताई हुई है । वह शीघ्र ही क्षय को प्राप्त हो जायगी । इसलिये तू शीघ्र ही उसका उद्धार कर ॥१५॥ देवी के इस तरह के वचनों का सुन कर वह वीर अत्यंत ही विस्मित हो गया और देवकी के पास जाकर समस्त कारण उमने कह सुनाया ॥१६॥ उमने इन धार वचन का सुनकर स्वर्णवती से समन्वित होकर अत्यंत उद्विग्न होता हुई रदन करने लगी और सती ने बहुत सा बिनाप करके बड़ी ही पीड़ा प्राप्त की थी ॥१७॥ कृष्णाश भी उस समय बहुत दुःखित हुआ और देवसिंह ने वाता—हे वीर । मुझे इस समय क्या करना चाहिए । कहा ही कारण भय उपस्थित है । मैं विषय । मुझे आप ही आज्ञा दें । १८॥ यह सुनकर उसके माय और लक्षण से समन्वित होकर दिग्भिज्य के करने के बहाने से वह महावती का गया ॥१९॥



भीम सेनाश तालन जो कि अत्यन्त उदार बुद्धि वाला सेनापति था सात लाख सेना के साथ आह्लाद के बिना चला गया ॥२०॥ कल्प क्षेत्र में पहुँच कर उस समय के योगी हो गये थे अर्थात् योगियों का वेष धारण कर लिया । वहाँ उस दारुण विपिन में जो सेना थी उसमें निवेश किया ॥२१॥

कृष्णाशस्तालनो देवो लक्षणो बलवत्तर ।  
 गृहीत्वा लास्यवस्तूनि युद्धभूमिमुपागमन् ॥२२॥  
 सप्ताहं च तयोयुद्धं जातं मृत्युविवर्द्धनम् ।  
 सप्तमेऽहनि ते वीरास्संप्राप्ता रणमूर्द्धनि ॥२३॥  
 तस्मिन्दिने महाभाग महद्युद्धमवतत ॥२४॥  
 दृष्ट्वा पराजितं सैन्यं राजा परिमलो बली ।  
 रथस्थश्चापमादाय महीराजमुपाययौ ॥२५॥  
 यादवश्च गजारूढस्तदा चद्रावलीपति ।  
 धुधुकार समाहूय धनुयुद्धमचीकरत् ॥२६॥  
 हरिनागरमारुह्य ब्रह्मानन्दो महाबल ।  
 तारकं शत्रुमाहूय धनुयुद्धं चकार ह ॥२७॥  
 मदन राजपुत्रं च रणजिदगजसंस्थित ।  
 स्वशरैस्ताडयामास सत्सुतं च जघान ह ॥२८॥

कृष्णाश तालन देवसिंह और बलवान लक्षण इन सवने लास्य की वस्तुएँ ग्रहण कर युद्ध भूमि में फिर ये सब पहुँच गये थे ॥२२॥ सातदिन तक उन दोनों का मौतों का बढ़ाने वाला महान् युद्ध हुआ । था । सातवें दिन में वे वीर रण के माथ पर सम्प्राप्त हो गये थे ॥२३॥ हे महाभाग ! उसदिन में महान् युद्ध हुआ ॥२४॥ राजा परिमल सैन्य को पराजित देखकर रथ में स्थित हो कर धनुष लेकर महीराज के समीप में प्राप्त होगया ॥२५॥ उस समय चद्रावली का पति यादव हाथी पर आरूढ़ था । धुधुकार को बुलाकर धनुयुद्ध किया था ॥२६॥ महान् बलवान ब्रह्मानन्द ने हरि नागर पर स्थित होकर तारक शत्रु को बुला कर उसमें धनुयुद्ध किया था ॥२७॥ गजपर संस्थित रणजित

ने मर्दन राजपुत्र को बुला कर उसके साथ धनुर्मुँढ किया । उसने अपने शरो के द्वारा प्रहार किये और उसके पुत्र का हनन कर दिया ॥२८॥

रूपणो वै सरदन ह्यारूढो जगाम ह ।

आभीरीतनयो जातो मदनो नाम वै बली ।

नृहर राजपुत्र च शखाशश्च जगाम ह ॥२९॥

तेषु सग्राममेषु चामुण्डोऽमृतसैन्यप ।

महीपतेश्च वचन मत्वा नगरमाययौ ॥३०॥

ददर्श नगरी रम्या चतुर्वर्णसमन्विताम् ।

धनधान्ययुता वीरो देवीभक्तिपरायण ॥३१॥

महीपतिस्तु वै धूर्तो दुर्गद्वारि समागत ।

चामुण्डेन युत पापी राजगेहमुपाययौ ॥३२॥

मलना भ्रातर दृष्ट्वा वचन प्राह दु खिता ।

भाद्रकृष्णाष्टमो चाद्य यवव्रीहि गृहे स्थितम् ॥३३॥

न प्राप्त जलसस्थाने सुपुण्ये कीर्तिसागरे ।

महीराजो महापापी वामनोत्सवमागत ॥३४॥

विनाह्लाद च कृष्णाश महद्दु खमुपागतम् ।

इत्युत्तस्स विहस्याह ग्राह्यणोऽय महावली ।

कान्यकुब्जात्समायात कृष्णाशेन प्रयोजित ॥३५॥

रूपण हम पर आरूढ़ होकर सरदन पर गया । आभीरी का तनय, मदन नाम वाला बली उत्पन्न हुआ । राजपुत्र नृहरे के समीप युद्ध करने के लिये शखाश गया ॥२९॥ इन सबके सग्राम में व्यग्र रहने पर एक अमृत सेना का स्वामी चामुण्ड महीपति के वचन मानकर नगर में आयया था ॥३०॥ उसने चारो वर्णों के लोगो से समन्वित रम्य नगरी को देखा था जो कि धन धान्य से परिपूर्ण थी । वही देवी भक्ति में परायण वीर था ॥३१॥ धूर्त महीपति तो दुर्ग के द्वार पर आगया था और चामुण्डा से युक्त वह पापी राज गृह में आ गया था ॥३२॥ मलना ने जब भाई का देखा तो बह

अत्यन्त दुःखित होकर उसमें बोली—यात्र भाद्रपद की कृष्णाष्टमा है और यह योहि घट में मिया है ॥३३॥ मुमुक्षु का सम्मान कीर्ति सागर है, उसमें यह प्राप्त नहीं हुए । मन्त्र पापी महाराज वामोन्मथ में आ गया है ॥३४॥ आहूत और कृष्णा कविता यह महार दुःख उपस्थित हो गया है । इन प्रकार में कहे जाते हैं यह सेंगार वाता—महाराज महान् वनवान् है और गायत्रि गायमा है जिस कृष्णा न ही भेजा है ॥३५॥

देवीदत्तश्च नाम्नाञ्च न ते कार्यं वरिष्यति ।  
श्रुत्वा चद्रावली देवी भवभूषणममुता ॥३६॥  
कामाग्निपीडित विप्र चामुण्ड च ददर्श ह ।  
मातरं प्रति चागम्य वचनं प्राह निभरम् ॥३७॥  
धूर्तोज्ञ प्राज्ञाणो मातृनिश्चय मा हरिष्यति ।  
कोऽयं वीरो न जानामि कथं यामि पतिव्रता ॥३८॥  
इति श्रुत्वा वचस्तस्या लज्जिनस्स महीपति ।  
चामुण्डेन युतं प्राप्तो यत्राभूत्स महारण ॥३९॥  
एतस्मिन् तरे तं वै ब्रह्माद्यास्तै पराजिता ।  
त्यक्त्वा युद्धं गृहं प्राप्तास्त्रिलक्षबलसमुता ॥४०॥  
कपाटं सुदृढं कृत्वा महाचितामुपाययु ।  
महाराजस्तु बलवान्महीपत्यनुमोदित ॥४१॥  
प्रमदावनमागत्य षष्टिलक्षबलावित ।  
जुगोप तत्र बलवान्माननोत्सवहेतवे ॥४२॥

इसका नाम देवीदत्त है और यह तरा काय कर देगा । चन्द्रावली देवी ने यह सुन कर समस्त भूषणों से वह समुक्त हो गई थी ॥३६॥ उसने देखा कि वह विप्र चामुण्ड कामाग्नि से पीडित हो रहा है । उसने अपनी माता से कहा कि यह ब्राह्मण तो बहुत बड़ा धूर्त है और निश्चय ही यह मेरा हरण कर लेगा । यह वास्तव में कौन वीर है, यह भी मैं नहीं जानती हूँ । मैं पतिव्रता नारी इसके साथ कैसे जा सकती हूँ ॥३८॥ उसके इस वचन को सुन कर महीपति अत्यन्त लज्जित

हो गया था और वह चामुण्ड के साथ वहाँ पर आ गया था जहाँ पर यह महारण हुआ था ॥३६॥ इसी बीच में उनके द्वारा पराजित ब्रह्मादि युद्ध को छोड़ कर तीन लाख सेना से सयुक्त घर में प्राप्त हो गये थे ॥४०॥ किन्नाडो को खूब हड़ता से बन्द करके वे सब महाचिन्ता को प्राप्त हुए थे । महोपति के द्वारा अनुमोदन प्राप्त कर बलवान् महीराज प्रमदावन में आकर साठ लाख सेना से युक्त होकर वहाँ मानोत्सव हेतु के लिए रक्षा करता था ॥४१-४२॥

तलिनाद्याश्च चत्वार. शिरीषान्यपुर ययु ।  
 स्थलीभूत च त ग्राम दृष्ट्वा ते विस्मयान्विता. ।  
 प्रययुस्ते सुखभ्रष्टा ददृशुर्हिमद मुनिम् ॥४३॥  
 प्रणम्योचु शुचाविष्टा वनपानिर्मुने वली ।  
 यव गतः समरश्लाघी म च कुनागरैर्युत ॥४४॥  
 श्रुत्वाह हिमदो योगी महीराजेन नाशितः ।  
 छद्मना बलपानिश्च तस्येय सुन्दरी चिता ॥४५॥  
 इति श्रुत्वा वचो धीर कृष्णाशः शोकतत्परः ॥४६॥  
 विललाप भृश तत्र हा वन्धो घमंजाशव ।  
 त्वदृते भूतले वासो ममानोव भयकर ॥४७॥  
 दर्शन देहि मे क्षिप्रं नो चेत्प्राणास्त्यजाम्यहम् ॥४८॥  
 इत्युक्तः स तु तदध्राता बलपानि. पिशाचग ॥  
 सपत्नीकस्समायातो रोदन कृतवान्वह ।  
 वयित्वा सर्ववृत्तान्त ययाजान स्ववंशसम् ॥४९॥

तानन आदि जो चार थे वे सब शिरीषाध्यपुर को चले गये थे । उस ग्राम को स्थलीभूत देग कर वे बहुत ही अश्रित विस्मय को प्राप्त हुए थे । वे सब मुख से छप्ट होकर चले गये थे और उन्होंने हिमद मुनि का दर्शन किया ॥४३॥ शोक में आश्रित वे प्रणाम करते बोले— हे मुनि ! वरी बलपानि, जो समरश्लाघी था, वहाँ चला गया है ? क्योंकि वह कुनागरों में युक्त था ॥४४॥ यह मुनि कर हिमद योगी ने कहा, बलपानि को तो महीराज ने छत्र में नाशित कर दिया है और

उसकी सुन्दरी चिता है ॥४५॥ इस प्रकार के उसने अतिघोर वचन श्रवण कर कृष्णाश शोक से तत्पर होगया था ॥४६॥ कृष्णाश वहा बहुत अधिक विलाप करने लगा—हावन्धो ! हे धर्म जाशक ! तुम्हारे बिना तो अब इस भूतल में मेरा वास अत्यन्त ही भयकर होगया है ॥४७॥ आप मुझे शीघ्र ही दर्शन दो अथवा मैं भी अपने प्राणा को त्याग देना हूँ ॥४८॥ ऐमा कहा गया वह उसका भाई बलरानि पिशाच व रूप वाला पत्नी के सहित वहा आगया और उसने बहुत ददन किया था । उगने अपना समस्त वृत्तांत वह सुनाया था जिस तरह वह अपन वैजस को प्राप्त हुआ था ॥४९॥

दिय विमानमाह्य गतो नाव मत्तोरमम् ।

युधिष्ठिर तस्य कला कलायानलंय गता ॥५०॥

तदा दुःप्रीहकृष्णाश कृत्वा भ्रातुस्तिलाजलिम् ।

महायती समागत्य राजगहमुपाययी ॥५१॥

यशुगद्वा कृष्णाशो ननतं जनमोहन ।

वीणाप्रवाद्य च जगौ तालनो यागिरूपधृक् ॥५२॥

मृदगध्वनिना दधौ लक्षणं वास्यवाद्यम् ।

गुम्बरं च जगौ तत्र श्रुत्वा राजा विमाहितः ॥५३॥

तदा तु मन्त्रा राणी दृष्ट्वा तद्वामनोन्मयम् ।

रदित्वा वचनां प्राह च गता म प्रियवर ॥५४॥

कृष्णाशा यं पुमस्तिस्त्यक्त्वा मा मन्दभागिनाम् ।

स्वया विरहिता दशो महीराजो नु णि ॥५५॥

दत्तुं मां मन्त्रा दृष्ट्वा कृष्णाश रौद्र मानसः ।

तिलाञ्जलि दी थी । और फिर महावती ने पहुँच कर राजगृह में प्राप्त हुआ था ॥५१॥ वहाँ कृष्णाश वेणु के शब्द के साथ नाचने लगा था जोकि समस्त जगत् का मोहन करने वाला था । वेणु प्रवास को तालन ने गाया था जोकि एक योगी के रूप को धारण किये था ॥५२॥ मृदङ्ग की छ्वनि से देवसिंह तत्पर था और लक्षण काश्य बाद्य को बजा रहा था । इस तरह से वहाँ सुस्वर से गान किया था कि उसे सुन कर राजा विमोहित हो गया था ॥५३॥ उस समय रानी मलना उस वामनोत्सव को देखकर रोदन करके यह वचन बोली—मेरा प्रियकर कहा चला गया है । वह कृष्णाश अपने भाई के सहित मुझ मन्द भागिनी का त्याग कर कहा चला गया है ? हे पुत्र ! आज तेरे द्वारा विरहित यह देश महीराज के द्वारा छूट लिया गया ॥५४-५५॥ इस प्रकार से कहने वाली मलना को देख कर कृष्णाश स्नेह से अत्यन्तकातर हो उठा और नन्धारमा होकर यह वचन बोला—हे देवि ! तू वचन बरदे ॥५६॥ हे राजा ! यद्यपि हम सब योगी लोग हैं किन्तु सभी युद्ध की विद्या के महा पण्डित हैं । तब इस समस्त कार्य का करके ही हम नीमिषारण्य को जायेंगे ॥५७॥

ये यवव्रीहयश्चैव तव सद्यनि सस्थिता ।  
 गृहीत्वा योषितस्सर्वा गच्छन्तु सागरान्तिवम् ।  
 वयं तु योगसैन्येन तव रक्षा च कुर्महे ॥५८॥  
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य तत्सुता च पतिव्रता ।  
 मातरं वचनं प्राह कृष्णाशोऽयं न नतंक ॥५९॥  
 पुण्डरीकनिभे नत्रे श्यामाग तस्य सुन्दरम् ।  
 कृष्णाशेन विना मातु रक्षार्थं क्षमो भुवि ।  
 दुजयश्च महीराज कृष्णाशेन विनिर्जित ॥६०॥  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा मलना प्रेमविह्वला ।  
 यवव्रीहयो निष्णास्य यापिता स्यापिता वरे ॥६१॥  
 जगुस्ता यापितस्सर्वा कृष्णाशचरितं शुभम् ।  
 लक्षणं शीघ्रमागम्य योनिवपाः स्वसंनिवात् ।

सज्जीकृत्य स्थितस्तत्र तालनाद्यै सुरक्षित ॥६२॥

कीर्तिसागरमागम्य ते वीरा वलदर्पिता ।

रुधु सर्वतो नारीर्दोलायुतमितस्थिता ॥६३॥

जो ये यव व्रीहि तेरे घर मे सस्थित हैं उहँ समस्त स्त्रिया लेकर सागर के समीप मे जावें । हम योग की सेना से तुम्हारी रक्षा करते हैं ॥६२॥ इस तरह के उसके वचन को सुन कर पतिव्रता उसकी पुत्री अपनी माता से बोली—यह कृष्णाश ही है नाचने वाला नर्तक नहीं है । ॥६३॥ इसके पुण्डरीक के सदृश नेत्र है और श्याम अंग है । जोकि अत्यंत सुन्दर दिखाई दे रहा है । हे माता ! कृष्णाश के बिना इस भूमण्डल में जीवन है जो रक्षा करने के काय मे समर्थ हो सके । कृष्णाश के द्वारा विनिर्जित महीराज दुजय है ॥६०॥ उसके इस वचन को सुन कर मनना प्रेम से विह्वल होगई थी । उमन यवव्रीहि निषाण कर योपितो के हाथो में स्थापित कर दिया था ॥६१॥ उन समस्त स्त्रियो ने कृष्णाश के शुभ चरित का गान करने लगी थी लक्षण में शीघ्र आकर योनिवेष वाले सैनिको को तैयार करके तालन आदि के द्वारा सुरक्षित होता हुआ वहा पर स्थित हो गया था । वे समस्त वीर वनसेदर्पित होकर वीरि सागर पर आकर स्थित हो गये और उहोने दोलायुत मित स्थित होकर नारियो को सब ओर से अवरुद्ध कर लिया था ॥६३॥

महीपतिस्तुन्मुलहा ज्ञात्वा कृष्णाशमागतम् ।

चन्द्रवर्धनमागम्य सपुत्रश्च ररोद ह ॥६४॥

योगभिन्तर्महाराज लुठिता सर्वयोपित ।

मलना सहृता तत्र तथा चन्द्रावली मुता ॥६५॥

महीराजस्य त संन्या योगिवपा स्समागता ।

तारयाय मुता प्रादा महीराजाय मत्स्वगाम् ॥६६॥

इति श्रुत्वा वीरो धार ग्रहानन्दो महाबल ।

लक्षतं याविनस्तत्र ययो गोपममिव ॥६७॥

महीराजमुपलक्ष्य मया युगमात्मज ।

गतिन तामगता तथा रमजिता ययो ॥६८॥

तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरभयोर्भुवि ।

तालनो योगिवेषश्च ब्रह्मानन्दमुपाययौ ॥६८॥

लक्षणश्चाभय शूर देवसिंहो महीपतिम् ।

जित्वा वदध्वा च मुदितौ कामसेनस्समागतः ॥७०॥

कुल के हनन करने वाले महीपाति ने यह जान कर कि कृष्णाश आगया है चन्द्रवशी के पास आकर वह पुत्र के सहित रोने लगा था ॥६४॥ हे महाराज ! उन योगियो ने समस्त स्त्रियो को लूट लिया है । उनमे मलना और उसकी पुत्री चन्द्रावली भी सहित होगई हैं ॥६५॥ वे सब महीराज के ही सैनिक हैं जो योगियो के वेष मे आये हुए हैं । तारक के लिये तो सुता को दे दिया है और मेरी बहिन को महीराज के लिये दे दिया ॥६६॥ इस प्रकार के घोर वचन सुन कर महान् बलवान् ब्रह्मानन्द एक लाख सेना से समन्वित होकर वहाँ पर क्रोध मे पूर्णतया भरकर गया था ॥६७॥ महीराज तो कलही या ही एक अमुक्त सैन्य से कामसेन के द्वारा रक्षित और रणजित् गया था । भूमि पर उन दोनो मेनाभो मे उन दोनो का महान् युद्ध हुआ था । योगी के वेष वाला तालन ब्रह्मानन्द पर युद्ध करने के लिए आगया था ॥६८-६९॥ लक्षण अभय शूर से और देवसिंह महीपति से युद्ध करके उन्हें जीत कर तथा बाँधकर आनन्दित हुए थे । फिर कामसेन आगया था ॥७०॥

लक्षणः कामसेन च देवो रणजित तदा ।

बद्धा तत्र स्थितौ वीरौ शत्रुसैन्यक्षयकरो ॥७१॥

एतस्मिन्नतरे ब्रह्मा बद्धा वै तालन बली ।

लक्षणान्तमुपागम्य धनुयुद्धमचीवरत् ॥७२॥

लक्षण छिन्नधन्वान पुनर्बद्धा महाबलः ।

देवसिंहमुपागम्य मूर्छित त चकार ह ॥७३॥

हाराभूते योगि सैन्ये प्रद्रुते सर्वतो दिशम् ।

कृष्णाशो योषितस्सर्वा वचन प्राह नम्रधीः ॥७४॥

ब्रह्मानन्दोऽप्यमामातो मम सैन्य क्षयकर ।

तस्माद्युय मया साद्धं गच्छतांश्च त प्रति ॥७५॥



इत्युक्त्वा तास्समादाय ब्रह्मानन्दमुपाययौ ।

तयोश्चासीन्महद्युद्धं नर नारायणांशयोः ॥७६॥

कृष्णांशस्तत्र बलवान्नमोमार्गेण तं प्रति ।

रथस्थं च समागम्य मोहयामास सोऽसिना ॥७७॥

लक्षण ने कामसेन की और देव ने रणजित् को बाँधकर ये दोनों वीर शत्रु की सेना के क्षय करने वाले वही पर स्थित हो गये थे ॥७६॥ इसी बीच में बली ब्रह्मा ने तानन को बद्ध कर लिया था और फिर लक्षण के पास आकर धर्म युद्ध किया था ॥७७॥ महा बलवान् ने धनुष काटे हुए लक्षण को फिर बाँध लिया था । फिर देवसिंह के पास आकर उसे मूर्च्छित कर दिया था ॥७८॥ उसयोगियों की सेना में सभी दिशाओं में हाहा कार मच कर भगने पर नम्रधी वाले कृष्णांश ने समस्त नारियों से कहा ॥७९॥ यह मेरी सेना के क्षय को करने वाले ब्रह्मानन्द आ गया है इससे आप लोग मेरे साथ शीघ्र उसके पास चलो ॥८०॥ यह कह कर उन सबको लेकर ब्रह्मानन्द के पास गया था । फिर उन दोनों नर और नारायणांशों को महान् युद्ध हुआ ॥८१॥ वहा पर बलवान् कृष्णांश नमोमार्ग से रथपर स्थित उस को उसने पहुँच कर असि के द्वारा मोहित कर दिया था ॥८२॥

तदा तु मूर्छिते तस्मिन्मोचयित्वा च ता मुदा ।

योगी सैन्यान्वितो युद्धात्पलायन परोऽभवत् ॥८३॥

पराजिते योगिसैन्ये ब्रह्मानन्दो महाबलः ।

योषितस्ताः समादाय स्वगेहाय दधौ मनः ॥८४॥

महीराजस्तु संप्राप्तो महीमत्यनुमोदितः ।

रुरोध सर्वतो नारीः शिवदत्तवरो बली ॥८५॥

नृहरश्चाभयं शूर मर्दनश्चैव रूपणम् ।

मदनं वै सरदनो ब्रह्मानन्दं च तारकः ॥८६॥

चामुण्डः कामसेनं च धनुर्युद्धमधीकरत् ।

तदाभयो महावीरो घुन्वन्तं नृहरं रिपुम् ॥८७॥

छित्त्वा धनुस्तमागत्य खड्गयुद्धमचीकवत् ।

नृहर खड्गरहितोऽभवद्युद्धपराङ्मुख ।

तमाह वचन क्रुद्धोऽभयो युद्धार्थं म्रुद्यत ॥८३॥

उसके मूर्च्छित होजान पर प्रसन्नता से उन सब को छुड़ाकर सेना से अन्वित वह योगी युद्ध स्थल से पलायन परायण हो गया था ॥७८॥ योगिसैन्य के पराजित होने पर महावती ग्रहानन्द ने उन नारियो को लेकर अपने घर की ओर मन लगाया था ॥७९॥ महीर्मात से अनुमोदन प्राप्त कर महीराज वहा आगया था और उसने सब ओर से स्त्रिया को घेर लिया था क्योंकि वह बली शिवका दत्तवरदानी था ॥८०॥ नृहर ने अभय को, मदन ने शूर रूपण को सरदन ने मदन को और तारक ने ग्रहानन्द को तथा चामुण्ड ने काम सनका घेर कर वहा घर्मे युद्ध किया था । उस समय महावीर अभय ने धनुषधारी नृहर शत्रु को घेर कर उसका धनुष काट दिया था और उसके पास आकर खग युद्ध किया था । नृहर घग रहित होकर युद्ध से पराङ्मुख हो गया था । तब युद्ध के लिए उद्यत अभय क्रुद्ध होकर उससे वचन बोला ॥८१-८३॥

भवान्वं मातृष्वस्त्रीयो महीराजस्य चात्मज ॥८४॥

क्षत्रियाणां पर धर्मं कथं सहतुं मिच्छति ।

इतिश्रुत्या तु नृहरो गृहीत्वा परिघं रपा ॥८५॥

जघान तच्च शिरसि सहृतं स्वगमाययी ।

सच्च वै वृत्तवर्मासो विलीन वृत्तवर्मणि ॥८६॥

मदन गोपजात च हत्वा सरदनो बली ।

जयशब्दं चकारोच्चं पुनर्हत्वा रिपोबलम् ।

उत्तराशञ्च स ज्ञेयो मदनञ्चोत्तरे तय ॥८७॥

रूपणञ्च समागत्य मूर्च्छयित्वा च मदनम् ।

पुनस्तारदनं प्राप्य खड्गमुद्धं चकार ह ॥८८॥

ग्रहानन्दञ्च बलयागं बद्धा तारकं रपा ।

महीराजान्नमागम्य धनुमुद्धं चकार ह ॥८९॥

नृहर रणजित्प्राप्य स्वभल्लेन तदा रुपा ।

जघान समरश्लाघी महीराजसुत शुभम् ॥६०॥

स वै दुःशासनाशश्च मृतस्तस्मिन्समागत ॥६१॥

मेरे आप भोसी के पुत्र और महीराज के आत्मज हैं । यह क्षत्रिय का परम धर्म है कि सामने डटकर युद्ध करे इस आप क्यों मिटाना चाहते हैं ? यह सुनकर नृहर को घसे परिघ बो ग्रहण करना पड़ा था ॥६४-६५॥ और उसने उसके मस्तक में प्रहार किया जिससे वह हत होकर स्वर्ग को चला गया था । वह कृत वर्मा का अश या अतएव कृत वमा म ही बिलीन होगया था ॥६६॥ गोप से उत्पन्न मदन को नली सरदन ने मार दिया था । और फिर रिपु के बल को मात्कर बड़ी ऊँची आवाज से जय शब्द किया था । वह उत्तराश था इसलिये मदन उत्तर में लय होगया था ॥६७॥ रूपण ने आकर मर्दन को मूर्च्छित करके फिर सरदन के पास जाकर उसने खग युद्ध किया था ॥६८॥ यलवान् ब्रह्मानन्द ने तारक को क्रोध से बाँध दिया था और फिर उसने महीराज के समीप में आकर धनुर्बुद्ध किया था ॥६९॥ रणजित् ने नृहर के पास पहुँचकर क्रोध से अपने भाले के द्वारा उस समरश्लाघी ने महीराज के शुभ पुत्र का हनन कर दिया था ॥७०॥ वह दुःशासन का अश या मर कर उसी में समागत होगया था ॥७१॥

निहते नृपुरे बधौ मर्दन क्रोधतत्पर ।

स्वशरैश्शस्ताडयामास सात्यवेरशमुत्तमम् ॥६२॥

छित्त्वा ताम्रणाजिच्छूरस्त वै परिमलोद्भव ।

स्वभल्लेन शिर कायाऽमर्दनस्य स चाहरत् ॥६३॥

मृतेऽस्मिन्मर्दने वीरे तदा सरदनो बली ।

ताडयामास त वीर स्वभल्लेनैव वक्षसि ॥६४॥

महत्त्वष्टमुपागम्य रणजिन्मलनोद्भव ।

स्वपद्मेन शिर कायादपाहरत् वैरिण ॥६५॥

त्रिवधौ निहते युद्धे तारक क्रोधमूर्च्छित ।

रयस्यश्च रयस्य च ताडयामास वै शत्रु ॥६६॥

छित्त्वा वाणं च रणजित्तथैव च रिपोद्धनुः ।

निशरैस्ताडयामास कर्णांशं तारकं हृदि ॥६७॥

अमर्षं वशमापन्नो यथाशब्देभुजगमः ।

ध्यात्वा च शंकरं देवं विपद्योत्तं शरं पुनः ॥६८॥

सधाय तर्जयित्वा च शत्रुकण्ठमताडयत् ।

तेन वाणेन रणजित्त्वक्त्वा देहं दिव्यगतः ॥६९॥

गृहर बन्धु के मर जाने पर मर्दन क्रोध में भर कर उसने सात्यकि के उत्तम अश को अपने वाणों से ताड़ित करने लगा था ॥६७॥ परिमल से उद्भव वाले शूर रणजित् ने उन सब शरों का छेदन करके फिर अपने भाले से मर्दन के शरीर से मस्तक को मलग कर दिया था ॥६८॥ इस मर्दन वीर के मृत हो जाने पर उस समय बली सरदन उस वीर के वश-स्यल में अपने भाले से ही प्रहार करने लगा था ॥६९॥ मलना से जन्म ग्रहण करने वाले रणजित् ने बड़े भारी कष्ट से अपने छग के द्वारा उस शत्रु के शरीर से शिर को अलग किया था ॥६९॥ तीनों बन्धुओं के युद्ध में मर जाने पर तारक क्रोध से मूर्च्छित होकर रथ में स्थित होता हुआ रथ में सवार पर शरों के द्वारा प्रहार करने लगा था ॥६९॥ रणजित् ने उसके धनुष और उसी प्रकार से वाण का छेदन करके अपने तीन शरों के द्वारा कर्णांश तारक के हृदय में प्रहार किया था । वह अमर्ष वश में प्राप्त होगया था जैसे सर्प दण्डों के द्वारा होता है । उसने शंकर देव का ध्यान कर विष से घीठ शर फिर सन्धान किया और गर्जंशर शत्रु के कण्ठ में मारा था उस वाण से रणजित् भी शरीर का त्याग कर दिव्यगत हो गया था ॥६९-६९॥

हते तस्मिन्महावीर्ये ब्रह्मानन्दश्च दुःखितः ।

महीराजभयाद्ब्रह्मापुरस्तुत्य च योषितः ।

सध्यावाले तु संप्राप्ते नाद्रष्टृष्णाष्टमीदिने ॥१००॥

पपाट सुदृढं वृत्तं सैन्यं पष्टिसहस्रकैः ।

सादं मेहुमुपागम्य शारदा शरणं ययौ ॥१०१॥

महीराजस्तु बलवा पुत्रशोकेन दुःखित ।  
 सकल्प कृतवान्घोर शृण्वता सवभूभृताम् ॥१०२॥  
 शिरीषाक्षपुर रम्य यथा शून्य मया कृतम् ।  
 तथा महावती सर्वा ब्रह्मानदादिभिस्सह ।  
 क्षय यास्यति मद्भाणैः सर्वे ते चद्रवशिनः ॥१०३॥  
 इत्युक्त्वा धु धुकार वै चाह्वयामास भूपति ।  
 पचलक्षबलैस्साद्धं शीघ्रमागम्यता प्रिय ॥१०४॥  
 इति श्रुत्वा धु धुकारो गत्वा शीघ्रं च देहलीम् ।  
 उषित्वा सप्त दिवसान्युद्धभूमिमुपागमत् ॥  
 तदाष्टलक्षणसहितो महीराजो महाबल ।  
 तारकेण च संयुक्तो युद्धाय समुपाययौ ॥१०६॥

उस महान् वीर के हृत् हो जाने पर ब्रह्मानन्द अत्यन्त दुःखित हुआ था । महीराज के भय से उसने स्त्रियो को आगे करके भाद्र कृष्णाष्टमी के दिन सध्याकाल में प्राप्त होने पर कपाट को सुट्ट करके साठ सहस्र सेना के साथ घर में आकर शारदा के शरण में गया था ॥१०१॥ बनवान् महीराज पुत्र के शोक से अत्यन्त दुःखित होकर उसने समस्त राजाओं के सुनते हुए घोर सकल्प किया था ॥१०२॥ रम्य शिरीषाक्षपुर जैसे मैंने शून्य कर दिया था उसी भाँति ब्रह्मानन्द आदि के साथ यह समस्त महावती और वे समस्त चन्द्रवज्र में होने वाले लोग मेरे ही वाणों के द्वारा क्षय को प्राप्त होंगे ॥१०३॥ यह कह कर उस भूपति ने धु-धुकार बुलाया था । हे प्रिय पाँच लाख सेना के साथ तुम बहुत ही शीघ्र यहाँ आजाओ ॥१०४॥ यह सुनकर धु-धुकार शीघ्र ही देहली जाकर वहाँ सात दिन तक ठहर कर पुनः उस युद्ध स्थल पर आगया था । उस समय अष्ट लक्षणों के सहित महान् बलवाला महीराज तारक के साथ संयुक्त होकर वहाँ युद्ध करने के लिये आगया था ॥१०६॥

## ॥ कृष्णांशस्य-शोभा संवाद ॥

अष्टाविंशब्दके प्राप्ते कृष्णांशे बलवत्तरे ।  
 कार्तिक्यामिदुवारे च कृत्तिकाव्यतिपातमे ॥१॥  
 कृष्णांशोऽप्युतसेनाढ्यः स्वर्णवत्या समन्वितः ।  
 विवाह मुकटस्यैव संत्यागाय ययौ मुदा ॥२॥  
 पवित्रमुत्पलारण्यं वाल्मीकिमुनि सेवितम् ।  
 गंगाकूले ब्रह्ममयं लोहकीलकमुत्तमम् ॥३॥  
 तत्र गत्वा स शुद्धात्मा पुष्पवत्या समन्वितः ।  
 गोसहस्रं च विप्रेभ्यो ददौ स्नाने प्रसन्नधीः ॥४॥  
 एतस्मिन्नतरे प्राप्ता म्लेच्छजातिसमुद्भवा ।  
 शोभा नाम महारम्या वेश्या परमसुन्दरी ॥५॥  
 सा ददर्श परं रम्यं कृष्णांशं पुरुषोत्तमम् ।  
 तद्दृष्टिमौहमापन्ना व्याकुला चाभवत्क्षणात् ॥६॥  
 मूर्च्छिता तां समालोक्य कृष्णांशः सर्वमोहनः ।  
 स्वनिवासमुपागम्य विप्रानाहूय पृष्ठवान् ॥७॥

इस अध्याय में कृष्णांश का शोभा नाम वाली वेश्या के समागम के सम्बन्ध में साय पुराणाचार्य और पुराणों के भेद का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—अधिक बलवान् कृष्णांश के अट्ठाईस वर्ष के प्राप्त होने पर कार्तिकी पूर्णिमा में इन्दुवार के दिन तथा कृत्तिका व्यतिपात नक्षत्र में कृष्णांश दशमहस्र सेना से युक्त स्वर्णवती के साथ विवाह मुकुट के सम्बन्ध प्रकार से त्याग (विसर्जन) करने के लिये प्रयत्नता के साथ गया था ॥१-२॥ वाल्मीकि मुनि के द्वारा सेवित परम पवित्र उत्पलारण्य था । वहाँ गया के तट पर उराम सोह कीलक स्थान था वहाँ पर उग शुद्ध आत्मा बाले ने पुष्पवती से समन्वित जाकर प्रसन्न युक्ति बाने स्नान किया और उस स्नान के समय में ब्राह्मणों के लिये एक महान् गोश्रौ के दान दिये थे ॥३-४॥ इसी बीच में म्लेच्छ जाति में जन्म ग्रहण करने वाली यहा सुन्दरी और अत्यन्त रम्य शोभा नाम बाली वेश्या वहाँ पर प्राप्त हो गई थी ॥५॥ उसने अत्यन्त सुन्दर

पुरुषो मे उत्तम कृष्णाश का दशन किया था । उसकी दृष्टि से मोह को प्राप्त हो जाने वाली वह उसी क्षण में व्याकुल होगई थी ॥६॥ सबको मोहन करने वाले कृष्णाशने उसे मूर्च्छित देख कर अपने निवास स्थान में उसे लाकर बिप्रों को बुलाकर पूछा था ॥७॥

अष्टादश पुराणानि केन प्रोक्तानि किं फलम् ।  
 ब्रूत मे विदुषा श्रेष्ठा वेदशास्त्रपरायणा ॥८॥  
 इति श्रुत्वा वचो रम्य विद्वांस शास्त्रकोविदा ।  
 अब्रुव वचन रम्य कृष्णाश सर्वधमगम् ॥९॥  
 पराशरेण रचित पुराण विष्णुदैवतम् ।  
 शिवेन रचित स्कादप्य ब्रह्ममुखोद्भवम् ॥१०॥  
 शुक्रप्रोक्त भागवत ब्राह्म वै ब्रह्मणा कृतम् ।  
 गारुड हरिणा प्रोक्त पङ्क्तौ सात्त्विकसंभवा ॥११॥  
 मत्स्य कूर्मौ नृसिंहश्च वामन शिव एव च ।  
 वायुरेतत्पुराणानि व्यासेन रचितानि वै ॥१२॥  
 राजसा पट स्मृता वीर कर्मकाण्डमया भुवि ।  
 मार्कण्डेय च वाराह मार्कण्डेयेन निर्मितम् ॥१३॥  
 आग्नेयमगिराश्चैव जनयामास चोत्तमम् ।  
 लिङ्गब्रह्माङ्कं चापि तडिना रचिते शुभे ।  
 महादेवेन लोकार्थं भविष्य रचित शुभम् ॥१४॥

हे विद्वानों में श्रेष्ठों ! आप सब वेद और शास्त्रों में परायण हैं आप मुझे बतलाइए । इस रम्य वचन को सुन कर वेद शास्त्र के पण्डितों एवं परमाधिक विद्वानों ने समस्तधर्म के पाता रम्य कृष्णाश से यह वचन कहा था ॥८॥ ९॥ जिसके विष्णु देवता हैं उस पुराणकी पराशर मुनि रचना की है । शिवने स्कन्द पुराण की रचना की है और पादमपुराण ब्रह्म के मुख से उत्पन्न हुआ है । १०॥ भागवत महापुराण शुक्र मुनि ने कहा है । ब्रह्मपुराण की रचना ब्रह्माजी ने द्वारा हुई है । गारुड पुराण हरि के द्वारा कहा गया है ये छैं सात्त्विक सम्भव पुराण हैं । ११॥ मत्स्य-कूर्म-नृसिंह-

धामन-शिव और वायु ये पुराण श्री व्यास मुनिके द्वारा विरचित हुए हैं ॥१२॥ ये छै पुराण राजस कहे जाते हैं । हे वीर ! ये भूमण्डल मे कमकाण्ड से परिपूर्ण हैं । माकण्डेय और वाराह मार्कण्डेय के द्वारा निर्मित हैं ॥१३॥ अङ्गिरा मुनि ने आग्नेय उत्तम पुराण उत्पन्न किया था । लिंग और ब्रह्माण्डक तन्त्रिके द्वारा निर्मित हैं और लोक के लिये महादेव ने भविष्य पुराण की रचना की है ॥१४॥

सामसा षट् स्मृता प्राज्ञैः शक्तिधर्मपरायणा ।

सर्वेषां च पुराणानां श्रेष्ठं भागवतं स्मृतम् ॥१५॥

घोरे भुवि बली प्राप्ते विक्रमो नाम भूपति ।

कैलासाद्भवमागत्य मुनीन्सर्वान्सिमाह्वयत् ॥१६॥

तदा ते मुनयस्सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ।

सूत सञ्चोदयामासुस्तेषां तच्छ्रवणाय च ।

प्रोक्तान्युपपुराणानि सूतनाष्टादशैव च ॥१७॥

इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णाशो धर्मतत्परः ।

श्रुत्वा भागवतं शास्त्रं सप्तमेऽह्नि महोत्तमम् ॥१८॥

ददौ दानानि विप्रेभ्यो गोसुवर्णमयानि च ।

ब्राह्मणान्भोजयामास सहस्रं वेदतत्परान् ॥१९॥

तदा तु भिक्षुकी भूत्वा शोभा नाम मदातुरा ।

माया कृतवती प्राप्य कृष्णाक्षो यत्र वै स्थितः ॥२०॥

ध्यात्वा महामदं वीरं पद्माक्षं रुद्रकिशोरम् ।

माया सा जनयामास सर्वपापाण्यवारिणीम् ॥२१॥

विद्वानां ने ये छै पुराण सामस बताये हैं जाकि शक्ति धर्म में परायण है । इन समस्त पुराणों में भागवत परमश्रेष्ठ पुराण है ॥१५॥ भूमण्डल में पार बलिद्वय व प्राप्त होने पर विक्रम नाम बाता राजा के नाम से भूमि पर आकर उसी समय मुनिगणों को बुलाया था ॥१६॥ उस समय वे समस्त मुनिगण ने जाकि नैमिषारण्य में निवास कर । यान में श्रीगुरुजी को प्रेरित किया था कि वे उनका भक्षण करावे गुरुजी ने भट्टारक ही उस पुराण भी बताया था ॥१७॥ इस प्रकार स



सुन कर घमं मे तत्पर कृष्णाश ने महान् उत्तम भागवत शास्त्र सात दिन मे श्रवण किया था और विप्रो को गौ तथा सुवर्णं मय दान दिये थे । वेद मे तत्पर एक सहस्र ब्राह्मणो को भोजन कराया था ॥१८-॥१९॥ उस समय मदातुरा शोभा नाम वाली वेश्या भिक्षु की होकर वहाँ आकर माया करने लगी थी जहाँ कृष्णाश स्थित थे ॥२०॥ उसने पैशाच वीर महामद को जो कि रुद्र का किङ्कुर था ध्यान मे लाकर सब को पाषाण कारिणी माया को उत्पन्न किया था ॥२१॥

दृष्ट्वा स्वर्णवतीं देवीं तां मायां शोभयोज्ज्वलाम् ।  
 छित्त्वा चाह्लाद्य वामांगीं स्वगेहं गतुमुद्यता ॥२२॥  
 सा वेश्या तु शुचाविष्टा तस्यां शृगारमुत्तमम् ।  
 स्वर्णयत्रस्थितं रम्यं लक्षद्रव्योपमूल्यकम् ।  
 सहृत्वा मायया धूर्तां देशं बाल्हीकमस्यथौ ॥२३॥  
 कल्पक्षत्रमुपागम्य नेत्रसिंहसमुद्भवा ।  
 वेश्यया मम शृगारं हतं ज्ञात्वा सुदुःखिता ॥२४॥  
 कृष्णाश वचनं प्राह गच्छगच्छ महाबल ।  
 गृहीत्वा मम शृगारं शीघ्रमागच्छ मां प्रति ॥२५॥  
 गुटिकेयं मया वीर रचिता तां मुखेन च ।  
 धूतमायाविनाशाय तव मंगलहेतवे ॥२६॥  
 इति श्रुत्वा तया कृत्वा कृष्णाशस्सर्वं मोहनं ।  
 शूकरक्षत्रमागम्य यत्र वेश्या ददर्श ह ॥२७॥  
 सा तु वेश्या च तं वीरं दृष्ट्वा कन्दर्पकारिणम् ।  
 रचयित्वा पुनर्मायां तदतिकमुपागता ॥२८॥

स्वर्णवती देवी ने शोभा के द्वारा समुत्पन्न उस माया को देख कर उसका छेदन कर दिया था और प्रसन्न होकर उस वामाङ्गी को अपने घर को जाने को उद्यत होगई थी ॥२२॥ वह वेश्या तो शोक से अविष्ट हुई उस स्वर्णवती के स्वर्ण यत्र मे स्थित उत्तम एवं रम्य तथा एक बाह्य द्रव्य के मूल्य वाले थङ्गार का माया से ही सहकरण करने वह धूर्ता बाल्हीक देश मे चली आई थी ॥२३॥ जब वह कल्प

क्षेत्र मे आगई थी तब उस नेत्रसिंह की पुत्री ने वेश्या के द्वारा मेरा शृङ्गार हृत होगया है यह जाना था और वह अत्यन्त ही दुःखित होगई थी ॥२३-२४॥ उसने कृष्णाश से यह वचन कहा—हे महा बलवान् ! तुम शीघ्र ही चले जाओ और मेरे शृङ्गार को लेकर शीघ्र ही वापिस मेरे पास आ जाओ ॥२५॥ हे वीर ! मैंने एक यह गुटिका की रचना की है उसे मुख मे धारण करलो जो कि तुम्हारे मङ्गल के लिये धूर्ता की माया के विनाश के हेतु ही बनाई गई है ॥२६॥ यह स्वर्णवती के वचन सुन कर तथा वैसा ही गर्व मोहन कृष्णाश ने किया था । उसने शूकर क्षेत्र मे आकर उस वेश्या को देखा था ॥२७॥ उस वेश्या ने उस कन्दर्प उत्पन्न कर देने वाले उस वीर को देखा था और फिर अपनी माया की रचना करके उसी के समीप मे वह आगई थी ॥२८॥

तदा सा निष्कली भूय रुरोद करुण बहु ।

रुदती ता समालोक्य दयालुस्स प्रसन्नघी ॥२९॥

गृहीत्वा सर्वशृ गार वचन ग्राह निर्भय ।

किं रोदिषि महाभागे सत्य कथय मा चिरम् ॥३०॥

साह मे सहरो नाम भ्राता प्राणसमप्रिय ।

नाटर्चंश्च पञ्चसाहस्रं सहितो मरण गत ॥३१॥

अतो रौमि महा भागसप्राप्ता शरण त्वयि ।

इत्युक्त्वा मायया धूर्ता कृत्वा श्वमयान्त्यजान् ॥३२॥

तस्मै प्रदर्शयामास निजकार्यपरायणा ।

रुदित्वा च पुनस्तत्र प्राणास्त्यक्तुं समुद्यता ॥३३॥

दयालुस्म च कृष्णाशस्तामाह करुण वच ।

चय ते जीवयिष्यन्ति शोभने कथयाशु मे ॥३४॥

साह वीर तवास्ये तु सन्धिता गुटिका शुभा ।

देहि मे कृपया वीर जीवयिष्यन्ति ते तथा ॥३५॥

उग ममय वह निष्कल होकर करुणा व माय बहुत रदन करने लगी थी । उसका रोदन करती हुई दया कर दयानु वह प्रसन्न मुटि वाला वही आप और स्वर्णवती का समस्त शृङ्गार ग्रहण करके

निभय हो उससे यह वचन बोला—हे महाभाग ! क्यों तू रुदन कर रही है मुझे सत्य २ बतला दे विलम्ब मत करा ॥२६ ३०॥ वह बोली—(मेरा सहर नामका भाई था जोकि मेरे प्राणों के समान प्रिय था । पाँच सहस्र नाट्यों के साथ वह मरण को प्राप्त होगया था ॥३१॥) हे महाभाग ! इसीलिये मैं रुदन करती हूँ । अब मैं तेरी शरण में प्राप्त होगई हूँ । यह कह कर उस घूर्त्ता ने माया के द्वारा शव मया-त्यजों को करक अपने काय में परायण नै उस कृष्णाश को दिखला दिया था । और फिर वह रुदन करके अपने प्राणों को त्याग करने के लिये प्रस्तुत होगई ॥३२ ३३॥ दयालु वह कृष्णाश उससे करुणा से भरे हुए वचन कहने लगा—हे शोभने ! मुझे शीघ्र यह बतादे कि वे सब कैसे जीवित होंगे ॥३४॥ वह बोली—हे वीर ! तुम्हारे मुख में एक शुभ गुटिका सन्वित है । हे वीर ! यह आप मुझ दे देवें । उसी के द्वारा मैं जीवित हो जायंगे ॥३५॥

इत्युक्तस्तु तया वीरो ददौ तस्यै च तद्वसु ।  
 तदा प्रसन्ना घूर्त्ता कृत्वा शुक्लमय वपु ।  
 पञ्चरस्यमुपादाय कृष्णाश कामबिह्वला ॥३६॥  
 बाल्हीकदेशमागम्य सारट्ठनगर शुभम् ।  
 उवास च स्वयं गेहे कृत्वा दिव्यमय वपु ॥३७॥  
 निशीथे समनुप्राप्ते कृत्वा तं नररूपिणम् ।  
 आलिङ्गि ह कामार्ता कृष्णाशं धर्मकोविदम् ॥३८॥  
 दृष्ट्वा सा तथाभूता कृष्णाशो जगदविकामम् ।  
 तुष्टाव मनसा भीरो रात्रिसूक्तेन नम्रधी ॥३९॥  
 तदा सा स्वेडिनी भूत्वा त्यक्त्वा कृष्णाशमुत्तमम् ।  
 पुनः शुक्लमय कृत्वा त्रिचिणीवृक्षमारूढम् ॥४०॥  
 तदा स्वर्णवती देवी बोधिता विष्णुमायया ।  
 कृत्वा शयनी मय रूपं तत्र गत्वा मुदा विता ।  
 ददश शुक्लभूतं च कृष्णाशं योगतत्परम् ॥४१॥

ऐसा कहने पर उस वीर ने उम वेश्या के लिये वह धन दे दिया ।  
 उम समय वह परम प्रसन्न होती हुई घूर्णा ने उसका शुक्रमय शरीर  
 बना कर के एक पिण्ड में स्थित करके उस कृष्णाश को लेकर काम  
 से विह्वल वह बाह्यलोक देश में आगई और वही शुभ सारह नगर में  
 रहने लगी । फिर उसने स्वयं ही परम अपना दिव्यमय शरीर धारण  
 किया तथा आधीरात में उसको नर रूप वाला बनाकर काम से आर्त्त  
 वह उस घम के पण्डित कृष्णाश से आलिङ्गन करने लगी ॥३६॥  
 ३६॥ कृष्णाश ने उस प्रकार की कामान्तर देखकर कृष्णाश ने जगद-  
 म्बिका का स्तवन किया और मनके द्वारा चिन्तन होकर उस घोर ने  
 रात्रि सूक्त से देवी की स्तुति की ॥३६॥ उस समय वह स्वेदिनी होकर  
 उस उत्तम कृष्णाश को त्याग कर उसने फिर शुक्रमय शरीर बना लिया  
 और वह चिषणी के वृक्ष पर आरुढ़ होगई ॥४०॥ तब देवी स्वर्णवती  
 विष्णु की माया के द्वारा बोधित की गई और वह अपना श्येनीमय  
 शरीर धारण करके प्रसन्नता के साथ वहाँ पहुँची । उसने योग में  
 तत्पर शुक के रूप में स्थित कृष्णाश को वहाँ देखा । ॥४१॥

एतस्मिन्नन्तरे वेश्या पुन कृत्वा शुभ वपु ।  
 नरभूत च कृष्णाश वच । प्राह नम्रघी ॥४२॥  
 भये प्राणप्रिय स्वामिन्भज मा कामविह्वलाम् ।  
 पाहि मा रतिदानेन धर्मज्ञोसि भवान्सदा ॥४३॥  
 इत्युत्तस्स तु तामाह वचन शृणु शोभने ।  
 आयवत्स्थितोह वै वदमागपरायण ॥४४॥  
 विवाहिता शुभा नारी यो भजेत ऋतौ नहि ।  
 स पापी नरक याति तिर्यग्योनिमय स्मृतम् ।  
 अत परस्त्रिया भोगो न या वै निरयप्रद ॥४५॥  
 इति श्रुत्या तु सा प्राह विश्वामित्रेण धीमता ।  
 शृ गिरा च महाप्राज्ञ वदयासग वृत्त पुरा ।  
 न चार्जपि नरक प्राप्नस्तस्मान्मा भज कामनीम् ॥४६॥

पुनश्चाह स कृष्णाश कृत पाप तपोवलात् ।

ताभ्या च मुनियुग्माभ्यामसमर्थोहिसाप्रतम् ॥४७॥

अर्द्धांग पुरुषस्य स्त्री मैथुने च विशेषत ।

अहमार्थश्च भवती वेश्या च बहुभोगी ॥४८॥

ऋचि शब्दश्च पूर्वास्याज्जात ऋग्ससनातन ।

योगजश्चैव य शब्दो दक्षिणास्याद्यजुर्भव ॥४९॥

इसी बीच मे उस वेश्या ने पुन अपना शुभ शरीर बना लिया और नररूपी कृष्णाश को करके उससे नम्रता के साथ वह बोली—हे प्राण प्रिय स्वामिन् । काम से विह्वल मेरा उपभोग करो । आप तो धर्म के ज्ञाता हैं इस समय रति का दान मुझे प्रदान करके मेरी रक्षा कीजिए ॥४२-४३॥ इस तरह से उस वेश्या के द्वारा कहा गया वह कृष्णाश उस से बोला—ह शोभने । तू मेरा वचन श्रवण कर मैं आर्यों के मार्ग में स्थित हूँ और सदा वेद के मार्ग में परायण रहने वाला हूँ ॥४४॥ जो पुरुष अपनी विवाहिता शुभ नारी का ऋतुकाल में उपभोग नहीं किया करता है वह पापी नरक में जाया करता है जोकि तिर्यक योनि-मग्न कहा गया है इसलिये पराई स्त्री के साथ भोग करना नरक के देने वाला ही जानना चाहिए । यह श्रवण करके वह वेश्या बोली—धीमाद् विश्वामित्र ऋषि ने और शृङ्गी ने हे महाप्राज्ञ । पहिले समय मे वेश्या के साथ प्रसङ्ग किया । उन मे से कोई भी नरक मे प्राप्त नहीं हुआ । अत आप भुक्त कामिनी का सानन्द उपभोग करें ॥४५-४६॥ फिर उस कृष्णाश ने उस से कहा—उन ऋषियो ने अपने तपस्या के बल से उस पाप को काट दिया । वे तो दोनों मुनि गण परम तपस्वी एवं समर्थ थे मैं तो इस समय में असमर्थ हूँ ॥४७॥ पुरुष का आघा अग स्त्री होता है और विशेष करके मैथुन के समय में ऐसा ही माना जाता है । मैं तो आय हूँ और बहुतो का भोग करने वाली वेश्या हूँ ॥४८॥ ऋचि शब्द पुरुष से समुत्पन्न हुआ है वह ऋग्स सनातन है जो शब्द योगज होता है वह दक्षिणास्य से यजुर्भव है ॥४९॥

तद्वितान्तश्च यश्शब्द पश्चिमास्याच्च सामज ।  
छन्दोभूताश्च ये शब्दास्तेसर्वे ब्राह्मणप्रिया ।  
केवलो वणमात्रश्च स शब्दोऽथवज स्मृत ॥५०॥  
पञ्चमास्याच्च य जाता शब्दा ससारकारिण ।  
ते सर्वे प्राकृता ज्ञ याश्चतुर्लक्षविभेदिन ॥५१॥  
हित्वा तान्यो हि शुद्धात्मा चतुर्वेदपरायण ।  
स यं भवाटवी त्यक्त्वा पद गच्छत्यनामयम् ॥५२॥  
न वदेद्यावयी भाषा प्राणं कठगतैरपि ।  
गर्जरापीडघमानोऽपि न गच्छेज्जैन मन्दिरम् ॥५३॥  
इत्येव स्मृति वाक्यानि मुनिना पठितानि व ।  
वयं त्याज्यो मया धर्मस्सवलोकसुखप्रद ॥५४॥  
इति श्रुत्वा तु सा वेश्या स्तेच्छायाश्चाशसभवा ।  
शोमना नाम रभोरुर्भहाक्रोधमुपाययी ॥५५॥  
वेतसैस्ताडयित्वा त पुन कृत्वा शुक स्वयम् ।  
न ददौ भोजन तस्मै फलाहार शुकाय वै ॥५६॥

और जो शब्द तद्वितान्त है और पश्चिमास्य स अर्थात् पश्चिम मुख से सामज है छन्दोभूत जो शब्द होत हैं व सब ब्राह्मण व प्रिय हुआ करत हैं । केवल जो वण मात्र है वह शब्द अथवज होता है ॥५०॥ पञ्चम मुख स जो शब्द उत्पन्न हुए थे वे सब ससारकारी होत हैं । वे सब प्राकृत जानने चाहिए जिनके चार लाख भेद होने हैं ॥५१॥ जो उनको त्याग करके शुद्ध आत्मा बाना चारों वेदा म परायण होता है वह इस ससार रूपी अटवी ( जंगल ) का त्याग करके अनामय पद को प्राप्त किया करता है ॥५२॥ यावला भाषा का कभी भी नहीं बोलना चाहिए चाहे प्राण वण्टगन भी क्यों न हो जायें । मदमस्त हाथियों व द्वारा सनाया हुआ हाकर भी रक्षा पाने व नियम जैन मन्दिर म नहीं जाना चाहिये चाहे प्राणगन भी हाथिया द्वारा क्यों न हा जायें ॥५३॥ इस प्रकार स स्मृतिया व वाक्य मुनि के द्वारा पड़े गये थे । मो अब मुन अपना यह आय धर्म वैन त्याग दना चाहिए । जानि धर्म

ही एक ऐसा होता है सब लोको में सुख के प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥५४॥ यह कृष्णाश के द्वारा कहा हुआ श्रवण करके म्लेच्छा के अश से समुत्पन्न होने वाली वेश्या शोभना नाम वाली जिसके ऊरु-रम्भा ( केला ) के समान परम सुंदर थे बहुत ही क्रोध को प्राप्त होगई ॥५५॥ उसने उस कृष्णाश को वेतो से पीट कर फिर तोता बना दिया और स्वयं उसने उसको खाने के लिये भोजन नहीं दिया जो कुछ भी फलो का आहार वह कराया करती थी ॥५६॥

तदा स्वर्णवती देवी कृत्वा नारीमय वपु ।  
मशकीकृत्य त वीर तस्मैवान्तर्दधे तु सा ॥५७॥  
पुन श्येनीवपु कृत्वा तद्देशाद्यातुमुद्यता ।  
पृष्ठमारोप्य मशक मयूरनगर ययौ ॥५८॥  
मकरदस्तु ता दृष्ट्वा कृष्णाशेन समन्विताम् ।  
नेत्रपालस्य तनया नाम्ना स्वर्णवती बली ।  
चरणावुपसगृह्य स्वगेहे तामवासयत् ॥५९॥  
शोभनापि च सबुध्य पञ्जरान्तमुपस्थिता ।  
न ददर्श शुक रम्भ मूर्छिता चापतद्भुवि ॥६०॥  
किंकरोमि क्व गच्छामि विना त रमण परम् ।  
इत्येव बहुधालप्य मदहीनपुर ययौ ॥६१॥  
तत्र स्थित च पैशाच मायामदविशारदम् ।  
महामद च सपूज्य स्वदेह त्यक्तुमुद्यता ॥६२॥

उस समय नारी स्वर्णवती अपना वपु नारीमय बना कर उस वीर को एक मशक को रूप देकर वही पर अंतर्हित होगई अर्थात् छिप गई थी ॥५७॥ फिर उसने श्येनी का वपु (शरीर) करके उस देश से जाने के लिये वह उद्यत होगई थी । वह मशक की पीठ पर आरोपित होकर मयूर नामक नगर की चली गई थी ॥५८॥ वहाँ पर बली मकरद ने कृष्णाश के सहित नयपान सिंह की पुत्री स्वर्णवती नाम वाली को देखा उसने दोनों चरणों का स्पर्श कर अपन घर में उनको आवास दिया था ॥५९॥ शोभना वेश्या ने जाकर पीजरा के पास गमन किया तो वहा

उसने उस रम्य शुक के रूप रहने वाले कृष्णांश को नहीं देखा तो वह मूर्च्छित होकर भूमि में गिर गई ॥६०॥ वह विलाप करती हुई बोली अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ बिना उस परम रमण के मैं कैसे रहूँगी । इस प्रकार से बहुत कुछ रो-धोकर वह मदहीनपुर को चली गई थी ॥६१॥ वहाँ पर स्थित माया के मद के परम प्रवीण पेशाच महामद की उसने अर्चा की और फिर वह अपने शरीर का त्याग करने को उद्यत होगई थी ॥६२॥ उसकी पूजा से महामद पिशाच बहुत सन्तुष्ट हो गया था और वह शिव मन्दिर में जाकर मरुस्यलेश्वर लिंग की श्रुपभ भाषा से स्तुति करने लगा था ॥६२॥

महामदस्तु सत्पुष्टो गत्वा चै शिवमदिरम् ।  
मरुस्यलेश्वरं लिंगं तुष्टावार्पभभाषया ॥६३॥  
तदा प्रसन्नो भगवान्वचनं प्राह सेवकम् ।  
स्वर्णवत्या हृतो वीरः कृष्णांशश्चार्यधर्मगः ।  
मया सह समागच्छ मयूरनगरं प्रति ॥६४॥  
इत्युक्तस्तेन पेशाचो नटैः पञ्चसहस्रकैः ।  
तया सह ययौ तूष्णं सहुरेणं समन्वितः ॥६५॥  
इन्दुलक्ष्य तभाह्लादो बोधितो विष्णुमायया ।  
त्रिलक्षबलसयुक्तो देवसिंहेन समुतः ।  
मयूरनगरं प्राप्य मकरदम्भुपाययौ ॥६६॥  
तदा तु शोभना वेश्या सहुरेण बलैस्सह ।  
चकार भैरवी माया सर्वशत्रुभयकरीम् ॥६७॥  
सर्वतश्चोत्थितो वातो महामेघसमन्वितः ।  
पतति बहुधा चोत्काः शकंरावपण्णे रताः ॥६८॥  
दृष्ट्वा ता भैरवी माया तमोभूता समन्ततः ।  
मकरन्दश्च बलवान्नयस्थः स्वयमाययौ ॥६९॥  
शनि भल्लेन ता माया भस्म कृत्वा महाबलः ।  
गृहीत्वा सहुरं धूर्तं सवलं गेहमाप्तवान् ॥७०॥



उस समय भगवान् प्रमत्त हो गये और उस सेवक से बोले आर्यधर्म के अनुगामी वीर कृष्णांश का हरण स्वर्णवती के द्वारा किया गया है । मेरे साथ तू मयूर नगर की ओर आजा ॥६४॥ (इस प्रकार से उसके द्वारा कहा गया पेशाच पाँच हजार नट तथा उस शोभना के साथ शीघ्र ही सङ्घरेण से समन्वित वहाँ गया था ॥६५॥) इधर विष्णु माया के द्वारा इन्दुल तथा आह्लाद बोधित किये गये थे । ये तीन लाख बल से संयुक्त होकर तथा देवसिंह से समन्वित होकर मयूर नगर में पहुँच कर मकरन्द के पास गये थे ॥६६॥ उस समय में शोभना नाम वाली वेश्या सङ्घरेण सेना के साथ वहाँ पहुँच गई और उसने शत्रुओं को भय करने वाली भैरवी माया को किया था ॥६७॥ सब ओर से बड़ा भयानक वायु उठा था जोकि बड़े भारी मेघों से भी समन्वित था । बहुत से उल्काओं का पतन होता था जोकि शकंरा (धूल) के वर्षा करने में रत थे ॥६८॥ उस भैरवी माया को देख कर जो सभी ओर से अन्धकारमय थी बलवान् मकरन्द स्वयं रथ में स्थित होकर वहाँ आगया था ॥६९॥ उस महान् बलवान् ने शनिल के द्वारा उस माया को भस्म करके उस घूर्त सङ्घर को बल के साथ पकड़कर घर में प्राप्त हो गया ॥७०॥

तदा तु शोभना नारी काममायां चकार ह ।

बहुलास्संस्थिता वेश्या गीतनृत्यविशारदाः ॥७१

मोहिताः क्षत्रियाः सर्वे भुमुहुर्लास्यदर्शनात् ।

देवसिहान्च कृष्णांशादृते जडतां गतः ॥७२

तदा स्वर्णवती देवी कामाक्षी ध्यानतत्परा ।

पुनरुत्थाप्यतान्सर्वान्निहीत्वा शोभानां पुनः ।

मयूरध्वजमागम्य निगडैस्तान्बन्ध ह ॥७३

महामदस्तु तज्ज्ञात्वा रुद्रध्यानपरायणः ।

चकार शाम्बरी मायां नानासत्त्वविघायिनीम् ॥७४

व्याघ्राः सिंहा वराहाश्च वानरा दंशका नराः ।

सर्पागृध्रास्तथा काका भक्षयन्ति समंततः ॥७५

तदा स्वर्णवती देवी कामाक्षीध्यानतत्परा ।

ससर्ज स्मरजा माया तन्मायाध्वसिनी रणे ॥७६॥

१ उस समय उस शोभना नारी ने काममाया की थी जिसमे बहुत सी गीत और नृत्य की विशारद वेश्याएँ वहाँ संस्थित होगई थी ॥७७॥ उनके लास्य के दर्शन से समस्त क्षत्रिय मोहित होकर मूर्च्छित हो गये थे । देवसिंह और कृष्णाश के बिना वे सभी जड़ता की प्राप्त हो गये ॥७८॥ उस समय देवी स्वर्णवती कामाक्षी के ध्यान में तत्पर होगई और उसने उन सबको फिर उठा कर पुनः शोभना को पकड़ लिया । मयूर-ध्वज में आकर उनको निगडों से बाध दिया ॥७९॥ महामद ने यह सब समझकर यह रुद्र के ध्यान में परायण हो गया और उसने फिर शाम्बरी माया की थी जो नाना प्रकार के सत्त्वों की विधायिनी थी ॥८०॥ उस माया में व्याधसिंह-वराह-वानर-दशक-नर-सर्प-गृध्र और काक सभी ओर से खाते थे ॥८१॥ फिर उस समय स्वर्णवती देवी ने कामाक्षी के ध्यान में तत्परता की और उसने रण में उस भय के विध्वंस करने वाली स्मरजा माया का सृजन किया ॥८२॥

तथा ताक्ष्यास्सिमुत्पन्ना शरभाश्च महाबला ।

सिंहादीन्मक्षयामासुध्नुं जश्चैव सहस्रशः ॥८३॥

हाहाभूते च तत्संन्येदिधु विद्राविते सति ।

शोभना चाभवद्दासी स्वर्णवत्याश्च मायिनी ॥८४॥

सहुरस्तंनटंस्साढं चाह्लादेनैव चूर्णितः ।

तेषां रुधिग्यु भाश्च भूमिमध्ये समारुहन् ॥८५॥

एव च मुनिशार्दूलं चतुर्मास्वभवद्रणः ।

वैशाखे मासि संप्राप्ते ते वीरा गेहमाययुः ।

इति ते कथितं विप्र चान्यत्किं श्रोतुमिच्छसि ॥८६॥

उस माया के प्रभाव से ताक्ष्य और महा बलवान् शरभ समुत्पन्न होगये थे । जिन्होंने सिंह आदि सब को खा लिया तथा सहस्रों को मार दिया ॥८७॥ उस समय सना में हा हा कर मच गया और सब क्षत्रियों से सारा सना । तब यह मायिनी शोभना स्वर्णवती की दासी

होगई ॥७८॥ और वह सङ्गर समस्त नरो के सहित आह्लाद के ही द्वाराचूर्णित कर दिया गया उनके रुधिर रम्म भूमि के मध्य में समारूढ हो गये थे ॥७९॥ हे मुनि शार्दूल ! इस प्रकार से यह युद्ध चार मास तक हुआ । वैसाख मास के प्राप्त होने पर वे सब वीर अपने घर में आपसे । हे विप्र ! यह समस्त वृत्तान्त हमन तुझे सुना दिया है । अब तुम इसके आगे क्या ध्वज करने की इच्छा रखते हो ? ॥८०॥

## ॥ समस्त नृपो का संग्राम और नाश ॥

द्वात्रिंशब्दे च कृष्णाशे संप्राप्ते योगरूपिणी ।  
 वैला नाम शुभा नारी हरिनागरसंस्थिता ।  
 महावती समागम्य सभाया तत्र चाविशत् ॥१॥  
 एतस्मिन्नंतरे प्राप्ता कृष्णाशाद्या महाबलाः ।  
 नत्वा परमल भूप वैला वचनमब्रवीत् ॥२॥  
 महीपति प्रिय भत्या कृष्णाश नृप दुष्प्रियम् ।  
 त्वया मे घातितो भर्ता ग्रहानदो महाबलः ॥३॥  
 महीराजसुतैर्धूर्तैस्तारकाद्यैर्महाबलैः ।  
 नारीवेष च चामुण्डो धुधुकारेण वारितः ॥४॥  
 स्वामिन प्रति चागम्य ते जग्मुश्छिन्ना प्रियम् ।  
 गुरदोऽसंस्थित स्वामी महत्या मूर्ध्न्याग्नितः ।  
 तस्माच्छूय मया सार्द्धं गतुमर्ह्य त प्रति ॥५॥  
 इति घोरतम वाक्य श्रुत्वा सर्वे शुचान्विताः ।  
 धिग्भूपति च मरुता तान्यां नो घातितः संग्राम ॥६॥  
 इत्युवाचोन्मेष च ररुदु कृष्णाशाद्या महाबलाः ।  
 पत्राणि प्रेषयामासु स्वकीयान्भूपतीन्प्रति ॥

इस अध्याय में चन्द्रवज्र के आदि समस्त नृपों के अन्तिम महान् घोर संग्राम और जगमें प्रायः समस्त राजाओं के क्षय हो जाने के वृत्तान्त

का वर्णन किया जाता है । भूत जी ने कहा—कृष्णाश के बत्तीस वर्ष की अवस्था वाला हो जाने पर योग रूपिणी वेला नाम धारिणी शुभ नारी जोकि हरि नागर में सन्स्थित थी महावती में आई और वहा उसने सभा में प्रवेश किया था ॥१॥ इसी बीच में महान् बलवाले कृष्णाश आदि वहा प्राप्त हो गये थे । वेला ने राजा परिमल को प्रणाम करके ये वचन कहे थे ॥२॥ हे नृप ! आपने महीपति को अपना प्रिय समस्त कर और कृष्णाश को दुष्प्रिय मान कर महान् बलवान् मेरा स्वामी ग्रहानन्द को मरवा दिया है ॥३॥ महीराज के पुत्र बड़े ही घूर्त थे जोकि महान् बली तारक आदि से संयुक्त थे घुन्घुकार के द्वारा नारी के घेय को प्राप्त कराये जाने वाला कामुण्ड इन सबने मेरे स्वामी के पास आकर वे छल से प्रिय होगये थे मेरा स्वामी कुरुक्षेत्र में स्थित है जोकि बड़ी भारी मूर्च्छा से युक्त है । इसलिये आप मेरे साथ उसके प्रति जाने को योग्य होते हो ॥४-५॥ इस प्रकार के घोर तम वाक्य को सुनकर सब शोक से युक्त हो गये थे । इस राजा को और मलना को धिक्कार है जिन दोनों ने हमारा सखा मरवा डाला है ॥६॥ इस प्रकार से कहे कर कृष्णाश आदि जो महान् बलवान् थे वे सब ऊँचे स्वर से रो उठे थे । और उन्होंने अपने भूषों के प्रति पत्नी को भेजा था ॥७॥

क्रोधयुक्ता तदा वेला लिखित्वा पत्रमुत्बणम् ।

महीराजाय सप्रेम्य मलनागेहभागमत् ॥८॥

तत्पस च महीराजो वाचयित्वा विधानतः ।

ज्ञात्वा तत्कारण सर्वं तन्निशम्य विशाम्पतिः ॥९॥

चितावलेवर प्राप्य सुखनिद्रा व्यनाशयत् ।

आहूय भूपतीन्सर्वान्धोरयुद्धोन्मुखोऽभवत् ॥१०॥

चतुर्विंशतिलक्षैश्च शूरैर्भूषसमन्वितैः ।

कुरुक्षेत्रं गम्य शीघ्रं घृतराष्ट्रीशसंभव ॥११॥

तथा परिमलो भूपो सक्षयोदशसैन्यप ।

द्रुपदाशो गम्यो शीघ्रं येसया स्वबृहत्तैः सह ॥१२॥

तोमरान्वयभूपालो बाल्हीकपतिरागत ।

निलक्षश्च तथा सैन्यैः सप्तपुत्रैश्च भूपति ॥१८॥

चित्रोपचित्रो चित्राक्षश्चारुश्चित्र शरासन ।

सुलोचन सवर्णश्च पूर्वजन्मनि कौरवा ॥२०॥

तेपामशा क्रमाज्जाता अभिनन्दनदेहजा ।

महानन्दश्च नन्दश्च परानन्दोपनन्दकौ ।

सुनन्दश्च सुरानन्द प्रनन्द कौरवाशक ॥२१॥

उन सब ने वहा कार्तिकी पूर्णिमा का स्नान किया और अनेक प्रकार के बहुत से दान दिये थे । मार्ग कृष्ण पक्ष की दूज के दिन वे सब युद्ध स्थल में उपस्थित हो गये थे ॥१५॥ विष्वक्सेनीय राजा लहर भी वहाँ पर आगया था । उसके कौरवाश पुत्र सोलह ही महान् बलवान् थे । इनका पूर्व जन्म में जो भी कुछ नाम था उसी नाम से यहा अब भी प्रसिद्ध हुए थे ॥१६॥ उनके नाम ये हैं—दुस्सह—दुश्शल—जल-सन्ध—सम—सह—विन्द — अनुविन्द — सुबाहु — दुष्प्रघर्षण — दुर्मर्षण — सोमकीर्ति — अनूदर — शल — सत्त्व—विवत्सु—ये सब ही क्रम से महा बलवान् थे ॥१७-१८॥ तोमर वंश का राजा बाल्हीक देश का स्वामी वहा आया था । वह तीन लाख सेना और सात पुत्रों से युक्त भूपति था ॥१९॥ चित्र-उपचित्र-चित्राक्ष चारुचित्र-शरा-सन-सुलोचन-सवर्ण ये सब पूर्व जन्म में कौरव थे ॥२०॥ उनके अश क्रम से समुत्पन्न हुए थे । जोकि अभिनन्दन के देह से उत्पन्न हुए थे । महानन्द-नन्द-परानन्द-उपनन्दक-सुनन्द-सुरानन्द-प्रनन्द ये सभी कौरवों के अश थे ॥२१॥

नृप परिहरवशीयो मायावर्मा महाबली ।

लक्ष सैन्यमुत्त प्राप्तो दशपुत्रसमन्वितः ॥२२॥

दुर्मदो दुर्विगाहश्च नन्दश्च विवटानन ।

चित्रवर्मा सुवर्मा च सुदुर्मोचन एव च ॥२३॥

ऊर्णनाम सुनाभश्च चोपनन्दश्च कौरवा ।

तेपामशा क्रमाज्जाता सुता अगपते स्मृता ॥२४॥

मत्त प्रमत्त उन्मत्त सुमत्तो दुर्मदस्तथा ॥  
 दुर्मुखो दुर्दन्तो वायु सुरयो विरुद्य क्रमात् ॥२५॥  
 शुक्लवशीयभूपालो भूलवर्मा समागत ।  
 लक्षसैन्यंश्च बलवान्दशपुत्रसमन्वित ॥२६॥  
 अयोवाहुर्महाबाहुश्चित्रागश्चित्रकुण्डलः ।  
 चित्रायुधो निपगी च पाशीवृन्दारकस्तथा ॥२७॥  
 दृढवर्मा दृढक्षत्र पूर्वजन्मनि कौरवा ।  
 नेपासशा मही जाता गृहे ते भूलवर्मण ॥२८॥

परिहर व श मे होने वाला नृप माया वर्मा महान् बली था । यह अपने दश पुत्र और अपनी एक लाख सेना के साथ इस युद्ध स्थल में प्राप्त हुआ था ॥ २२ ॥ दुर्मद—दुर्विगाह—नन्द—विकटानन—चित्र वर्मा—सुवर्मा—सुदुर्मोचन—उणनाम—सुनाम—उपनन्द ये सभी कौरव तथा उनके अश-क्रम से उत्पन्न हुए थे । और य राजा अकपति के पुत्र हुए थे ॥२४॥ उन्मत्त—मत्त—प्रमत्त—सुमत्त—दुर्मद—दुर्मुख—दुर्धर—वायु—सुरय—विरय ये सब क्रम से हुए थे ॥२५॥ शुक्ल वश का भूपाल भूलवर्मा नाम वाला वहा युद्ध भूमि में आया था । एक लाख सेना इसके साथ थी और इसके भी दश पुत्र थे । जो बड़े बलवान् थे उनकी भी साथ में लेकर आया था ॥२६॥ उनके नाम अयोबाहु—महाबाहु—चित्राग—चित्रकुण्डल—चित्रायुध—निपगी—पाशी—वृन्दारक—दृढवर्मा—दृढक्षत्र थे । ये सब पहिले जन्म में कौरव थे । उनके अश-क्रम पृथ्वीपर उत्पन्न हुए थे जोकि भूलवर्मा के घर में जन्म ग्रहण किया था ॥२७-२८॥

यलश्च प्रबलश्च सुबलोवलवान्वली ।  
 सुमूलश्च महामूलो दुर्गो भीमो भयवर ॥२९॥  
 येवयश्चद्रवशीयो लक्षसैन्यसमन्वित ।  
 दशपुत्रान्वित प्राप्त कुरुक्षेत्रे महारणे ॥३०॥  
 भीमवेगो भीमवलो यलावी बलवद्धन ।  
 उपायुधो दृढधरो दृढसघो महीधर ॥३१॥

जरासन्धः सत्यसन्धः पूर्वजन्मनि कौरवाः ।  
 तेषामशाः समुद्भूताः कैकयस्य गृहे शुभे ॥३२  
 कामः प्रकामः सकामो निष्कामो निरपन्नपः ।  
 जयश्च विजयश्चैव जयन्तो जयवाञ्छयः ॥३३  
 नागवशीयभूपालो नामवर्मा समागतः ।  
 लक्षसेनान्वितः प्राप्तो दशपुत्रसमन्वितः ॥३४  
 पूर्वजन्मनि यन्नाम्ना तन्नाम्ना कौरवा भुवि ।  
 पुण्ड्रदेशपते. पुत्रा जाता दश शिवाज्ञया ॥३५

बल-प्रबल-सुबल-बलवान्—बली—सुमूल—महामूल—दुर्ग—भीम  
 भयकर ये नाम थे ॥२६॥ चन्द्रवश का एक कैकय राजा था जोकि  
 एक लाख सेना से समन्वित और दश पुत्रों से युक्त उस कुरुक्षेत्र के महा  
 युद्ध में प्राप्त हुआ था ॥३०॥ भीमवेग—भीमबल—बलाकी—बलवर्धन—  
 उग्रायुध—दण्डधर—दृढसन्ध—महीधर—जरासन्ध—सत्यसन्ध ये उनके  
 नाम हैं जो पूर्व जन्म में कौरव थे और अब उनके अंश महा कैकय के  
 घर में उत्पन्न हुए थे ॥३२-३२॥ काम—प्रकाम—सकाम—निष्काम—  
 निरपन्नप—जय—विजय—जयन्त—जयवान्—जय ये उनके नाम हैं । नागवंश  
 में उत्पन्न राजा नाम वर्मा आया था । एक लाख सेना इसकी भी थी  
 और इसके भी दश पुत्र इसके साथ में आये थे ॥३३-३४॥ पूर्व जन्म में  
 इनके ये ही नाम थे वे ही नाम इस जन्म में भी हुए । ये सब कौरव थे  
 जोकि अशावतार होकर भूमण्डल में फिर आये थे पुण्ड्र देश के पति  
 के दश पुत्र भगवान् शिव की आज्ञा से समुत्पन्न हुए थे ॥३५॥

उग्रश्रया उग्रसेनः सेनानीदुष्परायणः ।

अपराजित. कुण्डशायी विशालाक्षो दुराघरः ॥३६

दृढहस्तः सुहस्तश्च सुतास्ते नागवर्मणः ॥३७

मद्रवेश समायातस्तोमरास्त्वयसम्भवः ।

लक्षसैन्यैर्भुतो राजा दशपुत्रसमन्वितः ॥३८

चातवेग. सुवर्चाश्च नागदत्तोपयात्रवः ।

आदिवेतुश्च वृक्षो च कवची माय एव च ॥३९

कुण्डश्च कुण्डधारश्च कौरवा पूर्वजन्मनि ।  
तन्नाम्ना भुवि वै जाता मद्रकेशस्य मदरे ॥४०

नृप शादूलवशीयो लक्षसैन्यसमन्वित ।  
पूर्णमिलो मागधेशो दशपुनान्वितो ययौ ॥४१

वीरबाहुर्भीरथश्चोग्रश्चैव घनुर्धर ।  
रौद्रकर्मा दृढरथोऽलोलुपश्चाभयस्तथा ॥४२

अनाघृष्ट कुण्डभेदी कौरवा पूर्वजन्मनि ।  
पूर्णमिलस्य वै गेहे तन्नाम्ना भुवि सभव ॥४३

उनके नाम—उग्रश्रवा—उग्रसेन—सेनानी—कुण्डरायण—अपरा-  
जित—कुण्डशायी—विशालाक्ष—दुराधर—दृढहस्त—सुहस्त—ये सब  
नागवर्मा के पुत्र हुए थे ॥३६॥ तोमरो म समुत्पन्न मद्रवेश भी वहा  
आया था । इसके साथ भी एक लाख सेना थी और इसके भी दश पुत्र  
साथ मे युद्ध स्थल मे आये थे ॥ ३८ ॥ वातवेग—सुवर्चा—नागदन्त  
उग्रयाजक—आदिकेतु—वक्शी—कवची—क्राथ—कुण्ड—कुण्डधार-  
ये सब कौरव थे । इस समय फिर उन्ही अपने नामो से ये भूमण्डल मे  
मद्रकेश के यहा उत्पन्न हुए थे ॥४०॥ शादूल व श म होने वाला नृप भी  
एक लाख सेना से युक्त था । मगध देश का स्वामी पूर्णामित्र अपने दश  
पुत्रो के सहित गया था ॥४१॥ उनके नाम—वीरबाहु—भीरथ—उग्र-  
घनुर्धर—रौद्रकर्मा—दृढरथ—अलोलुप—अभय—अनाघृष्ट और कुण्डभेदी थे ।  
पूर्वजन्म मे ये कौरव थे । फिर इस जन्म मे इन्होंने राजा पूर्णामित्र के  
घर मे अपना जन्म ग्रहण लिया था और उन्ही पूर्व के नामो से ये भूमि  
मे प्रसिद्ध हुए थे ॥४२-४३॥

मयण विनरा नाम रूपदशो महीपति ।  
चीनदशात्परे पारे रूपदश स्मृतो बुध ।  
नर विन्नर जातीयो वसति प्रियदर्शन ॥४४॥  
मयणश्च तदा प्राप्त विन्नरायुतमयुत ।  
अष्टपुत्राविन प्राप्तो यय सारंगपा स्थिता ॥४५॥



विरावी प्रथमश्चैव प्रसाथी दीर्घरोमकः ।  
 दीर्घबाहु महाबाहुव्यूढोरा कनकध्वज ॥४६॥  
 पूषंजन्मनि यन्नाम्ना तन्नाम्ना किन्नरा भुवि ।  
 विरजोशश्च यो जातो मकणो नाम किन्नर ॥४७॥  
 नेत्रसिंह समायातो लक्षसैन्यसमन्वितः ।  
 शल्याश्च स तु विज्ञेय शार्दूलान्वयसम्भवः ॥४८॥  
 तदा गणपति राजा लक्षसैन्यसमन्वितः ।  
 सप्राप्तः शकुने रशस्त्यक्त्वा गेहे स्वपुत्रकान् ॥४९॥

मङ्गल किन्नर नाम वाला रूप देश में राजा था । चीनदेश से परे पार में बुधो के द्वारा रूप देश कहा गया है । वहा किन्नर जातीय भूपति नर के रूप प्रियदर्शन निवास करता है । उस समय वह मङ्गल दश सहस्र किन्नरो के सहित आया था । उसके आठ पुत्र थे उनको भी साथ में लेकर आया था जहाँ कि समस्त नृप स्थित थे ॥४४-४५॥ उनके नाम-विरावी-प्रथम-प्रसाथी-दीर्घरोमक-दीर्घबाहु-महाबाहु-व्यूढोरा-कनकध्वज ये, पूर्वजन्म में जिनके जो नाम थे उन्ही नामों से ये भूमण्डल में किन्नर हुए थे जो विरजोश था वह मकण नाम वाला किन्नर उत्पन्न हुआ था ॥४६-४७॥ एक लाख सेना से समन्वित होकर वहा नेत्रसिंह आया था । उसे शल्या का अश समझना चाहिए । वह शार्दूल अश में समुत्पन्न हुआ था ॥४८॥ उस समय में राजा गणपति एक लाख सेना में युक्त वहा आया था जोकि शकुनि का अश था । इसने अपन पुत्रों को घर में ही छोड़ दिया ॥४९॥

मयूरध्वज एवापि लक्षसैन्यसमन्वितः ।  
 मकरद गृहे त्यक्त्वा विराटाशः समागतः ॥५०॥  
 वीरसेन समायात कामसेनसमन्वितः ।  
 लक्षसेनावितस्तत्र चोग्रसेनाशसम्भवः ॥५१॥  
 लक्षणश्च समायात सप्तनगर्जयुतः ।  
 सत्यज्य पद्मिनी नारी महावष्टेन भूपति ॥५२॥

तालनो धान्यपालश्च लल्लसिंहस्तथैव च ।  
 भीमस्याशो युयुत्सोश्च कुंतिभोजस्य वै क्रमात् ॥५३॥  
 आह्लादश्च समायात कृष्णाशेन समन्वित ।  
 जयन्तेन च वै वीरो लक्षसैन्यान्वितो बली ॥५४॥  
 जगन्नायक एवापि शूरयुतसमन्वित ।  
 संप्राप्तो भगदत्ताशो गौतमान्वयसम्भ्र ॥५५॥  
 अन्ये च क्षुद्रभूपाश्च सहस्राढ्या पृथक्पृथक् ।  
 कुरुक्षेत्रं परं स्थानं सययुर्मद्रविह्वला ॥५६॥

एक लाख सेना सहित राजा मयूरध्वज भी मत्सरद की धर छोड़  
 कर वहाँ आया जोकि राजा विराट का अश था ॥५०॥ कामसेन के  
 सहित वीरसेन भी आया ॥ इसके साथ भी एक लाख सेना थी । यह  
 रुद्रसेन का अश था ॥५१॥ लक्षण भी अपनी सात लाख सेना से  
 सज्जित होकर वहाँ आया इस राजा ने अपनी पद्मिनी रानी का  
 महाद्वय से बहा छोड़ दिया ॥५२॥ तालन-धान्यपाल और लल्लसिंह  
 क्रम से भीमसेन-युयुत्सु और कुंतिभोज के अश थे । ये सभी वहाँ आये  
 थे ॥५३॥ कृष्णाश के साथ लेकर आह्लाद आया जयत के साथ  
 बली वीर एक लाख मना लेकर आया ॥५४॥ जगन्नाथ का भी दशतहर  
 शूरो से अन्वित संप्राप्त हुआ था यह भगदत्त का अश और गौतम वन  
 में उत्पन्न होन वाला था ॥५५॥ इनके अतिरिक्त अन्य क्षुद्र (छोट)  
 राजा भी आये जो अलग अलग सहस्रों शूरो के युक्त थे । ये युद्ध के मद  
 में विह्वल होकर कुरुक्षेत्र के परम स्थान में चले गये ॥५६॥

भूतवर्माचि नृपति सपुत्रा लक्षसैन्यम् ।  
 नृप परिमल प्राप्य सयुक्तो दहन्नीपम् ॥५७॥  
 र्षेयसो लक्षमनाढ्य सपुत्रा नृपति स्वयम् ।  
 नृप परिमल प्राप्य स युद्धायमुपस्थितम् ॥५८॥  
 नर्त्तसिंहश्च नृपति ॥ वीरा लक्षसैन्यम् ।  
 मयूरध्वज एवापि लक्षण शशिवनिताम् ॥५९॥

वीरसेनश्च लक्षाढ्यः सपुत्रश्चाद्रिपक्षगः ।

लक्षणः सप्तलक्षाढ्योः युद्धार्थं समुपस्थितः ॥६०॥

आह्लादो लक्षसैन्याढ्यः पक्षगश्च द्रवशिनः ।

द्विलक्षसयुतो राजा चन्द्रवशो रणोन्मुखः ।

एवं षोडशलक्षाढ्यः स्थितः परिमलो रणे ॥६१॥

लहरो भूपतिश्चेष्टो लक्षपः पुनसयुतः ॥

महीराजमुपागम्य युद्धार्थं समुपस्थितः ॥६२॥

अभितन्दन एवापि सपुत्रो लक्षसैन्यपः ।

मायावर्मा च नृपतिः सपुत्रो लक्षसैन्यपः ॥६३॥

मूलवर्मा नृप पुत्र के सहित साख सेना का स्वामी था । देहलीपति से संयुक्त होकर नृप परिमल से भिड़ गया था ॥५७॥ कंकय एक लाख सेना से पूर्ण पुत्रों के सहित स्वयं राजा परिमल को प्राप्त युद्ध के लिये उपस्थित हो गया था ॥५८॥ नेत्रसिंह वीर लाख सेना का स्वामी तथा एक लाख सेना का पति मयूरध्वज भी शशिवशी से युद्धार्थं भिड़ गये थे ॥५९॥ लख सेना संयुक्त वीरसेन पुत्रों के सहित चान्द्रि के पक्ष में था । लक्षण सात लाख सैन्य से पूर्ण युद्ध के लिये वहाँ पर उपस्थित हो गया था ॥६०॥ एक लाख सेना ॥ युक्त आह्लाद चन्द्रवशी राजा के पक्ष में जाने वाला था । दो लाख से युक्त राजा चन्द्रवश रणोन्मुख हो गया था । इस प्रकार राजा परिमल सोलह लाख सेना से पूर्ण रण में स्थित हुआ था ॥६१॥ लहर राजा भी मथेष्ट एक लाख सेना का अधिपति और पुत्रों के सहित महाराज के पास पहुँच कर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गया था ॥६२॥ अभितन्दन भी पुत्रों के सहित एक लाख सेना का मालिक था । माया वर्मा राजा पुत्रों ॥ सहित एक लाख सेना का स्वामी था ॥६३॥

नागवर्मा समायातः सपुत्रो लक्षसैन्यपः ।

मद्रवेश सपुत्रश्च लक्षसैन्यो रणोन्मुखः ॥६४॥

पूर्णमलः सपुत्रश्च लक्षपश्चैव पक्षगः ।

मदरेश विजयो नाम सपुत्रस्तत्र सस्थितः ॥६५॥

गजराजः समायातो महीराजं हि लक्षपः ।  
 धु धुकारः समायातः पञ्चलक्षपतिः स्वयम् ॥६६॥  
 पुत्रः कृष्णकुमारस्य भगदत्तः समागतः ।  
 त्रिलक्षवलसमुक्तो महीराज महोपतिम् ॥६७॥  
 दलवाहनपुत्रश्च देशगोपाल संस्थितः ।  
 अंगदस्तत्र संप्राप्तः सायुतो देवकी प्रियः ।  
 महीराजमुपागम्य मुद्यार्थं समुपस्थितः ॥६८॥  
 कर्लिगश्च नृपः प्राप्तस्त्रिकोणश्च तथैव च ।  
 श्रीपतिश्च तथा राजा श्रीतारश्च तथा गतः ॥६९॥  
 मुकुन्दश्च सुकेतुश्च रुहिलो गुहिलस्तथा ।  
 इन्दुवारश्च बलवाञ्जयंतश्च तथाविधः ।  
 सयं दशसहस्राढ्या महीराजमुपस्थिताः ॥७०॥

नागवर्मा पुत्रो के सहित लाख सैन्य से युक्त वहाँ आ गया और  
 मद्रवेश तपुत्र लाख सेना समन्वित होकर रण के उन्मुख हुआ था ॥६४॥  
 पूर्णमल एत लाख सेना से सज्जित पुत्रो के सहित पक्ष में गमन करने  
 वाला था । मच्छुण विभ्रर नाम वाला पुत्रों के सहित वहाँ उपस्थित  
 था ॥६५॥ गजराज महीराज के पास लाख सेना का अधिप आया ।  
 धुधुकार पाच लाखका पति स्वयं आया ॥६६॥ कृष्णकुमार का पुत्र भगदत्त  
 आया जो महीराज महोपति के पास तीन लाख सेना से समुक्त होकर  
 आया था ॥६७॥ देश गोपाल संस्थित दलवाहन का पुत्र अङ्गद देवकी  
 का प्रिय दश हजार सेना में युक्त आया था । महीराज के पास जाकर  
 मुद्र के निमित्त उपस्थित हुआ ॥६८॥ कर्लिग का राजा तथा त्रिकोण-  
 श्रीपति और भीतार भी वहाँ प्राप्त हो गये थे । मुकुन्द-सुकेतु-रुहिल  
 गुहिल-इन्दुवार तथा बलवान् जयन्त ये सब दश सहस्र २ सेना से युक्त  
 हाकर महीराज के पास मुद्यार्थ उपस्थित हुए थे ॥६९-७०॥

महीराजस्य पक्षे तु सङ्घं धृद्रममिषाः ।

ते तु माह्वमेनाढ्या महीराजमुपस्थिताः ॥७१॥

तेषां मध्ये च वै भूपान्द्रिशनान्देव्यी प्रति ।

ससैन्यान्प्रेषयामास राष्ट्ररक्षणहेतवे ।  
 एवं स देहलीराजश्चतुर्विंशतिलक्षपः ॥७२॥  
 युद्धमष्टादशाहानि सञ्जात सर्वसंक्षयम् ।  
 शृणु युद्धकथा रम्या भृगुवर्यं सुविस्तरात् ॥७३॥  
 मार्गकृष्णद्वितीयाया महीराजो महाबलः ।  
 आहूय लहर भूपं वचनं प्राह निर्भयः ॥७४॥  
 भवान्सपुत्रः सेनाढ्यो घुंघुकारेण रक्षितः ।  
 चामुण्डेन युतो युद्धे गन्तुमर्हन्ति सत्तमः ।  
 इति श्रुत्वा ययौ शीघ्रं कुरुक्षेत्रे महारणे ॥७५॥  
 तदा परिमलो राजा मयूरध्वज मेव हि ।  
 समाहूय वचः प्राह शृणु पार्थिवसत्तम ॥७६॥  
 कृष्णाशेन जयतेन देवसिंहेन रक्षितः ।  
 स भवाल्लेखसैन्याढ्यो गतुमर्हन्ति वै रणे ॥७७॥

महीराज के पक्ष में एक सहस्र छोटे राजा थे । वे सब सहस्र २ सेना से युक्त थे जोकि महीराज के पास उपस्थित हुए थे ॥७१॥ उनके मध्य में से दो सौ राजाओं को सेना के सहित राष्ट्र की रक्षा के लिये महीराज ने देहली को भेज दिया था । इस प्रकार से वह देहली का राजा चौबीस लाख सेना से युक्त था ॥७२॥ यह युद्ध अठारह दिन पर्यन्त हुआ जो कि सब का संक्षय करने वाला था । हे भृगुवर्य ! अब इस रम्य युद्ध की कथा को तुम विस्तार के साथ श्रवण करो ॥७३॥ मार्ग शीर्ष कृष्ण द्वितीया के दिन महान बलवान् महीराज ने लहर राजा को बुलाकर निर्भय होत हुए यह वचन कहे ॥७४॥ आप पुत्रों के सहित मेना में पूर्णतया युक्त हैं और घुन्धुकार के द्वारा रक्षित हैं । आप चामुण्ड को साथ लेकर युद्धभूमि में हे सत्तम ! जाने के योग्य होते हैं । यह वचन सुनकर वह शीघ्र ही कुरुक्षेत्र के महारण में चला गया ॥७५॥ उसी समय में राजा परिमल ने मयूरध्वज को बुलाया और वह उससे यह वचन बोला—हे पार्थिव श्रेष्ठ ! आप मेरे वचन श्रवण करो । आप

कृष्णाश-जयन्त और देवसिंह के द्वारा रक्षित होते हुए एक लाख सेना से युक्त होकर आप रण में जाने के योग्य होते हैं ॥७६-७७॥

इति श्रुत्वा तु वचन मयूरध्वज एव हि ।

लक्षसैन्यान्वितः प्राप्तो लहर नृपतिं प्रति ॥७८

तयोश्चासीन्महद्युद्ध सेनयोरुभयो रणे ।

सेना तु लक्षवीरस्य तत्र युद्धे प्रकीर्तिता ॥७९

एको रथो गजास्तत्र ज्ञेया पञ्चशत रणे ।

ह्याश्व पञ्चसाहस्रा पत्तयस्तद्गुणा दश ।

एते सैन्या नरा ज्ञेया सैन्यपाश्र्व शृणुष्व भो. ॥८०

दशाना पञ्चराणा च पतिर्नाम्ना स पत्तिपः ।

पचाना च ह्याना च पतिर्नाम्ना स गुल्मपः ॥८१

पचाना च गजाना च पतिर्नाम्ना गजाधिपः ।

एतै साढं रथी ज्ञेयो रणेऽस्मिन्दारुणे कलौ ॥८२

उष्ट्राकूटा, स्मृता दूताश्चत्वारिशच्च तद्वले ।

शतघ्न्य स्तत्र साहस्रास्तेषा मध्ये पृथक्पृथक् ।

षट्त्रिंशद्वै पदचरास्तेषा कर्माणि मे शृणु ॥८३

दश गोलकदातारो दशतत्पुष्टिकारवा ।

दश चार्द्रंकरास्ता वै त्रयस्ते बह्निदायिनः ।

त्रयो दृष्टिकरा ज्ञेयास्त्रियामेषु पृथक्पृथक् ॥८४

मयूरध्वज ने राजा परिमल के इस आज्ञा वचन को सुनकर एक एक लाख सेना से सुसज्जित होकर राजा लहर के मुखाधिते में शीघ्र ही यह पहुँच गया था ॥७८॥ रण में उन दोनों सेनाओं में उन दोनों का महान् युद्ध हुआ । लक्षवीर की सेना उम युद्ध में प्रकीर्तित हुई ॥७९॥ एक रथ और वहाँ पर हाथी पाँच सौ थे । अश्व पाँच सहस्र थे और पदचर सैनिक उसके दश गुण थे । ये इतने तो सेना के नर थे । अब सेना के स्वामियों के विषय में श्रवण करा । दश पदचरों का पति नाम से यह पत्तिय कहा जाता है ॥८०॥ पाँच अश्वों का पति नाम से गुल्मप कहलाता है ॥८१॥ पाँच गजों का स्वामी गजाधिप इस नाम से प्रसिद्ध है । इतनों

के साथ इस दाहण काल में युद्ध में रथी का होना जानना चाहिए ॥८२॥  
 उस सेना में उष्ट्रो पर आरुढ दूत चालीस थे । वह शतघ्नी (तोपें) एक  
 सहस्र थी और उनके मध्य में पृथक् २ छत्तीस पदचर थे । अब उनके  
 कर्मों के विषय में श्रवण करो ॥८३॥ दश तो गोलियों के देने वाले थे ।  
 दश उसकी पुष्टि के करने वाले थे । दश उनको आर्द्र करने वाले थे  
 और तीन उनमें अग्नि लगाने वाले दग्ध करके चमकाने वाले थे । तीन  
 हृष्टिकर अर्थात् निगरानी रखने वाले तीन प्रहरों में पृथक् पृथक् होते  
 थे ॥८४॥

शेषा शूद्रास्तु सेनाना शूरकृत्यपरायणा ।  
 एव च लक्षवीराणां सेना तत्र प्रकीर्तिता ॥८५॥  
 तत्रासीत्तुमुल युद्ध धर्मण च समन्तत ।  
 प्रातः कालात्समारभ्य मध्याह्न संन्ययोर्द्वयो ॥८६॥  
 तत्पश्चाद्याममात्रेण संन्यपा युद्धमागता ।  
 तत्पश्चाच्च महाशूरा धुधुकारादयो बला ॥८७॥  
 याममात्र च युद्धाय सस्थिता रणमूर्धनि ।  
 चामुण्डेन च कृष्णाशो धुधुकारेण च दुल ॥८८॥  
 भगदत्तेन वै देव कृतवान्युद्धमुत्तमम् ।  
 सायकाले तु संप्राप्ते सर्वे शूरा क्षय गत ॥८९॥  
 कृष्णाशस्तत्र चामुण्ड जित्वा तु लहरात्मजान् ।  
 पोडशैव जघानाशु घटीमात्रेण वीर्यवान् ।  
 दध्मौ शख प्रसन्नात्मा लक्षणान्तमुपाययौ ॥९०॥  
 चामुण्डो घुन्घुकारश्च भगदत्तो युत शतैः ।  
 महीराजमुपागम्य सुपुत्रुर्निशि निभया ॥९१॥

इनके अतिरिक्त शेष लोग सेनाओं के शूरो के कृत्यों में परायण  
 रहने वाले शूद्र लोग थे । इस प्रकार से लाख वीरों की सेना वहाँ पर  
 कही गई है ॥८५॥ वहा बड़ा भारी तुमल युद्ध सभी ओ से धम के  
 साथ हुआ था । प्रातः काल से आरम्भ करके दोनों सेनाओं का मध्याह्न  
 तक होता था । इसके पश्चात् फिर याम मात्र के लिए संन्यप लोग युद्ध

स्यल में आये थे । इसके पीछे एक प्रहर के लिये धुन्धुकार आदि महान् बलवान् आते थे । और रण के मस्तक पर डट कर युद्ध किया करते थे । चामुण्ड के साथ कृष्णांश ने और धुन्धुकार के साथ इन्दुल ने तथा भगदत्त के साथ देवसिंह ने उत्तम युद्ध किया । सायंकाल प्राप्त होने पर समस्त शूर क्षय को प्राप्त हो गये थे ॥८६-८८॥ वहाँ पर कृष्णांश ने चामुण्ड को जीतकर सहर के सोलहों पुत्रों को मार दिया और एक घटी मात्र में ही वीर्यशाली ने सब को खत्म कर दिया । उसने प्रसन्न होकर विजय का शंख बजाया और सप्तशतान्त को आ गया था । ॥८९॥ चामुण्ड-धुन्धुकार और भगदत्त सौ से युक्त होकर महीराज के पास जाकर निर्भय होते हुए रात्रि में सो गये थे ॥९१॥

इन्दुलो देवसिंहश्च सहस्रैः संयुतौ मुदा ।

गत्वा परिमलं भूपं रात्रौ सुपुपतुस्तदा ॥९२॥

प्रातःकाले तु संप्राप्ते तृतीयायां भयंकरे ।

महीराजस्तदाह्वय नृपं गजपतिं बली ॥९३॥

वचनं प्राह भो राजेस्त्वं त्रिवीरैः सुरक्षितः ।

स्वकीयैर्लक्षसैन्यैश्च गंतुमहसि वै रणे ॥९४॥

तदा परिमलो भूपो नेत्रसिंहं महीपतिम् ।

युद्धायाज्ञापयामास कृष्णांशाद्यैः सुरक्षितम् ॥९५॥

तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयोः क्रमात् ।

हया हयैः क्षयं जग्मुर्गजाश्चैव तथा गजैः ।

पञ्चराः पञ्चरैः सार्द्धं शतघ्न्यश्च शतघ्निभिः ॥९६॥

अपराह्णे मुनिश्चेष्ट नेत्रसिंहो महाबलः ।

महागजं गजपतिं गत्वा युद्धमचीकरोत् ॥९७॥

परस्परं च विरथो संछिन्नघनुषौ तदा ।

खड्गहस्तौ महीं प्राप्य चक्रतू रणमुल्बणम् ।

अन्योन्येन वधं कृत्वा स्वर्गलोकमुपागतौ ॥९८॥

इन्दुल-देवसिंह सहस्रों से संयुत होकर आनन्द के साथ राजा परिमल के पास पहुँचकर उस समय में शयन कर गये थे ॥९२॥ प्रातःकाल के



सम्प्राप्त होने पर तृतीया के दिन जो भयङ्कर थी उस समय बली  
महीराज ने गजपति नृप को बुलाकर यह वचन कहे थे—हे राजन् ।  
तुम तीन वीरों से रक्षित होते हुए अपनी लाख सेना से युक्त होकर रण-  
स्थल में जाने के योग्य होते हो ॥६३-६४॥ उस समय परिमल राजा ने  
नेत्रसिंह महीपति को युद्ध के करने की आज्ञा दी थी जोकि कृष्णाश  
आदि के द्वारा सुरक्षित होकर युद्ध करे ॥६५॥ उन दोनों का क्रम से  
सेनाओं में महान् युद्ध हुआ था । अश्व अश्वों के द्वारा क्षय को प्राप्त  
हुए थे तथा गज गजों के द्वारा क्षीण हो गये थे पञ्चर पञ्चरों के द्वारा  
और तोपें तोपों के द्वारा क्षय को प्राप्त हुए । हे मुनि श्रेष्ठ । अपराह्णमें  
महान् बलवान् नेत्रसिंह ने महाराज गजपति के पास जाकर युद्ध किया ।  
॥६७॥ ये दोनों ही आपस में रथहीन और छिन्न धनुष बाल होकर  
हाथों में खड्ग लेकर भूमि में पहुँचकर उत्वण युद्ध कर रहे थे । एक-  
दूसरे का वध करके दोनों ही स्वर्गलोक को प्राप्त हो गये थे ॥६८॥

इन्दुलस्तं तु चामुडदेवो वै धुन्धुक तथा ।  
कृष्णाशो भगदत्तश्च जित्वा राजानमाययु ॥६९॥  
शेषं पञ्चशतं शूरैस्तं सार्द्धं लक्षणं प्रति ।  
पराजिताश्च ते सर्वे सहस्रं सहिता ययुः ॥१००॥  
प्रातः काले तु संप्राप्ते महीराजो महाबलः ।  
मायावर्माणमाहूय वचनं प्राह निर्भय ॥१०१॥  
भवान्दशसुतैर्वीरैर्लक्षसैन्यैश्च संयुतः ।  
सर्वशत्रुविनाशाय गतुमर्हति सत्तम ।  
इति श्रुत्वा स नृपतिर्वाद्यान्सवाद्यं चाययौ ॥१०२॥  
दृष्ट्वा परिमलो भूपो मायावर्माणमागतम् ।  
जगन्नायकमाहूय वचनं प्राह निर्भय ॥१०३॥  
भवान्दशसहस्रैश्च सार्द्धं तैस्त्रिभिरन्वितः ।  
गन्तुमर्हति युद्धाय शीघ्रं मद्विजयं कुरु ॥१०४॥  
इति श्रुत्वा ययौ शीघ्रं सेनयोरुभयोर्युद्धम् ।  
युद्धं चासीन्मुनिश्रेष्ठं याममात्रं भयानकम् ॥१०५॥

इन्द्र ने चामुण्ड को देवसिंह ने घुघुक् को और कृष्णाश ने भगदत्त को जीत कर वे राजा के पास आ गये थे । शेष जो पाँच सौ शूर थे उनके साथ लक्षण के प्रति चले गये । पराजित वे सब सहस्रो के साथ गये थे । ॥६६ १००॥ प्रातःकाल के होने पर महाराज महाबली महीराज ने माया वर्मा को बुलाकर यह वचन निर्भयता पूर्वक कहे—आप अपने वीर दश पुत्रों के और एक लाख सेना के सहित सज्जित होकर हे सत्तम ! आज शत्रुओं के विनाश के लिये युद्ध-स्थल में जाने के योग्य हा । यह आदेश वचन सुनकर वह राजा युद्ध के वाद्यों का वादन करा कर वहा आ गया था ॥१०१ १०२॥ राजा परिमल ने जब देखा कि आज रणभूमि में माया वर्मा आ गया है तो इसने जगन्नाथक का समा-  
ह्वान करके उससे कहा—आप दश सहस्र के साथ उन तीनों के द्वारा सुरक्षित होते हुए युद्ध करने के लिये जाने के योग्य हैं और बहुत ही शीघ्र मेरा विजय करिये ॥१०३ १०४॥ इस आज्ञा का श्रवण कर वह बहुत ही शीघ्र वहा गया और उन दोनों का बड़ा महान् डटकर युद्ध हुआ था । हे मुनिश्रेष्ठ ! वह केवल प्रहर तक अत्यन्त भयानक युद्ध हुआ था ॥१०५॥

हतास्ते दशसाहस्रा कृष्णाशाद्यै सुरक्षिता ।

शङ्खान्दध्मुश्च ते सर्वे चागदेशनिवासिन ॥१०६

एतस्मिन्नतरे धीरा कृष्णाशाद्यास्तुरीयका ।

याममात्रेण सजघ्नलक्षसैन्य रिपोस्तदा ॥१०७

अपराह्णे महाराजो मायावर्मो सुतै सह ।

कृष्णाश देवसिंह च सप्राप्तो जगन्नाथकम् ॥१०८

अथाङ्गभूप दशपुत्रयुक्त कृष्णाश एवाशु जगाम शीघ्रम् ।

हयस्थितो वीरवर प्रमाथी कलैकजातो मधुसूदनस्य ॥१०९

ततो गभूपस्त्रिमिरेव वाणैरताडयन्मूर्ध्नि च पार्श्वयोर्वे ।

अमर्षमाणो बलवान्महीपतिर्दंडहेतु काल इवाशु सपे ॥११०

हय समुड्डीय स पुष्करान्त ततोभ्यगात्ते नृपति रथस्थम् ।

हयस्य पातैर्विरथीचकार स एव भूपोऽसमुपादधान ॥१११

स्वेनासिना विदुलमगशल्य कृत्वा स कृष्णाशमुवाच वाक्यम् ।  
 कल्लोलमायात्तव नाशनाय त्वया जिता भूपतय प्रधाना ॥११२  
 कृष्णाशादि के द्वारा सुराक्षित वे दश सहस्र महा दूत हो गये । उन सब अ ग देश के निवासियों ने विजय का शख बजा दिया था ॥१०६॥  
 इस बीच में कृष्णाशादि तुरीयक वीरो ने जो परम धीर थे केवल एक ही प्रहर में उस समय शत्रु की एक लाख सेना का हनन कर दिया था ॥१०७॥ अपराह्न में महाराज भायावर्मा अपने पुत्रों के साथ कृष्णाश-  
 देवसिंह और जगनायक के पास सम्प्राप्त हो गया था ॥१०८॥ इसके अनन्तर दशपुत्रों से युक्त अ गदेश के राजा के पास वह कृष्णाश बहुत ही शीघ्र गया । यह वीरो में परम श्रेष्ठ प्रमथन करने वाला अश्व पर समाकूट था जो कि भगवान् मधुसूदन की एक कला का अवतार हुआ । ॥१०९॥ इसके पश्चात् उस अ ग देश के राजा ने अपने तीन ही बाणों के द्वारा मस्तक में और पाश्वों में प्रहार किया । वह बलवान् महीपति अमर्षमान होकर दण्डों के द्वारा काल सर्प की भाँति अति शीघ्र ही अपने अश्व को उड़ाकर वह उस रथ में बैठे हुए नृपति के पीछे पुष्कर के अन्त तक गया । उसने अश्व के पातों से उसे रथ से हीन कर दिया । उसी राजा ने खग को धारण करते हुए अपने असि के द्वारा बिन्दुल के अ ग में शल्य करके फिर वह कृष्णाश से यह वाक्य बोला—तेरे नाश के लिये कल्लोल में आया है तूने बहुत से प्रधान राजाओं को जीत लिया है ॥११०-११२॥

तद्वै कीर्तिर्भविता ममाशु हत्वा भवत च सुखी भवामि ।  
 इत्युक्त्वा त नृपति महा त स्वेनासिना तस्य शिरो जहार ॥११३  
 हतेऽङ्गभूषे दश तस्य पुत्रास्तमेव जग्मुर्मुधि कौरवाशा ।  
 तानागतानिदुल एव पच जघान बाणैस्तु तदा समन्वु ॥११४  
 उभौ च देवस्तु जघान तत्र भल्लेन सिद्धेन नृपात्मजौ च ।  
 ज्येष्ठ सुत गौतम एव हत्वा द्वौ यौ स कृष्णाश उपाजघान ॥११५  
 शखा-प्रदध्मरुचिराननास्ते प्रदोषकाले शिविराणि जग्मु ।  
 श्रमान्वितास्ते सुपुपुनिशाया प्रात समुत्थाय स्वकर्म कृत्वा ॥११६

गत्वा सभाया नृपतिं प्रणम्य वाक्य समूचुः शृणु चद्रवशिन् ।  
 अद्यैव सेनापतिरस्ति को वै चाज्ञापयास्मानृप तस्य गुप्त्यै ॥११७॥  
 श्रुत्वाह भूपोद्य त्वु वीरसेन. सकामसेन स्ववलै समेत. ।  
 रण करिष्यत्यचिरेण वीरास्तस्मात्सुरक्षध्वमरिभ्य एव ॥११८॥  
 स वीरसेनो नृपतिं प्रणम्य लक्षै. स्वसैन्यैर्युधि सजगाम ।  
 तदा महीराजनृपः प्रतापी स नागवर्माणमुवाच तापी ॥११९॥

मेरी कीर्ति तो इस ससार में सभी होगी जब मैं तुझे जीत कर और  
 शीघ्र तेरा हनन करके मैं सुखी होऊँगा । इस प्रकार से कहने वाले  
 उस महान् अ गाधिपति का कृष्णाश ने अपने खग से शिर का मस्तक को  
 काट डाला । उस अ ग के भूप के मर जाने पर उसके दश पुत्र भी उसी  
 पर दूट पड़े थे जो कि युद्ध में कौरवों के अंश रूप वहाँ आये । उन  
 आये हुओं को पाँचों को तो बिन्दुस ने ही मार दिया और फिर क्रोध-  
 युक्त ने उस समय में बाणों के द्वारा हनन किया ॥११३-११४॥ दो को  
 देवसिंह ने वहाँ पर मार दिया जिन नृप के पुत्रों पर अपने सिद्ध भाले  
 से देव ने प्रहार किया । ज्येष्ठ सुत को गौतम ने मारा और जो शेष दो  
 रह गये उनको कृष्णाश ने हनन किया ॥११५॥ प्रसन्नमुख वाले उन्होंने  
 विजय शखों का वादन किया था और प्रदोष के समय में वे सब अपने  
 शिबिरो को चले गये थे । वे उस दिन अत्यन्त परिश्रम से थके हुए थे  
 रात्रि में वहाँ सो गये थे । प्रातः काल में उठकर उन्होंने अपना दैनिक  
 कर्म सम्पन्न किया था ॥११६॥ फिर वे समा में गये और राजा को  
 प्रणाम किया । वे राजा से यह वाक्य बोले—हे चन्द्रवशी राजन् ।  
 सुनिये, आज का सेनापति कौन होगा । हे नृप । उसकी रक्षा करने  
 वाले के विषय में भी अब आप अपनी आज्ञा प्रदान कीजिए । यह सुनकर  
 राजा ने कहा—आज वीरसेन राजा कामसेन के सहित अपनी सेना  
 से युक्त होकर युद्ध करेंगे । इससे वीर शीघ्र ही शत्रुओं से उसकी रक्षा  
 करियेगा ॥११७-११८॥ इसके अनन्तर तुरन्त ही वह राजा वीरसेन  
 राजा को प्रणाम करके अपनी एक लाख सेना से समन्वित होकर युद्ध

भूमि में चला गया था । उस समय प्रतापी महीराज भूप ने नागवर्मा से कहा ॥११६॥

रणाय गच्छाशु सुतैः समेतो लक्षैः स्वसैन्यैस्त भूपवर्यं ।  
हत्वा रिपुं धीरतमं हि वीरं पतिं महान्तयुधि वीरसेनम् ॥१२०॥  
इत्युक्तवत् नृपतिं प्रणम्य सुवादयामास तदा हि वीर ।  
तयोर्वभूवाशु रणो महान्वं सुसेनयो सकुलयुद्धकर्त्रोः ॥१२१॥  
त्रियाममात्रेण हताश्च सर्वे विमानमारुह्य ययुश्च नाकम् ।  
हतेषु सर्वेषु च नागवर्मा सुतेषु वै यादवभूप माह ॥१२२॥  
भवान्विसैन्यश्च तथैव चाह भवान्सपुत्रश्च तथाहमेव ।  
सस्मृत्य धर्मं कुरु युद्धमाशु ततो रथस्थ सुघनगृहीत्वा ॥१२३॥  
बाणैश्च वाणान्भुवि तौ चछित्वा वभूवस्तुस्तौ विरथौ नृपाग्रधौ ।  
खड्गेनखड्गं च तथैव छित्वा विमानमारुह्य गतौहिनाकम् ॥१२४॥  
स कामसेनः स्वरिपोश्च पुत्राञ्जघान बाणैश्च तदाष्टसङ्ख्यान् ।  
ज्येष्ठी तदा कोपसमन्वितौ त गृहीतखड्गौ च समीयतुश्च ॥१२५॥  
रिपोः शिरो जहत्तुरुग्रवेगौ सवामसेनश्च कबध एव ।  
हत्वारिपू तौ च तदा मिलित्वा स्वर्गययुस्ते च विमानरूढाः ॥१२६॥

आप आज युद्ध करने के लिये शीघ्र ही अपने पुत्रों के सहित जाइये । हूँ भूप श्रेष्ठ । आप एक लाख सेना से सज्जित होकर जावें । अत्यन्त धीर परमवीर शत्रु वीरसेन राजा को जोकि महान् है युद्ध में मार डालिये । इस प्रकार से आदेश देने वाले राजा को उस वीर ने प्रणाम करके अपने युद्ध के बाघों को बजवाया था । उन दोनों का बहुत ही शीघ्र युद्ध शुरू हो गया था । वे दोनों ही अच्छी सेना वाले और सकुल युद्ध के करने वाले थे । उन दोनों का महान् युद्ध हुआ था ॥१२०-१२१॥ केवल तीन ही प्रहार के समय में वे सब हत हो गये थे और विमानों में मग्न होकर स्वर्ग को चले गये थे । नाग वर्मा न उन समस्त पुत्रों के मारे जान पर यादव भूप से कहा—॥१२२॥ आप अब सना रहित हैं और मैं भी वंसा ही हूँ । आप सपुत्र हैं और वंसा ही मैं

भी हैं । अतएव अब धर्म का सम्मरण करके शीघ्र ही युद्ध करो । इसके पश्चात् रथ में स्थित धनुष का ग्रहण कर उन दोनों ने बाणों के द्वारा बाणों का छेदन किया और वे दोनों नृप श्रष्ट विरथ हो गये थे । खग से खग का छेदन करते हुए वे दोनों विमान में चढ़कर स्वर्ग को चले गये थे ॥१२३ १२४॥ उस कामसेन ने अपने शत्रु के पुत्रों को जो सख्या में आठ थे बाणों से मारा था । दो जो ज्येष्ठ थे वे क्रोध से युक्त होकर हाथों में खग लेकर उसके पास आये थे ॥१२५॥ उग्र वेग वाले उन्होंने शत्रु का शिर काट डाला था कि तु उस कामसेन का कबन्ध ही ने उन दोनों शत्रुओं को मार डाला था । वे सब उस समय मिलकर विमानों में चढ़ कर स्वर्ग को गये थे ॥१२६॥

हतेषु सर्वेषु तदा त्रयस्ते चामुडकाद्या जगनायक ते ।  
 रुद्धा समेता स्वशरं कठोरैर्जघ्नुस्त्रयश्च हरिनागर च ॥१२७॥  
 स दिव्यवाजी च सदा स्वपक्षी प्रसार्य खेनाशु रिपु जगाम ।  
 स ध्रुधुकारस्य गज विहृत्य चामुडकस्यैव गज विमर्द्य ॥१२८॥  
 रथ च भूमौ भगदत्तकस्य विचूर्ण्य शीघ्र च नभो जगाम ।  
 प्रवाद्य शस्त्रं जगनायकश्च कृष्णाशमागम्य कथा चकार ॥१२९॥  
 निशामुपित्वा जगनायकाद्या प्रातः समुत्थाय रणं प्रजग्मुः ।  
 तदा महीराज उताशुवारी स किन्नरेश वणक सपुत्रम् ॥१३०॥  
 उवाच राजरूछुणु किन्नराणां महाबलास्ते रिपवो ममंते ।  
 विनाशयाशु प्रवलारिघातान्देवैर्न साद्वै युधि वै मनुष्या ॥१३१॥  
 इ युक्तवान्भूषणभूपतिस्तु ययौ सपुत्रोऽप्युतसन्त्यपश्च ।  
 समागत तत्र विलीक्य राजा वीरान्स्वकीयाश्च समादिदेश ॥१३२॥  
 मनोरथस्थो जगनायकश्च स तालनो वै बड्ढा विगृह्य ।  
 करालसंस्थश्च तदा जयन्तो विगृह्य चाप तरसा जगाम ॥१३३॥

उक्त समय में सबके हत हो जाने पर वे चामुण्ड आदि तीनों ने जगनायक को रुद्ध किया था और उन सब ने अपने कठोर शरो के द्वारा उमको और हरि नामर नामक अश्व को मार दिया था ॥१२७ १२८॥  
 उस समय उस दिव्य अश्व ने अपने पंखों को फैला दिया था और शीघ्र

ही आकाश के मार्ग से शत्रु क समीप में गया था । उसने घुघुकार के हाथी का हनन करने और चामुण्ड के गज का विमर्दन करके तथा भूमि में भगदत्त के रथ का चूर्ण करके वह शीघ्र ही आकाश को चला गया था । जगन्नायक ने अपने विजय शस्त्र को बजाकर कृष्णाश के पास गमन किया था और वहा सम्पूर्ण कथा उसने कही थी ॥१२६॥ जगन्नायक आदि रात्रि में निवास करके प्रातः काल में उठे और रण भूमि में चले गये थे । उस समय में महीराज ने जोकि आशुकारी था शीघ्र ही पुत्रों के सहित बिन्नरेश कणक को बुलाकर उससे बोला—हे राजन् । सुनो आपके किन्नरों के महा बलवान् योद्धा हैं । ये मेरे शत्रु हैं उनके प्रबल शत्रु प्रहारों को नष्ट करिये क्योंकि देवों के साथ मनुष्य युद्ध में नहीं ठहर सकते हैं ॥१२७ १३१॥ मकण भूपति ने इस प्रकार से कहा और दश सहस्र सेना से तथा पुत्रों से युक्त होकर वह गया था । राजा ने उनको आते हुए देखकर अपने वीरों को आदेश दिया था ॥१३२॥ मनोरथ पर स्थित जगन्नायक और बडवा को ग्रहण करने वाला तालन तथा कराल पर स्थित जयन्त इन सब ने अपने २ धनुष ग्रहण किये थे और बडे वेग से गये थे ॥१३३॥

पपीहकस्थश्च स रूपणो वै जगाम कृष्णाशसमन्वितश्च ।  
स लल्लसिंहो गजमत्तस्थः स धान्यपालो ह्यमाहरोह ॥१३४॥  
समतत किन्नरसंघघोर विनाशयामासुरुपाशुखङ्गैः ।  
विनश्यमाने त्रिसहस्रसैन्ये स किन्नरेशस्तरसा जगाम ॥१३५॥  
ध्यात्वा कुबेरं च गृहीतचापो नभोगतस्तत्र बभूव सूक्ष्मः ॥१३६॥  
अदृश्यमाणः स्वशरैः कठोरैर्विनश्यं सर्वाहि ननद घोरम् ।  
विलप्यमाने च समस्तशूरे जयन्त एवाशु जगाम शत्रुम् ॥१३७॥  
ध्यात्वा महेंद्र कणकं च वद्धा कृष्णाशमागम्य पदौ ननाम ।  
तदा तु तं शत्रुसहस्रसैन्ये निशम्य वद्ध कणक निर्जेदम् ॥१३८॥  
विनश्य घोर रुद्रुश्च सर्वाभाया विनो गुह्यकमस्त्रमूढः ।  
दिनेषु सप्तेषु तथा निशासु बभूव युद्धं च समततस्तैः ॥१३९॥

श्रमान्विताः सप्त महाप्रवीरा हतेषु सर्वेषु सुपुपुश्च वै यदा ।

तदा कुबेरं कणकश्च ध्यात्वा लब्ध्वा वरं बंधनमाशु छिन्वा ॥१४०॥

रूपण पपीहक पर स्थित था जो कि कृष्णांश के साथ समन्वित होकर गया था । वह नल्सिंह मत्तगज पर स्थित था और धान्यपाल ने अश्व पर समारोहण किया था ॥१३४॥ सब ओर से किन्नरों की घोर सेना को उपांशु खंगों के द्वारा विनाश कर दिया था । जब तीन महत्त सेना का विनाश हो गया था तब किन्नरेश बड़े वेग से गया था ॥१३५॥ उसने कुबेर का ध्यान किया था और चाप को ग्रहण किया और वह आकाश में जाकर अत्यन्त सूक्ष्म हो गया था ॥१३६॥ अपने कठोर शरों के सहित अदृश्य होकर वहाँ से सब को हाटकर उसने घोर गर्जना की थी । समस्त शत्रुओं के विलप्यमान हो जाने पर फिर जयन्त ही शीघ्र शत्रु के पास गया था ॥१३७॥ उसने महेंद्र का ध्यान किया था और कणक को बांध करके उमने शीघ्र ही आकर कृष्णांश के चरणों में प्रणाम किया था । उस समय शत्रु की सहस्र सेना में अपने स्वामी कणक को बद्ध गुनकर अत्यन्त घोर रूप से समस्त मायाविधियों ने पट करके गुह्यक का अस्त्र ग्रहण किया था । फिर सात दिन और रात्रियों में उनके माय चारों ओर से महान् युद्ध हुआ । सातों महान् प्रवीर श्रमित होकर सब के मरने पर जब सो गये थे तब कणक ने कुबेर का ध्यान करके वर प्राप्त किया था और शीघ्र बन्धन का छेदन किया था ॥१३८-१४०॥

मुप्तान्समुत्थाय च सप्त शूराग्निशीय काले स चकार युद्धम् ।

जित्वा च तान्पटू स वरप्रभावात्तद्वेदुलेनैव रणधकार ॥१४१॥

गृहीतग्रन्थी रणघोरमत्ती हत्या ततो वै भुवि चैयतुश्च ।

प्रजग्मतुर्नारुणान्नदेवो सस्तूयमानो गुरसत्तमंदन ॥१४२॥

ततः प्रमाते विमने विजाते रुरोध रामांश उत्ताललाप ।

पापं कर्मापः परिपोटयमानः कुलान्वितः सर्वयुतो मुनीन्द्र ॥१४३॥

म पचगच्छं गजमाग्योह त्रिलक्षगन्धर्वगन्तरमा जगाम ।

तदा महीरात्र उवाह शृण्वन्गच्छत्यमर्यव भया ममेताः ॥१४४॥



स्वपचलक्षं प्रबलैश्च शूरैः साद्धं रुरोघाणु रिपोश्च सेनाम् ।  
 तयोवभूवाणु रण प्रघोरो विनर्दंतोयुंद्धनिमित्तमाणु ॥१४५॥  
 नियाममात्रेण हताश्च सर्वे द्वयोश्च पक्षा बलशालिनश्च ।  
 तदा महीराज उताययौ वै समडलीकश्च धनुर्विगृह्य ॥१४६॥  
 स धु धुकारश्च तदा जगाम रयस्थित लक्षणमुग्रवीरम् ।  
 तदोदयो वै भगदत्तमेव चामुडक भीष्मकराजसूनु ॥१४७॥

शयन करते हुए उन सातों शूरों को उठा कर आधीरात के समय में  
 उसने युद्ध किया था । उसने वर के प्रभाव से उन छै को जीत कर फिर  
 उसने इंदुल क साथ ही युद्ध किया था ॥१४९॥ युद्ध करने एक दम मत्त  
 हाथों में खग लिए आपस में प्रहार करके भूमि में वे दोनों आगये थे  
 और फिर उपात देव वे दोनों देवों के द्वारा स्तुति किये स्वर्ग में चले  
 गये थे ॥१४२॥ इसके अनन्तर प्रभात के विमल हो जाने पर रामाश  
 ने रोध किया और अलाप किया था । हे मुनीन्द्र ! वह पापों के समूह से  
 परिपीडित होता हुआ कुन से युक्त तथा सबके सहित था ॥१४३॥ वह  
 पञ्च शब्द नामक गज पर समाकूट हो गया था और तीन लाख सेना से  
 समन्वित होकर वेग के साथ गया था । उस समय सुनते हुए महीराज  
 बोला—मेरे सहित आज ही जाओ ॥१४४॥ अपने पाँच लाख प्रबल  
 शूरवीरों के साथ शीघ्र ही उसने शत्रु की सेना को रोक दिया था  
 अर्थात् घेर लिया था । फिर दोनों में शाघ्र ही बड़ा घोर युद्ध हुआ था ।  
 वे दोनों युद्ध के लिये विशेष रूप से नदन (गजन) कर रहे थे ॥१४५॥  
 केवल तीन ही प्रहर के युद्ध में दोनों पक्षों के समस्त बलशाली वीर हत  
 हो गये थे । तब महीराज समण्डलीक हाथ में धनुष लेकर वहाँ आ गया  
 था ॥१४६॥ वह धुधुकार उस समय में रय में स्थित उग्रवीर लक्षण  
 के पास पहुँचा था । उदयसिंह भगदत्त के समीप और भीष्मक राजा का  
 पुत्र चामुण्डक ने निकट युद्ध के लिये गये थे ॥१४७॥

स पञ्चशब्द गजमास्थितो वै गत स एवाशु जगाम भूपम् ।  
 धनुर्विगृह्याणुगमुत्त्वण च नृपस्थितश्चाय भयकर च ॥१४८॥

गजं प्रमत्तं शिवदत्तमुग्रमाह्लादहन्तारमुवाच वाक्यम् ।  
 अये प्रमत्ताग्रगर्जेन्द्र शूर जयं च मे देहि शिवप्रदत्त ॥१४६॥  
 स मंडलीको रणदुर्मंदश्च रामांश आह्लाद इति प्रसिद्धः ।  
 तस्माच्च मां रक्ष जवेन हस्तिन्महाबलात्काल रसाच्च वीरात् ॥१४७॥  
 इत्येवमुक्तो नृपति स हस्ती वचस्तमाहाशु शृणुष्व राजन् ।  
 यावदहं वै तनु जीवधारीतावद्भवाञ्छत्रुभयंकरश्च ॥१४८॥  
 इत्युक्तवन्तं गजं प्रमत्तं स पञ्चशब्दश्च तदा स्वदन्तैः ।  
 मुखं चतुर्भिश्च विदार्य शत्रोर्ननन्दं घोरं स महेंद्रदत्तः ॥१४९॥  
 स रुद्रदत्तश्च गजः प्रमत्तो रुपान्वधावत्तरसा गर्जेन्द्रम् ।  
 रिपुं स्वपदभ्यां च चखान कुम्भैः स्वतुण्डदंडेन तुदं प्रकुर्वन् ॥१५०॥  
 अवाप मूच्छां च स पञ्चशब्दस्तदाशु भूपं प्रति मंडलीकः ।  
 स्वतोमरेणांगव्रणं प्रदाय खंगेन हत्वा गजराजमुग्रम् ।  
 जगाम पदभ्यां रिपुप्रमाथी यत्र स्थितश्चेन्दुल उग्रधन्वा ॥१५१॥

वह पञ्चशब्द गज पर बैठा हुआ शीघ्र ही राजा के पास गया था और धनुष ग्रहण करके जोकि शीघ्र गमन करने वाला, उत्वण और बहुत ही भयंकर था वहाँ नृपस्थित था ॥१४८॥ अत्यन्त प्रमत्त और महाउग्र तथा आह्लाद के हनन करने वाले शिवदत्त नामक गज से यह वचन बोला था—अरे प्रमत्त गजों में शिरोमण ! हे शिवदत्त ! हे शूर ! मुझे अब जय प्रदान कर ॥१४९॥ वह मण्डलीक रण में दुर्मंद रामांश था जो आह्लाद नाम से प्रसिद्ध हुआ था । हे हस्तिन् ! वेग के द्वारा उमसे मेरी रक्षा कर । वह महान् बलवाला है—काल रस और परम वीर है, उमसे त्राण करो ॥१५०॥ इस प्रकार से जब उस हाथी से राजा ने कहा तो उस हाथी ने राजा से यह वचन कहा—हे राजन् ! सुनो, जब तक मैं तनुजीवधारी हूँ तब तक आप शत्रु के लिये महान् भयंकर रहेंगे ॥१५१॥ इस रीति से कहने वाले उम प्रमत्त गज को उम भयंकर ने उस पञ्चशब्द ने अपने चारों दान्तों में शत्रु के मुख को फाड़कर वह महेंद्रदत्त अत्यन्त घोर रूप में नर्दन करने लगा था ॥१५२॥ वह प्रमत्ता रुद्रदत्त गज बड़े क्रोध से वेग पूर्वक गजेन्द्र पर दौटा था ।

उसको अपने तुण्ड दण्ड से पीड़ा करते हुए कुम्भ स्थल से और अपने पैरों से शत्रु को पछाड़ दिया था । वह पञ्च शब्द मूर्छा को प्राप्त होगया था । मण्डलीक अपने तोमर से अग्रे में घृण करके और सग से उग्र गज राज का हनन करके शीघ्र भूष के प्रति चला गया था । शत्रुओं का पैरों से प्रमथन करने वाला वहा गया था जहा उग्रघवा इन्दुल स्थित था ॥१५३-१५४॥

उत्थाप्य पुत्र च विलप्यमाना पत्नी स्वकीया प्रति चाजगाम ।  
तदा प्रमत्तौ च गजौ सुमूर्च्छौ त्यक्त्वा पुनश्चक्रतुरेव युद्धम् ॥१५५॥  
स लक्षण खगवरेण वाणाघ्रिपोश्चछित्त्वा निजवैष्णवास्त्रम् ।  
दधार चापे च सुमन्त्रित्वा सधु ऽकार च गज ददाह ॥१५६॥  
हते च तस्मिन्निजमुन्यवधौ सभूमिराजश्च गृहीतचाप ।  
शरेण रौद्रेण च लक्षण त जघान तत्रादिभयकरस्थ ॥१५७॥  
स मूर्छित शुक्ल कुलेषु सूयस्तदोदयो वै भगदत्तमेव ।  
सुमूर्च्छयित्वा च जगाम शीघ्र यत्रस्थितो लक्षण एकवीर ॥१५८॥  
भयान्वितस्त च विलोक्य राजा जवेन दुद्राव च रक्तबीजम् ।  
तदा सुदेव च स रक्तबीजो जित्वा तु कृष्णाशयुत जगाम ॥१५९॥  
वाणेन शीघ्र स च मूर्च्छयित्वा पुनश्च देव च स मूर्च्छयित्वा ।  
तद्वन्धनायोद्यत आशुकारी स लक्षणस्तल तदा जगाम ॥१६०॥  
प्रधाय चापे च स वैष्णवास्त्र प्रचोदयामास च रक्तबीजे ।  
तदा स सामन्तमुतो बलीयात्रण विहायाशु विलोक्य सध्याम् ।  
भयान्वित स्वैश्च युतो ययौवै यत्र स्थिता भूपतय सकोपा ॥१६१॥  
अपने पुत्र को उठा कर विलाप करती हुई अपनी पत्नी के प्रति आगया था । उस समय दोनों प्रमत्त गजों ने अपनी मूर्च्छा का त्याग किया और वे फिर युद्ध करने लगे थे ॥१५५॥ उस लक्षण ने अपने अष्ट खग से शत्रु के वाणों का छेदन करके अपने चाप पर निज के वैष्णव अस्त्र को सुमन्त्रित करके धारण किया था और उससे धु धुकार के सहित गज का दाह कर दिया था ॥१५६॥ उस मुख्य अपने बन्धु के हत हो जाने पर उस भूमिराज ने चाप को ग्रहण किया और रौद्र शर

के द्वारा वहा पर आदि भयकरस्थ ने लक्षण को मार दिया था । वह शुक्ल कुलों का सूर्य मूर्च्छित हो गया था । तब उदय ने भगदत्त को भी मूर्च्छित कर वह शीघ्र वहा चला गया था जहाँ पर एक वीर लक्षण मूर्च्छिता-वस्या में पड़ा था ॥१५७-१५८॥ भय से अन्वित राजा ने उसे देख कर बड़ी ही शीघ्रता से वह रक्तबीज के पीछे दौड़ा था । उस समय रक्तबीज ने सुदेव को कृष्णाक्ष से युत जीत कर गमन कर दिया ॥१५९॥ उसने बाण के द्वारा फिर शीघ्र ही देव को मूर्च्छित करके वह शीघ्रता से कार्य करने वाला उसके वग्धन के लिये उद्यत हो गया था । उस समय वह लक्षण वहा चला गया था ॥१६०॥ उसने चाप पर वैष्णवास्त्र को चढ़ा कर रक्तबीज पर प्रेरित किया था । उस समय में बलवान् वह सामत पुत्र सन्ध्या को देख कर रणभूमि का त्याग कराया और शीघ्र ही भय से अन्वित होकर अपने लोगों के साथ चला गया था जहाँ पर क्रोध से युक्त राजा लोग स्थित थे ॥१६१॥

विलोक्य शत्रुं च स रत्नभानोः सुतो ययौ वै शिविराणि युक्तः ।  
निशाम्य भूपः स च चंद्रवशी जयं स्वकीय सुपुपुस्तु ते वै ।  
प्रातश्च काले स च चंद्रवशी विलोक्य शुक्लान्वयमाह भूपम् ॥१६२॥

अये गुजरदेशीय मूलवर्मन्सुतः सह ।  
लक्षसैन्यान्वितो भूत्वा गन्तुमर्हंतु वै भवान् ॥१६३॥  
इत्युक्तः स तु भूपालो मुद्वभूमिमुपाययौ ।  
महोराजाज्ञया प्राप्तो नाम्ना पूर्णामिलो बली ॥१६४॥  
दशपुत्रान्वितो युद्धे सैन्य लक्षेण सयुतः ।  
तयोश्चासीन्महद्बुद्धं यामद्वयमुपस्थितम् ॥१६५॥  
हतेषु तेषु सर्वेषु तो नृपौ ससुतैर्वली ।  
अनोन्येन रण कृत्वा यमलोकमुपागतौ ॥१६६॥  
मार्गकृष्णचतुर्दश्या प्रभाते विमले रवौ ।  
कैकयो लक्षसेनाढ्यो दयापुत्रसमन्वितः ।  
लक्षणानुज्ञया प्राप्तस्तस्मिन्नुधि भयानके ॥१६७॥

मद्रकेशस्तदा राजा दशपुत्रसमन्वितः ।

लक्षसैन्यान्वितस्तत्र यत्र युद्धं समन्वभूत् ।

परस्परं हताः सर्वे दिनान्ते क्षत्रिया रणे ॥१६८॥

वह रत्नमानु का सुत शत्रु को देख कर शिविरो को चला गया था और चन्द्रवशी भूप ने अपना जय सुना कर सोने की इच्छा वाला हो गया । प्रातः काल में उस चन्द्रवशी राजा ने शुक्ल वस्त्र वाले भूप को देख कर उससे कहा— ॥१६२॥ हे गुर्जर देश के वासी मूल वर्मन । आप अपने पुत्रों के साथ एक लाख सेना से सज्जित होकर युद्ध-स्थल में जाने के योग्य होते हैं ॥१६३॥ इस तरह से कहा गया वह राजा युद्ध-भूमि में चला गया था । इधर महीराज की आज्ञा से बलवान् पूर्णामल नाम वाला वहाँ प्राप्त हुआ था ॥१६४॥ यह पूर्णामल एक लाख सेना से तथा अपने दस पुत्रों से समन्वित होकर वहाँ उपस्थित हुआ था । उन दोनों का बड़ा भारी युद्ध दो प्रहर पर्यन्त उपस्थित हुआ था ॥१६५॥ उस सेना के समस्त सैनिकों तथा शूरो के मर जाने के पश्चात् वे दोनों बली राजा पुत्रों के सहित आपस में रण करते हुए यमलोक की अन्त में प्राप्त हो गये थे ॥१६६॥ मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन प्रभात में विमल रवि के उदय होने पर लाख सेना से युक्त दया पुत्र से समन्वित होकर कैवयराजा लक्षण की अनुज्ञा पाकर उस महाभयानक युद्ध क्षेत्त्र में पहुँचा था ॥१६७॥ उस समय में मद्रकेश राजा दश पुत्रों के सहित एक लाख सेना लेकर वहाँ आ गया था जहाँ कि यह युद्ध हुआ था । वे समस्त क्षत्रिय भी उस युद्ध में दिन के अन्त तक लड़ते हुए आपस में हत हो गये थे ॥१६८॥

पुनः प्रभातं विमले भगदत्तो महाबली ।

त्रिलक्षयुक्तो जगज्जं रणमूर्धनि ॥१६९॥

दृष्ट्वा तं लक्षणो वीरखिलशः महाबलाः ।

चकार तुमुलं घोरं सेनया च स्वकीयया ॥१७०॥

अपराह्णे हताः सर्वे सैनिया नृपयोस्तदा ।

भगदत्तः स्वयं क्रुद्धो रथस्थो लक्षणं ययौ ॥१७१॥

लक्षणो रथमारुह्य स्वपितु शत्रुज नृपम् ।  
 त्रिभिर्वर्णैश्च सतोद्य भल्लेन समताडयत् ॥१७२॥  
 भगदत्तस्तदा क्रुद्धो विरथ त चकार ह ।  
 क्रुद्धवत रिपु धोर लक्षणा खड्गपाणिक ।  
 हत्वा हयास्तथा सूत भगदत्तमुपाययौ ॥१७३॥  
 मर्दयित्वा च तच्चर्मच्छित्त्वा वम तदुद्धवम् ।  
 सिन्धु चकार बलवान्भगदत्त रिपोऽसुतम् ॥१७४॥  
 सध्याकाले हते तस्मिन्लक्षणस्त्वरयान्वित ।  
 एकाकी शिविर प्राप्तो हस्तिन्युपरि सस्थित ॥१७५॥

फिर विमल प्रातःकाल में महारथ बनवान् भगदत्त तीन लाख सेना  
 से समन्वित होकर युद्ध क्षेत्र में गजने लगा ॥१६६॥ उसे गर्जन करते  
 हुए देखकर तीन लाख महान् बलवानों की सेना से युक्त लक्षण ने  
 अपनी सेना द्वारा अत्यन्त घोर तुमुल युद्ध किया । दोपहर के बाद तब  
 उन दोनों राजाओं के सैनिक हत होगये ॥१७०॥ भगदत्त रथ पर  
 बैठकर स्वयं अत्यन्त क्रोध में भरा हुआ लक्षण की ओर गया ॥१७१॥  
 लक्षण ने रथ पर समारुह होकर अपने पिता के शत्रुज नृप की तीन भाणों  
 से पीड़ित करके भाले से ताड़ित किया था ॥१७२॥ फिर भगदत्त ने  
 अत्यन्त क्रोधित होकर उसे रथहीन कर दिया । इस तरह क्रोधयुक्त  
 उस घोर शत्रु की हाथ में खग ग्रहण करके लक्षण ने घोड़ी की तलवा  
 सारथि की मार कर वह भगदत्त के ऊपर पड़ कर आया ॥१७३॥  
 उसके चर्म (छाल) का मर्दन करके उसके उद्भव यर्म का छेदन करके  
 फिर रिपु के पुत्र भगदत्त के उस यन्त्रान् १ तीन टुकड़े कर दिये  
 ॥१७४॥ सन्ध्या के समय में उसके मर जाने पर लक्षण बड़ी शीघ्रता  
 से युक्त होकर एकाकी स्थिती में उपर नवार होकर शिविर में प्राप्त  
 हो गया ॥१७५॥

भगदत्ते हते तस्मिन्स राजा क्रोधमूर्छितः ।  
 स्वकीया-मर्वभूपाश्च चामुण्डेन समन्वितान् ।  
 प्रेषयामास युद्धाय मार्गं च प्रतिपदिन ॥१७६॥

लल्लसिंहोयुतैस्सार्धं गुहिल प्रति सोऽगमत् ।  
 त्रिशतानि ततो भूपाः सहस्राढ्याः पृथक्पृथक् ॥१८४॥  
 क्षुद्रभूपाः क्षुद्रभूपास्त्रिशतानि समाययुः ।  
 अन्योन्येन हताः सर्वे कृत्वा युद्धं भयानकम् ॥१८५॥  
 चामुडस्तु तदा दृष्ट्वा मृतकान्सर्वंभूपतीन् ।  
 लक्षणांतमुपागम्य महद्युद्धं चकार ह ॥१८६॥  
 लक्षणो रक्तबीजं तं ज्ञात्वा ब्राह्मणसम्मतम् ।  
 वैष्णवास्त्रं तदा तस्मै न ददौ तेन पीडितः ॥१८७॥  
 सायकाले तु संप्राप्ते लक्षणो हस्तिनीस्थितः ।  
 एकाकी शिविरं प्राप्तश्चामुण्डं नृपमाययौ ॥१८८॥  
 द्वितीयायां प्रभाते च कृष्णाशो देवसयुतः ।  
 शूरैर्दशसहस्रैश्च युद्धभूमिमुपाययौ ॥१८९॥

वामन दश सहस्र मेना से युक्त होकर मुकुन्द से युद्ध करने लगा ।  
 बलवान् गंगासिंह अयुत सेना से समन्वित होकर महिल के साथ लड़ने  
 लगा । लल्लसिंह एक अयुत सेना से सज्जित होकर गुहिल के प्रति  
 गया था । इस तरह उस समय तीन सौ राजा थे जो पृथक् २ एक-एक  
 सहस्र सेना से युक्त थे ॥१८३-१८४॥ छोटे राजा छोटे तीन सौ राजाओं  
 के साथ युद्ध कर रहे थे । और वे सब एक दूसरे के द्वारा हत हो गये  
 थे जोकि बड़ा भयानक युद्ध करने वाले वहाँ पर उपस्थित थे ॥१८५॥  
 उस समय चामुण्ड ने समस्त राजाओं को मृत हुए देखा और फिर वह  
 स्वयं लक्षण के पास उपस्थित होकर महान् युद्ध करने लगा था ॥१८६॥  
 लक्षण ने ब्राह्मण सम्मत उस रक्तबीज जानकर उसके द्वारा पीडित हो  
 कर उसने वैष्णवास्त्र उसने लिये नहीं दिया था ॥१८७॥ सायकाल के  
 हो जाने पर लक्षण हस्तिनी पर समास्थित होकर अकेला शिविर में  
 प्राप्त होगया था और चामुण्ड नृप के पास आगया था ॥१८८॥ द्वितीया  
 के दिन प्रभात में देव ने युक्त कृष्णाश दश सहस्र शूरो के साथ उस युद्ध  
 भूमि में आगया था ॥१८९॥

तारकश्च सचामु ङो द्विलक्षवलसयुतः ।

द्विशतैश्च तथा भूपैः साद्धं युद्धमुपस्थितौ ॥१८०॥

पुरस्कृत्य नृपान्सर्वान्ससैन्यौ बलवत्तरो ।

तेषामनु स्थितौ युद्धे तत्र जातो महारणः ॥१८१॥

याममात्रेण तौ वीरौ हत्वा सर्वमहीपतीन् ।

लक्षसैन्यास्तथा हत्वा सस्थितौ श्रमकपितौ ॥१८२॥

चामु ङस्तारको घूर्तं संप्राप्तौ छिद्रदर्शिनौ ।

ताभ्या श्रमान्विताभ्या च चक्रतुस्तौ सम रणम् ॥१८३॥

तेषा त्रियाममात्रेण सभूव महाव्रणः ।

सायकाले तु संप्राप्ते कृष्णाशश्च निरायुधः ।

तलप्रहारेण रिपुं भूच्छंयामास वीर्यवान् ॥१८४॥

एतस्मिन्नतरे वीरस्तारको देवसिंहकम् ।

हयं मनोरथ हत्वा शखशब्दमथाकरोत् ॥१८५॥

तच्छब्दात्स च चामु ङस्त्यक्त्वा मूर्च्छां महाबलः ।

कृष्णाशस्य शिरः कायादपहत्य च वेगवान् ।

तयोर्गृहीत्वा शिरसी महीराजमुपाययौ ॥१८६॥

तारक चामुण्ड के साथ दो लाख सेना से युक्त होकर और दो सौ भूपों को साथ लेकर युद्ध के लिए उपस्थित हुए थे ॥१८०॥ समस्त नृपो को आगे करके सना के साथ ये दोनों अधिक बलवान् उनसे पीछे स्थित रहे थे । उस समय रण भूमि में बड़ा घोर युद्ध हुआ था ॥१८१॥ एक प्रहर भर में ही उन दोनों ने समस्त भूपों को मार कर तथा एक लाख सैनिकों को मारकर वे दोनों वीर श्रम से श्रपित होते हुए सस्थित हो गये । चामुण्ड और तारक ये दोनों बड़े घूर्त थे और छिद्रदर्श भी थे । उनसे उन श्रम से युक्तों दोनों ने साथ युद्ध किया ॥१८२-१८३॥ उनका तीन प्रहर तक महान् युद्ध हुआ । सायकाल के होने पर कृष्णाश निरायुध वीर्यवान् ने तल प्रहार से शत्रु को भूच्छन कर दिया ॥१८४॥ इन बीच में वीर तारक ने देवसिंह मनोरथ हय को मार कर शख की ध्वनि कर दी ॥१८५॥



उस शब्द से महाबलवान् चामुण्ड ने मूच्छा का त्याग कर दिया और वेग-  
वान् ने कृष्णाश का शिर शरीर से अपहृत करके उन दोनों के गस्तको को  
लेकर महीराज के पास उपस्थित हो गया ॥१६६॥

महीराजस्तु ते दृष्ट्वा परमानन्दनिर्भरः ।

दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो महोत्सवमकारयत् ॥१६७॥

लक्षणस्य तदा सैन्ये हाहाशब्दो महानभूत् ।

श्रुत्वा कोलाहलं तेषां ज्ञात्वा तौ च हतौ नृपः ।

ब्रह्मानन्दस्तदा मूच्छां त्यक्त्वा वेलामुवाच ह ॥१६८॥

प्रिये गच्छ रणं शीघ्रं हरिनागरमास्थिता ।

मम वेपं शुभं कृत्वा तारकं जहि मां चिरम् ॥१६९॥

इति श्रुत्वा तु सा वेलामाशेन समन्विता ।

सहस्रशूरसहिता युद्धभूमिमुपाययौ ॥१७०॥

श्रुत्वा स लक्षणो वीरस्तालनेन समन्वितः ।

सैन्यं च दशसाहस्रं महीराजमुपाययौ ॥१७१॥

तृतीयायां प्रभाते च तारको बलवत्तरः ।

ब्रह्मानन्दश्च तं मत्वा महयुद्धमचीकरत् ॥१७२॥

रक्तबीजश्च चामुण्डो रामाशो बलवत्तरः ।

चकार दारुणं युद्धं तस्मिन्वीरसमागमे ॥१७३॥

महीराज ने उन शिरों को देखा और परम आनन्द से निर्भर हो  
गया । ब्राह्मणों को दान देकर उसने महान् उत्सव कराया ॥१६७॥  
उस समय में लक्षण की सेना में महान् हाहा बार की ध्वनि छा गई ।  
उनके बीसाहस्र की गुन कर राजा ने वे दोनों हत हो गये यह जानकर  
ब्रह्मानन्द ने मूच्छा का त्याग कर वेला से कहा ॥१६८॥ हे प्रिये ! अब  
हरिनागर पर स्थित होकर शीघ्र ही रण में जाओ और मेरा वेप धारण  
करके तारक को मार डालो और विजय मत करो ॥१६९॥ यह श्रवण  
कर वह वेला जो रामाश से समन्वित थी एक सहस्र शूरों को साथ  
लेकर युद्ध भूमि में आ गई ॥१७०॥ उस लक्षण वीर ने तानन से सम-  
न्वित होकर श्रवण किया और दशसहस्र सेना लेकर वह महीराज के

पास उपस्थित हो गया ॥२०१॥ तृतीया के दिन बलवान् तारक ने उसको ब्रह्मानन्द ही मान कर महान् युद्ध किया ॥२०२॥ और रक्त-बीज चामुण्ड जो रामाश अधिक बलवान् था, उसने उस वीर समागम में बड़ा ही दारुण युद्ध किया ॥२०३॥

याममात्रेण रामाशो हत्वा तस्य महागजम् ।  
तच्छस्त्राणि तथा छित्त्वा मल्लयुद्धमचीकरत् ॥२०४॥  
त्रियाममात्रेण तदा सायकाले समागते ।  
ममथ भ्रातृहन्तार स च वीरो ममार ह ॥२०५॥  
तदा वेला महाशत्रु तारक बलवत्तरम् ।  
छित्त्वास्त्राणि स्वखड्गेन शिर कायादपाहरत् ॥२०६॥  
चिता कृत्वा विधानेन सा देवी द्रुपदात्मजा ।  
ब्रह्मानन्द नमस्कृत्य तच्चिताया समारुहत् ॥२०७॥  
तेन साद्धं च सा शुद्धा श्वशुरस्याज्ञया मुदा ।  
सप्तजन्मकथा कृत्वा स्वपतेस्तु ददाह वै ॥२०८॥  
तच्चिताया च भर्तारमिदुल बलवत्तरम् ।  
सस्याप्य दाहयामास तेन साद्धं कलेवरम् ॥२०९॥  
रानौ परिमलो राजा लक्षणेन समन्वित ।  
महीराजमुपागम्य महद्युद्धमकारयत् ॥२१०॥

केवल एक ही प्रहर में उस रामाश ने उसके महागज को मार कर और उसके शस्त्रों का छेदन करके फिर मल्ल युद्ध किया ॥२०४॥ वह युद्ध तीन प्रहर तक हुआ फिर साय काल का समय हो जाने पर उस वीर ने भाई के हनन करने वाल का मथन किया और मार दिया । उस समय में बनवान् महान् शत्रु तारक ने शस्त्रों का छेदन करके उसका शिर काया से बलग कर दिया ॥२०५ २०६॥ फिर उस द्रुपदात्मजा देवी ने विधि विधान से चिता की रचना करके ब्रह्मानन्द को प्रणाम किया और फिर स्वयं वह उसकी चिता में समावृत्त होगई ॥२०७॥ उसने साय शुद्धा उसने श्वशुर की आज्ञा पाकर प्रसन्नता से अपने पति के सात जन्म की वधा कह कर दाह किया ॥२०८॥ और उस चिता में बलवान्

इन्दुल भर्ता को सस्थापित करके उसके साथ कलेवर को दाह कर दिया ॥२०६॥ फिर रात्रि मे राजा परिमल लक्षण से समन्वित हो कर महीराज के पास गया और महान् युद्ध कराया ॥२१०॥

सपादलक्षाश्च तदा हतशेषा महाबलाः ।

त्रिलक्षंहंतशेषैश्च साद्धं योद्धुमुपस्थिता ॥२११॥

धान्यपालः शत भूपाल्लक्षणश्च तथा शतम् ।

तालिनश्च शत भूपान्हुत्वा राजानमाययौ ॥२१२॥

महीराजस्तदा दुःखी ध्यात्वा रुद्रं महेश्वरम् ।

निशीथे समनुप्राप्ते हतशेषैस्समागतः ।

एकाकी गजमारुह्य ययौ चादिभयकरम् ॥२१३॥

रुद्रदत्तेन बाणेन हत्वा परिमलं नृपम् ।

धान्यपालं तथा हत्वा तालिनं बलवत्तरम् ।

लक्षणान्तमुपागम्य महद्युद्धमचीकरत् ॥२१४॥

महीराजस्य रौद्रास्त्रैस्सैन्यास्सर्वे क्षयं गताः ।

लक्षणं प्रति रौद्रास्त्रं महीराजः समादधे ॥२१५॥

तदा तु लक्षणो वीरो वृष्णवास्त्रं समादधे ।

तेनस्त्रेण क्षयं जातो महीराजस्य सायकः ।

तेनास्त्रतेजसा राजा महासंतापमाप्तवान् ॥२१६॥

ध्यात्वा ॥ महादेव त्यक्त्वा विद्यां च वृष्णवीम् ।

स्वभल्लेन शिरः कायादपाहरत् भूमिपः ॥२१७॥

उस समय सय सार महाबल वाले शूर मरने से बचे हुए थे उन्होंने तीन साथ उसके हतशेषों के साथ युद्ध करने के लिये वहा उपस्थिति की थी ॥२११॥ धान्यपाल ने तो राजाओं को तथा सक्षान ने तो को और तालिन ने तो नृपों को मार कर राजा के पास आये थे ॥२१२॥ तब महीराज बहुत ही दुःखित हुआ और उसने रुद्र महेश्वर का ध्यान किया था । आधी रात के समय मे मरने से बचे हुए वीरो के साथ आया था । एकाकी गज पर बैठकर चादिभयकर को गया था ॥२१३॥ रुद्रदत्त बाण ने दादा राजा परिमल को मार कर और बचवान् धान्यपाल तथा

तालन का वध करके लक्षण के पास पहुच कर उसने महान् युद्ध किया था ॥२१४॥ महीराज के रौद्र अस्त्र से सभी वीर क्षय को प्राप्त हो गये थे । फिर लक्षण के प्रति महीराज ने रौद्र अस्त्र को चढाया था ॥२१५॥ तब लक्षण ने वैष्णवास्त्र का समाधान किया था । उस वैष्णवास्त्र के द्वारा महीराज का सायक क्षय को प्राप्त हो गया था और उस अस्त्र के तेज से राजा ने महान् सन्ताप को प्राप्त किया था ॥२१६॥ फिर महादेव रुद्र का ध्यान करके और वैष्णवी विद्या का त्याग करके भूमिप ने अपने भाले से शिर को शरीर से अलग कर दिया था ॥२१७॥

हस्तिनी च तदा रूष्टा गजमादिभयकरम् ।

गत्वा युद्धं मुहूर्त्तेन कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥२१८

उप.काले च संप्राप्ते भलना पतिमुत्तमम् ।

तच्चिताया समारोप्य ददाह स्व कलेवरम् ॥२१९

तदा तु देवकी शुद्धं लक्षण बलवत्तरम् ।

तालनादीस्तथा हुत्वा ददाह स्व कलेवरम् ॥२२०

प्रभाते विमले जाते चतुर्थे भौमवासरे ।

तथा हुत्वा स्वर्णवती कृत्वा तेषा तिलाजलिम् ।

ध्यात्वा सर्वमयी देवी स्थिरीभूय स्वय स्थितः ॥२२१

एतस्मिन्तरे तत्र कलिर्भार्यासमन्वितः ।

वाञ्छित फलमागम्य तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ॥२२२

उस समय हस्तिनी बहुत ही रुष्ट होकर आदि भयकर गज के पास जाकर मुहूर्त्तभर युद्ध किया और स्वर्ग को प्राप्त हो गई थी ॥२१८॥ उपा काल के प्राप्त होने पर भलना ने अपने उत्तम पति को चिता बनवा कर उसमें समारोपित किया और उसके साथ अपना शरीर भी दाह कर दिया था ॥२१९॥ उस समय में शुद्धा देवकी ने बलवान् लक्षण तथा तालन आदि को हुत करके अपना कलेवर भी दाह कर दिया था ॥२२०॥ चौथे भौमवार के दिन विमल प्रभात के होने पर स्वर्ण-वती को हुत करके उन सब को तिलाञ्जलि देकर सर्वमयी देवी को अपने ध्यान लाकर स्थिर होकर स्वय स्थित हो गया था ॥२२१॥ इसी बीच

मे भार्या के सहित कलि वहा पर वाञ्छित फल प्राप्त कर बड़ी श्लक्ष्ण  
धानी के द्वारा स्तुति करने लगा था ॥२२२॥

नम आह्लाद महते सर्वानिदप्रदायिने ।

योगेश्वराय शुद्धाय महावतीनिवासिने ॥२२३॥

रामाशस्त्व महाबाहो मम पालनतत्पर ।

कलैकया समागम्य भुवो भारस्त्वया हृत ॥२२४॥

राजान पावकीयाश्च तपोबलसमन्विता ।

हत्वा तान्पञ्चसाहस्राक्षुद्रमूपाननेकश ।

योगमध्ये समासीनो नमस्तस्मै महात्मने ॥२२५॥

तेषा सैन्या पष्टिलक्षा क्रमाद्वीर त्वया हता ।

वर ब्रूहि महाभाग यत्ते मनसि वर्तते ॥२२६॥

इति श्रुत्वा स आह्लादो वचन प्राह निर्भय ।

मम कीर्तिस्त्वया देव कर्तव्या च जनेजने ॥२२७॥

पुनस्ते कार्यमतुल करिष्यामि शृणुष्व भो ।

महीराजश्च घर्मात्मा शिवभक्तिपरायण ।

तस्य नेत्रे मया शुद्धे कर्तव्ये नीलरूपके ॥२२८॥

तव प्रिय सदा नीलस्तथैव च मम प्रिय ।

देवानां दुःखदो देव दैत्यानां हर्षवर्द्धन ॥२२९॥

कलि ने कहा—हे आह्लाद ! सब को आनन्द के प्रदान करने  
वाले—योगेश्वर—शुद्ध—महान् और महाबली के निवासी आपने लिये मेरा  
नमस्कार है ॥२२३॥ हे महान् बाहुओं वाले ! आप राम के अशावतार  
हैं, मेरे पालन करने में सबदा तत्पर रहते हैं । एक कदा से यहाँ आकर  
आपने इस भूमण्डल का भार आपने हरण किया है ॥२२४॥ पावकीय  
राजा लोग जो तपस्या के बल से समन्वित थे उन अनेक दुष्ट पाँच  
सहस्र राजाओं का वध करके आप योग के मध्य में समासीन हो गये हैं  
उन महान् आत्मा वाले आपने लिये मेरा नमस्कार है ॥२२५॥ उन  
नृपा की मत्ता भी साठ लाख थी । हे वीर ! आपा क्रम में उस सब का  
हनन किया था । हे महाभाग ! आपका मन मैं जो भी कुछ हो उस

का वरदान मांगलो ॥२२६॥ कलियुग द्वारा कहे हुए इन वचनों का श्रवण करके आह्लाद ने निर्भय होकर कहा—हे देव ! आपको मेरी यह कीर्ति जन-जन में कर देनी चाहिए ॥२२७॥ मैं फिर तेरा अनुपम कार्य करूँगा उसे श्रवण करलो । शिव की भक्ति में परायण धर्मात्मा महीराज है उसके नीलरूप वाले नेत्र मुझे शुद्ध करने हैं ॥२२८॥ आपका तील रूप है और उसी तरह से मेरा भी वह रंग प्रिय होता है । देखो को वह वण दुख देने वाला है और दंत्यों के हर्ष का बढ़ाते वाला है ॥२२९॥

इत्युक्त्वा स तु रामाशो गजमारुह्य वेगत ॥  
महीराजमुपागम्य महद्युद्धं चकार ह ॥२३०॥  
रुद्रदत्तो गजस्तूर्णं पञ्चशब्दमुपस्थित ।  
पद्मदत्तान्समारुह्य युयुधाते परस्परम् ॥२३१॥  
अन्योन्येन तथा हत्वा गजौ स्वर्गमुपेतु ॥२३२॥  
तदा भयातुरो राजा त्यक्त्वा युद्धं भयकरम् ।  
स तु दुद्राव वेगेन रामाशोऽनुययौ तत ॥२३३॥  
केशेषु च महीराज गृहीत्वा तरसा वली ।  
कलिदत्तं महानील नेत्रयोस्तेन तत्कृतम् ॥२३४॥  
तदाप्रभृति चै क्षम्भुरशुद्धं नृपतिं प्रियम् ।  
मत्वा त्यक्त्वा ययौ स्थाने कैलासे गुह्यकालये ॥२३५॥  
आह्लादं कलिना साद्धं कदलीवनमुत्तमम् ।  
गत्वा योगं चकाराशु पर्वतं गन्धमादने ॥२३६॥

इस तरह से कहकर वह रामाश गज पर समारोहण करके वेग से महीराज के समीप में जाकर उसने महान् युद्ध किया था ॥२३०॥ रुद्र दत्त गज शीघ्र ही पञ्च शब्द के पास उपस्थित हुआ था । पद्म दत्ता पर चढ़कर वे परस्पर एक दूसरे का हनन करके वे दोनों गज स्वर्ग को गये थे ॥२३१ २३२॥ उस समय राजा ने भयातुर होकर उस भयकर युद्ध का त्याग कर दिया था और वग से दौड़ा था फिर रामाश भी उसी व पीछे चला दिया था ॥२३३॥ उस बनवान् ने केशों को पकड़ कर वेग

से महीराज का ग्रहण कर लिया था । कलिदत्त महानील को उसने महीराज के नेत्रों में डाल दिया था ॥२३४॥ तब से लेकर-शम्भु ने उस अशुद्ध नृपति को यद्यपि वह प्रिय था तो भी बुरा समझकर उसका त्याग कर दिया और गुह्य को स्थान जो कैलास पर्वत है वे वहा चले गये थे ॥२३५॥ आह्लाद ने बलि के साथ उत्तम कदली वन में जाकर गन्धमादन पर्वत पर शीघ्र योग किया था ॥२३६॥

तथा भूतं च रामाश कलिहंष्टा मुदान्वितः ।  
 बलिपाश्वर्भुपागम्य वर्णयामास सर्वश ॥२३७॥  
 स वै बलिदैत्यराजोऽप्युतः सह विनिर्गतः ।  
 गौर देशमुपागम्य सहोद्भूतमुवाच ह ॥२३८॥  
 गच्छ वीर बलैस्साद्ध निष्ठाया रक्षितो मया ।  
 हत्वा भूप महीराज विद्युन्माला गृहाण भोः ॥२३९॥  
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य षोडशाब्दातरे गते ।  
 सपादलक्षैश्च बलैः कुरुक्षेत्रमुपाययौ ॥२४०॥  
 महीराजसुताञ्जित्वा समाहूय महावतीम् ।  
 महीपति प्रेषयित्वा सुष्ठयित्वा च तद्वसु ॥२४१॥  
 लिगार्थं वृत्तवान्यत्न स नृपः कीर्तिसागरे ।  
 न प्राप्तस्मनृपस्त वै स्वगेहाय तदा ययौ ॥२४२॥  
 लक्षचडौ वारयित्वा परमानदमाप्तवान् ।  
 जयचद्रन्तु तच्छ्रुत्वा पुत्रशोकसमन्वितः ॥२४३॥

उत्ता प्रकार के उत्ता रामाश को देखकर आनन्द से युक्त बलि ने देखा था और बलि के पास जाकर सब प्रकार से बलुंन अर्थात् स्तवन करने लगा था ॥२३७॥ वह दैत्यो का राजा बलि दस महत्त सेना के साथ निकल गया था और गौर देश में पटुष कर महोद्भूत में बोला ॥२३८॥ हे वीर ! मेरे साथ बनो और सेना को भी साथ में ले बनो, जिना में मेरे द्वारा आज गुरुधिन रहेंग । राजा महीराज का हनन करके विद्युन्माला का ग्रहण करेंगे ॥२३९॥ इस तरह के उगरे धनन धनन कर मोहन वरुं व अ गर होने पर गया माय सेना के मणि गुरुधिन में

आ गया था ॥२४०॥ महीराज के पुत्रों को बुला कर उन्हें जीत कर महावती में महीपति को भेज कर उसका समस्त धन लूट कर उस राजा ने कीर्तिसागर में लिंग के लिये यत्न किया था । उस राजा ने उसे नहीं प्राप्त किया था तब वह अपने घर को चला गया था ॥२४१॥ २४२॥ वहाँ पर एक लाख चण्डी करा कर वह परम आनन्द को प्राप्त हुआ था । पुत्र के शोक से समन्वित ने इसका श्रवण किया था ॥२४३॥

निराहारो यतिभूत्वा मृत स्वर्गपुर ययौ ।

सहोड्डीनेन स नृप कृत्वा युद्ध भयकरम् ॥२४४॥

सप्ताहोरात्रमात्रेण म्लेच्छराजवश गत ।

भारितो बहूयत्नेन महीराजो न वै मृत ॥२४५॥

तदा म्लेच्छस्सहोड्डीनो निर्वन्धनमथाकरोत् ।

ज्योतिरूपस्थित तत्र चन्द्रभट्टो नृपाज्ञया ।

धुरप्रेण च वाणेन हत्वा बह्वौ ददाह वै ॥२४६॥

विद्युन्माला स च म्लेच्छो गृहीत्वा च धन बहु ।

तत्रास्थाप्य स्वदास च कुतुकोड्डीनमागत ॥२४७॥

वह उस दुःख में निराहार रह कर यति होगया और मर गया था और स्वर्ग पुर में प्राप्त हो गया था । मरने के पूर्व उसने सहोड्डीन के साथ भयकर युद्ध किया था ॥२४४॥ सात अहोरात्र में ही म्लेच्छराज के वश गया हुआ महीराज को बहुत से मारा गया था किन्तु वह मरा नहीं था ॥२४५॥ उस समय सहोड्डीन म्लेच्छ निर्वन्धन करा दिया था । वहाँ पर चन्द्र भट्ट ने नृप की आज्ञा से ज्योति रूप स्थित को धुरप्र वाण के द्वारा मार कर अग्नि में दाह कर दिया था ॥२४६॥ उस म्लेच्छ ने विद्युन्माला को और बहुत-सा धन ग्रहण करके वहाँ अपने दास को स्थित करने वह कुतुकोड्डीन में आ गया था ॥२४७॥



## ॥ व्यास द्वारा भविष्य कथन ॥

एव द्वापरसध्याया अन्ते सूतेन वर्णितम् ।  
 सूर्यचद्रान्वयाख्यान तन्मया कथितं तव ॥१॥  
 विशालाया पुनर्गत्वा वंतालेन विनिर्मितम् ।  
 कथयिष्यति सूतस्तमितिहाससमुच्चयम् ॥२॥  
 तन्मया कथितं सर्वं हृषीकोत्तमपुण्यदम् ।  
 पुनर्विक्रमभूषेन भविष्यति समाह्वय ॥३॥  
 नैमिषारण्यमासाद्य श्रावयिष्यति वै कथाम् ।  
 पुनरुक्तानि यान्येव पुराणाष्टादशानि वै ॥४॥  
 तानि चोपपुराणानि भविष्यति कलौ युगे ।  
 तेषां चोपपुराणानां द्वादशाध्यायमुत्तमम् ॥५॥  
 सारभूतञ्च कथितं इतिहाससमुच्चय ।  
 यस्ते मया च कथितो हृषीकोत्तम ते मुदा ॥६॥  
 विक्रमाख्यानकालात्तेष्वन्तरं बलया हरे ।  
 स च शक्यतावतारो हि राधाकुण्डस्य भूतले ॥७॥

इस अध्याय में महर्षि व्यास के द्वारा अपने ही मन के प्रति उद्देश्य  
 करके भविष्यत्कथा का वर्णन किया जाता है । श्री महर्षि वेद व्यास जी  
 ने कहा—इस प्रकार से द्वापर की सध्या के अन्त में सूत के द्वारा वर्णन  
 किया हुआ सूर्यवश और चन्द्रवश का आख्यान मैंने कहा है ॥१॥ विशाला  
 में फिर जाकर वंताले के द्वारा विनिर्मित उस इतिहास समुच्चय को सूत  
 कहेंगे ॥२॥ यह मैंने विषयेन्द्रियों को उत्तम पुण्य प्रदान करने वाला  
 सब कह दिया है फिर विक्रम भूषण से समाह्वय (नाम) होगा ॥३॥  
 नैमिषारण्य में पहुँच कर निधाय ही कथा का गुनावेन । जो भी अष्टादश  
 पुराण हैं वे पुनर्गत् हैं अर्थात् फिर से बहे गये हैं ॥४॥  
 वे इस कथनमय में उप पुराण होंगे । उन उप पुराणा के  
 बारह अध्याय उत्तम हैं ॥५॥ यह इतिहास का समुच्चय सार भूत है  
 जो कि दिन सुमंगल करता है । मुद्गार आनन्द के निष्पन्न इन्द्रियाँ का सर्वोत्तम

है ॥६॥ विक्रमाख्यान के काल के अन्त में हरि का कला से अवतार है । वह इस भूतन्त्र में राधा कृष्ण का शक्त्यवतार है ॥७॥

तत्कथा भगवान्सूतो नैमिषारण्यमास्थित ।

अष्टाशोतिसहस्राणि श्रावयिष्यति वै मुनीन् ॥८॥

यत्तन्मया त्व कथितं हृषीकोत्तम ते मुदा ।

पुनस्ते शौनकाद्याश्च कृत्वा स्नानादिका क्रिया ॥९॥

सूतपाश्च गमिष्यति नैमिषारण्यवासिन ।

तत्पृष्टे नैव सूतेन यदुक्तं तच्छृणुष्व भो ॥१०॥

श्रुतं कृष्णस्य चरितं भगवन्वतोदितम् ।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि राजा-त्तेषां क्रमात्कुलम् ॥११॥

चतुर्णां बह्विजाताता पर कौतूहलं हि न ।

स हरिस्त्रिपुगी प्रोक्तं कथं जातं कलौ-युगे ॥१२॥

उस कथा को भगवान् सूतजी नैमिषारण्य में आस्थित होकर अष्टासी हजार शौनक आदि मुनियों का सुनायगे ॥८॥ जो कुछ मैंने आपसे कहा है वह है हृषीकोत्तम । तुम्हारे सुख के लिये है । फिर उन शौनक आदि मुनियों ने वही स्नान आदि क्रिया करके वे नैमिषारण्य 'वासी' योगसूतजी के पास में जायेंगे । उनके द्वारा पूछे गये सूतजी ने जो कुछ भी कहा या उसे अब आप हे शौनकादि मुनिगण । श्रवण कीजिए ॥९॥ अपिने ने कहा—हे भगवन् । आपने जो खण्डन किया था वह कृष्ण का चरित्र मुन लिया है । अब मैं उन राजाओं का कुल क्रम से श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ ॥११॥ जोकि राजा बह्विजात धार हुए थे उनके कुल की क्रमशः बताइये । हम की इसका भरणन कौतूहल होता है । उस हरि को आपने त्रिपुगी बताया है फिर वह त्रिपुगी चौथे युग में कैसे उत्पन्न होकर यहाँ आयी थे ॥१२॥

कथयामि मुनिश्रेष्ठा युष्माकं प्रश्नमुत्तमम् ।

अग्निवशनृपाणां च चरित्रं शृणु विस्तरात् ॥१३॥

प्रमरश्च महीपालो दक्षिणा दिशमास्थित ।

अम्बया रचिता दिव्या प्रमराय पुरी शुभाम् ॥१४॥

निवासं कृतवान्राजा सामवेदपरो बली ।  
 षड्वर्षाणि कृतं राज्यं तस्माज्जातो महामरः ॥१५॥  
 त्रिवर्षं च कृतं राज्यं देवापिस्तनयोऽभवत् ।  
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं देवदूतस्ततोऽभवत् ।  
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शृणु तत्कारणं मुने ॥१६॥  
 अशोके निहते तस्मिन्बौद्धभूपे महाबले ।  
 कलिर्भास्विरमाराध्य तपसा ध्यानतत्परः ॥१७॥  
 पंचवर्षान्तरे सूर्यस्तस्मै च कलये मुदा ।  
 शकाख्यं नाम पुरुषं ददौ तद्भक्तितोषितः ॥१८॥  
 तदा प्रसन्नः स कलिः शकाय च महात्मने ।  
 सैत्तिरं नगरं प्रेम्णा ददौ हृषितमानसः ॥१९॥  
 तत्र गोपान्दस्युगणान्वशीकृत्य महाबली ।  
 आर्यदेशविनाशाय कृत्वोद्योगं पुनःपुनः ।  
 हतवान्भूपतीन्याणस्तस्मात्ते स्वल्पजीविनः ॥२०॥  
 गंधर्वसेनश्च नृपो देवदूतात्मजो बली ।  
 शतार्द्धाब्दं पदं कृत्वा तपसे पुनरागतः ॥२१॥

सूतजी ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठो ! आपका यह प्रश्न तो बहुत ही उत्तम हुआ है, मैं इसको बताता हूँ, अब अग्नि वंश के राजाओं का चरित्र विस्तार के साथ आप लोग श्रवण करें ॥१५॥ प्रमर नामक एक राजा दक्षिण दिशा में आसित था । अम्बा के द्वारा यहाँ एक रचित शुभ और दिव्य पुरी प्रमर को दी गई थी ॥१४॥ वहाँ बलवान् और सामवेद में परायण यह राजा निवास करता था । उस राजा ने छे वर्ष तक राज्य का शासन किया था । उमसे फिर महामर ने जन्म ग्रहण किया था ॥१५॥ इमने भी तीन वर्ष पर्यन्त राज्य किया था । इसका पुत्र देवापि नामधारी उत्पन्न हुआ था । इमने भी अपने पिता के तुल्य राज्य किया था । उमने फिर देवदूत पुत्र हुआ । इमने पिता के चराचर ही राज्य शासन किया था । हे मुने ! इसका कारण मुनो ॥१६॥ महान् यत्नान् योऽधर्म के मानने वाले महाराज अशोक के मृत हो जाने पर

कलि ने भगवान् भास्कर को आराधना करके तप द्वारा वह ध्यान में तत्पर होगया था ॥१७॥ पाच वर्ष के अन्तर में भगवान् भास्कर ने प्रसन्न होकर उस कलि के लिए शकाश्रय नाम वाला पुरुष को उसकी अत्यन्त भक्ति सन्तुष्ट होकर दिया था ॥१८॥ उस समय बहुत ही प्रसन्न हुआ और महात्मा शक के लिए हर्षित मन वाला होकर प्रेम से तैत्तिरनगर दे दिया था ॥१९॥ वहा पर उस महान् बलवान् ने गोपों को दस्युवर्गों को अपने वश में करके फिर उसने आर्यों के देश का विनाश करने के लिये बार बार उद्योग किया था और भूपों को बाणों से मार दिया था । इस कारण से वे फिर स्वल्पजीवी होगये थे ॥२०॥ देवदूत का पुत्र बलवान् गन्धर्व सेन राजा पचास वर्ष तक पद को उपभोग करके फिर वह तपस्या करने के लिये आगया था ॥२१॥

शिवाज्ञया च नृपतिर्विक्रमस्तनयस्तत ।

शतवर्षं कृतं राज्यं देवभक्तस्ततोऽभवत् ।

दशवर्षं कृतं राज्यं शकैर्दुष्टैर्लयं गत ॥२२॥

शालिवाहन एवापि देवभक्तस्य चात्मज ।

जित्वा शकांसपृथग्शब्दं राज्यं कृत्वा दिव गत ॥२३॥

शालिहोत्रस्तस्य सुतो राज्यं कृत्वा शताब्दं कम् ।

स्वर्गलोकं ततः प्राप्नोस्तत्सुतः शालिवर्द्धन ॥२४॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शकहन्ता ततोऽभवत् ।

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुहोत्रस्तनयोऽभवत् ॥२५॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं हविर्होत्रस्ततोऽभवत् ।

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमिन्द्रपालस्ततोऽभवत् ॥२६॥

पुरोमिद्रावती कृत्वा तत्र राज्यमकारयत् ।

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं माल्यवान्नामतत्सुतः ।

पुरो माल्यवती कृत्वा पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥२७॥

अनाट्टिस्तत्राग्नीन्महनी चतुरब्दिवा ।

तत्र धुघातुरो राजा श्रविष्ठाघान्यगर्हितम् ॥२८॥

भगवान् शिव की आज्ञा से राजा विक्रम उसका पुत्र था । इसने  
 सौ वर्ष तक राज्य किया था । उससे फिर देवभक्त उत्पन्न हुआ था ।  
 इसने केवल दश ही वर्ष तक राज्य किया था । फिर यह दुष्ट शको के  
 द्वारा लय की प्राप्त हो गया था ॥ २२ ॥ शालिवाहन भी देवभक्त का  
 पुत्र था । उसने शकों को जीत कर साठ वर्ष तक राज्य का शासन  
 किया और फिर वह स्वर्ग वासी हुआ था ॥ २३ ॥ उसका पुत्र शालि-  
 होत्र हुआ था । इसने पचास वर्ष पर्यन्त राज्य का शासन किया था  
 और इसके पश्चात् वह स्वर्ग लोक को गया था । इस शालिहोत्र के  
 राजा शालिवर्द्धन ने पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण किया था ॥ २४ ॥  
 इस शालिवर्द्धन ने भी अपने पिता के समान ही राज्य का उपयोग  
 किया और इसके फिर शकहन्ता नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था । अपने  
 पिता के बराबर समय तक ही इसने राज्य सुख सम्प्राप्त किया था ।  
 इसके पश्चात् इसका पुत्र सुहोत्र नाम धारी ने जन्म ग्रहण किया था ।  
 पिता के मृत्यु इसने राज्य किया । फिर हविर्होद उत्पन्न हुआ । यह  
 भी पितृमुत्पन्न राज्य सुख का भोगी रहा था । इसके पीछे इसका पुत्र  
 इन्द्रपाल हुआ था ॥ २५-२६ ॥ इसने इन्द्रावती नाम की एक परम रम्य  
 पुरी की रचना करा कर वहाँ राज्य शासन चलाया था । इन्द्रपाल ने भी  
 अपने पिता के बराबर समय तक राज्य किया था । उसके  
 यहाँ माल्यवान् नामक पुत्र हुआ, इसने अपने नाम से  
 माल्यवती नाम की पुरी बनाई थी और वहाँ अपने पिता के समान  
 राज्य पद के सुख का उपभोग किया था ॥ २७ ॥ उस समय वहाँ चार  
 वर्ष तक बड़ी भारी अनावृष्टि हो गई थी । तब तो राजा भूख से  
 अत्यन्त आतुर हो गया था । उस समय उस राजा ने श्वविष्टा से गृहित  
 घान्य का सस्वार करने मन्दिर में शालग्राम के समर्पित किया  
 था ॥ २८ ॥

सस्कृत्य मदिरे राजा शालग्रामाय चापेयत् ।

तदा प्रसन्नो भगवान्वचन नभसेरितम् ॥ २९ ॥

कृत्वा ददौ वर तस्मै शृणु तन्मुनिसत्तम ।

कुले यावन्नुपा भाव्यास्तव भूपतिसत्तम ।  
 अनावृष्टिर्न भविता तावत्ते राष्ट्र उत्तमे ॥३०  
 सुतो मात्यवतश्चासीच्छभुदत्तो हरप्रिय ।  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य भौमराजस्ततोऽभवत् ॥३१  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य वत्सराजस्ततोऽभवत् ।  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य भोजराजस्ततो भवत् ॥३२  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य शम्भुदत्तस्ततोऽभवत् ।  
 दशहीन कृत राज्य भोजराजपितुस्समम् ॥३३  
 शम्भुदत्तस्य तनयो विदुपालस्ततोऽभवत् ।  
 विदुषण्ड च राष्ट्र वै कृत्वा स सुखितोऽभवत् ।  
 तेन राज्य पितुस्तुल्य कृत वेदविदा मुने ॥३४  
 विदुपालस्य तनयो राजपालस्ततोऽभवत् ।  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माज्जातो महीनर ॥३५  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य सोमवर्मा नृपोऽभवत् ।  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य कामवर्मा सुतोऽभवत् ॥३६  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य भूमिपालस्ततोऽभवत् ।  
 भूसरस्तेन यनित पुर तत्र शुभ वृत्तम् ॥३७

उस समय भगवान् प्रसन्न हो गये और आकाश के द्वारा बहे हुए  
 पवन से उसे वर दिया था । हे मुनिश्रेष्ठ ! उसे श्रवण करो । भगवान् ने  
 आकाशवाणी के द्वारा कहा था—ह खेळ भूप ! तेरे पुत्र में जितने भी  
 राजा जब तक होंगे तब तक कभी तेरे राष्ट्र में अनावृष्टि नहीं होगी  
 ॥२९-३०॥ मात्यवान् राजा का पुत्र हर का प्यारा शम्भुदत्त उत्पन्न  
 हुआ था । इमने भी पिता के बराबर ही राज्य किया था । इसके पश्चात्  
 इसका पुत्र भौमराज नाम वाला उत्पन्न हुआ । पिता के तुल्य राज्य  
 इसने किया था । फिर वत्सराज हुआ था । इमने भी पिता के समान  
 राज्य किया था । वत्सराज का पुत्र भोजराज हुआ था जिसने कि  
 अपने पिता के ही समान राज्य मुने का अनुभव किया था, भोजराज का  
 पुत्र शम्भुदत्त समुत्पन्न हुआ था । इमने भोजराज के तुल्य तो सभी

काम किये थे किन्तु राज्य शासन उससे दश वर्ष कम ही किया था ॥३१ ३३॥ शम्भुदत्त का पुत्र विन्दुपाल हुआ था जिसने विन्दुखण्ड राष्ट्र बना कर वहा सुख पूर्वक निवास किया था । हे मुने ! उम वेद के ज्ञाता ने राज्य सुख का उपभोग अपने पिता के समान ही किया था ॥३४॥ विन्दुपाल का तनय राजपाल का नाम वाला उत्पन्न हुआ, उसने पिता के समान राज्य किया था । इससे महीनर पुत्र और महीनर के सोमशर्मा तथा सोमशर्मा के काम वर्मा पुत्र उत्पन्न हुए थे । इन सब ने अपने अपने पिताओं के ही समान सब प्रकार से राज्य किया था । काम वर्मा के भूमिपाल पुत्र हुआ था, जिसने भूसर का खनन किया और वहा पर एक अति रमणीक शुभ पुर की रचना की थी ॥३५ ३७॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य रगपालस्ततोऽभवत् ।

भूमिपालस्तु नृपतिर्जित्वा भूपाननेकश ॥३८॥

वीरसिंहस्ततो नाम्ना विख्यातोऽभू-महीतले ।

स्वराज्ये रगपाल स चाभिपिच्य वन ययौ ।

तप कृत्वा दिव यातो देवदेवप्रसादत ॥३९॥

कल्पसिंहस्ततो जातो रगपालन्नृपोत्तमात् ।

अनपत्यो हि नृपति पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥४०॥

एकदा जाह्नवीतोये स्नानार्थं मुदितो ययौ ।

दान दत्त्वा द्विजातिभ्य कल्पक्षेत्रमवाप्तवान् ॥४१॥

पुण्यभूमि समालोक्य शून्यभूता स्थलीमपि ।

नगर कारयामास तत्र स्थाने मुदान्वित ॥४२॥

इस भूमिपाल ने पिता के समान राज्य किया फिर रगपाल हुआ । भूमिपाल राजा ने अनेक राजाओं को जीत कर यश प्राप्त किया ॥३८॥ तब से वह वीरसिंह इस नाम से इस भूमण्डल में विख्यात हो गया था । उसने अपने राज्यासन पर रगपाल का अभिषेक कर दिया था और स्वयं वन को चला गया था । वहा उसने बठोर तपस्या की और देवदेव के प्रसाद से वह स्वर्ग को चला गया था ॥३९॥ फिर रगपाल नृप श्रेष्ठ से कल्पसिंह सुत की समुत्पत्ति हुई थी । यह राजा

सन्तान से हीन था और इसने अपने पिता के बराबर राज्य शासन किया था ॥४०॥ एक बार यह प्रसन्न होकर भागीरथी गंगा के जल में स्नान करने के लिए गया था । द्विजों को दान देकर कल्पक्षेत्र को प्राप्त किया था ॥४१॥ उस पुण्य भूमि को देखता कि वह विल्कुल शून्य पड़ी हुई है । फिर उसने वहाँ एक नूतन नगर का निर्माण कराया था । और उस स्थान में बहुत अधिक आनन्द से मुक्त रहता था ॥४२॥

कलापनगर नाम्ना प्रसिद्धमभवद्भुवि ।

तत्र राज्य कृत तेन गंगासिहस्ततोऽभवत् ॥४३॥

नवत्यब्दवपुभूत्वा सोऽनपत्यो रण गतः ।

त्यक्त्वा प्राणान्कुरुक्षेत्रे स्वर्गलोकमवाप्तवान् ।

समाप्तिमगमद्विप्र प्रमरस्य कुल शुभम् ॥४४॥

तदन्वये च ये शेषाः क्षत्रियास्तदनन्तरम् ।

तन्मारीष्वमितो विप्र बभूव वर्णसंकरः ॥४५॥

वैश्यवृत्तिकराः सर्वे म्लेच्छतुल्या महीतले ।

इति ते कथितं विप्र कुल दक्षिणभूपतेः ॥४६॥

वह नगर इस भूमिमण्डल में कलाप नगर के नाम प्रसिद्ध हुआ था । वहाँ पर उमने समास्थित होकर राज्य का शासन सुख पूर्वक किया था । उसके गंगासिंह मुत हुआ । वह नब्बे वर्ष के शरीर वाला होकर रण में गया था और सन्तान हीन था । कुरुक्षेत्र में उसने अपने प्रिय प्राणों का त्याग किया और फिर सीधा स्वर्ग लोक को चला गया था । हे विप्र ! प्रमर राजा का यह शुभ कुल समाप्ति को प्राप्त होगया था ॥४३-४४॥ उसके वंश में शेष जो क्षत्रिय थे वे उसने पश्चात् उसकी मित्रियों में अनुरक्त होकर वर्णसंकर होगये थे ॥४५॥ ये ममस्त वैश्यों की वृत्ति को करने वाले इस भूमिमण्डल में म्लेच्छों के तुल्य ही होगये थे । हे विप्र ! यह मैंने दक्षिण दिशा में होने वाले राजा का कुल वर्णित कर दिया है ॥४६॥



## ॥ अजमेर के तोमर नरेशो का वर्णन ॥

वयहानिर्महोपालो मध्यदेशे स्वक पदम् ।  
 गृहीत्वा ब्रह्मारचितमजमेरमवासयत् ॥१॥  
 अजस्य ब्रह्मणो मां च लक्ष्मीस्तत्र रमा गता ।  
 तथा च नगरं रम्यमजमेरमजं स्मृतम् ॥२॥  
 दशवर्षं कृतं राज्यं तोमरस्तत्सुतोऽभवत् ।  
 पार्थिवैः पूजयामास वर्षमात्रं महेश्वरम् ॥३॥  
 इन्द्रप्रस्थं ददौ तस्मै प्रसन्नो नगरं शिव ।  
 तदन्वये च ये जातास्तोमरा क्षत्रिया स्मृता ॥४॥  
 तोमरावरजश्चैव वयहानिसुतं शुभम् ।  
 नाम्ना सामलदेवश्च प्रश्रितोऽभून्महीतले ॥५॥  
 सप्तवर्षं कृतं राज्यं महादेवस्ततोऽभवत् ।  
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मजयश्च ततो भवत् ॥६॥  
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वीरसिंहस्ततोऽभवत् ।  
 शातार्द्धाब्दं कृतं ततो विदुसुरोऽभवत् ॥७॥

इस अध्याय में अजमेर नगर के वृत्तांत का तथा तोमर के वंश के वृत्तांत का वर्णन किया जाता है। सूतजी बोले—वयहानि नाम के महीपाल ने मध्य देश में अपना पद ग्रहण करने ब्रह्मारचित अजमेर नगर को बसाया था ॥१॥ अज यह ब्रह्म का नाम है मा लक्ष्मी का नाम है। यह वहां पर रमा गई थी। उससे ही यह रम्य अजमेर नगर कहा गया है ॥२॥ इस राजा ने वहां दश वर्ष तक राज्य सुखा का अनुभव किया था फिर इसका पुत्र तोमर उत्पन्न हुआ था। इसने पार्थिवों के द्वारा एक वर्ष पर्यन्त महेश्वर का अभ्यर्चन किया था अर्थात् शिव का शास्त्रोक्त पार्थिव पूजन सबिधि किया था ॥३॥ भगवान् शिव ने परम प्रसन्न होकर उसका लिए इन्द्रप्रस्थ दे दिया था। उक्त वंश में जो भी क्षत्रिय समुत्पन्न हुए वे सब इस प्रतापी के नाम से ही तोमर क्षत्रिय कहलाये थे ॥४॥ राजा तोमर का छोटा पुत्र वयहानिशुभ

हुआ था । यह नाम मे इस भूमि तल म सामंत देव प्रसिद्ध हुआ था ॥५॥ इमने मान वर्ष पर्यन्त राज्य किया था इमका पुत्र फिर महादेव उत्पन्न हुआ । इस महादेव ने अपने पिता के समान ही राज्य किया था । इमके पदचात् अजय ने उसके यहाँ जन्म धारण किया था । यह भी पिता के बराबर ही राज्य शासन करने वाला हुआ था । इसका पुत्र वीरसिंह हुआ । इस वीरसिंह ने आधी शताब्दी तक राज्य किया था । इमका पुत्र बिन्दुमर नाम धारी हुआ था ॥६-७॥

पितुरद्धं कृत राज्य मध्यदेशे महात्मना ।

तस्माच्च मिथुन जात वीरा वीरविहात्तरः ॥८

विक्रमाय ददौ वीरा पिता वेदविधानतः ।

स्वपुत्राय स्वक राज्य मध्यदेशान्तर मुदा ॥९

पितुस्तुल्य कृत राज्यं माणिक्यस्तत्सुतोभवत् ।

शताब्दाब्द कृत राज्य महार्सिहस्ततोऽभवत् ॥१०

पितुस्तुल्य कृत राज्य चद्रगुप्तस्ततोऽभवत् ।

पितुरद्धं कृत राज्यं तत्सुतश्च प्रतापवान् ॥११

पितुस्तुल्य कृत राज्य मोहनस्तत्सुतोऽभवत् ।

निशदब्द कृत राज्य श्वेतरायस्ततोऽभवत् ॥१२

पितुस्तुल्य कृत राज्य नागबाहस्ततोऽभवत् ।

पितुस्तुल्य कृत राज्य लोहधारस्ततोऽभवत् ॥१३

पितुस्तुल्य कृत राज्य वीरसिहस्ततोऽभवत् ।

पितुस्तुल्य कृत राज्य विबुधस्तत्सुतोऽभवत् ॥१४

इस महान् आत्मा वाले ने मध्य देश मे पिता का आधा राज्य किया था । उसके दो जोड़ला पुत्र हुए थे इन दोनों मे एक कन्या और एक पुत्र था । कन्या का नाम वीरा था और पुत्र का नाम वीर विहात्तर था ॥८॥ राजा विक्रम के लिये वीरा का दान कर दिया था जो कि पिता के द्वारा वेद की विधि से किया गया था । और अपने पुत्र को परम प्रसन्नता से मध्य देशान्तर अपना राज्य दे दिया था ॥९॥ इसके माणिका पुत्र हुआ—माणिक्य ने पचास वर्ष तक राज्य किया था ।

फिर महासिंह के चन्द्रगुप्त पुत्र हुआ जिसने अपने पिता से आधे समय तक ही राज्य किया था । चन्द्रगुप्त का पुत्र प्रताप बान् हुआ था । इसने पिता के तुल्य राज्य किया था । इसका पुत्र मोहन नामक राजा हुआ । इसने तीस वर्ष तक राज्य किया । इसका पुत्र श्वेतराय हुआ था ॥१०-१२॥ श्वेतरायका पुत्र नागबाह और नागबाह का पुत्र लोहधार हुआ एवं इसका पुत्र वीरसिंह हुआ था । इन सबने अपने पिताओं के समान ही राज्य किया । वीरसिंह के पुत्र का नाम विबुध था ॥१४ १४॥

शताब्दाब्द कृत राज्य चद्रायस्ततोऽभवत् ।  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य ततो हरिहरोऽभवत् ॥१५  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य वसतस्तस्य चात्मज ।  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य बलागस्तनयोऽभवत् ॥१६  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य प्रथमस्तत्सुतोऽभवत् ।  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य मगरायस्ततोऽभवत् ॥१७  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य विशालस्तस्य चात्मज ।  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य शाङ्गदेवस्ततोऽभवत् ॥१८  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य मन्त्रदेवस्ततोऽभवत् ।  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य जयसिंहस्ततोऽभवत् ॥१९  
 आर्यदेशाश्च सकला जितास्तेन महात्मना ।  
 तद्धर्न कारयामास यज्ञ बहुफलप्रदम् ॥२०  
 ततश्चानन्द देवो हि जात पुत्र शुभानन ।  
 शताब्दाब्द कृत राज्य जयसिंहेन धीमता ॥२१

विबुध ने पचास वर्ष राज्य किया । इसका पुत्र चद्राय, उसका हरिहर, उसका वसत, उसका बलाग, उसका प्रथम, उसका मगराय और उसका विशाल तथा उसका मन्त्रदेव और उसका पुत्र जयसिंह हुआ ॥१५ १९॥ इन सब ने पिताओं के समान ही राज्य शासन किया था । जयसिंह ने समस्त आर्य देशों की विजय करली थी । उस जीत के धन

से उस महात्मा ने बहुत फल का प्रदान करने वाला यज्ञ कराया ॥२०॥  
उससे फिर आनन्द देव नामक शुभ मुख वाले पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ।  
धीमान् जयमिह न पचास वर्ष तक राज्य किया था ॥२१॥

तत्सुतेन पितुस्तल्य कृतं राज्य महीतले ।

सोमेश्वरस्तस्य सुतो महाशूरो बभूव ह ॥२२

अनंगपालस्य सुतो ज्येष्ठा वै कीर्तिमालिनीम् ।

तामुद्वाह्य विधानेन तस्या पुत्रानजीजनत् ॥२३

धु धुकारश्च वै ज्येष्ठो मथुराराष्ट्रसस्थितः ।

मध्य कुमारश्च सुतः पितुः पदसमास्थितः ॥२४

महीराजस्तु बलवास्तृतीयो देहलीपतिः ।

सहोद्दीनस्य नृपतेर्वंशमाप्य मृतिं गतः ॥२५

चपहानेश्च स कुलं छायायित्वा दिव गयी ।

तस्य वशे तु राजन्यास्तेषां पत्न्यः पिशाचकैः ॥२६

म्लेच्छैश्च भुक्तवत्यस्तां बभूवुर्वंशसकराः ।

न वै आर्या न वै म्लेच्छा जट्टा जात्या च मेहना ॥२७

मेहना म्लेच्छजातीता जट्टा आर्यमया स्मृताः ।

कचित्कच्चिन्न ये शेषा क्षत्रियाश्चपहानिजा ॥२८

उसके पुत्र ने अपने पिता के समान ही इस भूतल पर राज्य किया था । उसका पुत्र सोमेश्वर हुआ था जो महान् दूरबीर था ॥२२॥  
अनंग पाल के पुत्र ने ज्येष्ठा कीर्ति मालिनी के साथ विधान के साथ विवाह किया था और उससे पुत्रों को समुत्पन्न किया था ॥२३॥ धुन्धु-  
कार ज्येष्ठ था जो मथुराराष्ट्र में सस्थित था । मध्य पुत्र कुमारश्च  
था जो पिता के पद पर समास्थित हुआ था ॥२४॥ महीराज बलवान्  
उसका तृतीय पुत्र था जो देहली का स्वामी हुआ था । वह सहोद्दीन  
राजा के वश में आकर मृत्यु को प्राप्त हुआ था ॥२५॥ उसने चपहानि  
के कुल को फँसा दिया था और फिर स्वर्ग को चला गया था ।  
उसके वंश में जो राजन्य (क्षत्रिय) थे उनकी पत्नियाँ और म्लेच्छों के  
द्वारा भोगी गई थी और वे सब वर्ण सकर होगये थे । न तो वे आर्य

ही थे और न म्लेच्छ ही रहे थे । वे जाति से जट्ट और मेहन होगये थे । मेहन तो म्लेच्छ जाति वाले होते हैं और जट्ट आर्यमय माने गये हैं । यहा मेहन से मेव और जट्ट से जाट होता है । और कही कही पर शेष चयहानि से उत्पन्न क्षत्रिय रहे हैं ॥२६ २८॥

## ॥ शुक्ल वंश चरित्र ॥

शुक्लवंश प्रवक्ष्यामि शृणु विप्रवरादित ।  
 यदा कृष्ण स्वयं ब्रह्म त्यक्त्वा भूमिं स्वक पदम् ॥१॥  
 दिव्य वृन्दावन रम्य प्रययौ भूतले तदा ।  
 कलेरागमनं ज्ञात्वा म्लेच्छपा द्वीपमध्यगे ॥२॥  
 स्थिता द्वीपेषु वै नाना मनुजा वेदतत्परा ।  
 कलिनामित्रधर्मेण दूषितास्ते बभूवुरे ॥३॥  
 अष्टपष्टिसहस्राणां वर्षाणां मुनिसत्तम ।  
 अथ प्रभृति वै जात बाल कलिसमागमे ॥४॥  
 पष्टिवपसहस्राणि द्वीपराज्यमचीकरत् ।  
 स कलिर्लेच्छया सार्धं सूर्यपूजनतत्पर ॥५॥  
 तत्पश्चाद्भारते वर्षे म्लेच्छया कलिराययौ ।  
 दृष्ट्वा तद्भारतं वर्षं लोकपालैश्च पालितम् ॥६॥  
 भयभीतस्त्वरारविष्टो गन्धर्वाणां यशस्कर ।  
 स कलिः सूर्यमाराध्य समाधिस्थो बभूव ह ॥७॥

इस अध्याय में शुक्ल नामक अग्निवंश में होने वालो तथा भूपान वंश में होने वालो के चरित्र का वर्णन है । श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रवर ! अब मैं शुक्ल वंश का वर्णन करता हूँ उमे तुम आदि से ही श्रवण करो । जिस समय में भगवान् कृष्ण स्वयं ब्रह्म अपने भूमि पद का त्याग करके उस समय में दिव्य एव रम्य वृन्दावन में भूतन में गये थे । उन्होंने द्वीप के मध्य म्लेच्छ और कलि का आगमन जान लिया था ॥१-२॥ द्वीपों के अनन्त मनुष्य वेदों में तत्पर जो थे वे धर्म के शत्रु कलि के

द्वारा दूषित होगये थे ॥३॥ हे मुनिसत्तम ! आज स लेकर अठसठ हजार वर्षों का समय कलि के समागम में होगया है ॥४॥ उस कलि ने म्लेच्छा के माय सूर्य के पूजन में तत्पर रहते हुए साठ हजार वर्ष तक द्वीप राज्य किया था ॥५॥ इसके पीछे इस भारत की लोकपालों के द्वारा पालित देख कर म्लेच्छा के साथ भारत वर्ष में वह कलि आया था ॥६॥ त्वरा (शोधना) से अभीष्ट और भय से डरा हुआ गन्धर्वों के यश को करने वाला वह कलि सूर्यदेव की समाराधना करके समाधि में स्थित हो गया था ॥७॥

ततो वर्षशताब्दात्ते सत्पुष्टो रविरागत ।

सोशुभिलोकमातप्य मसावृष्टिमकारयत् ॥८॥

चतुर्वर्षसहस्राणि चतुर्वर्षशतानि च ।

व्यतीतानि मुनिश्रेष्ठ चाद्य प्रभृति सलपे ॥९॥

सपन्न भारत वर्षं तदा जात समतत ।

न्यूहास्तो यवनो नाम तेन वै पूरित जगत् ॥१०॥

सहस्राब्दकाली प्राप्ते महेन्द्रो दवराट् स्वयम्

काश्यप प्रेरयामास ब्रह्मावर्तं महोत्तमे ॥११॥

आर्यावती देवशक्तिस्तत्कर चाग्रही मुदा ।

दशपुत्राः समुत्पाद्य स द्विजो मिश्रमागमत् ॥१२॥

मिश्रदेशोद्भूतान्म्लेच्छा वशीकृत्यायुत मुदा ।

स्वदश पुनरागत्य शिष्यास्ताः सचकार स ॥१३॥

नष्टाया सप्तपुर्या च ब्रह्मावर्तं महोत्तमम् ।

सरस्वतीद्विपद्वत्योर्मध्यग तत्र चावमत् ॥१४॥

इसके अनन्तर एक सौ वर्ष के अन्त में रवि सन्तुष्ट होकर आया था । उसने अपनी किरणों के द्वारा लोक को आतप्त करके फिर महा वृष्टि कराई थी ॥८॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आज से लेकर चार हजार चार सौ वर्ष अतीत हुए हैं ॥९॥ उस समय सभी ओर से यह भारत वर्ष भूगत्या सम्पन्न होगया था । एक ब्यूठ नाम वाला यवन था उसने इस सम्पूर्ण जगत् को पूरित कर दिया था ॥१०॥ एवं सहस्र वर्ष

कलि के प्राप्त होने के हो जाने पर देवों के राजा महेन्द्र ने स्वयं महान् उत्तम ब्रह्मावर्त्त म काश्यप को भेजा था ॥११॥ आर्यावती देव शक्ति ने प्रसन्नता से उसके कर को ग्रहण किया था । उसमें दश पुत्रों को समुत्पन्न किया था और फिर वह मिथ्य म आ गया था ॥१२॥ वन मिथ्य देश में होने वाले म्नेच्छो को जो सख्या म दश सहस्र थे अपने वन में किया था । इसके पश्चात् अपने देश में आकर उनको शिष्य बनाया था ॥१३॥ सप्तपुरी के नष्ट हो जाने पर महान् उत्तम ब्रह्मावर्त्त सरस्वती और दूषद्वती के मध्य में रहने वाला बहा पर बस गया था ॥१४॥

स्वपुत्र शुक्लमाहूय द्विजश्रेष्ठ तपोधनम् ।  
 आज्ञाप्य रैवत शृ ग तपसे तु पुन स्वयम् ॥१५॥  
 नवपुर्नास्तथा शिष्यान्मनुधर्मं सनातनम् ।  
 श्रावयामास धर्मात्मा स राजा मनुधर्मग ॥१६॥  
 शुक्लोपि रैवत प्राप्य सच्चिदानन्दविग्रहम् ।  
 वासुदेव जगन्नाथ तपसा समतोषयत् ॥१७॥  
 तदा प्रसन्नो भगवान्द्वारकानाथको बली ।  
 करे गृहीत्वा त विप्र समुद्रात्मुपाययौ ॥१८॥  
 द्वारका दर्शयामास दिव्यशोभासमन्विताम् ।  
 व्यतीते द्विजसहस्राब्दे किञ्चिज्जाते भृगूत्तम ॥१९॥  
 अग्निद्वारेण प्रययौ स शुक्लोऽर्बुदपवते ।  
 जित्वा बौद्धान्द्विजं साध त्रिभिरन्यैश्च बधुभि ॥२०॥  
 द्वारका कारयामास हरेश्च कृपया हि स ।  
 तत्रोष्य मुदितो राजा कृष्णध्यानपरोभवत् ॥२१॥

तप के घन वाले द्विजों में श्रेष्ठ बनने पुत्र शुक्ल को उसने बुला कर रैवत शृ ग को आज्ञा दी थी और पुन स्वयं तप के लिए चला गया था ॥१५॥ वहा शिष्य उन नौ पुत्रों को मनु के धर्म के अनुगामी धर्मात्मा उस राजा ने सनातन मनु के धर्म को श्रवण कराया था ॥१६॥ शुक्ल भी रैवत पवत पर पहुँच कर उसने सच्चिदानन्द विग्रह वाले जगत् के स्वामी वासुदेव को अपने तप के द्वारा पूजितया समुत्पन्न किया था

॥१७॥ उम समय म बनवान् द्वारका के स्वामी भगवान् परम प्रसन्न हुए और उस ब्राह्मण को हाथ से पकड़ कर समुद्रात पर आ गये थे ॥१८॥ हे भृगूत्तम ! वहा उहोने दिव्य शोभा से समवित द्वारका को दिखाया था । बत्तीस हजार वर्ष व्यतीत होजाने पर वह शुक्ल अग्निद्वार से अबुंद पवन पर चला गया था । वहाँ अपने तीन अन्य द्विज वन्धुओ को साथ लेकर वीजो का विजय किया था ॥१९ २०॥ उसने हरि की कृपा से उम द्वारका को कराया था । वह राजा परम प्रसन्नता से निवास कर कृष्ण क ध्यान म तत्पर हो गया था ॥२१॥

पश्चिमे भारते वर्षे दशाब्द कृतवान्पदम् ।

नारायणस्य कृपया विष्वक्सेन सुतोऽभवत् ॥२२

विशदब्द कृत राज्य जयसेनस्ततोऽभवत् ।

त्रिंशदब्द कृत राज्य विसेनस्तस्य चात्मज ॥२३

शताब्धिद कृत राज्य मिथुन तस्य चाभवत् ।

प्रमोदो मोदसिहश्च विक्रमाय निजा सुताम् ॥२४

विसेनश्च ददौ प्रीत्या राष्ट्र पुत्राय चोत्तमम् ।

पितुस्तुल्य कृत राज्य सिधुवर्मा सुतोऽभवत् ॥२५

सिधुकुले कृत राज्य त्यक्त्वा तत्पुत्रक पदम् ।

सिधुदेशस्ततो नाम्ना प्रसिद्धोभून्महीतले ॥२६

पितुस्तुल्य कृत राज्य राजा वै सिधुवर्मणा ।

सिधुद्वीपस्तस्य सुतः पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥२७

श्रीपतिस्तस्य तनयो गौतमान्वयसम्भवाम् ।

काञ्चिपी महिषी प्राप्य वञ्छदेशमुपाययौ ॥२८

पश्चिम भारत वर्ष म दस वर्ष तक पद किया था फिर नारायण की कृपा से विष्वक्सेन नामक उसका सुत हुआ था ॥२२॥ उसने यही बीस वर्ष तक राज्य का शासन किया था । उसका पुत्र जयसेन समुद्र पर हुआ था । हमने तीस वर्ष पर्यन्त राज्य किया था । फिर इसका पुत्र विसेन नामधारी उत्पन्न हुआ था ॥२३॥ हमने पचास वर्ष तक राज्य शासन की बागडोर अपने हाथ म रखी थी । हमने एक मिथुन



(जोड़ना) पैदा हुए थे जिनके नाम प्रमोद और मोदसिंह थे । विसेन ने अपनी कन्या को विक्रम को दी थी और प्रीति से उत्तमराष्ट्र पुत्र को दिया था । इसने राज्य का शासन अपने पिता के समान ही किया था । इसका पुत्र सिधु वर्मा नाम धारी समुत्पन्न हुआ था ॥२४ २५॥ इसने उस अपने पैतृक पद का त्याग करके सिन्धु नदी के तट पर अपना राज्य बनाया था । सभी से वह सिन्धु देश इस नाम ■ उसकी प्रसिद्धि होगई थी ॥२६॥ इस राजा सिन्धु वर्मा ने अपने पिता के समान ही राज्य का शासन किया था । उसके पुत्र का नाम सिन्धु द्वीप था । इसने भी अपने पिता के समान ही अपने पद का कार्य सभाला था ॥२७॥ इसने पुत्र का नाम श्रीपति था जिसने गौतम वज्र से समुत्पन्न बाण्डपी रानी का प्राप्त करके वह फिर पण्ड देश में आगया था ॥२८॥

पुलिन्दान्यवनाहित्वा सत्र देशमवारयत् ।

दशो वै श्रीपतिर्नाम्ना सिन्धुद्वीपे बभूव ह ॥२९॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भुजवर्मा ततोऽभवत् ।

जित्वा स शयराश्विरलास्तत्र राष्ट्रमवारयत् ॥३०॥

भुजदशस्तनो जान प्रसिद्धोऽभून्महीनले ।

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं गणवर्मा मुतोऽभवत् ॥३१॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चित्रवर्मा मुतोऽभवत् ।

कृत्वा स चित्रनगरी वामध्ये नृपोत्तम ॥३२॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धमवर्मा मुतोऽभवत् ।

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वागवर्मा मुतोऽभवत् ॥३३॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमुदयमुतोऽभवत् ।

कृत्वा स उदयपुरं रम्यं वामध्ये नृपोत्तम ॥३४॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वाप्यवर्मा मुतोऽभवत् ।

वापीरागागानि नाशयन्ति तेन यं ॥३५॥

धर्मात् शरयामास धर्मात्मा स यः स परः ।

राश्विन्नाम प्राप्नोति यदा ताम भूषति ॥३६॥

वहा उसने पुलिन्द और यवनो को जीत कर अपना देश बनाया था । इसलिए वह देश सिन्धु के तट पर श्रीपति के नाम से ही होगया था ॥२६॥ इस श्रीपति ने अपने पिता के समान ही राज्य का शासन चलाया था, इसके पश्चात् इस का पुत्र भुज वर्मा हुआ था । इसने वहा पर शवरो और भीलो को जीत कर अपने एक राष्ट्र का निर्माण किया था ॥३०॥ तभी से इस महीबल मे भुज नाम से देश की प्रसिद्ध हुई थी । इसने अपने पिता की रीति-नीति के अनुसार ही उतने ही समय तक राज्य-शासन का काम समाला था । इसके पीछे इसका पुत्र रण वर्मा हुआ था ॥३१॥ इस रण वर्मा ने पितृ तुल्य राज्य किया और इस के पुत्र का नाम चित्र वर्मा हुआ था । इस उत्तम नृप ने घोर वन के मध्य में चित्र नगरी की रचना कराई थी ॥३२॥ इसका राज्य-शासन भी इसके पिता के समान ही रहा था । इसके पुत्र का नाम धर्म वर्मा था । धर्म वर्मा ने तथा इसके पुत्र वृष्ण वर्मा ने पिताओं के समान ही राज्य किया था ॥३३॥ फिर इसका पुत्र उदय नाम धारी हुआ था । इस उत्तम नृप ने घोर वन के मध्य में रम्य उदयपुर बसाया इसके राज्य की शासन-व्यवस्था भी बिल्कुल अपने पिता के समान ही थी । इसके पुत्र का नाम वाप्य वर्मा हुआ था । इसने अनेक प्रकार के बहुत से वारी (बावडी)-बूप और तडाग (तालाब) तथा विविध प्रकार के ऋम्यों (उत्तम भवनो) की रचना कराई थी ॥३४-३५॥ इसने इन सब का निर्माण धर्मार्थ ही कराया था क्योंकि वह बहुत धर्मात्मा उस पुर म हुआ था । इसी अन्तर मे बलद नाम वहा प्राप्त होगया था ॥३६॥

लक्षसैन्ययुतो वीरो महामदमते स्थितः ।

तेन साधंमभूद्युद्धं राज्ञो वै वाप्यकर्मणः ॥३७

जित्वा पेशाचवान्मलेच्छान्पृष्णोन्सवमकारयत् ।

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मुहिलस्तत्सुतोऽभवत् ॥३८

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बालभोजः सुतोऽभवत् ।

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं राष्ट्रपालस्ततोऽभवत् ॥३९

स त्यक्त्वा पैतृक स्थान वैष्णवी शक्तिमागमत् ।

तपसाराधयामास शारदा सर्वमगलाम् ॥४०॥

प्रसन्ना सा तदा देवी कारयामास वै पुरीम् ।

महावती महारम्या मणिदेवेन रक्षिताम् ॥४१॥

तत्रोष्य नृपतिर्धोमानन्दशाब्द राज्यमाप्तवान् ।

तस्योभौ तनयौ जातौ विजय प्रजयस्तथा ॥४२॥

यह वीर एक लाख सेना से समर्थ होकर आया था और महामद के मद में स्थित था अर्थात् मुसलमान धर्म वाला था । उसके साथ बाध्य कर्मा राजा का बड़ा भारी युद्ध हुआ था ॥३७॥ इसने उन पैशाचिक म्लेच्छों को जीत कर फिर वृष्णोत्सव कराया था । इसने अपने राज्य का शासन बिल्कुल अपने पिता के ही समान किया था । इसके पुत्र का नाम गुहिल हुआ था ॥३८॥ गुहिल के पुत्र का नाम कालभोज था । इन दोनों ने अपने पिताओं के समान ही राज्य का पद सम्भाला था । कालभोज के पुत्र का नाम राष्ट्रपाल था । इसने अपने पिता के स्थान का त्याग कर दिया था और वह वैष्णवी शक्ति में चला आया था । इसने तप के द्वारा सर्व मङ्गला शारदा की आराधना की थी ॥३९॥ तब वह शारदा देवी इस पर प्रमत्त हो गई थी और पुरी की रचना कराई थी । यह पुरी महा रम्य महावती नाम वाली थी जो कि मणिदेव के द्वारा रक्षित थी ॥४०॥ वहा पर यह धोमान् नृप निवास करते हुए दश वर्ष पर्यन्त इसने राज्य पद की प्राप्ति की थी । इसका दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे । एक का नाम विजय था और दूसरे का प्रजय नाम था ॥४१॥

प्रजय पितरौ त्यक्त्वा गगावृत्पुष्याययी ।

द्वादशाब्दं च तपसा पूजयामास शारदाम् ॥४३॥

मन्यामूर्तिमयी देवी वैष्णवादनतत्परा ।

हयमारुह्य संप्राप्ता विहम्याह महीपतिम् ॥४४॥

विप्रिमित्त भूपसुत त्वया चाराधिता शिवा ।

तत्पन्न त्व हि तपसा भक्त क्षीघ्रमवाप्स्यसि ॥४५॥

इति श्रुत्वा स होवाच कुमारि मधुरस्वरे ।

नवीन नगर मह्य कुरु देवि नमोस्तु ते ॥४६॥

इति श्रुत्वा तु सा देवी ददौ तस्मै हय शुभम् ।

पुरो भूत्वा वाद्यकरी दक्षिणा दिशमागता ॥४७॥

स भूपो हयमारुह्य नेत्र आच्छाद्य चाययौ ।

पुनः स भूपतिः पश्चात्पश्चिमा दिशमागता ॥४८॥

ततोनुप्रययौ पूर्वमर्कणो यत्र पक्षिराट् ।

भयभीतो नृपस्तेन समुन्मील्य स चक्षुषी ॥४९॥

प्रजय ने अपने माता-पिता का त्याग करके गङ्गा के तट पर प्रस्थान कर दिया था । वहाँ पर स्थित होकर इसने बारह वर्ष पर्यन्त तपस्या करके शारदा देवी का अर्चन किया था ॥४३॥ कन्या की मूर्ति वाली अपने वेणु को बजाती हुई देवी अश्व पर समावृद्ध होकर वहाँ प्राप्त हुई थी और उसने हस कर राजा से कहा था ॥४४॥ हे भूप के पुत्र ! तू ने किम कारण से शिवा का समाराधन किया है । इस तपस्या का फल मुझसे तू बहुत ही शीघ्र प्राप्त कर लेगा ॥४५॥ इतना श्रवण करके उस राजा ने कहा—हे मधुर स्वर वाली कुमारी ! मेरे लिये आप एक नूतन नगर की रचना कर दो । हे देवि ! आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥४६॥ यह राजा का वचन श्रवण करके उस देवी ने उस राजा को वह शुभ अश्व दे दिया था और आगे होकर वाद्य का वादन करने वाली वह दक्षिण दिशा में आ गई थी ॥४७॥ वह राजा भी अश्व पर सवार होकर अपने नेत्रों को आच्छादित करके आ गया था । फिर वह राजा पश्चिम दिशा में आ गया था ॥४८॥ इसके बाद पूर्व में गया था जहाँ पर अकर्मण पक्षियों का राजा था । उससे राजा भयभीत हो गया और उसने अपनी आँखें मींचली थी ॥४९॥

ददर्श नगर रम्य वन्याया रचित शुभम् ।

उत्तरे तस्य वै गंगा दक्षिणेनास पाण्डुरा ॥५०॥

पश्चिमे ईशसरिता पूर्वे पक्षी स मर्कटाः ।

बुञ्जभूतमभूद्ग्रामं कान्यबुञ्ज इति स्मृतः ॥५१॥

स्वयमेकैव वसना मनोग्लानिमुपाययी ।  
तदैव स घटो भूमौ न प्राप्त सप्रवृत्तिकाम् ॥५८  
दृष्ट्वा कन्यावती देवी घटहीना गृहं ययौ ।  
तदा तु सप्त कन्याश्च शिलाभूता गृहे स्थिता ॥५९  
श्रुत्वा वेणुस्तदागत्य भत्सयित्वा स्वका प्रियाम् ।  
ब्रह्मचर्यव्रतं त्यक्त्वा रमयामास योषितम् ॥६०  
नृपाद्वै वीरवत्या च यशोविग्रह आत्मज ।  
वभूव बलवान्धर्मी चायदेशपति स्वयम् ॥६१  
विंशद्वर्षं कृतं राज्यं तेन राजा महीतने ॥  
महीचन्द्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यः कृतं पदम् ॥६२  
चन्द्रदेवस्तस्य सुतो राज्यं तेन पितुः समम् ।  
कृतं तस्मात्सुतो जातो मदपालो महीपति ॥६३

वह स्वयं एक ही वस्त्र वाली मनोग्लानि को प्राप्त हुई थी । उस समय ही वह घट भूमि में प्राप्त नहीं हुआ था । सप्रवृत्तिका को देख कर कन्यावती देवी घर से रहित गृह को चली गई थी उस समय सात कन्याएँ शिला भूता होकर घर में स्थित हो गई थी ॥५८-५९॥ वेणु ने जब यह सुना तो वहा उस समय उमने आकर अपनी प्रिया को भत्सना दी और फिर ब्रह्मचर्य व्रत का त्याग करके योषित के साथ रमण किया था ॥६०॥ तब राजा से वीरवती मे यशोनिग्रह नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था । वह बनवान् धर्मात्मा और स्वयं आर्यदेश का स्वामी था ॥६१॥ उस राजा ने बीस वर्ष तक इस भूमि तल पर राज्य का शासन किया था । फिर इसके महीचन्द्र नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसने पिता के तुल्य राज्य किया था ॥६२॥ महीचन्द्र का पुत्र चन्द्रव्यस हुआ था । इसने भी पिता के समान ही राज्य किया था । इसके जो पुत्र समुत्पन्न हुआ था उसका नाम मत्पाय महीपति था ॥६३॥

तस्य भूपत्यस्य समये सर्वे भूपा समन्ततः ।

त्यक्त्वा तु मदपालः च तदुक्तं सस्थिता गृहे ॥६४

पितुरद्धं कृतं राज्यं कुम्भपालस्ततोऽभवत् ।  
 राजनीया च नगरी पिशाच विषये स्थिता ॥६५॥  
 तत्पतिश्च महामोदो म्लेच्छपेशाच घर्मण ।  
 स जित्वा बहुधा देशान्लुठयित्वा धनं बहु ॥६६॥  
 म्लेच्छघ्नमकरं प्राप्तं कुम्भपालो यतः स्थितः ।  
 कुम्भपालस्तु तं दृष्ट्वा कलिना निर्मितं नृप ॥६७॥  
 महामोदं समागम्य प्रणामं स बुद्धिमान् ।  
 तदा म्लेच्छपतिं धूरो दत्त्वा तस्मै धनं बहु ॥६८॥  
 राजनीया च नगरीं प्राप्तवान्मूर्तिखड्गम् ।  
 विशदब्धं कृतं राज्यं कुम्भपालेन धीमता ॥६९॥  
 तत्पुत्रो देवपालश्चानगभूपस्य कन्यकाम् ।  
 समुद्वाह्य विधानेन चद्रकार्तिं तया सह ॥७०॥

उस राजा के समय में मभी और ममस्त राजाओं ने उस मन्दपाल को त्याग दिया था और तद्वत् गृह में सम्मिलित हो गए थे ॥६४॥ इसने पिता का आधा राज्य लिया था । इसके बाद इसका पुत्र कुम्भपाल हुआ था । राजनीय नगरी पिशाचा के देश में स्थित थी ॥६५॥ उस नगरी का स्वामी महामोद था जो कि म्लेच्छ पेशाच घर्म का अनुयायी था । उसने बहुधा देशों को जीत लिया था और बहुत सा धन वहाँ से लूट लिया था । उसने म्लेच्छ घर्म पर प्राप्त किया था जहाँ कुम्भपाल स्थित था । हे नृप ! कुम्भपाल ने कलि के द्वारा निर्मित उसको देग कर उस बुद्धिमान ने महामोद के समीप में जाकर उसको प्रणाम किया था । तब म्लेच्छा के स्वामी ने उसको बहुत-सा धन दिया था ॥६६ ६८॥ फिर वह अपनी राजनीया नगरी का चला गया था । धीमान् कुम्भपाल ने योग यथं तक मूर्ति खण्डन काज किया था । इसका पुत्र देवपाल हुआ था । इसने अलग राजा की रक्षा पद्धति के साथ विवाह विधि के साथ किया था और उसके साथ आनन्द में रहने लगा था ॥६९ ७०॥

कान्यकुब्जगृह प्राप्य जित्वा भूपाननेकश ।  
 पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्योभौ तनयौ स्मृतौ ॥७१॥  
 जयचन्द्रो रत्नभानुर्दिश पूर्वा तथोत्तराम् ।  
 आर्यदेशस्य वै जित्वा वैष्णवो राज्यमाप्तवान् ॥७२॥  
 रत्नभानोश्च तनयो लक्षणो नाम विश्रुतः ।  
 कुरुक्षेत्रे रण प्राप्य त्यक्त्वा प्राणान्दिव गतः ॥७३॥  
 समाप्तिमगमद्वंशो वैश्यपालस्य धीमतः ।  
 कुम्भपालस्य शौक्लस्य वैश्याना रक्षकस्य च ॥७४॥  
 विष्वक्सेनान्वये जाता विष्वक्सेनेना नृपा स्मृताः ।  
 विसेनस्य कुले जाता विसेना क्षत्रियाः स्मृता ॥७५॥  
 गुहिलस्य कुले जाता गौहिला क्षत्रिया हि ते ।  
 राष्ट्रपालान्वये जाता राष्ट्रपाला नृपा स्मृताः ॥७६॥  
 वैश्यपालस्य वै वंशे कुम्भपालस्य धीमतः ।  
 वैश्यपालाश्च राजन्या बभूवुर्वहुधा हि ते ॥७७॥  
 लक्षणे मरण प्राप्ते शुक्ल वशधुरधुरे ।  
 सर्वे ते क्षत्रिया मुख्या कुरुक्षेत्रे लय गता ॥७८॥  
 शोपास्तु क्षुद्रभूपाला वर्णसकरसभवा ।  
 म्लेच्छैश्च दूषिता जाता म्लेच्छराज्ये भयानके ॥७९॥

यह देवपाल चन्द्रकांति को साथ में लेकर कान्य कुब्ज गृह में पहुँचा और वहाँ अनेक भूपो को जीत कर इसने अपने पिता के तुल्य राज्य किया था । उसके दो पुत्र कहे गये हैं ॥७१॥ उनके नाम जयचन्द्र और रत्नभान थे । इन्होंने पूर्व तथा उत्तर दिशा आर्य देश की जीत कर वैष्णव ने राज्य प्राप्त किया था ॥७२॥ रत्नभानु का पुत्र लक्षण इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था । उसने कुरुक्षेत्र में युद्ध करके प्राणों का त्याग किया था और स्वर्ग लोक को चला गया था ॥७३॥ धीमान् वैश्यपाल का वश फिर समाप्ति की प्राप्त हो गया था । कुम्भपाल का तथा वैश्यों के रक्षक शौक्ल का वश भी समाप्त हो गया था ॥७४॥ विष्वक्सेन के वश में उत्पन्न होने वाले विष्वक्सेनेन नृप बहे गये थे ।

जो विसेन के कुल में समुत्पन्न हुए थे वे विसन क्षत्रिय कहलाये हैं ॥७५॥  
 गुहिल के कुल में समुत्पन्न गौहिल क्षत्रिय कहे गये हैं और राष्ट्रपाल के  
 वंश में जो समुत्पन्न थे वे राष्ट्रपाल नाम से ही प्रसिद्ध हुए हैं ॥७६॥  
 वैश्यपाल और धीमान् कुम्भपान के वंश में वैश्यपाल क्षत्रिय बहुधा  
 हुए थे । शुक्ल वंश के धुरन्धर लक्षण के भरण प्राप्त हो जाने पर समस्त  
 वे क्षत्रिय उस कुरुक्षेत्र के मैदान में लय को प्राप्त हो गये थे ॥७७-७८॥  
 शेष जो क्षुद्र राजा थे वे वणशकर से उत्पत्ति वाले हैं और वे म्लेच्छों  
 के द्वारा उस अति भयानक म्लेच्छों के राज्य में दूषित हो गये थे ॥७९॥

## ॥ परिहर भूप वंश वर्णन ॥

भृगुवर्ये भृशु त्व वै वंश परिहरस्य च ।  
 जित्वा बौद्धान्परिहरोऽथववेदपरायणं ॥१॥  
 शक्तिं सर्वमयी नित्या ध्यात्वा प्रेमपरोऽभवत् ।  
 प्रसन्ना स तदा देवी साधयोजनमायतम् ॥२॥  
 नगरं चित्रकूटाद्री चकार कलिनिर्जरम् ।  
 पलियस भवेद्बद्धो नगरेऽस्मिन्सुरप्रिये ॥३॥  
 अतः कलिजरो नाम्ना प्रसिद्धाऽभून्महीतले ।  
 द्वादशाब्दं कृतं राज्यं तेन पूषप्रदशवे ॥४॥  
 गौरवर्मा तस्य सुतः कृतं राज्यं पितुः समम् ।  
 स्वानुजं धीरवर्माणं तत्रास्थाप्य मुदान्वितं ॥५॥  
 गौडदेशं समागम्य तत्र राज्यमकारयत् ।  
 सुपर्णो नाम नृपतिस्ततोऽभूद्गण्डर्वमणः ॥६॥  
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं रूपणस्तस्मिन्सुतोऽभवत् ।  
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वारवर्मा मुतोऽभवत् ॥७॥

इस अध्याय में परिहर भूपति के वंश में होने वाले नृपतियों के  
 वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—हे भृगुवर्य ! अब  
 आप परिहर राजा के वंश का वर्णन करेंगे । अथवा वह मेरे परामर्श राजा



रिहर ने बौद्धों को जीत लिया था ॥१॥ इसके पश्चात् नित्य सर्वमयी  
शक्ति का ध्यान कर वह योग में परायण हो गया था । राजा के  
ध्यान से देवी परम प्रसन्न होगई थी और उसने चित्रकूट पर्वत पर डेढ़  
मोजन के विस्तार वाला कलिनिर्जर नामक नगर का निर्माण किया था  
वहाँ पर इस सुर प्रिय नगर में कलिबद्ध होगया था ॥२-३॥ इसी लिए  
वह नगर कलिजर नाम से भूतन में प्रसिद्ध हुआ था, उसने वहाँ पर पूर्व  
प्रदेश में दश वर्ष तक राज्य किया था ॥४॥ इसके गौर वर्मा नामक पुत्र  
उत्पन्न हुआ था । इसने भी अपने पिता के समान ही राज्य का शासन  
किया था । फिर वह अपने छोटे भाई को जिसका नाम धीरवर्मा था  
समस्तता पूर्वक उस राज्यासन पर स्थापित करके गौड देश में आगया  
था और वहाँ राज्य किया था । उस गौर वर्मा का पुत्र सुपर्ण नामक  
राजा हुआ था ॥५-६॥ इसने अपन पिता के ही समान राज्य किया था ।  
इसका पुत्र रूपण नाम धारी नृप हुआ था । इसका राज्य भी पिता के  
समान रहा था इसके पुत्र का नाम कारवर्मा था ॥७॥

शको नाम ततो राजा महालक्ष्मी सनातनीम् ।  
त्रिवर्षति च सा देवी कामाक्षीरूपधारिणी ॥८  
स्वभक्तपालना चैव तस्य वासमकारयत् ।  
शताब्दाब्द कृत राज्य तेन वै कामवर्मणा ॥९  
मिथुन जनयामास भोगो भोगवती हि सा ।  
विक्रमार्यव नृपति सुता भोगवती ददौ ॥१०  
स्वराज्य च स्वपुत्राय प्रददौ भोगवर्मणे ।  
पितुस्तुल्य कृत राज्य कालिवर्मा सुतोऽभवत् ॥११  
महोत्सव महाकाल्या कृतवान्स च भूपति ।  
तस्मै प्रसन्ना वरदा काली भूत्वा स्वयस्थिता ॥१२  
कलिका बहुपुष्पाणि सा चकार स्वहर्षत ।  
ताभिर्भव च नगर सजात च मनोहरम् ॥१३  
कलिवाता पुरी नाम्ना प्रसिद्धाभून्महीतले ।  
कौशिकस्तस्य तनय पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥१४ ।

कारवर्मा के पश्चात् शक नाम वाला राजा हुआ था जिसने सना-  
तनी महालक्ष्मी की आराधना की थी । तीन वर्ष के अन्त में कामाक्षी  
रूप के धारण करने वाली उस देवी ने जो अपने भक्तों के पालन करने  
वाली थी उस राजा का बहा वास करा दिया था । उस काम वर्मा ने  
पचास वर्ष पर्यन्त राज्य किया था ॥८८॥ उसने एक जोड़ा भोग और  
भोगवती उत्पन्न किया था । वह जो भोगवती सुता थी उसका दान  
राजा ने विक्रम के लिए कर दिया था और अपने पुत्र भोगवर्मा को  
अपना राज्य दे दिया था । इसने पिता के समान ही राज्य का शासन  
किया था । इसका पुत्र कालिवर्मा नाम वाला हुआ था ॥९० ९१॥  
इस राजा ने महाकाली देवी का एक महोत्सव किया था । इसमें  
प्रसन्न हुई देवी उसके लिए वरदान देने वाली काली होकर बहा स्वयं  
स्थित होगई थी ॥९२॥ उसने अपने हर्ष से बहुत से पुष्पोष्णी कलिका  
करदी थी । उन कलिकाओं से होने वाला नगर—अत्यन्त ही मनोहर  
होगया था ॥९३॥ तब से वह इस भूमण्डल में कलिवाता पुरी के  
नाम से प्रसिद्ध होगया है । इस राजा के कौशिक नाम धारी पुत्र समु-  
त्पन्न हुआ था जिसने अपने पिता के तुल्य ही राज्य के सुख का उपभोग  
किया था ॥९४॥

षात्यायनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्य कृत पदम् ।  
तस्य पुत्रो हेमवतः पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥९५॥  
शिववर्मा च तत्पुत्रः पितुस्तुल्य कृत पदम् ।  
भयवर्मा च तत्पुत्रः पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥९६॥  
रद्रवर्मा च तत्पुत्रः कृत राज्य पितु ममम् ।  
भोजवर्मा च तत्पुत्रस्त्यक्त्रा यं पनृष पदम् ॥९७॥  
भोजराष्ट्रं वनोद्देशे वाग्यामाम वीर्यवान् ।  
पितुस्तुल्य कृत राज्य गववर्मा नृपोऽभवत् ॥९८॥  
पितुस्तुल्य कृत राज्य विध्यवर्मा नृपोऽभवत् ।  
स्वानुजाय मरुत राज्य दत्त्वा यगमुपाययौ ॥९९॥

पितुस्तुल्य कृत राज्यं सुखसेनस्ततोऽभवत् ।

पितुस्तुल्य कृत राज्यं बलाकस्तस्य चात्मजः ॥२०॥

दशवर्षं कृत राज्यं लक्ष्मणस्तत्सुतोऽभवत् ।

पितुस्तुल्य कृत राज्यं माधवस्तत्सुतोऽभवत् ॥२१॥

इस वीशिक का पुत्र कात्यायन और कात्यायन का पुत्र हेमवत, उनका पुत्र शिववर्मा और शिववर्मा का पुत्र भववर्मा हुआ था इन सभी ने अपने २ पिता के समान ही राज्य के शासन का कार्य सुचारुतया किया था ॥१५-१६॥ भववर्मा राजा के यहाँ रुद्र वर्मा नृप न पुत्र रूप में आकर जन्म ग्रहण किया था और अपने पिता की भाँति ही राज्य किया था । इसके फिर भोजवर्मा पुत्र समुत्पन्न हुआ था जिसने अपने पैतृक पद का त्याग कर दिया था और वीर्यवान् नृप ने वनोद्देश में भोजराष्ट्र बनाया था । इसके पश्चात् गववर्मा नृप हुआ जिसने पिता के ही समान राज्य किया था ॥१७-१८॥ फिर विष्णु वर्मा नृप हुआ जिसने पिता के तुल्य राज्य किया था । यह अपने छोटे भाई को राज्य सौंप कर वगदेश में आगया था ॥१९॥ फिर सुखसेन नृप हुआ था जिसने पिता की भाँति राज्य किया था । इसके पुत्र का नाम बलाक हुआ था ॥२०॥ इस बालक न दश वर्ष ही राज्य किया था । बलाक के पुत्र का नाम नञ्जण था । इमने भी पिता के समान ही राज्य किया था । इसके यहाँ माधव न पुत्र रूप में जन्म धारण किया था ॥२१॥

पितुस्तुल्य कृत राज्यं वेशवस्तत्सुतोऽभवत् ।

पितुस्तुल्य कृत राज्यं सुरसेनस्ततोऽभवत् ॥२२॥

पितुस्तुल्य कृत राज्यं ततो नारायणोऽभवत् ।

पितुस्तुल्य कृत राज्यं शातिवर्मासुतोऽभवत् ॥२३॥

गगाकूले शातिपुर रचित तेन धीमता ।

निवास कृतवान्भूप पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥२४॥

नदीवर्मा तस्य सुतो गगादत्तवरो बली ।

चकार नगरी रम्या नदीहा गौडराष्ट्रगाम् ॥२५॥

राष्ट्रदेशमुपागम्य जित्वा तस्य नृप बली ।

महावती पुरी रम्यामध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥३२॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य घृतिवर्मा सुताऽभवत् ।

पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्य पुत्रो महीपति ॥३३॥

जयचद्राजयः भूप उर्वीमायामिति स्मृतम् ।

नगरी कारयामास तत्र वासमकारयत् ॥३४॥

कुरुक्षेत्रे हता सर्वे क्षत्रियाश्च द्रवशिनः ।

तदा महीपती राजा महावत्यधिपोऽभवत् ॥३५॥

उसके पुत्र गंगा देव हुआ था जिमने दशवर्ष तक राज्य किया था । इसके पश्चात् अलग भूपति हुआ था । जिमने बीस वर्ष तक राज्य का सुखोपभोग किया था ॥३६॥ इसका तनय बलवान् था जोकि गौड देश का महीपति हुआ था । इसने अपने पिता के समान ही राज्य किया था । इसके पश्चात् राजेश्वर नाम धाला हुआ था । इसने पितातुल्य राज्य किया था । इसका पुत्र नृपतिह हुआ था । इसने पिता के समान राज्य किया था । इसका पुत्र कलिवर्मा हुआ था ॥३७-३९॥ इस बलवान् ने राष्ट्रदेश में पहुँच कर वहाँ के राजा को जीत लिया था और फिर महावती रम्य पुरी रह कर सुखिन हुआ था ॥३२॥ इसका राज्य शासन अपने पिता के समान ही था । इसका पुत्र घृतिवर्मा हुआ था । इसने पितृ तुल्य राज्य पद को भोगा था । इसका पुत्र महीपति हुआ था ॥३३॥ इस राजा ने जयचन्द्र की आज्ञा से उर्वीमाया कही जाने वाली नगरी की रचना कराई और अपना निवास किया था ॥३४॥ चन्द्रवश में होने वाले ससस्त क्षत्रिय नृप कुरुक्षेत्र के युद्ध में हत होगये थे । उस समय में राजा महीपति उस महावती नगरी का स्वामी हुआ था ॥३५॥

विशद्वर्ष कृत राज्य सहोद्दीनेन वै ततः ।

कुरुक्षेत्रे मृति प्राप्ता सुयोधनकलाशका ॥३६॥

घोरवर्मा तु नृपति सुत परिहरस्य वै ।

कर्लजरे कृत राज्य शार्दूलस्तत्सुतोऽभवत् ॥३७॥

तदन्वये च ये भूपाः शार्दूलीयाः प्रकीर्तिताः ।

भूपानां बहुधा राष्ट्रं शार्दूलान्वयसंभवम् ॥३८॥

बभूव सर्वतो भूमौ महामायाप्रसादतः ।

इति ते कथितं विप्र पावकीयमहीभुजाम् ॥३९॥

कुलं सकलपापघ्नं यथैव शशिसूर्ययोः ।

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि यथा जातः स्वयं हरिः ॥४०॥

इस महीपति ने बीस वर्ष तक राज्य किया था और इसके अनन्तर सहोदधीन के द्वारा सुयोधन के कलाश वाले मृत्यु को प्राप्त होगये थे ॥३६॥ घोरवर्मा परिहर का पुत्र था । इसने कलिंजर में राज्य किया था । इसके यहा शार्दूल ने पुत्र रूप में जन्म धारण किया था ॥३७॥ उसके वंश में जो राजा हुए हैं वे सब शार्दूलोय नाम से प्रसिद्ध थे । शार्दूल के वंश में उत्पन्न बहुधा राजाओं का राष्ट्र है ॥३८॥ जोकि महामाया के प्रभाव से भूमि पर सब ओर हुआ । हे विप्र ! यह तुमको हमने पावकीय राजाओं का कुल कह सुनाया है जो शशि सूर्य के वंश की भांति ही समस्त पापों का नाशक है । अब फिर अन्य भी बताता हूँ । जिस तरह हरि स्वयं समुत्पन्न हुए थे ॥३९-४०॥

### ॥ भगवदवतारादिवृत्तान्त ॥

मध्याह्नकाले संप्राप्ते ब्रह्माणोऽव्यक्तजन्मनः ।

चाक्षुषांतरमेवापि महावायुर्बभूव ह ॥१॥

तत्प्रभावेन हेमाद्रिः कपमानः पुनः पुनः ।

यथा वृक्षस्तथैवासौ तत्कंपादेव मंडलः ॥२॥

नभसो भूतले प्राप्तस्तदा भूमिः प्रकपिता ।

बभूव भुनिशार्दूल सर्वलोकविनाशिनी ॥३॥

सप्तद्वीपाः समुद्राश्च जलभूता बभूविवरे ।

लोकालोकस्तदा शेषोऽभवत्सोत्तरपर्वतः ॥४॥

शेषा भूमिर्लय प्राप्ता मुने मन्वतरे लये ।  
 सहस्राब्दातरे भूमिर्बभूव जलमध्यगा ॥५॥  
 तदा स भगवान्विष्णुर्भवेन विधिना सह ।  
 शशुमार शुभं चक्रं चकार नभसिस्थितम् ॥६॥  
 गृहीत्वा सकलास्नारा ग्रहान्सर्वान्यथाविधि ।  
 स्थापयामास भगवान्यथायोग्य पितामहः ॥७॥

इस अध्याय में ब्रह्माजी के मध्याह्न काल की प्राप्ति होने पर भगवान् के अवतार आदि के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है श्री सूतजी बोले—  
 अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा के मध्याह्न काल के सम्प्राप्त होने पर वाक्षुपान्तर भी या उस समय महावायु हुआ था ॥१॥ उस महावायु का यह प्रभाव हुआ था कि हेमाद्रि बार-बार कम्पमान होगया था, जिस तरह कोई वृक्ष कम्पायमान हुआ करता है उसी तरह यह गिरि कापने लगा था । उसके कम्पन से मण्डल भी नभ से झूलने में प्राप्न होगया था और उस समय यह भूमि भी प्रकम्पित होगई थी । हे मुनि शार्ङ्ग ! उस समय यह सर्व लोको के विनाश करने वाली होगई थी ॥२-३॥ सातों द्वीप और समस्त समुद्र जलमय होगये थे । उस समय में केवल उत्तर पर्वत लोकालोक शेष रह गया था ॥४॥ हे मुने ! शेष सभी भूमि लय को प्राप्त होगई थी और मन्वन्तर का भी लय होगया था । एक सहस्र वर्ष के अन्तर में यह भूमि जल के मध्य में गमन करने वाली होगई थी ॥५॥ उस समय में भगवान् विष्णु ने भव (महादेव) और विधि (ब्रह्मा) के साथ नभ में स्थित शशुमार शुभ चक्र को किया था ॥६॥ भगवान् पितामह ने सम्पूर्ण तागजों को ग्रहण करके तथा समस्त ग्रहों को गृहीत करके यथाविधि यथायोग्य रीति से स्थापित किया था ॥७॥

पुनर्वै ज्योतिषा चक्रैः शोपिता सकला महो ।  
 स्थलीभूमायुताब्दान्ते दृश्यमाना बभूव ह ॥८॥  
 तदा स भगवान्ब्रह्मा मुखात्सोम चकार ह ।  
 द्विजराज महाप्राज्ञं सर्ववेदविशारदम् ॥९॥

भुजाभ्या भगवान्ब्रह्मा क्षत्रराज महाबलम् ।  
 सूर्यं च जनयामास राजनीतिपरायणम् ॥१०॥  
 ऊरुभ्या वैश्यराजं च समुद्र सरिता पतिम् ।  
 रत्नाकर च कृतवान्परमेष्ठी पितामहः ॥११॥  
 पद्मभ्यः च जनयामास विश्वकर्माणमुत्तमम् ।  
 दक्ष नाम कलाभिज्ञं शूद्रराज सुकृत्यकम् ॥१२॥  
 सोमाद्वै ब्राह्मणा जाताः सूर्याद्राजन्यवशजाः ।  
 समुद्रात्सवला वैश्या दक्षाच्छूद्रा वभूविरे ॥१३॥  
 सूर्यमण्डलतो जातो मनुर्वैवस्वतः स्वयम् ।  
 तस्यराज्यमभूत्सर्वं प्राणिना लोकयासिनाम् ॥१४॥  
 फिर ज्योतियो वे चक्रो वे द्वारा समस्त भूमि शोपित हुई थी ।

चतुश्शतानि वर्षाणि परमायुर्नृणा तदा ।

त्रेताया यौवनं प्राप्तं पूर्वार्द्धात्सम्भवो हरे ॥१७॥

वर्षाणि त्रिशतानां च नृणामायुः प्रकीर्तितम् ।

द्वापरे वार्द्धिको देवो नृणामायुः शतद्वयम् ॥१८॥

कली तु मरणं प्राप्तो विश्वरूपो हरिः स्वयम् ।

नृणामायुः शताब्दं च केषांचिद्धर्मशालिनाम् ॥१९॥

पराद्धाद्वामनो देवो महेन्द्रावरजो हरिः ।

चतुर्भुजो महाश्यामो गरुडोपरि सस्थितः ॥२०॥

विश्वरूपहिताय त्रियुगी सवभूव ह ।

वामनार्द्धाच्च त्रियुगो जातो नारायणः स्वयम् ॥२१॥

अति दिव्य युगो की यह एन सप्तति जाननी चाहिए । उस समय वह भगवान् विष्णु विश्वरूपावतार वाले हुए थे ॥१७॥ पूर्वार्द्ध से विष्णु उत्पन्न हुए थे और परार्द्ध से स्वयं वामन हुए थे । सत्य युग में विश्वरूप सनातन वाल देव थे ॥१८॥ उस समय में अर्थात् सत्ययुग में मनुष्यों की परमायु चार सौ वर्ष हुआ करती थी । हरि का पूर्वार्द्ध से सम्भव त्रेता में यौवन को प्राप्त हुआ था ॥१७॥ त्रेता में मानवों की परमायु तीन सौ वर्ष होती थी । द्वापर में देववाधिक होगये और मनुष्यों की आयु दो सौ वर्ष की ही रह गई थी ॥१८॥ कलियुग में विश्वरूप हरि स्वयं मरण को प्राप्त हो गये थे और कुछ धर्मशाली मानवों की परमायु केवल एक सौ वर्ष की ही हो गई थी ॥१९॥ परार्द्ध से वामन देव जो महेन्द्र के अवरज हरि थे । यह चार भुजा वाले महान् श्याम वर्ण से युक्त और गरुड पर सस्थित थे ॥२०॥ विश्वरूप के हित के लिये इस तरह त्रियुगी हुए थे । वामनार्द्ध से नारायण स्वयं समुत्पन्न हुए थे ॥२१॥

श्वेतरूपो हरिः सत्ये हंसायुगो भगवान्स्वयम् ।

त्रेताया रक्तरूपश्च यज्ञाख्यो भगवान्स्वयम् ।



कलिकाले तु संप्राप्ते सध्याया द्वापरे युगे ।  
 कला तु सकला विष्णोर्वामनस्य तथा कला ।  
 एकोभूता च देवक्या जातो विष्णुस्तदा स्वयम् ॥२३॥  
 वसुदेवगृहे रम्ये मथुराया च देवता ।  
 ब्रह्माद्यास्तुष्टुबुद्धेः पर ब्रह्म सनाननम् ॥२४॥  
 तदा प्रसन्नो भगवान्देवानाह शुभ वचः ।  
 देवानां च हितार्थाय दैत्यानां निघनाय च ।  
 अहं कलौ च बहुधा भवामि सुरसत्तमाः ॥२५॥  
 दिव्यं वृं दावन रम्यं सूक्ष्मं भूतलसंस्थितम् ।  
 तनाहं च रहःक्रीडा करिष्यामि कलौ युगे ॥२६॥  
 सर्वे वेदाः कलौ घोरे गोपीभूताः समततः ।  
 रस्यन्ते हि मया साद्धं त्यक्त्वा भूमडलं तदा ॥२७॥  
 राधया प्रार्थितोऽहं वै यदा कलियुगातके ।  
 समाप्य च रहःक्रीडां कल्पी च भवितास्म्यहम् ॥२८॥

मत्स्ययुग में हरि हस्ताक्षर भर्मात् हंम नाम वाले स्वयं भगवान् द्वापरे  
 रूप वाले थे । त्रेता में रक्त रूप वाले भगवान् स्वयं यज्ञ नाम वाले हुए  
 थे । द्वापर में पीत रूप वाले अर्जुन पीत वर्ण से युक्त स्वयं हरि स्वर्ण-  
 गर्भ में थे ॥२२॥ कलिकाल में संप्राप्त होने पर द्वापर युग की सध्या में  
 विष्णु की समस्त कला तथा वामन की कला ये समस्त देवकी में एकी-  
 भूत हो गई थी उस समय भगवान् विष्णु ने जन्म धारण किया  
 था ॥२३॥ वसुदेव के रम्य गृह में मथुरा पुरी में ब्रह्मा आदि समस्त  
 देवता एकत्रित हुए और इन सब ने सनातन परब्रह्म देव की स्तुति की  
 थी ॥२४॥ उस समय परम प्रसन्न भगवान् ने देवों से यह यचन कहा  
 था कि देवों के दिन सम्पादन करने के लिए तथा दैत्यों के विनाश करने  
 के लिये हे गुरु योगे ! मैं बहुधा कलियुग में होता हूँ ॥२५॥ गृन्दावन  
 परम दिव्य-रम्य एवं सूक्ष्म है और भूमण्डल में संस्थित है । यहाँ पर मैं  
 कलियुग में रहस्य की क्रीडा करूँगा ॥२६॥ समस्त वेदगण इस घोर  
 कलियुग में सब ओर में गोपीयों के स्वरूप में होकर मेरे माघ यज्ञ

रमण करेगे और समस्त भ्रमण्डल वा त्याग कर देंगे ॥२७॥ इस कलियुग के अन्त में राधा के द्वारा जिस समय मैं प्रापित होऊंगा तो उस रत्न क्रीडा को समाप्त करके फिर मैं बत्की होऊंगा ॥२८॥

युगात्प्रलयं कृत्वा पुनर्भूत्वा द्विधातनु ।

सत्यधर्मं करिष्यामि सत्यं प्राप्ते सुरोत्तम ॥२९॥

इति श्रुत्वा तु ते देवास्तस्यैवान्तर्लयं गताः ।

एव युगेयुगे क्रीडा हरेरद्भुतकर्मण ॥३०॥

ये तु वै विष्णुभक्ताश्च ते हि जानति विश्वगम् ।

यथैव नृपतेर्दासा स्वराज्ञः कार्यगौरवम् ।

जानति नापरे विप्रः तथा दासा हरे स्वयम् ॥३१॥

विष्णुवाद्यानुसारेण विष्णुमाया सनातनी ।

रचित्वा विविधांलोकान्महाकाली बभूव ह ॥३२॥

कृत्वा कालमयं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।

पश्चात्तु भक्षयित्वा तान्महागौरी भावयति ॥३३॥

नमस्तस्यै महाकाल्यै विष्णुमाये नमोनमः ।

महागौरि नमस्तुभ्यमस्मान्पाहि भयान्वितान् ॥३४॥

युगान्त का प्रलय करके फिर द्विधा तनु हो कर हे सुरोत्तमो ! मैं सत्य के प्राप्त होने पर सत्य धर्म को करूंगा ॥२९॥ इस प्रकार के भगवान् के वचनों को श्रवण करके वे देवगण वहां पर ही अतर्हित हो गये थे । इस प्रकार से युग-युग में अद्भुत कर्म वाले हरि की क्रीडा होती है ॥३०॥ जो भगवान् विष्णु के भक्त होते हैं वे ही विश्वग को जानते हैं । जिस तरह से राजा के समीपस्थ जो दास होते हैं वे ही उस अपने राजा के कार्यों के गौरव को भली-भांति जाना करते हैं । हे विप्र ! दूसरे इस रहस्य को नहीं जानते हैं जैसा कि हरि के दास स्वयं जानते हैं ॥३१॥ भगवान् विष्णु की इच्छा के अनुसार सनातनी विष्णुमाया ने अनेक लोकों की रचना करके वह महाकाली हो गई थी ॥३२॥ इस चर और अचर समस्त जगत् को कालमय करके और पीछे उनका भक्षण करके वह महागौरी हो जायगी ॥३३॥ हे विष्णुमाये ! महाकाली आपके

लिये नमस्कार है तथा बार-बार नमस्कार है । हे महागौरि ! आपके लिये नमस्कार है । भय से युक्त हमारी रक्षा करो ॥३४॥

### ॥ दिल्ली के म्लेच्छ राजा ॥

महीराजान्मुनिश्रेष्ठ के राजानो वभ्रूविरे ।  
 तान्नो वद महाभाग सर्वज्ञोऽस्ति भवान्सदा ॥१॥  
 पैंशाचः कुतुकोद्दीनो देहलीराज्यमास्थितः ।  
 वलीगढ महारम्य यादवं रक्षित पुरम् ।  
 ययौ तत्र स पैंशाचः भूरायुतममन्धितः ॥२॥  
 वीरसेनस्य वै पीत्रं भूपसेन नृपोत्तमम् ।  
 स जित्वा कुतुकोद्दीनो देहलीग्राममास्थितः ॥३॥  
 एतस्मिन्नंतरे भूपा नानादेश्याः समागताः ।  
 जित्वा स कुतुकोद्दीनः स्वदेशात्तं निर्युक्तः ॥४॥  
 सहोद्दीनस्तु तच्छ्रुत्वा पुनरागत्य देहलीम् ।  
 जित्वा भूपान्दैत्यवरो मूर्तिछडमथाकरोत् ॥५॥  
 तत्पश्चाद्बहुधा म्लेच्छा इहागत्य ममन्ततः ।  
 पंचपट्सप्तवर्षाणि कृत्वा राज्यं सय गताः ॥६॥  
 अद्यप्रभृति देशोऽस्मिच्छन्नवर्षान्निरे हि ते ।  
 भूत्वा चाल्पायुषो मन्दा देवतीर्थविनाशकाः ॥७॥

गया था ॥२॥ नृपों में अति उत्तम वीरसेन का पौत्र भूपसेन वहाँ पर  
था उसको जीत कर कुतुकोद्दीन देहली में सस्थित हो गया था ॥३॥  
२२ अन्तर में अनेक देशों में रहने वाले भूप वहाँ पर आये थे ।  
कुतुकोद्दीन ने उन सबको जीत लिया था और वह अपने देश से उनके  
द्वारा निराकृत हो गया था ॥४॥ यह सुन कर फिर सहोद्दीन पुनः  
देहली में आ गया था और उस दैत्यवर ने उन भूपों को जीत कर  
भूतियों का खण्डन किया था ॥५॥ उसके पश्चात् बहुधा सब ओर से  
यहाँ आये थे और पाँच छै सात वर्षों तक राज्य करके लय को प्राप्त हो  
गये थे ॥६॥ आज तक इस देश में मौ वष से वे होकर यहाँ रहे हैं जो  
मल्प आयु वाल मन्द और देवों तथा तीर्थों के विनाश करने वाले  
हैं ॥७॥

म्लेच्छभूपा मुनिश्रेष्ठास्तस्माद्यय मया सह ।  
गतुमर्ह्य वै शीघ्र विशाला नगरी शुभाम् ॥८॥  
इति श्रुत्वा तु वचनं दुःखात्सत्यज्य नैमिषम् ।  
ययुः सर्वे विशालाया हिमाद्रौ गिरिसत्तमे ॥९॥  
तत्र सर्वे समाधिस्था ध्यात्वा सर्वमय हरिम् ।  
शतवर्षांतरे सर्वे ध्यानाद्ब्रह्मगृहं ययुः ॥१०॥  
इत्येव सकल भाव्य योगाभ्यासवशाद्द्रुतम् ।  
वर्णितं च मया तुभ्य किमयच्छ्रोतुमिच्छसि ॥११॥  
भगव वेदतत्त्वज्ञ सर्वलोकशिवकर ।  
अहं मायाभवो जातो भवावेदभवो भुवि ॥१२॥  
अविद्यया च सकलं मम ज्ञानं समाहृतम् ।  
अतोऽहं विविधा योनीर्गृहीत्वा लोकमागतं ॥१३॥  
परं ब्रह्मैव कृपया दृष्ट्वा मां मदभागिनम् ।  
व्यासरूपं स्वयं कृत्वा समुद्धतुं मयागतं ॥१४॥

हे मुनिश्रेष्ठो ! इस कारण से आप सब लोग मेरे साथ शीघ्र ही  
इस विशाल शुभ नगरी को जाने के योग्य होते हो ॥८॥ इस वचन का  
श्रवण करके वे सब बड़े ही दुःख के साथ नैमिष का परित्याग करने

गिरियो मे श्रेष्ठ हिमाद्रि मे विशाला मे चले गये थे ॥६॥ वहा पर सब ममाधि मे स्थित हो गये थे और सर्वमय हरि का ध्यान करके शत वर्ष के अन्तर मे ध्यान से वे ब्रह्म गृह को चले गये थे ॥१०॥ व्यासजी न कहा—इस प्रकार से यह सब होने वाला जो कुछ था वह योगाभ्यास से शीघ्र ही मैंने तुमको वर्णन करके सुना दिया है । अब आगे और तुम क्या श्रवण करना चाहते हो ? ॥११॥ मनु ने कहा—हे भगवन् ! आप समस्त वेदो के तत्त्वो को जानने वाले हैं और सब लोको के कल्याण के करने वाले हैं । मैं तो यहा माया होने वाला उत्पन्न हुआ हूँ और आप भूमि पर वेदो से उत्पन्न होने वाले हैं ॥१२॥ अविद्या से मेरा सम्पूर्ण ज्ञान समाहृत हो गया है । इसलिये मैं अनेक प्रकार की योनियो को प्राप्त करके इस लोक मे आया हू ॥१३॥ मुझ मन्द भाव्य वाले को देख कर ब्रह्म ही कृपा कर स्वयं व्यास के रूप को धारण करके मेरा उद्धार करने के लिये यहा सम्प्राप्त हुए हैं ॥१४॥

नमस्तस्मै मुनीन्द्राय वेदज्यासाय साक्षिणे ।

अविद्यामोहभावेभ्यो रक्षणाय नमोनम. ॥१५॥

पुनरन्यच्च मे ब्रूहि सूताद्यै किं कृतं मुने ।

तत्सर्वं वृषया स्वामिन्बबनुमर्हमि साप्रतम् ॥१६॥

ब्रह्माडे ये स्थिता लोकास्ते सर्वेस्मिन्कलेबरे ।

अहकारो हि जीवात्मा सर्वं स्यात्कोटिहीनवः ॥१७॥

पुराणोऽणोरणीयाश्च षोडशात्मा सनातनः ।

इन्द्रियाणि मनश्चैव पञ्च चेन्द्रियगोचरा ॥१८॥

ज्ञेयो जीवः शरीरेऽस्मिन्स ईशगुणवधितः ।

ईशो ह्यष्टादशात्मा वै शकरो जीवशकरः ॥१९॥

बुद्धिर्मानसं विषया इन्द्रियाणि तथैव च ।

अहंकारस्म चेशो वै महादेवः मनाननः ॥२०॥

जीवो नारायणस्माक्षाच्छक्रेण विमोहितः ।

स यद्वस्त्रिगुणैः पार्श्वैरेव च बहुधाभवत् ॥२१॥

मुनियो म परम श्रेष्ठ क्षिरोमणि साक्षी स्वरूप उन आप वेद व्यास  
 क लिये मेरा नमस्कार है । अविद्या और मोह के भावो स रक्षा करने  
 वान आपक लिये मेरा बार बार नमस्कार है ॥१५॥ हे मुन ! फिर  
 और मुझे आप बताइये कि सूत आदि ने क्या किया था । हे स्वामिन् ।  
 वह सभी अब आप कृपा करके मुझे बताने के योग्य होते हैं ॥१६॥  
 व्यामजी ने कहा—ब्रह्माण्ड मे जो लोक स्थित हैं वे सब इस कलवर  
 म हैं । अहंकार यह सब जीवात्मा है जो कोटिहीनक है ॥१७॥ पुराण  
 और अणु से भी छोटा यह सनातन जीवात्मा षोडश स्वरूप वाला है ।  
 पाँच ज्ञानन्द्रिया और पाँच कर्मेन्द्रिया और एक मन तथा पाँच इन्द्रियो  
 के गोचर विषय हैं । इस तरह ये सोलह रूप वाला है ॥१८॥ वह ईश  
 गुण से वधित इस शरीर मे जीव जानना चाहिए । ईश अष्टदशात्मा  
 जीवो के कल्याण करने वाला शरर है ॥१९॥ बुद्धि-मन विषय इन्द्रिया  
 और अहंकार और वह सनातन ईश महादेव है ॥२०॥ जीव साक्षात्  
 नारायण है वह शरर के द्वारा विमोहित हो रहा है । वह त्रिगुण पाशा  
 व द्वारा बद्ध हो रहा है और एक तो बहूधा होता था ॥२१॥

कालात्मा भगवानीशो महाकल्पस्वरूपक ।

शिवकल्पो ब्रह्मकल्पो विष्णुकल्पस्तृतीयक ।

ईशनेत्राणि तान्येव बन्धकल्पश्चतुर्थक ॥२२

वायुकल्पो वह्निकल्पो ब्रह्माडो लिङ्गकल्पक ।

ईशवक्राणि पञ्चैव तत्त्वज्ञे कथिनानि वै ॥२३

भविष्यकल्पश्च तथा तथा गरुडकल्पक ।

कल्पो भागवतश्चैव मार्कण्डेयश्च कल्पक ॥२४

वामनश्च नृसिंहश्च वराहो मत्स्यकूर्मकौ ।

ज्ञानात्मनो महेशस्य ज्ञेया दश भुजा बुधै ॥२५

अष्टादशदिनेष्वेव ब्रह्माणोऽव्यक्तजन्मन ।

कल्पाश्चाष्टादशास्सर्वे बुधैर्ज्ञेया विलोमत ॥२६

कूर्मकल्पश्च तत्राद्यो मत्स्यकल्पो द्वितीयक ।

तृतीय श्वेतवाराह कल्पो ज्ञेय पुरातन ॥२७

द्विधा च भगवान्ब्रह्मा सूक्ष्म स्थूलोऽगुणो गुणी ।

सगुण स विराण्णाम्ना विष्णु नाभिसमुद्भव ॥२८

भगवान् ईश कानात्मा महाकल्प स्वरूप वाले हैं । तीन कल्प हैं—  
शिव कल्प, ब्रह्म कल्प और तीसरा विष्णु कल्प है । वे तीनों ही ईश क  
नेत्र होते हैं । चौथ व घ कल्प होता है ॥२२॥ वायु कल्प—वह्निकल्प—  
ब्रह्माण्ड कल्प—निग कल्प इन पाँचो कल्पों को ही ईश के तत्त्वों के  
द्वारा मुख कहे गये हैं ॥२३॥ भविष्य कल्प—गरुड कल्प—भागवत कल्प—  
माकण्डेय कल्प—यामन वृसिह वराह मत्स्य और कूर्म ये ज्ञानात्मा महेश  
की पुष्टी के द्वारा दश भुजा जानी गई हैं ॥२४ २५॥ अव्यक्त ज मा ब्रह्म  
क अठारह त्रिंशो में ही ये सब अष्टादश कल्प विलोम से विद्वानों के द्वारा  
जानने चाहिए ॥२६॥ उनमें आद्य अर्थात् सब से प्रथम होने वाला कूर्म  
कल्प है और दूसरा मत्स्यकल्प होना है । तृतीय कल्प का नाम श्वेत  
वराह कल्प है जो कि पुरातनों के द्वारा जानने के योग्य होता है ॥२७॥  
भगवान् ब्रह्मा दो प्रकार के रूप वाले हैं—सूक्ष्म और स्थूल तथा अगुण  
और गुणी ये दो रूप हैं । सगुण वह विराट नाम वाले विष्णु की नाभि  
से उत्पन्न होने वाले हैं ॥२८॥

निर्गुणोऽव्ययरूपश्चाव्यक्तज मा स्वप् स्वयम् ।

ब्रह्माण सगुणस्यैव शनायु कालनिर्मितम् ॥२९

ऊर्तविंशसहस्राणि लक्षको मानुषाब्दकै ।

एभिर्वर्षे दिन ज्ञेय विराजो ब्रह्माण स्वयम् ॥३०

निर्गुणोऽव्यक्तजन्मा च कालात्सर्वेश्वर पर ।

अव्यक्त प्रवृत्तिर्ज्ञेया द्वादशागानि वै तत ॥३१

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरव्यक्तस्य स्मृतानि वै ।

अव्यक्ताश्च पर ब्रह्म मूढमज्योनिस्तदव्ययम् ॥३२

यदा व्यक्ते स्य प्राप्तोऽव्यक्तजन्मा हि सस्मृत ।

शतवर्षसमाधिस्यो यस्तिष्ठेच्च निरतरम् ॥३३

मूढमो मनोनिर्लो भूत्वा गच्छेद्ब्रह्माण पदम् ।

सत्य लोवमिति ज्ञेय योगगम्य सनातनम् ॥३४

तत्र स्थाने तु मुनयो गत सर्वे समाधिना ।

तत्रोपित्वा च लक्षाब्द भूलोकात्क्षणमात्रकम् ॥३५॥

जा निर्गुण है वह अन्यत्र रूप वाले—अव्यक्त जन्म वाले स्वयं स्वभू हैं । मनुष्य ब्रह्मा की ही काल से निर्मित शतायु होती है ॥२६॥ मनुष्य १० वर्षों से एक लाख उन्नीस हजार वर्ष विराट् ब्रह्मा का स्वयं एक दिन होता है ॥३०॥ जो निर्गुण ब्रह्मा का स्वरूप है वह तो अव्यक्त जन्म वाला है और काल से भी परे है तथा सब का ईश्वर है । अव्यक्त प्रकृति जाननी चाहिये अर्थात् प्रकृति को ही अव्यक्त कहा जाता है । उसके बारह अंग होते हैं । वे अव्यक्त के बारह अंग पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि ये होते हैं । ब्रह्म अव्यक्त से पर है वह सूक्ष्म ज्योति और अव्यय होता है ॥३२॥ जिस समय में व्यक्त में स्वयं प्राप्त होता है तो अव्यक्त जन्मा सम्भूत होता है । शत वर्ष पर्यन्त समाधि में जो निरन्तर स्थित होता है वह सूक्ष्म मनोज्ञ होकर ब्रह्मा के पद को प्राप्त होता है । वह सत्य लोक जानने के योग्य है । जो समाधितन अर्थात् सर्वदा रहन वाला और योग के द्वारा गम्य होता है ॥३३-३४॥ उस स्थान पर समाधि के द्वारा समस्त मुनि गण गये थे । भूलोक से क्षणमात्र के लिये वहाँ एक लक्ष वर्ष तक निवास करते हैं ॥३५॥

सच्चिदानन्दघनक तत प्राप्ता कलेवरे ।

नेत्राणि च समुन्मील्य सप्राप्ते द्वितयाह्निके ॥३६॥

ददृशुर्मनुजान्सर्वान्पशुतुल्यान्हि सूक्ष्मकान् ।

पृथग्ब्रह्मायुषु तान्घोरान्साद्धं किष्कुद्वयोनतान् ॥३७॥

क्वचित्क्वचित्स्थिता वर्णा वर्णसकरसन्निभा ।

सर्वे म्लेच्छाश्च पापडा बहुरूपमतो स्थिता ॥३८॥

तीर्थानि सकला वेदास्त्यक्त्वा भूमडल तदा ।

गोप्यो भूत्वा च हरिणा साद्धं चक्रुर्महोत्सवम् ॥३९॥

पापडा बहुजातीया नानामार्गप्रदर्शका ।

कलिना निर्मितान्वर्णान्वर्चयित्वा स्थिता भुवि ॥४०॥



इति दृष्ट्वा तु मुनयो रोमहर्षणमतिके ।

गत्वा तत्र भवष्यति ततः प्राजलयो हि तं ते ॥४१॥

तंश्च तत्र स्तुतः सूतो योगनिद्रा सनातनीम् ।

कथयिष्यति सत्यज्य कल्पाद्यान् मुनी-प्रति ।

तच्छृणुष्व नृपश्रेष्ठ यथा सूतेन वर्णितम् ॥४२॥

इसके पश्चात् बलेवर मे सच्चिदानन्द धन को प्राप्त हुए थे । द्वितीय दिन के प्राप्त होने पर आँखों को खोल कर ममस्त सूक्ष्म मनुजा को पशु के तुल्य उहोने देखा था । जिनकी साठ वर्ष की आयु थी धीरे धीरे और ढाई किष्कु के समान ऊँचे थे ॥३६ ३७॥ उहोने देखा था कि यज्ञा कहीं कहीं पर वर्ण थे जो कि वणसकर के ही तुल्य थे । सभी लोग म्लेच्छ पाखण्ड से भरे हुए और बहुत प्रकार के मतों एवं रूपों में स्थित थे ॥३८॥ समस्त तीर्थ और वेद उस समय में इस भूमण्डल का त्याग कर गये थे । वे सब गोपियाँ होकर हरि के साथ महोत्सव करत थे ॥३९॥ पाखण्ड से पूरा बहुत सी जातियों वाले तथा अनेक मार्गों के प्रदर्शन करने वाले थे । वे सब भूतल पर कलि के द्वारा निर्मित वनों को वञ्चित करके स्थित होने वाले थे ॥४०॥ इस प्रकार की भूमण्डल की दशा को देख कर मुनिगण रोमहर्षण के समीप में जाकर वहाँ पर होंगे । इससे पश्चात् वे सब प्राज्ञानि वाले होंगे । उन सब के द्वारा स्तुति किये सूत सनातनी योगनिद्रा को कहेंगे और मुनियों से जो कल्पाद्यान् कहत उसका त्याग करेंगे । हे नृप श्रेष्ठ ! अब उगवा श्रवण करो जैसा मृतजी ने यणन किया था ॥४१ ४२॥

कल्पाद्यान् प्रवक्ष्यामि यदृष्ट योगनिद्रया ।

तच्छृणुष्व मुनिश्रेष्ठा लक्ष्माब्दाते यथाभवत् ॥४३॥

मुकुटावयसम्भूतो म्लेच्छभूप पिशाचक ।

नाम्ना तिमिरलिङ्गश्च मध्यदशमुपाययो ॥४४॥

आर्या म्लेच्छान्तदा भूपाक्षित्वा कालस्वरूपक ।

देहलीनगरीमध्ये महावधमकारयत् ॥४५॥

आहूय सकलान्विप्रानार्यदेशनिवासिनः ।

उवाच वचन धीमान्यूय मूर्तिग्रपूजका ॥४६॥

निर्मिता येन या मूर्तिस्तस्य पुत्रीसमा स्मृता ।

तस्या किं पूजन शुद्ध शालग्रामशिलामयम् ।

विष्णुदेवश्च युष्माभि प्रोक्ता स तु न वै हरिः ॥४७॥

अतो व सकला वेदा शास्त्राणि विविधानि च ।

वृथा कृतानि मुनिभिर्लोकवन्दनहेतवे ।

इत्युक्त्वा ताम्बलद्गृह्य ज्वलदग्नीं समाक्षिपत् ॥४८॥

शालिग्रामशिला. सर्वा बलारोपा सुपूज्यवा ।

गृहीत्वा चोष्टृपृष्ठेषु समारोप्य गृहं ययौ ॥४९॥

सूतजी न कहा—मैं कल्पाख्यान का वर्णन करूंगा जो यागनिद्रा व द्वारा देखा गया है । हे मुनि श्रेष्ठो ! हाथ अब उसका श्रवण करो । एक लक्ष वर्ष के अन्त में जिस तरह से हुआ था ॥४३॥ मुकुल नाम वाल ब्रह्म में उत्पन्न म्लेच्छ राजा पिशाचक जिसका नाम तिमिर लिंग (तैमूर लंग) था मध्य देश में आया था ॥४४॥ कान के समान स्वरूप वाले उसने आय भूप और म्लेच्छ भूप इन सब को जीत लिया था और देहली नगरी के मध्य में महान् ब्रह्म उसने कराया था ॥४५॥ उसने आय देश के निवास करने वाले समस्त ब्राह्मणों को बुलाकर कहा—आप बुद्धिमान हैं और मूर्ति का पूजन करने वाले हैं ॥४६॥ जिसने जिस मूर्ति का निर्माण किया है वह तो उसकी पुत्री के ही समान होती है क्योंकि उसे उसने पुत्री के समान बना कर तैयार किया है । क्या उसका यजन करना शुद्ध है अथवा शिलामय शालग्राम का पूजन शुद्ध है ? आप लोगो ने विष्णु को देव कहा है किन्तु वह तो हरि नहीं है ॥४७॥ इसलिये आपके समस्त देवता सम्पूर्ण वेद और सब शास्त्र जो कि अनेक प्रकार के हैं, इन सबकी रचना मुनियों ने व्यर्थ ही की है और केवल लोको की वचना करने के लिये ही इनका निर्माण किया गया है, इनमें कुछ भी तथ्याश नहीं है । इस प्रकार से कह कर उनको बलात् ग्रहण करके जलती हुई अग्नि में फेंक दिया था ॥४८॥ समस्त शालग्रामों की

शिलाभो वो जो कि सुपूज्य थी उन्हें जबदंस्ती से छीन कर ऊँटो की पीठ पर लदवाकर गृह को चला गया था ॥४६॥

तैत्तिर देशमागम्य दुर्गं तत्र चत्वार सः ।  
 शालिग्रामशिलानां च स्वासनारोहणं कृतम् ॥५०॥  
 तदा तु सकला देवा दुःखिता वासव प्रभुम् ।  
 समूचुर्वहुधालप्य देवदेव शचीपतिम् ॥५१॥  
 वयं तु भगवन्सर्वे शालग्रामशिलास्थिताः ।  
 त्यक्त्वा मूर्तींश्च सक्ताः कृष्णाशेन प्रबोधिताः ।  
 शालग्रामशिलामध्ये वसामो मुदिता वयम् ॥५२॥  
 शिलास्सर्वाश्च नो देव शालदेशसमुद्भवाः ।  
 ताश्च वै म्लेच्छराजेन स्वपदारोहणीकृताः ॥५३॥  
 इति श्रुत्वा तु वचनं देवानां भगवान्स्मरात् ।  
 शात्वा बलिं कृतं सर्वं देवपूजानिराकृतम् ॥५४॥  
 श्रुत्वापि भगवानिन्द्रो दैत्यान्प्रत्यभ्रवाहनः ।  
 गृहीत्वा यथ्यमतुलं स्याद्युधं दैत्यनाशनम् ।  
 तैत्तिरे प्रेषयामास देशे म्लेच्छनिवासवे ॥५५॥  
 तस्य शब्देन सक्ता देशाश्च बहुभिन्नयाः ।  
 स म्लेच्छो मरणं प्राप्तस्तदा सयसभाजनैः ॥५६॥  
 शालाग्रामशिला सर्वा गृहीत्वा विबुधाम्भदाः ।  
 गदयया च समादिप्य स्वगनोरमुपाययुः ॥५७॥

हाने वाली वाली हमारी सम्पूर्ण शिलाएँ जो थी जिन में हम लोग निवास किया करते थे उनको ने जाकर म्लेच्छ राज ने अपने पैरो व नीच लगाकर उन पर आरोहण कर लिया है ॥५३॥ इस प्रकार व म्बराट भगवान् इन्द्र ने देवों के वचनों को सुनकर उस बलि के द्वारा किया हुआ यह देव पूजा का निरादर सब जानकर भगवान् इन्द्र जो अश्व वाहन थे दैत्यों के प्रति बहुत अधिक क्रोधित हुए थे । उन्होंने दैत्यों व नाश करने वाला अतुल बल अपना आयुध ग्रहण किया था और उन्हे म्लेच्छ के निवास स्थान तैत्तिर देश में प्रेषित कर दिया था ॥५४ ५५॥ उनके शब्द से ही ममस्त देश बहुत टुकड़ों में छिन्न भिन्न हो गये थे और वह म्लेच्छ मृत्यु को प्राप्त हो गया था । तब समस्त सभासद् मनुष्यों ने व सम्पूर्ण शालग्राम की शिलाओं को जो पण्डित थे उन्होंने लेकर गण्डकी नदी में फेंक दिया था और वे सब स्वर्ग लोक को चले गये थे ॥५६ ५७॥

महे द्रस्तु सुरं साढं देवपूज्यमुवाच ह ।

महीतले कलौ प्राप्ते भगवन्दानवोत्तमा ॥५८

वेदधर्मं समुल्लध्य मम नाशनतत्परा ।

अतो मा रक्ष भगवन्दवे साढं कलौ युगे ॥५९

महेन्द्र तव या पत्नी शची नाम्ना महोत्तमा ।

ददौ तम्यं वर विष्णुभवितास्मि सुत कलौ ॥६०

स्वदाज्ञया च सा देवी पुरी शातिमयी शुभाम् ।

गौडदेशे च गगाया कूले लोकनिवासिनीम् ॥६१

प्रत्यागत्य द्विजो भूत्वा कायसिद्धिं करिष्यति ।

भवा वै ब्राह्मणो भूत्वा देवकार्यं प्रसाधय ॥६२

इति श्रुत्वा गुरोर्वक्तु रूद्रं रेकादशे सह ।

अष्टभिवसुभि सार्धमश्विभ्या स च वासव ॥६३

तीथराजमुपागम्य प्रयागं च रविप्रियम् ।

बृहस्पतिस्तदागत्य सूर्यमाहात्म्यमुत्तमम् ।

इन्द्रादीन्कथयामास द्वादशाध्यायमापठन् ॥६५॥

तब महेन्द्र ने देवों के साथ जाकर देव पूज्य से कहा था—महीतल में कलियुग के प्राप्त होने पर हे भगवन् ! दानवोत्तम वेद के धर्म का उल्लंघन करके मेरे नाश करने में तत्पर होंगे । इसलिए हे भगवन् ! देवों के साथ इस कलियुग में मेरी रक्षा करना ॥५६॥ जीव ने कहा—हे महेन्द्र ! आपकी जो महान् उत्तम शची नाम वाली है उसको विष्णु भगवान् ने वरदान दिया था कि मैं कलियुग में तेरा पुत्र होऊँगा ॥६०॥ आपकी आज्ञा से वह देवी गौड देश में भागीरथी गंगा के तट पर लोक निवासिनी शुभ शान्तिमयी पुरी में आकर द्विज होकर कार्य की सिद्धि करेगी । आप ब्राह्मण होकर देवों के कार्य का प्रसाधन करिए ॥६१-६२॥ यह गुरु का वाक्य सुन कर एकादश रुद्र और आठ वसुओं के साथ तथा अश्विनी कुमारों को साथ लेकर उस वासव (इन्द्र) ने रविदेव के परम प्रिय तथा समस्त तीर्थों के राजा प्रयाग में आकर माघ मास में जब भकर राशि पर सूर्यदेव स्थित हुए थे उस समय में वहा इन्द्र ने सूर्य देव को सन्तुष्ट किया था ॥६३-६४॥ उस समय देवों के गुरु बृहस्पति ने वहा आकर परम उत्तम सूर्य देव का माहात्म्य के बारह अध्याय इन्द्रादि देवों के आगे कहा था और उन्होंने उस माहात्म्य के बारह अध्यायों को पढ़ा था ॥६५॥

॥ चैतन्य और शंकराचार्य उत्पत्ति ॥

विष्णुशर्मा पुरा कश्चिद्विप्रोभूद्वेदपारगः ।

सर्वदेवमय विष्णु पूजयित्वा प्रसन्नधी ॥१॥

अन्येस्सुरैश्च संपूज्यो बभूव हरिपूजनात् ।

भिक्षावृत्तिपरो नित्यं पत्नीमान्पुत्रवर्जितः ॥२॥

यदाचित्तस्य गेहे यं ग्रन्थी कश्चित्ममागतः ।

द्विजपत्नी तदैवाकी भक्तिनग्रा दरिद्रिणीम् ।

दृष्ट्वा च महाभागः स स्पर्शायो दयापरः ॥३॥

अनेन स्पर्शमणिना लोहधातुश्च काचनम् ।  
 भवेत्तस्मान्महासाध्वि त्रिदिनांतं गृहाण तम् ॥४॥  
 स्नात्वा तावत्सरय्वा चायास्यामि तेतिक मुदा ।  
 इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो ब्राह्मणो बहु काचनम् ।  
 कृत्वा लक्ष्मीं समाप्यासीद्विष्णुशर्मा तदागमत् ॥५॥  
 बहुस्वर्णयुता पत्नी दृष्ट्वा च हरिप्रियः ।  
 गच्छ नारि मदाधूर्णं यत्न वै रसिको जनः ॥६॥  
 अहं विष्णुपरो दीनश्चौरभीतः सदैव हि ।  
 मधुमत्तां कथं त्वा वं गृहीतुं भुवि च क्षमः ॥७॥

इस अध्याय में कृष्ण चैतन्य भगवान् की उत्पत्ति के वृत्तान्त का वर्णन तथा भगवान् शंकराचार्य की उत्पत्ति के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । जीव (वृहस्पति) ने कहा—पहिले समय में समस्त देवों का पारगामी अर्थात् पूर्ण विद्वान् विष्णु शर्मा नामक कोई ब्राह्मण हुआ था यह समस्त देवों से परिपूर्ण भगवान् विष्णु का पूजन करके प्रसन्न बुद्धि वाला रहा करता था ॥१॥ भगवान् हरि के पूजन करने के प्रभाव से अन्य मुरों के द्वारा भी यह सम्पूज्य होगया था । यह भिक्षा वृत्ति में नित्य तत्पर रहता था और पत्नी वाला तो था किन्तु पुत्र से रहित था ॥२॥ किसी समय में उसके घर में कोई ब्रती आया था । उसने उसकी पत्नी को उस समय में अकेली भक्ति भाव से परम विनम्र और दरिद्रिणी देखी थी । ऐसा देख कर स्पर्शमणि रखने वाला-दयापरायण वह महाभाग उस द्विज पत्नी से बोला—॥३॥ इस स्पर्श मणि से स्पर्श कराते ही लोहा सुवर्ण हो जाता है । इसलिए हे महासाध्वि ! इसे तू तीन दिन तक ग्रहण कर अपने पास रख ले ॥४॥ मैं तब तक सरयू में स्नान करके तेरे पास आनन्द पूर्वक आऊंगा । यह कह कर वह विप्र चला गया था । उस ब्राह्मण ने बहुत सा सुवर्ण बना कर लक्ष्मी को समाप्त करके बैठी थी उस समय विष्णु शर्मा आगया था ॥५॥ उस हरि के प्रिय ने बहुत सुवर्ण से युक्त पत्नी को देख कर उससे कहा—हे महाधूर्ण नारि ! तू वही चली जा जहा वह रसिक व्यक्ति रहता है ॥६॥ मैं तो विष्णु

परायण दीन है और सदा ही चोरो से भयभीत रहता है । तुझ मधुमत्ता को मैं इस भूमि तल में कैसे ग्रहण करने में समर्थ हो सकूँगा ॥७॥

इति श्रुत्वा वचो घोर पतिभीता पतिव्रता ।

सस्वर्णं स्पशक तस्मै दत्त्वा सेनापराभवत् ॥८॥

द्विजोऽपि घर्घरामध्ये तद्द्रव्यं बलतोऽक्षिपत् ।

त्रिदिनान्ते च स यतिस्तत्रागत्य मुदान्वितः ।

उवाच ब्राह्मणी दीना स्वर्णं किं न कृतं त्वया ॥९॥

साह भो भूतपतिशुद्धो गृहीत्वा स्पर्शकं रूपा ।

घर्घरे च निचिक्षेप ततोह बह्निपाकिनी ।

निर्लोहो वतते विप्रस्ततः प्रभृति हे गुरो ॥१०॥

इति श्रुत्वा तु वचनं स यतिर्विस्मयान्वितः ।

स्थित्वा दिनान्ते तं विप्रमुवाच बहु भर्त्सयन् ॥११॥

दरिद्रो भिक्षुकश्चास्ति भयाद्देवेन मोहितः ।

देहि मे स्पर्शकं शीघ्रं नो चेत्प्राणास्त्यजाम्यहम् ॥१२॥

इत्युक्तवत् यतिनं विष्णुं शर्मा तदाश्रयीत् ।

गच्छ त्वं घर्घराङ्गले तत्र वै स्पर्शकस्तव ॥१३॥

इत्युक्त्वा यातिना साढं गृहीत्वा कटका बहून् ।

यतिने दर्शयामास स्पर्शकानियं कटवान् ॥१४॥

उस पति की परम भक्त पतिव्रता तथा पति में भीत रहन वाली न जब यह वचन घोर रूप बान मुन तो तुरन्त ही उसने इम समस्त सुवर्ण के सहित लग स्पर्श भणि को अपने पति की समर्पित करके पति की सेवा में तत्पर होगई थी ॥८॥ उस ब्राह्मण ने भी यह द्रव्य घर्घरा के मध्य में बलपूर्वक डाल दिया था भीन दिन के अन्त में आनन्द मुक्त वह पति वहाँ आया और उस दीन ब्राह्मणी से बोला—क्या तूने स्वर्ण खनाया है ? ॥९॥ वह बोली—मरा पति शुद्ध है उसने उस स्वर्णभणि को ग्रहण करके प्रोच में घर्घर में उतार दिया था तब से मैं बह्निपाकिनी हूँ । विप्र पिता मोक्ष पाता है । हे गुरो ! सभी में यह प्रमाण है ॥१०॥ यह सुन कर उस पति ने विस्मय में आ गिरा होगा वह वहाँ स्थित होगया था ।

जब दिन का अन्त हुआ तो उस समय मे उस यति ने ब्राह्मण को बहुत ही पटकारा और उससे कहा था ॥११॥ आप दरिद्र और भिगुक हैं । आपको ईश्वर द्वारा मोह प्राप्त हो गया है । अब मुझे वह स्पर्श मणि शीघ्र वापिस दे नही तो मैं यहां प्राणो का त्याग करता हूँ ॥१२॥ इस प्रकार से बहने वाले यांत से उस समय विष्णु शर्मा ने कहा—तुम घघरा के तट पर जाओ वहां पर ही आपकी वह स्पर्शमणि उपस्थित है ॥१३॥ विष्णु शर्मा उस यति के माथ जाकर बहुत से कष्टको की उमन ग्रहण कर लिया था और उस यति को उन काँटी को स्पर्शमणि के समान काय करने वाले दिखा दिये थे ॥१४॥

तदा तु स यती विप्र नत्वा प्रोवाच नम्रधी ।  
मया वै द्वादशाब्दात् सम्यगाराधित शिव ।  
तत् प्राप्त शुभ रत्न तत् त्वद्दशनेन वै ॥१५॥  
स्पर्शको बहुधा प्राप्तो मया लोभात्मना द्विज ।  
इत्याभाष्य शुभ ज्ञान प्राप्तो मोक्षमवाप्तवान् ॥१६॥  
विष्णुशर्मा सहस्राब्दमुपित्वा जगतीतले ।  
सूयमाराध्य विधिवद्विष्णोर्मोक्षमवाप्तवान् ॥१७॥  
स द्विजो वैष्णव तेजो धृत्वा वै मासि फाल्गुने ।  
लैलोक्यमतपत्स्वामी देवकार्यपरायण ॥१८॥  
इत्युक्त्वा भगवाञ्जीव पुन प्राह शचीपतिम् ।  
फाल्गुने मासि त सय समाराध्य सुखी भव ॥१९॥  
इत्युक्तो गुरुणा देवो ध्यात्वा मवमय हरिम् ।  
पूजनैर्वहुधाकारैर्देवदेवमपूजयत् ॥२०॥  
तदा प्रसन्नो भगवान्ममभूत्सूर्यमण्डलात् ।  
चतुर्भुजो हि रक्तागो यथा यक्षस्तथैव स ।  
पश्यता सर्वदेवाना शक्रदेहमुपागमत् ॥२१॥

उस समय मे वह यती बहुत ही विनम्र होकर विप्र को प्रणाम करके बोला—मैंने तो बारह वर्ष तक शिव की आराधना की थी और बहुत ही अच्छी तरह मे शिव को समाराधित किया था । तब मैंने यह



उत्तम रत्न प्राप्त किया था और वही आपके दर्शन से ही बहुत मी  
स्पर्शमणियां लोभाक्त मैंने हे द्विज ! प्राप्त करली हैं । यह कह कर  
उसने शुभ ज्ञान को प्राप्त किया और मोक्ष का प्राप्त किया था ॥१५-  
१६॥ विष्णु शर्मा ने एक सहस्र वर्ष तक इस जगती तल में निवास करके  
सूर्य की आराधना करके विधिवत् विष्णु से वह मोक्ष को प्राप्त हुआ  
था ॥१७॥ उस ब्राह्मण ने वैष्णव तेज को धारण करके फाल्गुन मास  
में देव के कार्य में परायण उस स्वामी ने सैलोक्य को तप्त कर दिया  
था ॥१८॥ सूत जी ने कहा—भगवान् जीव ने यह कह कर शची के पति  
इन्द्र से फिर कहा—तुम भी फाल्गुन मास में उस सूर्यदेव की आरा-  
धना करके सुखी हो जाओ ॥१९॥ गुरु के द्वारा इस प्रकार से कहे गये  
देव ने सर्वमय हरि का ध्यान करके और बहुधा कार वाले पूजनों के  
द्वारा देव-देव का यजन किया था ॥२०॥ तब भगवान् प्रसन्न होकर  
सूर्य मण्डल से उत्पन्न हुए थे । उनकी चार भुजाएँ थी, रक्त वर्ण का  
अंग था और जिस तरह यक्ष होता है उसी प्रकार के वह थे । समस्त  
देवों को देखते हुए इन्द्र के देह में प्राप्त होगये थे ॥२१॥

तत्तेजसा तदा शक्रः स्वान्तर्लीय स्वकं वपुः ।

अयोनिस्त द्विजो भूत्वा शची देवी तथैव सा ॥२२॥

तदा तौ मिथुनीभूतौ वैष्णवाग्निप्रपीडितौ ।

रेमाते वर्षपर्यन्तं गगाकूले महावने ॥२३॥

अघाद्गर्भं तदा देवी शची तु द्विजरूपिणी ।

भाद्रशुक्ले गुरौ वारे द्वादश्यां ब्राह्मणमण्डले ॥२४॥

प्रादुरासीत्स्वयं विष्णुर्घृत्वा सर्वं कलां हरिः ।

चतुर्भुजश्च रक्ताङ्गो ररिक्तुं भसमप्रभः ॥२५॥

तदा रुद्राश्च वसवो विश्वे देवा मरुद्गणाः ।

साध्याश्च भास्कराः सिद्धास्तुष्टुवुस्तं सनातनम् ॥२६॥

कुलिशध्वजपद्मदाङ्कुलाभं चरणं तव नाभं महाभरणम् ।

रमणं भुनिर्निविधिं भुयुतं प्रणमाम वयं भयभीतिहरम् ॥२७॥

दरचक्रगदाम्बुजमानधर सुरशत्रुकठोरशरीरहर ।

सचराचरलोकभरश्चपल खलनाशकरस्सुरकार्य कर ॥२८

उस समय मे उसके तेज से अपन वषु को अपने अन्तर्नि करके वह द्विज अयोनि होकर स्थित हुआ था और उसी प्रकार से वह शची दवी भी थी ॥२७॥ उस समय मे वे दोनो मिथुनी भून वीष्णव अग्नि से प्रपीडित गंगा के तट पर उस महा वन मे एक वर्ष पर्यन्त रमण करते रहे थे ॥२८॥ तब द्विज के रूप वाली उस शची न गभ को धारण किया था । भाद्रपद मास क शुक्ल पक्ष मे गुरुवार के दिन द्वादशी तिथि मे ब्राह्मण्डल मे विष्णु भगवान् स्वयं हरि समस्त कलाओ को धारण कर प्रादुर्भूत हुए थे । इनकी चार भुजाए थी, रक्त वर्ण वाला अंग था और रवि के कुम्भ क समान प्रभा से युक्त थे ॥२४-२५॥ उस समय मे रुद्र-वसुगण-विदेवेदेवा-मरुद्गण-साध्य-भास्कर और सिद्ध इन सब ने उस सनातन का स्तवन किया था ॥२६॥ दवी ने कहा—हे नाथ । बुलिश-ध्वज-पद्म-गदा और अकुश की आभा वाल तथा महान् आभरण से युक्त आपके चरण हैं जो विधि (ब्रह्मा) और शम्भु से युक्त है और भुक्तियों के रमण कराने वाल हैं एवं इस संसार के भय का हरण करने वाले हैं ऐसे आपके चरणों मे हम प्रणाम करते हैं ॥२७॥ दरचक्र गदा और अम्बुज मान के धारण करने वाले तथा दवी व शत्रुओं के बठोर शरीर का हरण करने वाले एवं समस्त चराचर लाव का भरण करने वाले चपल और खलो के नाश करने वाले तथा सुरों व कार्य को करने वाले आपके कर हैं ॥२८॥

नमस्ते शचीनदनानन्दकारिन्महापापसन्तापदुर्लपिहारिन् ।

मुरारोन्निहत्याधुलोन्नाधिधारिन्स्वभक्त्यापजाताङ्गकोटिप्रहारिन् ।

त्वयां हमरूपेण सत्य प्रपात्य त्वया यज्ञरूपेण वेद प्ररक्ष्य ।

न व यज्ञरूपो भर्वांल्लोकधारी शचीनन्दन शक्रशर्मप्रसक्त ॥३०

अनर्गलचरोचिरात्वरणयायतीर्णं वली

समर्पयितुमुन्नतोऽज्ज्वलरसा स्वभक्तिप्रियम् ।

हरे पुनरसुन्दरद्युतिकदवसन्दीपित सदा  
 स्फुरतु नो हृदयकन्दरे शचीनदन ॥३१  
 विसर्जति नरान्भवान्करुणया प्रपाल्य क्षितौ  
 निवेदयितुमुद्भव परात्पर स्वकीय पदम् ।  
 कलौ दितिजसभवाधिव्यथाब्धिसुरमग्नमासमु-  
 द्धर महाप्रभो कृष्णचैतन्य शचीसुत ॥३२  
 माघुष्यैर्मंदुभिस्सुगन्धवदन स्वर्णावुजाना वन  
 कारुण्यामृतनिर्झरैरुपचित सत्प्रेमहेमाचल ।  
 भवताभोघरघारिणी विजयिनी निष्कपसप्तावली  
 देवो न कुलदैवत विजयते चैतन्यकृष्णो हरि ॥३३  
 देवारातिजनैरधर्मजनितैस्सपीडितेय मही  
 सद्युध्याशु कलौ कलेवरमिद बीजाय हा वसते ।  
 त्वन्नाम्नैव सुरारयो विदलिता पातालगा  
 पीडिता म्लेच्छा धर्मपरा सुरेश-  
 नमनास्तस्मै नमो व्यापिने ॥३४  
 इत्यभिष्टुष पुरुष यज्ञेश च शचीपतिम् ।  
 बृहस्पतिमुपागम्य दवा वचनमब्रुव ॥३५  
 यय रुद्रा महाभाग इमे च वसवोऽश्विनौ ।  
 येन येनाशवेनैव जनिष्यामो महीतले ।  
 तत्सर्वं कृपया देव वक्तुमर्हति नो भवान् ॥३६

करके अवतीर्ण हुए हैं और आपको यह अवतार उन्नत एव उज्ज्वल रस वाली अपनी भक्ति की स्त्री को समर्पित करने के लिये ही हुआ है । हम प्रार्थना करते हैं कि हरि के सुन्दर छुति कदम्ब (ममूह) से सन्दीपित शचीनन्दन हम लोगों के हृदय कन्दरा में सर्वदा स्फुरण करते रहे ॥३१॥ आप कृष्ण से नरो का प्रतिपालन करके भूमि में विसर्जन करते हैं । आपना उद्भव परात्पर अपना पद प्रदान करने के लिए ही होता है । हे महा प्रभो ! हे शची सुत ! कलियुग में दितिजो (दैत्यो) से उत्पन्न आधि की व्याधा का जो समूह है उसमें मर्गो का हे कृष्ण चैतन्य ! उद्धार करियेगा ॥३२॥ माधुर्यो से और मधुओ से सुन्दर गन्धयुक्त वदन वाले—स्वर्णिम अम्बुजो के वन स्वरूप—काश्यप्य रूपी अमृत के निक्षेपो से उपचित (संवदित)—सत्प्रेम के हेम मित्रि—भक्त रूपी अम्बोधरो को धारण करने वाली—विजयवाली निष्पङ्क सप्तावली हमारे कुल के देवता देव कृष्ण चैतन्य हरि की विजय हो ॥३३॥ देवों के शत्रुजनों से जोकि अधर्म से जनित हैं यह महीं अत्यन्त सम्पीडित हो रही है और इस कलियुग में शीघ्र क्लेश को संकुचित करके हा । बीज के लिए वर्तमान है आपके नाम से ही शत्रु के शत्रु विदलित हो गये हैं और पीडित होकर पाताल में ये म्लेच्छ गमन कर गये हैं । तथा धर्म पर एव सुरेश को नमन करने वाले हैं उस व्यापी आपके लिए नमस्कार है ॥३४॥ सूतजी ने कहा—इस प्रकार से शची पति मर्गेश पुरुष की स्तुति करके फिर देवगण देव गुरु बृहस्पति के पास आकर यह वचन बोले—हम रुद्र हैं हे महाभाग ! ये असुगण हैं और ये अश्विनी कुमार हैं । आप कृपा कर यह बताइये किस किस अश से हम महीतल में जन्म ग्रहण करेंगे । हे देव ! यह सब आप हमको बताने के लिए योग्य होने हैं ॥३५॥

अहं व चययिष्यामि शृणुध्व सुरसत्तमा ।

पुरा पूर्वभवे चासीन्मृगव्याधो द्विजाधम ।

हत्वा द्विजान्महामूढस्तेषा यज्ञोपवीतकम् ।  
 गृहीत्वा हेलया दुष्टो महाक्रोशस्तु तत्कृत ॥३८॥  
 ब्राह्मणस्य च यदद्रव्य सुधोषमनुत्तमम् ।  
 मधुर क्षत्रियस्यैव वैश्यस्यान्नसमं स्मृतम् ॥३९॥  
 शूद्रस्य वस्तु त्रिधिरमिति ज्ञात्वा द्विजाधमं ।  
 स जघान त्रिवर्णांश्च ब्राह्मणां बहुलान्खल ॥४०॥  
 द्विजनाशात्सुरास्सर्वे भयभीतास्समतत ।  
 परमेष्ठिनमागम्य कथाश्चक्रुश्च कारणम् ॥४१॥  
 श्रुत्वा च दुःखतो ब्रह्मा सप्तर्षीन्प्राह लोकगान् ।  
 उद्देश कुरु तस्मैव गत्वा तस्य द्विजोत्तम ॥४२॥

बृहस्पति ने कहा—हे सुरसत्तमो ! मैं आपको बताता हूँ अब आप श्रवण करिये । पहिले समय में पूर्व जन्म में एक अधम द्विज भृगु व्याध था । वह धनुष और बाण धारण करने वाला निरप्य ही मार्ग में विप्रों की हिंसा किया करता था ॥३७॥ वह महा मूढ द्विजों का हनन करने उनका यज्ञोपवीत लेकर इना से दुष्टता करता था और महान् आक्रोश (निन्दा) किया करता था ॥३८॥ ब्राह्मण का जो द्रव्य है वह सर्वोत्तम मुद्या के समान होता है । क्षत्रिय का ही धन मधुर होता है और वैश्य का धन अन्न के समान कहा गया है ॥३९॥ शूद्र की वस्तु त्रिधिर होती है—यह जानकर वह द्विजों में अधम तीन वर्ण वालों को ही मारता था और वह धन ब्राह्मणों को अधिकतया मारा करता था ॥४०॥ द्विजों के नाश होने से सभी देवता सब प्रकार से भयभीत होगये थे । ये सब परमेश्वरी के पास आकर पहुँचे और यह सब क्या तथा कारण मुनाई की ॥४१॥ यह सब सुन कर ब्रह्माजी को बहुत दुःख हुआ था और उन्होंने गतपिषों में मार्ग में जान के लिए कहा था ॥ द्विजोत्तम ! वहाँ जाकर उगका उद्देश करो ॥४२॥

इति श्रुत्वा मरीचिस्तु वनिष्ठादि मिरन्वित ।  
 तप्त गरया स्थिताम्भयं भृगव्याधस्य यं वने ॥४३॥

मृगव्याघस्तु तान्दृष्ट्वा घनुर्वाणधरो बली ।  
 उवाच वचनं घोरं हनिष्येह च वोद्य वै ॥४४॥  
 मरीचाद्या विहम्याहुः किमर्थं हतुमुद्यतः ।  
 कुलार्थं वात्मनोऽर्थं वा शीघ्रं वद महाबल ॥४५॥  
 इत्युक्तस्तान्द्विजः प्राह कुलार्थं चात्मनो हिते ।  
 हन्मि युष्मान्धनैर्युक्तन्ब्राह्मणांश्च विशेषतः ॥४६॥  
 श्रुत्वा तमाहुस्ते विप्रा गच्छ शीघ्रं घनुर्धर ।  
 विप्रहत्याकृतं पापं भुञ्जीयात्को विचारय ॥४७॥  
 इति श्रुत्वा तु घोरात्मा तेषां दृष्ट्वा सुनिर्मुलः ।  
 गत्वा वंशजनानाहं भूरि पापं मयार्जितम् ॥४८॥  
 तत्पापकं भवद्भिश्च ग्रहणीयं घनं यथा ।  
 ते तु श्रुत्वा द्विजः प्राहुर्न वयं पापभोगिनः ॥४९॥

यह सुन कर वसिष्ठादि से समन्वित मरीचि प्रभृति क्षत्र वहा पहुँच कर सब स्थित होमये ये जहा मृगो के व्याघ का बन था ॥४३॥ मृग व्याघ ने उनकी देखकर घनुर्वाण धर कर वह बलवान् उनसे घोर वचन बोला—आज मैं तुम को निश्चय ही मार दूँगा ॥४३॥ मरीचि आदि ऋषिगण उससे हँस कर बोले हमको किस के लिये तू मारने को उद्यत हो गया है । हे महा बलवान् ! क्या कुल के लिये अथवा अपनी आत्मा के लिए ही ऐसा करना चाहता है ? हमको बहुत शीघ्र बतला दे ॥४५॥ यह श्रवण कर वह द्विज बोला—तुम के लिए और आत्मा के लिए तुमको मारूँगा क्योंकि आप धनो मे मुक्त हैं । मैं विशेष करके ब्राह्मणों को ही मारना चाहता हूँ ॥४६॥ यह सुनकर वे विप्र बोले—ह घनुर्धर ! शीघ्र जाओ, विप्रों की हत्या का किया पाप कौन भोगेगा—यह विचार करो । ॥४७॥ यह सुन कर वह घोरात्मा उनकी दृष्टि मे मुनिर्मुल होता हुआ धर पर गया और अपने व शत्रु से उमने कहा—मैंने बहुत भारी पाप अर्जित किया है ॥४८॥ उस पाप को आप सबको भी धन की भाँति ग्रहण करना चाहिए । यह सुन कर वे सब उस द्विज से बोले कि हममें कोई भी पाप के भागी नहीं होये ॥४९॥

दर्शन ब्रह्मा ने अपने मुख से शुभ ब्राह्मण को—बाहुओं से क्षत्रिय को—  
ऊरुओं से उत्तम वैश्य को और अपने पैरों से शुभ आचार वाले शूद्र को  
उस धीर्यवान् जन्म दिया था ॥६१ ६२॥ द्विजराज सोम चन्द्रमा नाम स  
द्विज था । लोक मे सर्वतप सूर्य जो कश्यपों की रक्षा करता है ॥६३॥

कश्यपो हि द्वितीयोऽसौ मरीचिस्तु ततोऽभवत् ।

रत्नानामाकरो यो वै स हि रत्नाकर स्मृत ॥६४

लोकां धरति यो द्रव्यं स तु धर्मो हि नामत ।

गभीरश्चास्ति सदृशः कोशो यस्य सरित्पति ॥६५

लोकान्दक्षति यः कृत्यं स तु दक्ष प्रजापतिः ।

ब्रह्माणो गाच्च ते जातास्तस्माद् ब्राह्मणा स्मृता ॥६६

वर्णधर्मेण ते सर्वे वर्णात्मानश्च ये क्रमात् ।

दक्षस्य मनसो जाता वन्या पञ्चशत तत ।

विष्णु मामाप्रभावेन कलाभूता स्थिता भुवि ॥६७

तदा तु भगवान्ब्रह्मा सोमायाद्विनिमण्डलम् ।

सप्तविंशदगणं श्रेष्ठं ददौ लोकाविवृद्धये ॥६८

मदयपपायादिति गण दत्तरूपं त्रयोदशम् ।

धर्माय मीतिप्रभृतो दंदी स च महामुनिः ॥६९

नानाविधानि सृष्टानि चासंख्यं स्वतेऽतरे ।

तेषां पतिस्त्वय दक्षोऽभूद्विधेरागमया भुवि ॥७०

उस समय भगवान् ब्रह्मा ने चन्द्र के लिये अश्विनी-मण्डल जो कि सत्ताईस का एक गण है, इस लोक की वृद्धि के लिये दे दिया था ॥६८॥ कश्यप के लिये क्षत्ररूप तरह अदितिगण दिये थे और घर्म के लिये कीर्ति प्रभृति को उस महामुनि ने दिया था ॥६९॥ उम वैवस्वत अन्तर में अनेक प्रकार की मृष्टि का सृजन किया गया था । उन सबका पति ब्रह्मा की आज्ञा से इस भूमण्डल में दस ही हुए थे ॥७०॥

तत्र वास स्वय दक्षः कृतवान्यज्ञतत्परः ।

सर्वे देवगणा दक्ष नमस्कृत्य चरति हि ॥७१

भूतनाथो महादेवो न ननाम कदाचन ।

तदा क्रुद्धः स्वय दक्षः शिवभाग न दत्तवान् ॥७२

मृगव्याघ्रः शिवः क्रुद्धो वीरभद्रो बभूव ह ।

त्रिशिराश्च त्रिनेत्रश्च त्रिपदस्तत्र चागतः ॥७३

तेनैव पीडिता देवा मुनयः पितरोऽभवन् ।

तदा वै यज्ञपुरुषो भयभीतः समततः ॥७४

मृगभूतो ययौ तूष्णं दृष्ट्वा व्याधः शिवोभवत् ।

रुद्रव्याघ्रेण स मृगो विभिन्नाङ्गो बभूव ह ॥७५

तदा तु भगवान्ब्रह्मा तुष्टाव मधुरस्वरैः ।

संतुष्टश्च मृगव्याधो यज्ञ पूर्णमकारयत् ॥७६

तुलाराशिस्थिते भानी त रुद्र चन्द्रमण्डले ।

स्थापयित्वा स्वय ब्रह्मा सप्तविपद्भिनात्मके ।

प्रययौ सप्तलोकं वै स रुद्रश्च द्रुपदवान् ॥७७

वहा पर दस यज्ञों के करने में तत्पर होते हुए स्वयं वास करते थे । ममस्त देवों के समूह दक्ष को प्रणाम करने ही विचरण किया करने थे ॥७१॥ किन्तु भूतों के स्वामी महादेव ने कभी भी दक्ष को प्रणाम नहीं किया था । तब तो दक्ष बहुत क्रुद्ध हो गये थे और उन्होंने यज्ञ में जो शिव का एक भाग होता है उसे नहीं दिया था ॥७२॥ मृग व्याध शिव क्रुद्ध होकर वीर भद्र हो गया था । उस समय में त्रिशिरा-त्रिनेत्र और त्रिपद भी वहा आ गये थे ॥७३॥ उनके द्वारा पीडित देव-मुनिगण



के पास आये थे । तब ना उन विप्रों ने उसको परम शुद्ध देखा और व सब विस्मय में भर कर उससे बोले—तू वाल्मीकि से निकला है इसलिये तूरा नाम परम उत्तम वाल्मीकि ही है और यही नाम है विप्र । अब चलगा । हे त्रिकाल के ज्ञाता ! हे महान् मति वाले ॥५५-५६॥

एवमुक्त्वा ययुर्लोक स तु रामायण मुनि ।

कल्पाष्टादशयुक्तं हि शतकोटिप्रविस्तरम् ॥५७

चकार निर्मलं पद्यं सर्वाघोषविनाशनम् ।

तत्पश्चात्स शिवो भूत्वा तत्र वासमकारयत् ॥५८

अद्यापि सस्थितः स्वामी मृगव्याघ्र सनातनः ।

शृणुष्व च सुरा सर्वे तच्चरित्रं हरप्रियम् ॥५९

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते चाद्ये सत्ययुगे शुभे ।

ब्रह्मागत्योत्पलारण्यं तत्र यज्ञं चकार ह ॥६०

तदा सरस्वती देवी नदी भूत्वा समागता ।

तद्दर्शनात्स्वयं ब्रह्मा मुखतो ब्राह्मणं शुभम् ॥६१

बाहुभ्यां क्षत्रियं चैव चोर्ध्व्यां वैश्यमुत्तमम् ।

पद्भ्यां शूद्रं शुभाचारं जनयामास वीर्यवान् ॥६२

द्विजराजस्तथा सोमश्च द्रमा नामतो द्विजः ।

लोके सर्वानपि सूर्यं वश्यं वीर्यं हि पाति यः ॥६३

इस प्रकार से कह कर सप्तविंश अपन लोक को चले गये थे और उन मुनि ने फिर अठारह कल्प युक्त शतकोटि प्रकृष्ट विस्तार वाली रामायण की रचना की थी कि अति निर्मल पद्यों में थी और सभी पापों का समूह का नाश करने वाली थी । इसका पश्चान् वह शिव होकर वहाँ पर अपना निवास करता था ॥५७-५८॥ आज भी वह सनातन मृग व्याघ्र स्वामी सस्थित है । हे मुरो ! अब आप सब लोग उसका हरि भगवान् को प्रिय लगन वाला उत्तम चरित्र का श्रवण करो मैं उसे आपका बतलाता हूँ ॥५९॥ आद्य शुभ सत्य युग में वैवस्वत मनु का अन्तर प्राप्त हो जाने पर ब्रह्माजी ने आकर उस उत्पलारण्य में यज्ञ किया था ॥६०॥ तब सरस्वती देवी नदी का रूप धारण करके वहाँ पर आई थी । उनका

और पितर सब हो गये थे । तब तो यज्ञ पुरुष सभी ओर से भयभीत हो गये थे ॥७४॥ मृग भूत होकर शीघ्र चला गया था । वह देख कर व्याध शिव हो गया था । रुद्र व्याध के द्वारा वह मृग विभिन्न अंगों वाला हो गया था ॥७५॥ उस समय भगवान् ब्रह्मा ने मधुर स्वरो से स्तवन किया था । फिर मृग व्याध सन्तुष्ट हो गया और उसने यज्ञ को पूर्ण करा दिया था ॥७६॥ तुला राशि पर सूर्य के स्थित होने पर चन्द्र-मण्डल में उस रुद्र को स्थापित करके जो चन्द्र मण्डल सप्तविंशति (सत्ताईस) दिन के रूप वाला था ब्रह्माजी स्वयं सप्त लाख को चल गये थे । वह रुद्र चन्द्र के रूप वाले हैं ॥७७॥

इति श्रुत्वा वीरभद्रो रुद्रः सहृष्टमानसः ।

स्वाश देहात्समुत्पाद्य द्विजगेहमचोदयत् ॥७८॥

विप्रभैरव दत्तस्य गेहं गत्वा स वै शिवः ।

तत्पुत्रोऽभूत्कली घोरे शकरो नाम विश्रुतः ॥७९॥

स बालश्च गुणी वेत्ता ब्रह्मचारी बभूव ह ।

कृत्वा शक-भाष्यं च शैवमार्गमदर्शयत् ॥८०॥

त्रिपुण्ड्रश्चक्षमाणा च मसः पञ्चाक्षरः शुभः ।

शैवानां मङ्गलकरः शकराचार्यनिर्मितः ॥८१॥

यह ध्वज करके वीरभद्र रुद्र ने सन्तुष्ट मन वाले होकर अपने अश्व को देह से समुत्पन्न करके द्विज के गृह में प्रेरित कर दिया था ॥७८॥ भैरव दत्त विप्र के घर में जाकर वह शिव इस घोर कलियुग में उसका पुत्र हुआ जो शकर इस नाम से प्रसिद्ध है ॥७९॥ यह बालक परम-गुणी-ज्ञाना और ब्रह्मचारी हुआ था । इसने शंकर भाष्य की रचना करके अर्थात् वेद व्यास के वेदान्त सूत्र ग्रन्थ पर शंकर भाष्य बना कर जैव मार्ग को दिखलाया था ॥८०॥ त्रिपुण्ड्र—अक्षमाणा और परम शुभ पञ्चाक्षर (ओं नमः शिवाय) मन्त्र ये शंकों का संकेत करने वाला है जिसको नि शकराचार्य भगवान् ने निश्चित किया है ॥८१॥

## ॥ रामानुजोत्पत्तिवर्णन ॥

इदं दृश्यं यदा नासीत्सदसदात्मकं च यत् ।  
 तदाक्षरमयं तेजो व्याप्तरूपमचित्यकम् ॥१॥  
 न च स्थूलं न च सूक्ष्मं शीतं नोष्णं च तत्परम् ।  
 आदिमध्यातरहितं मनागावारवर्जितम् ॥२॥  
 योगिदृश्यं परं नित्यं शून्यभूतं परात्परम् ।  
 एका वै प्रकृतिर्माया रेखा या तदधः स्मृता ॥३॥  
 महत्तत्त्वमयी ज्ञेया तदधश्चोर्वरेखिका ।  
 रजस्सत्त्वतमोभूता ओमित्येवमुलक्षणम् ॥४॥  
 नत्सद्रह्यं परं ज्ञाययन् प्राप्य पुनर्भवः ।  
 क्रियतां चैव कालेन तस्येच्छा समपद्यत ॥५॥  
 अहंकारस्ततो जातस्ततस्तन्मात्रिका परा ।  
 पञ्चभूतान्यतोप्यासञ्ज्ञानविज्ञानकान्यत ॥६॥  
 द्वाविंशज्जडभूताश्च दृष्ट्वा स्वेच्छामयो विभुः ।  
 द्वद्वभूतश्च सगुणो बुद्धिर्जीवस्समागतः ॥७॥

इस अध्याय में रद्र के माहात्म्य का वर्णन तथा श्री रामानुज की उत्पत्ति का वर्णन किया जाता है । बृहस्पति जी ने कहा—जो यह सत् और अमत् स्वरूप वाला जिन समय में दृश्य नहीं था अर्थात् दिखलाई देने के योग्य नहीं था । उस समय अक्षर मय न चिन्तन करने के योग्य तेज व्याप्त रूप वाला था ॥१॥ वह न तो स्थूल था—न सूक्ष्म ही था—न वह शीत था और न उष्ण ही था—तत्पर था—आदि—मध्य और अन्त से रहित था और मनाक आकार से वर्जित था वह केवल योगिया के द्वारा ही दृश्य था—पर—नित्य—शून्य भूत और परात्पर था । एक प्रकृति माया जो रेखा थी वह उसके नीचे बताई गई है ॥२॥ उसका नीचे एक ऊर्ध्व रेखा वाली महत् तत्त्वमयी जाननी चाहिए । यह रजस्त्व और तमोभूत थी । ओम् ही सुलक्षण है ॥३॥ वह पर सद ब्रह्म जानना चाहिए जहाँ प्राप्त होकर पुनर्भव होता है । कुछ ही वान में उसकी इच्छा समुत्पन्न हुई थी ॥५॥ उसने अहंकार की उत्पत्ति हुई और

फिर उस अहंकार से पञ्च तन्मात्रिकाएँ उत्पन्न हुई थीं । इनसे फिर पाँच भूत ज्ञान विज्ञानक हुए थे । इन सब बाईस जड़ भूतों को देख कर वह स्वेच्छामय विभु द्वन्द्वभूत होकर सगुण हो गया और बुद्धि और जीव समागत हुआ था ॥६-७॥

पूर्वाद्धात्सिगुणः सोसौ निगुंणश्च पराद्धंतः ।

ताभ्यां गृहीत तत्सर्वं चैतन्यमभवत्ततः ॥८

सविराडितिसंज्ञो वै जीवो जातस्सनातनः ।

विराजो नाभितो जातं पद्मं तच्छतयोजनम् ॥९

पद्माच्च कुसुमं जातं योजनायाममुत्तमम् ।

तत्पद्मकुसुमाज्जातो विरचिः कमलासनः ॥१०

द्विभुजस्स चतुर्वक्रो द्विपादो भगवान्विधिः ।

ज्ञेयः सप्तवितत्यंगो महार्चितामवाप्तवान् ॥११

कोऽहं कस्मात्कुत आयातः कामे जननी को मे तातः ।

इत्यधिचित्तय तं हृदि देवं शब्दमहत्त्वमयेन स आह ॥१२

तपश्चैव तु कर्तव्यं संशयस्यापनुत्तये ।

तदाकर्ण्य विधिस्साक्षात्तपस्तेपे महत्तरम् ॥१३

सहस्राब्दं प्रयत्नेन ध्यात्वा विष्णुं सनातनम् ।

चतुर्भुजं योगगम्यं निगुंणं गुणविस्तरम् ॥१४

वह यह पूर्वाद्ध से सगुण था और पराद्ध से निगुंण था । उन दोनों में वह सब ग्रहण किया गया था और वह फिर चैतन्य हो गया था ॥८॥ स्वराट्-इस सज्ञा वाला जीव सनातन हो गया था । उस विराट् की नाभि से एक पद्म उत्पन्न हुआ था जो सौ योजन के विस्तार वाला था ॥९॥ उस पद्म से एक योजन आयाम वाला अति उत्तम कुसुम उत्पन्न हुआ था । उस पद्म के कुसुम से कमलासन ग्रह्या उत्पन्न हुआ था ॥१०॥ उस ग्रह्या के दो भुजाएँ थीं—चार मुख थे—दो चरण थे ऐसे स्वरूप वाले भगवान् विधि (ग्रह्या) थे । उसका अंग सात विलस्त वाला जानना चाहिए । उसने महान् चिन्ता प्राप्त की थी अर्थात् वह अत्यन्त चिन्तित हो गये थे ॥११॥ उसे यह चिन्ता हृदय में हुई कि मैं

कौन हूँ—कहा से मैं आया हूँ । मेरी माता कौन और पिता कौन हैं ।  
उसने उस देव का हृदय में चिंतन करके वह शब्द महत्त्वमय के द्वारा  
बोला ॥१२॥ अपन सशय की अपनुत्ति (हूरीकरण) के लिये तुमको तप  
ही करना चाहिए । यह सुनकर विधि (ब्रह्मा) ने साक्षात् तपस्या की  
थी कि अधिक महान् थी ॥१३॥ एक सहस्र वर्ष पश्चात् सनातन  
भगवान् विष्णु का उसने ध्यान किया था जिनका स्वरूप चतुर्भुज है  
और निगुण तथा गुणों का विस्तार स्वरूप योग के द्वारा ही जानने का  
योग्य है ॥१४॥

सनाधिनिष्ठो भगवाच्चभूव कमलासन ।  
एतस्मिन्न तरे विष्णुर्बालो भूत्वा चतुर्भुज ॥१५॥  
इयामागो बलवानस्त्री दिव्यभूषणभूषित ।  
ब्रह्मणोऽङ्गे हरिस्तस्थौ यथा बाल पितुस्वयम् ॥१६॥  
तदा प्रबुद्धश्च विधिस्त दृष्ट्वा मोहमागत ।  
वत्सवत्सेति वचन विधि प्राह प्रसन्नधी ॥१७॥  
विहस्याह तदा विष्णुरह ब्रह्मापिता तव ।  
तयोर्विवदतोरेष रुद्रो जातस्तमोमय ॥१८॥  
ज्योतिर्लिङ्गश्च भयदो माजनानर्ताविस्तर ।  
हसरूप तदा ब्रह्मा वराहो भगवाप्रभु ॥१९॥  
शताब्दं तो प्रयत्नेन जातो चोद्ध्वमध क्रमात् ।  
लज्जितो पुनरागत्य तदा तुष्टुवतुर्मुदा ॥२०॥  
ताभ्यां स्तुतो हर साक्षाद्भूवो नाम्ना समागत ।  
कैलासनिलय कृत्वा समाधिस्थो बभूव ह ॥२१॥

भगवान् कमलासन समाधि में निष्ठ हो गये थे । इसी बीच में  
चतुर्भुज विष्णु बालक रूप में होकर जिसका श्याम तो अंग था और  
बलवान् दिव्य आभूषणों से भूषित थे । ऐसा बाल स्वरूप वाले हरि  
पिता की गोद में उसके पुत्र बालक की भाँति आकर ब्रह्मा की गोद में  
स्थित हो गये थे ॥१५-१९॥ उस समय ब्रह्मा को ज्ञान हुआ और उस  
बाल रूप हरि को देख कर वह स्नेह को प्राप्त हो गये थे । प्रसन्न

बुद्धि बाल ब्रह्माजी ने उस बाल स्वरूप को बत्स-बत्स ऐसा वचन कहा था ॥१७॥ तब तो भगवान् विष्णु ने हँसकर कहा हे ब्रह्मन् ! मैं तो तुम्हारा पिता हूँ । उन दोनों का ऐसा विचार विवाद चलता रहा तो उस समय तमोमय रुद्र उत्पन्न हो गया था ॥१८॥ और ज्योतिर्लिंग भय देने वाला जिसका अनन्त योजनो का विस्तार था उत्पन्न हुआ । तब ब्रह्मा ने इस रूप को देखा था । ब्रह्मा और भगवान् प्रभु वराह इन दोनों को ऊर्ध्व और अधोभाग के क्रम से एक सौ वर्ष हो गये थे । फिर जाकर नजित होते हुए उन दोनों ने प्रसन्नता से स्तुति की थी ॥१९ २०॥ उन दोनों के द्वारा स्तुति किये गये साक्षान् हर भव इस नाम से आये थे । फिर अपना स्थान कैलास को बना कर समाधि में स्थित हो गये थे ॥२१॥

जात पचयुग तत्र दिव्य रुद्रस्य योगिन ।

एतस्मिन्न तरे घोरो दानवस्तारकासुर ॥२०

सहस्राब्द तप कृत्वा ब्रह्मणो वरमाप्तवान् ।

भववीर्योद्भव पुन स ते मृत्यु करिष्यति ॥२३

इति मत्वा सुराजित्वा महेंद्रश्च तदा भवत् ।

ते सुराश्चैव कैलास गत्वा रुद्र प्रतुष्टुवु ॥२४

वर ब्रूहीति वचन सुरा प्राह तदा शिव ।

ते तु श्रुत्वा प्रणम्योचुवचन नम्रक धरा ॥२५

भगव ब्रह्मणा दत्तो वरो वै तारकाय च ।

शिववीर्योद्भव पुन स ते मृत्यु भविष्यति ।

अतोऽस्माभ्यक्ष भगवन्निवाह कुरु शकर ॥२६

स्वायभुवेऽन्तरे पूर्वं दक्षश्चासीत्प्रजापति ।

पटिकन्यास्ततो जातास्तासा मध्ये सती वरा ॥२७

वर्षमात्र भवन्त सा पार्थिव समपूजयत् ।

तस्यै त्वया वरो दत्त सा वभूव तव प्रिया ॥२८

धोणी रुद्र को कहा पर दिव्य पाँच युग हो गये थे । इस बीच मे परम मोर दानव तारकासुर हुआ, जिसने एक सहस्र वर्ष पय त तपस्या

करके ब्रह्मा से वरदान प्राप्त किया था कि भव के वीर्य से उत्पन्न होने वाला पुत्र तेरी मृत्यु करेगा ॥२२-२३॥ ऐसा मान कर उसने देवों को जीत लिया था और स्वयं महेन्द्र के आसन पर स्थित हो गया था । वे देवगण सब कैलास में पहुँचे और भगवान् रुद्र की स्तुति करने लगे थे ॥२४॥ तब प्रसन्न होकर शिव ने देवों से कहा—वरदान माँग लो जो कुछ भी चाहते हो । उन सुरों ने सुन कर प्रणाम किया और तत्र कन्धरा वाले होकर यह वचन बोले ॥२५॥ हे भगवन् ! ब्रह्मा ने असुर तारक को यह वरदान दिया है कि तेरी मृत्यु शिव के वीर्य से उत्पन्न होने वाला पुत्र ही करेगा अर्थात् तू उससे ही मारा जायगा । हे भगवन् ! इसलिये अब आप हम सब की रक्षा कीजिए । हे शंकर ! आप पुत्रीत्पादन करने के लिये अपना विवाह करिये ॥२६॥ पहिले स्वायम्भुव अन्तर में दक्ष प्रजापति था । उस दक्ष से सात कन्याएँ समुत्पन्न हुई थीं उन समस्त कन्याओं में सती मय से श्रेष्ठ है ॥२७॥ उसने एक वर्ष तक आपका पाण्डित्य के द्वारा अर्थात् पाण्डित्य पूजन किया था । आपने उसको वरदान दिया था और वह आपकी प्रिया हुई थी ॥२८॥

तत्पित्रा या कृता निदा भवतोऽज्ञानचक्षुषा ।  
तस्य दोषात्सती देवी तत्याज स्व कलेवरम् ॥२९॥  
सतीतेजस्तदा दिव्य हिमाद्रौ धोरमागमत् ।  
पीडितस्तेन गिरिराट् बभूव स्मरविह्वलः ॥३०॥  
पित्रीश्वर स तुष्टाव कामव्याकुलचेतनः ।  
अयमा तु तदा तुष्टो ददौ तस्मै सुता निजाम् ।  
मेना मनोहरा शुद्धा स दृष्ट्वा हर्षितोऽभवत् ॥३१॥  
नररूपं शुभं कृत्वा देवतुल्यं च तत्प्रियम् ।  
स रेमे च तया साढं चिर काल महावने ॥३२॥  
गर्भो जातस्तदा रम्यो नववर्षात्मुत्तमः ।  
व न्या जाता तदा सुभ्रूगोरी गौरमयी सती ॥३३॥

जातमात्रा च सा कन्या बभूव नवहापिनी ।

तुष्टाव शकर देव भवन्त तपसा चिरम् ॥३४

शताब्द च जले मग्नाशनाब्द वह्निसंस्थिता ।

ताब्दे च स्थिता वायो शताब्द नभसि स्थिता ॥३५

उसके पिता ने अज्ञान चक्षु होने वाले ने आप की जो निन्दा की थी उससे दोष से सती देवी ने अपने शरीर का त्याग कर दिया था ॥३६॥ उस समय वह सती का चार एक दिव्य तेज हिमाद्रि में आ गया था । उस पीड़ित होकर वह गिरियो का राजा हिमवान् काम में विह्वल हो उठा था ॥३७॥ कामदेव से व्याकुल बुद्धि वाले उसने पित्री-श्वर की स्तुति की थी । उस समय अयंमा ने प्रसन्न होकर अपनी पुत्री उसको दान करके दे दी थी । परम शुद्ध एवं अत्यन्त सुन्दरी मेना का देख कर हिमवान् बहुत ही हर्षित हुआ ॥३८॥ फिर हिमाचल ने अपना नर रूप धारण किया जो देव के समान शुभ और पत्नी का प्रिय था । यह हिमवान् नररूप धारी होकर महावन में चिरबाल पर्यन्त उस मेना के साथ रमण करता रहा था ॥३९॥ नौ वर्ष के अन्त में तब उसमें तथा रम्य गर्भ धारण हुआ था । तब मुद्गू गौरमयी सती बग्या के रूप में उसके समुत्पन्न हुई थी ॥४०॥ जात मात्र ही अर्थात् उत्पन्न होने ही वह बग्या नौ वर्ष की जैसी हो गई थी । फिर उस गौरी ने चिरबाल तक आप शकर की तपस्या के द्वारा स्तुति की थी ॥४१॥ सौ वर्ष तक तो वह तपस्या में जल में मग्न रही थी और एक सौ वर्ष तक अग्नि में संस्थित रही थी । सौ वर्ष तक वायु में और एक शताब्दी पर्यन्त आकाश में स्थित रही थी ॥४२॥

शताब्द च स्थिता चन्द्रे शताब्द रविमण्डले ।

शताब्द गर्भभूम्या च स्थिता मा गिरिजा सती ॥४३

शताब्द महत्तत्त्वे गत्वा योगवसेन सा ।

भवन्त क्षपण शुद्ध तत्र दृष्ट्वा स्थिताद्यै ॥४४

त्रिशताब्दमतो जात नस्मात्त्व पावन्ती शियाम् ।

वर देहि प्रमदनात्मा महादेव नमोऽस्तु ते ॥४५



इतिश्रुत्वा वचो रम्य शकरो लोव शकरः ।

देवानाह तदा वाक्यमयोग्य वचन हि वः ॥२८॥

मत्तो ज्येष्ठाश्च ये रुद्रा कुमारव्रतधारिणः ।

मृगव्याघादयो मुख्या दश ज्योतिस्समुद्भवाः ॥४०॥

अह तेषामवरजोभवो नामैव योगराट् ।

मायारूपा शुभा नारी कथं गृह्णामि लोकदाम् ॥४१॥

नारी भगवती साक्षात्तया सर्वमिदं ततम् ।

मातृरूपा तु सा ज्ञेया योगिना लोकवासिनाम् ॥४२॥

एक शताब्दी तक चन्द्र में और एक सौ वर्ष पर्यन्त रविमण्डल में स्थित रही थी । वह सती गिरिजा एक सौ वर्ष तक गर्भ भूमि में स्थित रही थी ॥३६॥ वह फिर योग के बल से सौ वर्ष तक महत्त्व में जाकर स्थित हुई और वह शुद्ध शकर आपका दर्शन करके आज भी स्थित है ॥३७॥ इस तरह तीन सौ वर्ष उसे बड़ा हो गये हैं । इसलिये आप उस शिवा पावेंती को प्रसन्न आत्मा वाले होकर अब वरदान दें । हे महादेव ! हम सबका आपको नमस्कार है ॥३८॥ इस प्रकार के परम रमणीक वचन सुनकर लोको का कल्याण करने वाले भगवान् शकर उस समय में देखो से बोले—आपका वचन अयोग्य है ॥३९॥ मुझ से बड़े जो रुद्र हैं वे कुमार व्रत के धारण करने वाले हैं । मृग व्याघ्र आदि ज्योति समुद्भव दश मुख्य हैं ॥४०॥ मैं तो उन सब में सब से छोटा हूँ, नाम से ही योगराट् हूँ । मैं अब उस माया रूप वाली शुभ नारी को जो कि लोकदा है, कैसे ग्रहण करूँ ? ॥४१॥ नारी साक्षात् भगवती है । उसके द्वारा ही यह समस्त विश्व विस्तृत हुआ है । उस नारी को मातृ-रूपा ही जाननी चाहिए वह लोकवासी यागियों की भगवती माता के समान है ॥४२॥

अह योगी कथं नारी मातरं वरितुं क्षमः ।

तस्मादहं भवदर्थं स्ववीर्यमाददाम्यहम् ॥४३॥

वश्य हो गये थे ॥५४-५५॥ स्तम्भन बाण के द्वारा महादेव शिवा के पास जाकर स्थिर हो गये थे । आकर्षण बाण से भगवान् शिवा के आकर्षण में तत्पर हो गये थे । मारण बाण के द्वारा महेश्वर मूर्च्छित हो गये थे ॥५६॥

एतस्मिन्नन्तरे देवी महत्तत्त्वे स्थिता शिवा ।  
 मूर्च्छितं शिवमालोक्य तत्रैवान्तर्द्विभागमत् ॥५७॥  
 तदोत्थाय महादेवो विललाप भृशं मुहुः ।  
 हा प्रिये चद्रवदने हा शिवे च घटस्त्रनि ॥५८॥  
 हा उमे सुन्दराभे च पाहि मां स्मरविह्वलम् ।  
 दर्शनं देहि रंभोरु दासभूतोऽस्मि साप्रतम् ॥५९॥  
 एवं विलपमानं तं गिरिजा योगिनी स्वयम् ।  
 समागत्य वचः प्राह नत्वा तं शंकरं प्रियम् ॥६०॥  
 मन्याहं भगवन्देव मातृनिप्रनुमारिणी ।  
 तयोम्मवाशाद्भगवन्मम पारिण गृहाण भोः ॥६१॥  
 तथेति मत्वा न शिवः प्रद्युम्नशरपोहितः ।  
 सप्तर्षीन्प्रेषयामाग ते तु गत्वा हिमाचलम् ।  
 संयोज्य च विवाहस्य विधिं शक्रमुन्दान्विताः ॥६२॥  
 ब्रह्माण्डे ये स्थिता देवाऽग्नेर्गां म्यामी महेश्वरः ।  
 विवाहे तस्य संप्राप्ते मयि देवाग्गमाययः ॥६३॥

नमस्कार करके यह वचन बोली ॥६०॥ हे देव ! मैं अपने माता-पिता के अनुसरण करने वाली कन्या हूँ । आप उनके ही सकाश से मेरा पाणि ग्रहण करें ॥६१॥ प्रद्युम्न के द्वारा पीडित वह शिव "ऐसा ही करूँगा" यह कहकर उसने फिर सप्तपियों को हिमवान् के पास भेजा था और वे हिमाचल के पास पहुँच गये । वहाँ उन्होंने हिमवान् भली-भाँति समझा कर प्रसन्नता से युक्त होकर विवाह की विधि का सम्पादन किया ॥६२॥ ब्रह्माण्ड में जो देवता हैं उन सबका स्वामी महेश्वर हैं । अतएव उनके विवाह के प्राप्त होने पर समस्त देवगण विवाह में सम्मिलित होने को आये थे ॥६३॥

अनन्तांश्च गणांश्चैव सुरान्द्रष्टुं हिमाचलः ।

गिरिजा शरण प्राप्त तस्थौ पर्वतगट् स्वयम् ॥६४॥

तदा तु पार्वती देवी निघीन्सिद्धी समन्तत ।

चकार कोटिशस्तत्र बहुरूपा सनातनी ॥६५॥

दृष्ट्वा तद्विस्मिता देवा ब्राह्मणा सह हर्षिताः ।

तुष्टुबुः पार्वती देवी नारीरत्न सनातनीम् ॥६६॥

उ वितर्कं च मा लक्ष्मीबहुरूपा विदृश्यते ।

उमा तस्माच्च ते नाम नमस्तस्यै नमोनमः ॥६७॥

कतिचिदयनान्येव ब्रह्माण्डेऽस्मिञ्छिवे तव ।

कात्यायनी हि विज्ञेया नमस्तस्यै नमोनमः ॥६८॥

गौरवर्णाच्च वै गौरी श्यामवर्णाच्च कालिका ।

रक्तवर्णाच्चैव भवती नमस्तस्यै नमोनमः ॥६९॥

भवस्य दयिता त्व वै भवानी रदसयुता ।

दुर्गा त्वं योगि दुष्प्राप्या नमस्तस्यै नमोनमः ॥७०॥

हिमाचल ने अनन्तो को-गणों को और गुरों को देखकर पर्वतराज स्वयं गिरिजा के शरण में पहुँच कर स्थित होगया था ॥६४॥ उस समय में पार्वती देवी ने सब ओर से निघियों और सिद्धियों को वहाँ पर बहुत सों वासी और सनातनी करोड़ों करदी थी ॥६५॥ यह देख कर समस्त देव बड़े ही विस्मित हुए तथा देव और ब्राह्मण बहुत हर्षित भी हुए

तद्वीर्यं भगवान्वह्निः प्राप्य कार्यं करिष्यति ।

इत्युक्त्वा वह्नये देवो ददौ वीर्यमनुत्तमम् ।

स्वयं तत्र समाधिस्थो बभूव भगवान्हरः ॥४४

तदा शक्रादयो देवा वह्निना सह निर्ययुः ।

सत्यलोकं समागत्याब्रुवन्सर्वं प्रजापतिम् ॥४५

श्रुत्वा तत्कारणं सर्वं स्वयंभूश्चतुराननः ।

नमस्कृत्य परं ब्रह्म कृष्णध्यानपरोऽभवत् ॥४६

ध्यानमार्गेण भगवान्गत्वा ब्रह्मा परं पदम् ।

हेतुं तद्वर्णयामास यथा शंकरभाषितम् ॥४७

श्रुत्वा विहस्य भगवान्स्वमुखात्तेज उत्तमम् ।

समुत्पाद्य ततो जात पुरुषो रुचिराननः ॥४८

ब्रह्माण्डस्य च्छविर्या वै स्थिता तस्य कलेवरे ।

प्रद्युम्नो नाम विख्यातं तस्य जातं महात्मनः ॥४९

मैं तो एक योगी हूँ, उस माता स्वरूपिणी भगवती नारी को कैसे वरने में समर्थ हो सकता हूँ । इसलिये मैं आप लोगों के कार्य के लिये अपना वीर्य तुम को देता हूँ ॥४३॥ उस वीर्य को भगवान् वह्नि प्राप्त करके आपका कार्य कर देगा । यह कह कर देव ने वह्नि को उत्तम वीर्य दे दिया था और आप स्वयं समाधिस्थ होकर भगवान् हर स्थित हो गये थे ॥४४॥ उस समय इन्द्र आदि देव गण अग्नि के साथ वहाँ से निकल आये थे । सत्य लोक में जाकर उन्होंने यह समस्त वृत्तान्त प्रजापति से कहा था ॥४५॥ स्वयंभू चतुरानन ने उस सम्पूर्ण कारण को सुन कर परब्रह्म को नमस्कार करके कृष्ण के ध्यान में परायण हो गये थे ॥४६॥ ध्यान के मार्ग के द्वारा भगवान् ब्रह्मा परमपद को प्राप्त हुए थे । वहाँ उन्होंने जैसा कि शंकर ने कहा था वह समस्त हेतु वर्णित कर दिया था ॥४७॥ भगवान् उसे सुन कर और हँस कर अपने मुख से एक अति उत्तम तेज समुत्पन्न करके एक परम सुन्दर मुख वाला पुरुष को जन्म दिया था ॥४८॥ समस्त ब्रह्माण्ड की जो भी छवि थी वह उसके कलेवर

म म्थित थी । उसका नाम प्रद्युम्न विख्यात हुआ था जो कि महात्मा  
आत्मा बना वहा समुत्पन्न हुआ था ॥४६॥

तन साद्वं तदा ब्रह्मा सप्राप्य स्व कलेवरम् ।  
ददौ तेभ्यस्स पुरुष प्रद्युम्न शबरार्तिदम् ॥५०॥  
तजसा तस्य देवस्य नरानार्यस्समन्तत ।  
एकीभूतास्त्रिलोकेषु बभूवु स्मरपीडिता ॥५१॥  
स्थावरा सौम्यभूता चै ते तु कामाग्निपीडिता ।  
सरिद्धिश्च लताभिश्च मिलिनास्सवभूविरे ॥५२॥  
ब्रह्माण्डेश शिव साक्षाद्रुद्र कालाग्निसन्निभ ।  
त्रिनेत्रात्तज उत्पाद्य शमयामास तद्वचथाम् ॥५३॥  
तदा क्रुद्ध स कृष्णागो गृहीत्वा कौसुम धनु ।  
दिव्यान्पच शरान्घोरान्महादवाय वधवे ॥५४॥  
उच्चाटनेन बाणेन गन्ताभूल्लोकशकर ।  
वशीकरणबाणेन नारीवश्य शिवोऽभवत् ॥५५॥  
स्तभनेन महादेव शिवापाश्वे स्थिरोऽभवत् ।  
आकर्षणेन भगवाञ्छिवाकर्षणतत्पर ।  
मारणेनैव बाणेन मूर्छितोऽभून्महेश्वर ॥५६॥

उस समय उसके साथ ब्रह्मा ने अपने कलेवर को सम्प्राप्त करके  
उसने उनके लिये शबरार्तिद प्रद्युम्न पुरुष को दे दिया था ॥५०॥ उस  
स्व क लेख से सभी ओर म नर और नारी तीनों लोको म एकी भूत  
जोकर काम से पीडित हो गये थे ॥५१॥ सौम्य भूत जो स्थावर थे वे  
भी काम की अग्नि से उत्पीडित हो उठे थे । सरिताएँ और लताएँ भी  
मिलित होकर काम तप्त हो गई थी ॥५२॥ इस ब्रह्माण्ड क स्वामी  
माक्षान् रुद्र शिव कालाग्नि के तुल्य ने तीमर नत्र म नज समुत्पन्न करके  
उसकी व्यथा का शासन किया था ॥५३॥ उस समय वह कृष्णाङ्ग  
क्रुद्ध हुआ और उमन पुष्पा का धनुष ग्रहण किया था और दिव्य पाच  
घोर शरों को बघु महान्व क लिये प्रयोग किया था । उच्चाटन बाण स  
नाच कर गत हो गया था । और वशीकरण बाण म शिव नारी

थे । उन्होंने नारी रत्न सनातनी पार्वती देवी की स्तुति की थी ॥६६॥  
 देवों ने कहा—“उ” यह तो वितर्क में आता है और ‘मा’ यह बहुरूपा  
 लक्ष्मी दिखलाई देती है । इसी से तेरा उमा यह नाम है । उम उमा  
 देवी के लिए हम सब का बार-बार नमस्कार है ॥६७॥ हे शिवे ! इस  
 ब्रह्माण्ड में तुम्हारे कितने ही अयन है । आप कात्यायनी इसी लिए जानने  
 के योग्य है । कात्यायनी देवी के लिए हमारा सबका बार-बार नमस्कार  
 ॥६८॥ आप का अत्यन्त गौर वर्ण है इसी लिए आपका गौरी यह  
 शुभ नाम है । आपका श्याम वर्ण भी दिखलाई देता है इसीलिए आपको  
 बालिका भी कहा जाता है । आपका कभी रक्तवर्ण भी होता है इसी से  
 हैमवती यह शुभ नाम पड़ गया है । ऐसी तीनों वर्णों वाली देवी आपके  
 लिए हमारा बार-बार नमस्कार है ॥६९॥ आप भव की पत्नी हैं इसी  
 लिए छद्र से संयुक्त आपका भवानी नाम होता है । आप योगियों के  
 द्वारा भी बहुत दुष्प्राप्य हैं, अतएव आपका नाम दुर्गा है । दुर्गा देवी  
 आपके लिए हम सब का बार-बार नमस्कार है ॥७०॥

नान्तं जग्मुर्वयं ते वै चण्डिका नाम विश्रुता ।

अम्बा त्वं मातृभूता नो नमस्तस्यै नमोनमः ॥७१॥

इति श्रुत्वा स्तवं तेषां वरदा सर्वमंगला ।

देवानुवाच मुदिता दैत्यभीतिं हरामि वः ॥७२॥

स्तोत्रेणानेन सप्रीता भवामि जगतीतले ॥७३॥

इत्युक्त्वा शंभुसहिता कैलासं गुह्यकालयम् ।

गुहायां मिथुनीभूय सहस्राब्दं मुमोद वै ॥७४॥

एतस्मिन्तरे देवा भीरुका लोकनाशनात् ।

ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य तुष्टुवुगिरिजापतिम् ॥७५॥

लज्जितौ तौ तदा तत्र पश्चात्तापं हि चक्रतुः ।

महान्क्रोधस्तयोश्चामीत्तेन वै दुद्रुवुः सुराः ॥७६॥

प्रद्युम्नो बलर्वास्तत्र संतल्ये गौरिवाचलः ।

रुद्रकोपाग्निना दग्धो बभूव बलवत्तरः ॥७७॥

अब हम सब आपके अनन्त नाम होने के कारण अत तक नहीं प्राप्त हुए हैं । आपका चण्डिका यह नाम परम प्रसिद्धा है । आप हम सब का मातृभूता अम्बा हैं ऐसी आप अम्बा दवी ने लिए हमारा बार-बार नमस्कार है । ॥७१॥ इस प्रकार की स्तुति का सुन कर सबमङ्गला वरदा परम प्रसन्न होकर देवों से कहन लगी—मैं अब आपको जो दैत्यों में भय उत्पन्न हागया है उसका हरण कर दूँगी ॥७२॥ इस स्तात्र में परम प्रसन्न मैं जगती तल में होती रहूँगी ॥७३॥ यह यह कह कर भगवान् शम्भु के सहित गुह्यको का आलय कैलास में चली गई थी । वहाँ गुह्या में दोनों ने एकत्र होकर एक सहस्र वर्ष तक आनन्दापभोग किया ॥७४॥ इसी अन्तर में लोकों के नाश से भयभीत देवगण ब्रह्मा का आगे करके गिरिजा के पति की स्तुति करने लगे थे ॥७५॥ तब वे दोनों ने अत्यन्त लज्जित होकर बड़ा पश्चात्ताप किया था । उन दोनों का महान् क्रोध हुआ था उससे देवगण भाग गये थे ॥७६॥ प्रद्युम्न अत्यन्त बलवान् था । अबल गौ की भाँति वहाँ पर ही संस्थित रहा था । वह अधिक बलवान् भी रुद्र की काप की अग्नि से दग्ध हो गया था ॥७७॥

प्रद्युम्न स्थूलरूपं च त्यक्त्वा भस्ममयं तदा ।  
सूक्ष्मदेहमुपागम्य विश्रुतोऽभूदनगक ।  
यथा पूर्वं तथैवासीत्कायं कृत्वा स्मरो विभु ॥७८॥  
स्थूलं हृषा रानिर्देवी शताब्दं शकरं परम् ।  
ध्यानेनाराधयामास गिरिजावल्लभ व्रतं ।  
तदा ददौ वरं देवस्तस्यै रत्यै सनातन ॥७९॥  
रतिदेवि शृणु त्वं वै लोकानां हृत्सु जायसे ।  
योवने वयसि प्राप्ते नृणां देहं पतिं स्वकम् ।  
भजिष्यसि मदर्थेन प्रद्युम्नं कृष्णसम्भवम् ॥८०॥  
स्वारोचिषान्तरं कालो वर्तते चाद्यं सुप्रिय ।  
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते ह्यष्टाविंशतमे युगे ।  
द्वापरान्ते च भगवान्कृष्णं साक्षाज्जनिष्यति ॥८१॥

तदा तस्य सुत देव प्रद्युम्न मेरुमूढं नि ।  
 भजिष्यसि सुख रम्ये विपिने नन्दने चिरम् ॥८२॥  
 अन्येषु द्वापरान्तेषु स्वर्णगर्भो हि तत्पति ।  
 जन्मवान्वर्तते भूमौ यथा कृष्णस्तथैव स ॥८३॥  
 मध्याह्ने चैव सध्याया ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।  
 कल्पेकल्पे हरिस्साक्षात्करोति जनमगलम् ॥८४॥

प्रद्युम्न ने स्थूल रूप का त्याग करके उस समय वह भस्ममय हो गया और फिर सूक्ष्म स्वरूप को प्राप्त कर अनङ्ग—इस नाम से सत्तार में प्रसिद्ध होगया था । जैसे यह पहिले था वैसे ही काय को बना कर स्मर अब भी विभु है ॥७८॥ स्थूल रूप वाली रति देवी सौ वर्ष तक परम शक्ति का ध्यान से आराधन किया था और व्रतों के द्वारा गिरिजा के बल्लभ की पूर्ण उपामना की थी । तब सनातन देव ने उस रति को वरदान दिया था ॥७९॥ हे देवि ! हे रति ! तुम श्रवण करो मरा तुमको यह वरदान है कि तुम लोगों के हृदयों में उत्पन्न होंओगी जीवन अवस्था के प्राप्त होने पर नरों के देहों द्वारा अपने पति का सेवन करोगी । मेरे आधे भाग से कृष्ण से सम्भूत प्रद्युम्न का सेवन अवश्य ही उस समय करती रहोगी ॥८०॥ इस समय आज स्वारोचिष के अन्तर का सुप्रिय काल वर्तमान है जब वैवस्वत का अन्तर प्राप्त होगा उस समय में अष्टादशवें युग में द्वापर युग के अन्त में भगवान् कृष्ण इस भूमण्डल में जन्म ग्रहण करेंगे ॥८१॥ उस समय उसके पुत्र देव प्रद्युम्न को मेरे से शिखर में सेवन करोगी । और परम रम्य नन्दन विपिन में चिरकाल तक सुख पूर्वक रमण करोगी ॥८२॥ अन्य द्वापरान्ता में स्वर्णगर्भ उसका पति जन्म वान् भूमि में वर्तमान् होता है और जिस प्रकार कृष्ण हैं वैसे ही वह भी है ॥८३॥ अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्मा ने मध्याह्न में और सध्या में कल्प कल्प में हरि साक्षात् जनमङ्गल करते हैं ॥८४॥

इत्युक्त्वा भगवाञ्छुभुस्तत्रैवान्तर्द्विमागमत् ।

राजा वभूव रुद्राणो गिरिजावल्लभो भव ॥८५॥



इति श्रुत्वा भव साक्षात्स्वमुखात्स्वाशमुत्तमम् ।

समुत्पाद्य तदा भूमौ गोदावर्या वभूव ह ॥८६॥

आचार्यशर्मणो गेहे पुत्रो जातो भवाशक ।

रामानुजस्स वै नाम्नानुजोऽमद्रामशर्मणः ॥८७॥

एकदा रामशर्मा वै पतजलिमते स्थित ।

तीर्थातीर्थान्तर प्राप्त पुरी काशी शिवप्रियाम् ॥८८॥

शकराचार्यमागम्य शतशिष्यसमन्वितः ।

शास्त्रार्थं कृतवाचम्य कृष्णपक्षो हरिप्रिय ॥८९॥

शकराचार्यविजितो लज्जितो निशि भीरुकः ।

स्वगेह पुनरायात शाकरैर्वा शरैर्हतः ॥९०॥

रामानुजस्तु तच्छ्रुत्वा सर्वशास्त्रविशारदः ।

भ्रातृशिष्यैश्च सहित पुरी काशी समाययौ ॥९१॥

इतना रति से बह कर भगवान् शम्भु वही पर अन्तर्धान होगये थे ।

रुद्राणी गिरिजा का वल्लभ भव राजा हुआ था ॥८५॥ सूतजी ने कहा—

इस प्रकार से सुन कर भव ने साक्षात् अपने मुख से उत्तम अपने अश

को समुत्पादित करके भूमितल में गोदावरी में वह हुए थे ॥८६॥

वहा पर आचार्य शर्मा के घर में भव का अश पुत्र के स्वरूप में समु-

त्पन्न हुआ था । इनका नाम रामानुज था और यह राम शर्मा के छोटे

भाई थे ॥८७॥ एक बार राम शर्मा जोकि पतञ्जलि के मत में स्थित थे,

वह तीर्थाटन करते हुए तीर्थों से दूसरे तीर्थों में चलते हुए शिव की प्रिय

काशीपुरी में प्राप्त हुए थे ॥८८॥ यह अपने सौ शिष्यों से समन्वित

होकर शकराचार्य के पास गये थे । वहा हरि प्रिय कृष्ण पक्ष वाले ने

बड़ा सुन्दर शास्त्रार्थ उनके साथ किया था । उस शास्त्रार्थ में शकरा-

चार्य से विजित होकर परम लज्जा को प्राप्त हुए रात्रि में भीरु होकर

फिर अपने घर में आगये थे, क्योंकि शास्त्रार्थ में शाकर शरो से हत हो

रहे थे ॥९०॥ रामानुज ने यह सुना तो वह समस्त शास्त्रों के महा

मनीषी अपने भाई के शिष्यों को साथ में लेकर काशीपुरी में आगये

थे ॥९१॥

गिरियों के ईश्वर हैं । रुद्र कभी गोपाल भी नहीं हो सकते हैं क्योंकि गोभो के पालन करने वाले नहीं है प्रत्युक्त गौ के ऊपर आरुढ़ होने वाले हैं । इसलिये वे गवाम्बुद्ध कहे भी जाते हैं ॥६८॥

जय. पशुपतिः शंभुर्गोपतिर्नैव विश्रुतः ।

लज्जितः शकराचार्यो मीमामाशास्त्रमागतः ॥६९॥

तयोर्दशदिन शास्त्रे विवादस्मुमहानभूत् ।

यस्तु वै यज्ञपुरुषो रामानुजमतप्रियः ॥१००॥

विच्छिन्न. शकरेणैव मृगभूतः पराजितः ।

आचारप्रभवो धर्मो यज्ञदेवेन निर्मितः ॥१०१॥

भ्रष्टाचारमनदा जातो यज्ञे दक्षप्रजापते. ।

इति रामानुजः श्रुत्वा वचनं प्राह नम्रधीः ॥१०२॥

कर्मणे जनितो यज्ञो ज्ञेयो विश्वपालनहेतवे ।

कर्मब्रह्मोद्भव विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥१०३॥

अक्षरोऽयं शिवः साक्षाच्छब्दब्रह्मणि सस्थितः ।

पुराणपुरुषो यज्ञो ज्ञेयोऽक्षरकरो भुवि ।

अक्षरात्स तु वै श्रेष्ठः परमात्मा सनातनः ॥१०४॥

अक्षरेण न वै तृप्तात्पुनोभूयज्ञकर्मणि ।

नाम्ना स यज्ञपुरुषो वेदे लोके हि विश्रुतः ॥१०५॥

शम्भु का नाम पशुपति ही जाना जाता है । कही भी गोपति उनका नाम प्रसिद्ध नहीं है । इस प्रकार की इन प्रबलतर अकाट्य युक्तियों से शकराचार्य बहुत ही लज्जित हुए और फिर इन्होंने मीमांस शास्त्र में शब्द का आरम्भ कर दिया था ॥६९॥ उन दोनों का दश दिन तक महान् विवाद हुआ था । जो भी यज्ञ पुरुष हैं वह तो रामानुज के मत का ही प्रिय था । शकर के द्वारा ही विच्छिन्न हुआ मृगभूत हो कर पराजित होगया था । आचार से प्रभव धर्म यज्ञ देव के द्वारा ही निर्मित है ॥१००-१०१॥ वह दक्ष प्रजापति के यज्ञ में उस समय भ्रष्टाचार होगया था । यह रामानुज सुनकर नम्र बुद्धि वाला बोला—यज्ञ कर्म के लिए जनित है और वह विश्व के पालन के हेतु के लिए ही है ।

वह कर्म ब्रह्मोदभव होता है और ब्रह्म अक्षर समुद्भव होता है ॥१०३॥  
 यह अक्षर साक्षात् शिव है जो शब्द ब्रह्म में सस्थित है । पुराण पृथक्  
 यज्ञ है जो भूतल में अक्षरकर जानना चाहिए । अक्षर से वह सनातन  
 परमात्मा श्रेष्ठ है ॥१०४॥ अक्षर से तृप्त में यज्ञ कर्म में नहीं होता है  
 नाम के द्वारा वह यज्ञ पुरुष वेद और लोक में विश्रुत है ॥१०५॥

प्रपौत्रस्य तदा वृद्धि दृष्ट्वा स्पर्धातुरः शिवः ।

मृगभूतश्च रुद्रोऽमौ दिव्यवाणैरतर्पयत् ॥१०६॥

समर्थो यज्ञपुरुषो ज्ञात्वा गुरुमय शिवम् ।

पलायनधरो भूतो धर्मस्तेन महान्कृतः ॥१०७॥

लज्जितः शंकराचार्यो न्यायशास्त्रे समागतः ।

भवतीति भवो ज्ञेयो मृडतीति स वै मृडः ॥१०८॥

लोकान्भरति यो देवः स कर्ता भग्न एव हि ।

हरतीति हरो ज्ञेयः स रुद्रः पापरावणः ॥१०९॥

स्वयं कर्ता स्वयं भर्ता स्वयं हर्ता शिवः स्वयम् ।

शिवाद्विष्णुर्मही यातो विष्णोर्ब्रह्मा च पद्मभूः ॥११०॥

इति श्रुत्वा तु वचनं प्राह रामानुजस्तदा ।

घन्योऽयं भगवाञ्छंभुर्यस्याय महिमा परः ॥१११॥

सत्यसत्य ममाज्ञेय कर्ता कारयिता शिवः ।

रामनाम पर नित्यं कथ्य शभृजं पेदरिम् ॥११२॥

स्पर्धातुर शिव उस समय में प्रपौत्र की वृद्धि को देखकर मृगभूत  
 यह रुद्र दिव्य वाणों के द्वारा तृप्त किया था ॥१०६॥ समर्थ यज्ञ पुरुष  
 ने गुरुमय शिव को जान कर उसमें महान् कृत धर्म पलायन परावण हो  
 गया था इस मौमागा शास्त्र में भी लज्जित होकर शंकराचार्य फिर न्याय  
 शास्त्र में आगये थे शंकराचार्य ने कहा—भवतीति भव अर्थात् जो होना  
 है वही भव जानने के योग्य होता है और जो मृडन करता है वह 'मृड-  
 तीति'—इस श्रुति के द्वारा मृड कहा जाता है ॥१०७-१०८॥ जो  
 देव लोकों का भरण करता है वह कर्ता ही भग्न है । जो हरण करता  
 है उसे ही हर जानना चाहिए । यह रुद्र है जो पापों का रावण करने

वाला है ॥१०६॥ शिव स्वयं कर्ता—भर्ता और हर्ता है । शिव से विष्णु मही को प्राप्त हुआ और विष्णु से पद्मभू मही को गया था ॥१०७॥ शंकर भगवान् के इन वचनों को सुन कर तब फिर रामानुज न कहा—यह आपका भगवान् शम्भु धन्य है जिमकी ऐसी पर महिमा है ॥१०८॥ मत्स्य और छत्र मत्स्य यह है कि यह शिव मेरी आज्ञा है जिम का वह कर्ता और कार पिता अर्थात् कराने वाला है । राम का नाम पर और नित्य हूँ उम हरि का ही शम्भु सदा जय किया करते हैं ॥१०९॥

अनताः सृष्टयः सर्वा उद्भूता यस्य तेजसा ।

अनतः शेषतः शेषार मन्ते योगिनो हि तम् ॥११०॥

स च वै मत्प्रभोर्धाम सच्चिदानन्दविग्रहः ।

इति श्रुत्वा तदावाक्यं लज्जितः शंकरोऽभवत् ॥१११॥

योगशास्त्रपरो देवः कृष्णस्तेनैव दर्शितः ।

कालात्मा भगवान्कृष्णो योगेशो योगतत्परः ॥११२॥

साय्यशास्त्रे च कपिलस्तस्मै तेनैव दर्शितः ।

कं वीर्यं पति यो वै स कपिस्त चैव लाति यः ।

कपिलस्तु विज्ञेयः कपी रुद्रः प्रकीर्तितः ॥११३॥

कपिलो भगवान्विष्णुः सर्वज्ञः सर्वरूपवान् ।

तदा तु शंकराचार्यो लज्जितो नम्रकन्धरः ॥११४॥

शुक्लावरधरो भूत्वा गोविन्दो नाम निर्मलम् ।

जजाप हृदि शुद्धात्मा शिष्यो रामानुजस्य वै ॥११५॥

इति ते रुद्रमाहात्म्यं प्रसंगेनापि वर्णितम् ।

धनवान्पुत्रवान्वाग्मी भवेद्यः शृणुयादिदम् ॥११६॥

ये समस्त सृष्टियाँ अनन्त हैं । ये सब जिसके तेज उद्भूत से हुई हैं, वह जेप मे भी अनन्त है । शेष योगिगण उसका रमण किया करते हैं ॥११७॥ वह मेरे प्रभु का धाम है जोकि सच्चिदानन्द विग्रह वाले हैं । इस रामानुज का वाक्य श्रवण करके शंकराचार्य बहुत ही लज्जित हुए थे ॥११८॥ योगशास्त्र में परदेव कृष्ण ही हैं उसने ही दिखाया

है । भगवान् कृष्ण कालात्मा-योगेश और योग में तत्पर हैं ॥११५॥  
 और सांख्यशास्त्र में कपिल ने उसके लिए उसी ने दिखाया है । कपि  
 साम वीर्य को जो रक्षा करता है वह कपि है उस कपि को जा लाता  
 है वह कपिल होता है । वही कपिल है और कपि रुद्र कहा गया  
 है ॥११६॥ कपिल भगवान् विष्णु हैं जो सबज्ञ और सर्व रूप वाला है ।  
 तब तो भगवान् शंकराचार्य परम लज्जित होकर नीचे को कंधरा  
 करने वाले होगये थे ॥११७॥ गोविन्द शुक्ल वस्त्र धारण करने वाला  
 होकर निर्मल नाम का जप करने लगा । हृदय में शुद्धात्मा रामा  
 नुज का शिष्य था ॥११८॥ यह रुद्र का माहात्म्य प्रसङ्ग स ही तुम्हारे  
 समक्ष में वर्णन कर दिया गया है । जो इस माहात्म्य का श्रवण करता  
 है वह धन वाला और पुत्र वाला तथा वाग्मी हो जाता है ॥११९॥

### ॥ कबीर-नरश्री-पीपा-नानक-वृत्तान्त ॥

दितिपुत्रौ महाघोरी विष्णुना प्रभविष्णुना ।  
 सहती तु दितिर्जात्वा कश्यप समपूजयत् ॥१॥  
 द्वादशाब्दातरे स्वामी रुश्यपो भगवानृषि ।  
 उवाच पत्नी स हि ता वर ब्रूहि वरानने ।  
 सा तु श्रुत्वा नमस्कृत्य वचनं प्राह हर्षिता ॥२॥  
 अदितिर्मम या देवी सपत्नी पुत्रसयुता ।  
 द्वादशततयास्नस्या मम द्वौ तनयो स्मृता ॥३॥  
 तदवयसुते नैव विष्णुना सुरपालिना ।  
 विनाशितौ सुतौ चोरौ ततोऽहं भृशदुःखिता ॥४॥  
 देहि मे तनय स्वामिन्द्वादशादित्यनाशनम् ।  
 इति श्रुत्वा वचो घोरं दिति प्राह सुदुःखिता ॥५॥  
 ग्रहाणां निर्मिता लोके धर्माधर्मौ परापरी ।  
 धर्मपक्षास्तु ये लोके नरास्ते ग्रहाण प्रिया ॥६॥

अधर्मपक्षास्तु नरा वैरिणस्तस्य धीमतः ।

अधर्मपक्षो तनयो तस्मान्मृत्युमुपागतौ ॥७

इस अध्याय मे कबीर-नरथी-पीपा-नानक और नित्यानंद माधुओ की समुत्पत्ति के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । मुर गुरु बृहस्पति जी ने कहा—दिति के पुत्र दोनो महान् घोर थे । वे दोनो विष्णु के द्वारा प्रभविष्णु होकर मारे गये थे अर्थात् विष्णु ने अवतार धारण कर उन्हें मार दिया था । यह जानकर दिति ने कश्यप की भली-भाँति पूजा की थी ॥१॥ जब यजन करते हुए दिति को बारह वर्ष हो गये तो भगवान् कश्यप ऋषि जो उस दिति के स्वामी थे अपनी उस पत्नी से बोले—हे वरानने ! तू अपना मनोवाञ्छित वर माँग ले । उस दिति ने यह श्रवणकर बड़ा हर्ष प्राप्त किया और पति को नमस्कार करके उनसे कहने लगी थी ॥२॥ हे भगवन् ! अदिति देवी जो मेरी मपत्नी है वह पुत्रों से सयुक्त है । उसके बारह पुत्र हैं और मेरे दो ही पुत्र थे ॥३॥ वे दो पुत्र भी अवयंसुत सुरों के पालन करने वाले विष्णु न विनाशित कर दिये हैं जो कि पुत्र अत्यन्त घोर थे । इससे मैं बहुत ही अधिक दुःखित हूँ । हे स्वामिन् ! मुझे ऐसा पुत्र प्रदान करें जो इन बारह अदिति के पुत्रों का नाश करने वाला हो । इस घोर वचन को सुनकर कश्यप बहुत अधिक दुखी होकर दिति से बोले ॥४-५॥ लोक मे ब्रह्मा ने पर और अपर धर्म तथा अधर्म इन दोनो का निर्माण किया है । धर्म के पक्ष को ग्रहण करने वाले नर होते हैं वे ब्रह्मा के प्रिय हुआ करते हैं । अधर्म के पक्ष को ग्रहण करने वाले नर उस धीमान् के शत्रु होते हैं । तेरे पुत्र तो अधर्म के पक्ष ग्रहण करने वाले थे । इसी से वे मृत्यु को प्राप्त हुए हैं ॥६-७॥

अतो धर्मप्रिये शुद्ध कुरु तस्मान्महाबलः ।

भविष्यति सुतो धीर्मांश्चिरजीवी तव प्रियः ॥८

इति श्रुत्वा दितिर्देवी कश्यपाद्गर्भमुत्तमम् ।

संप्राप्य सा शुभाचारा बभूव व्रतधारिणी ॥९

तस्यागर्भगते पुत्र महेन्द्रश्च भयान्वितः ।

दासभूतः स्थितो गेहे स दितेराज्ञया गुरोः ॥१०॥

सप्तमासि स्थिते गर्भे शक्रमायाविमोहिता ।

अशुचिश्च दितिर्देवी सुप्वाप निजमंदिरे ॥११॥

अंगुष्ठमात्रो भगवान्महेन्द्रो वज्रसंयुतः ।

कुक्षिमध्ये समागम्य चक्रे गर्भं स सप्तधा ॥१२॥

जीवभूताननतिबलान्दृष्ट्वा सप्त महारिपून् ।

एकैकः सप्तधा तेन महेन्द्रेण तदा कृतः ॥१३॥

नग्रीभूतश्च तान्दृष्ट्वा महेन्द्रस्तैः समन्वितः ।

योनिद्वारेण चागम्य प्रणनाम तदा दितिम् ॥१४॥

इसलिये हे धर्म प्रिये ! शुद्ध मन करो । इससे महान् बलवान्—  
धीमान् और चिर काल तक जीवित रहने वाला तेरा प्रिय पुत्र समुत्पन्न  
होगा ॥१०॥ यह श्रवण कर दिति देवी ने कश्यप ऋषि से उत्तम गर्भ  
धारण किया और वह फिर शुभ आचारों वाली वृत्तों को धारण करने  
वाली हो गई ॥११॥ उसके गर्भ में पुत्र के आ जाने पर महेन्द्र देव अत्यन्त  
भय से आतुर हो गये थे और गुरु की आज्ञा से वह दास बनकर दिति  
के घर में ही स्थित होकर रहने लगा था ॥१०॥ जब उस गर्भ को  
स्थित हुए सात मास हो गये थे तब वह दिति इन्द्र की माया से विमोहित  
होकर अशुचि दशा में ही वह अपने मन्दिर में सो गई थी ॥११॥ इसी  
छिद्र को प्राप्त कर महेन्द्र देव अंगुष्ठ मात्र होकर वज्र धारण करके दिति  
की कुक्षि में प्रवेश कर गये थे और उसने अपने वज्र से उस गर्भ के  
सात टुकड़े कर दिये थे ॥१२॥ फिर भी जीवभूत अत्यन्त बलवान् उन  
सातों महारिपुओं को देखकर उस समय महेन्द्र ने एक-एक खण्ड के फिर  
मात-सात टुकड़े कर दिये थे ॥१३॥ उनको नग्री भूत जब इन्द्र ने  
देखा तो उनके साथ ही योनि के द्वार से बाहिर निकल कर महेन्द्र ने  
दिति को प्रणाम किया था ॥१४॥

प्रसन्ना सा दितिर्देवान्महेन्द्राय च तान्ददी ।

मरुद्गणाश्च ते सर्वे विख्याताः शक्रसेवकाः ॥१५॥

स तु पूर्वभवे जातो ब्राह्मणो लोकविश्रुतः ।  
 इलो नाम स वेदज्ञो यथेलो नृपतिस्तदा ॥१६॥  
 एकदा बलवाभ्राजा मनुपुत्र इलः स्वयम् ।  
 एकाकी हयमारुह्य मेरोर्विपिनमाययौ ॥१७॥  
 मेरोरधः स्थितः खण्डः स्वर्णगर्भो हरिप्रियः ।  
 निवास कृतवांस्तत्र कृत्वा राष्ट्रं महोत्तमम् ॥१८॥  
 इलेनावृतमेवापि वृत तत्र स्थले सुराः ।  
 इलावृतमिति ख्यातः खण्डोऽभूद्विबुधप्रियः ॥१९॥  
 भारते ये स्थिता लोका इलावृतमुपागताः ।  
 मेरुगिरिवृक्षमयो विधात्रा निर्मितो हि सः ॥२०॥  
 आरोहण नरैस्तस्मिन्कृत स्वर्णमय शुभम् ।  
 तमारुह्य क्रमाल्लोकः स्वर्गलोकमुपागतः ॥२१॥

तब दिति देवी ने प्रसन्न होकर उन देवों को महेन्द्र के लिये ही दे दिया था । वे सब इन्द्र के सेवक मरुद्गण इस नाम से विख्यात हुए थे ॥१५॥ वह पूर्व जन्म में लोक में प्रसिद्ध ब्राह्मण हुआ था । वह वेदों का ज्ञाता इस नाम वाला था जैसा कि उस समय में इल राजा था ॥१६॥ एक बार बलवान् मनु का पुत्र राजा इल स्वयं अकेला ही अश्व पर समावृद्ध होकर मेरु के वन में आ गया था ॥१७॥ मेरुगिरि के निचले भाग में हरि का प्रिय स्वर्ण गर्भ खण्ड स्थित था । वहाँ पर इसने महान् उत्तम राष्ट्र का निर्माण करके अपना निवास किया था ॥१८॥ उस स्थल में देवों ने इल के द्वारा आवृत भी किया था । अतः देवों का प्रिय वह खण्ड इलावृत इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥१९॥ भारत में जो लोक स्थित हैं वे इलावृत में उपागत हो गये थे । वह मेरु गिरि वृक्षों से परिपूर्ण विधात्रा के द्वारा निर्मित हुआ था ॥२०॥ उस पर नरों ने स्वर्णमय शुभ आरोहण किया था । उस पर आरोहण करके क्रम से लोक स्वर्ग लोक में उपागत हो गया था ॥२१॥

तान्दृष्ट्वा मनुजान्प्राप्तान्सदेहान्स्वर्गमण्डले ।

विस्मिताश्च सुरास्सर्वे महेशं शरणं ययुः ॥२२॥



ज्ञात्वा स भगवान्मुद्रो भवान्या सह शंकरः ।  
 इलावृतवने रम्ये स रेमे च तया सह ॥२३  
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो वैवस्वतसुतो महान् ।  
 इलो नाम महा प्राज्ञो मृगयार्थी सदाशिवम् ॥२४  
 नग्नभूत समातोवय नेत्रे संमौल्य सस्थितः ।  
 लज्जिता गिरिजां दृष्ट्वा शशाप भगवान्हरः ॥२५  
 अस्मिन्गण्डे सदा नायौ भविष्यति च मा विना ।  
 इत्युक्त्वा वचनं तस्मिन्नग्यंस्सर्वा बभूविरे ॥२६  
 इला बभूव नृपतेः कन्या जनमनोहरा ।  
 बहुकालं मेरुशृगे महत्तापमचीकरत् ॥२७  
 इलाममाधिभूतायाः सप्तविंशच्चतुर्मुगम् ।  
 जातं तत इला कन्या त्रेतामध्ये तु चन्द्रजम् ।  
 यद्य देव पतिं श्रुत्वा चन्द्रवंशमजीजनत् ॥२८

पुत्र बुध दब का अपना पति बना कर चन्द्र वश को समुत्पन्न किया था ॥२८॥

अयो याधिपति श्रीमा यदलावृतमागत ।  
तस्य राज्ञी मदवती नाम्ना तुष्टाव पावतीम् ॥२९॥  
तदा प्राप्त इलो विप्रस्तम्या रूपेण मोहित ।  
पम्पशं ता मदवती राज्ञी कामविमोहित ॥३०॥  
एतस्मिन् तरे तत्र वायुवाचाशरीरिणी ।  
इलो नाय द्विजश्राय तव रूपविमोहिन ॥३१॥  
अनिलो नाम तत्रैव विख्यातोऽभूद्विजस्य वै ।  
कामाग्निपीडितो विप्रस्त तुष्टाव च पावकम् ॥३२॥  
छित्त्वाछित्त्वा शिरो रम्य तस्मै जात पुन पुन ।  
दत्त्वा तुष्टाव त देव प्रसन्नोऽभूदधनजय ॥३३॥  
प्राह त्वमूनपचाशद्विभेदाञ्जनयिष्यसि ।  
तथाह मित्रवान्भूत्वा तत्सप्यस्तव कामद ॥३४॥  
यथा कुबेरो भगवा पडविशद्वरुणप्रिय ।  
तथाहमूनपचाशद्विभेदस्तव वै सखा ॥३५॥  
इत्युक्ते वचने तस्मिन्दितिकुक्षौ द्विजोत्तम ।  
वायुर्नाम स वै जात पावकस्य प्रियस्तखा ॥३६॥

अयोध्या का स्वामी श्रीमान् जिस समय मे इलावृत म आया था उस समय मे उस राजा की रानी मदवती नाम वाली ने वहा पावती की स्तुति की थी ॥२९॥ उस समय इल विप्र वहा आ गया और वह उस मदवती के रूप से मोहित हो गया था । काम से विशेष मोहित होकर उस विप्र ने उस मदवती राज्ञी का स्पर्श किया था ॥३०॥ इसी अन्तर म बिना शरीर वाली वाणी न कहा अथात् आकाश मे वाणी हुई थी यह इल नही है और यह द्विज इल है जो तम्हारे रूप से मोहित हो गया है ॥३१॥ वहा पर ही द्विज का अनिल यह नाम विख्यात हो गया था । कामाग्नि से अत्यन्त पीडित उस ब्राह्मण न पावक की स्तुति का थी ॥३२॥ उसने अपने रम्य शिर को काट काटकर उसे समर्पित किया

थे किन्तु पुनः पुनः उत्पन्न हो गया था । इस तरह से उम देव का जब स्तवन किया था । तब धनंजय प्रसन्न हो गया था ॥३३॥ वह संतुष्ट होकर बोला—तू उनचास विभेदों को उत्पन्न करेगा । तब मैं मित्रवान् होकर उतनी ही संख्या वाला तेरी कामनाओं का देने वाला होऊंगा ॥३४॥ जिस तरह भगवान् कुबेर छब्बीस वरुणों का प्रिय हैं । उसी प्रकार से मैं उनचास विभेद वाला तेरा सखा हूँ ॥३५॥ इस तरह के वचन कहने पर द्विजोत्तम दिति की कुक्षि में वायु नाम वाला पावक का सखा उत्पन्न हुआ था ॥३६॥

इति श्रुत्वा भुरोर्वाक्यं वैश्यजात्यां समुद्भवः ।

धान्यपालस्य वै गेहे मूलगण्डान्तजः सुतः ।

पितृमातृपरित्यक्तः काश्यां विन्ध्यवने तदा ॥३७

अलिको नाम वै म्लेच्छस्तत्र स्थाने समागतः ॥३८

अनपत्यो वस्त्रकारी सुत प्राप्य गृहं ययौ ।

कबीर इति विख्यातः स पुत्रो मधुराननः ॥३९

स सप्ताब्दवपुभूत्वा गोदुग्धपानतत्परः ।

रामानंदं गुरुं मत्वा रामध्यानपरोऽभवत् ॥४०

स्वहस्तेनैव संस्कृत्य भोजनं हरयेऽपर्यत् ।

तत्प्रियार्थं हरिस्साक्षात्सर्वकामप्रदोऽभवत् ॥४१

उत्तानपादतनयो ध्रुवोभूत्क्षत्रियः पुरा ।

पितृमातृपरित्यक्तः स बालः पंचहायनः ॥४२

सूतजी ने कहा—गुरु के इस वाक्य का भवण कर वैश्य जाति में समुत्पन्न धान्यपाल के घर में मूलगण्डान्त में अन्य लेने वाला पुत्र हुआ था जो कि माता और पिता के द्वारा परित्यक्त कर दिया गया था । उस समय काशी में विन्ध्य वन में अलिक नाम वाला म्लेच्छ था वह उस स्थान में आ गया था ॥३७-३८॥ वह म्लेच्छ सन्तान से हीन था और वस्त्रकारी था, वह उस सुत को प्राप्त करके गृह को चला गया था । वह कबीर इस नाम में मधुर मुख वाला पुत्र संसार में प्रसिद्ध हो गया था ॥३९॥ वह सात वर्ष की अवस्था वाला होकर गाय के दूध का

पान करन म तत्पर रहता था । फिर इसने स्वामी रामानन्द को अपना गुरु मान लिया था और श्रीराम क ध्यान म परायण हो गया था ॥४०॥ अपने हाथ से ही सस्कार करके यह हरि को भोजन अपण किया करता था । उसके प्रिय के लिये हरि साक्षात् समस्त कामनाओं के प्रदान करन वाले हो गये थे ॥४१॥ बृहस्पति जी ने कहा—यहिने राजा उत्तानपाद का पुत्र क्षत्रिय ध्रुव हुआ था । यह पाच वष का बालक माता पिता क द्वारा परित्यक्त करा दिया गया था ॥४२॥

गोवर्द्धनगिरौ प्राप्य नारदस्योपदेशत ।

स चक्र भगवद्ध्यान मासान्पट्च महाव्रती ॥४३॥

तदा प्रसन्नो भगवान्विष्णुर्नारायण प्रभु ।

खमडले पद तस्मै ददौ प्रीत्या नभोमयम् ॥४४॥

दृष्ट्वा तद्वदन रम्य मायाशक्त्या दिशो दश ।

स्वामिन च ध्रुव मत्वा भक्तितन्त्रा बभूविरे ॥४५॥

ध्रुवोऽपि भगवान्साक्षात्सवपूज्यो बभूव ह ।

दिवपति स तु विज्ञेयो भगणाना पति स्वयम् ॥४६॥

नभ पति कालकर शिशुमारपतिस्स वै ।

पचतत्त्वा हि वै माया प्रकृतिस्तत्पति स्वयम् ॥४७॥

तस्माद्वराया सभूतो भीमो नाम महाग्रह ।

जलदेव्यास्ततो जात शुक्रो नाम महाग्रह ॥४८॥

वह्निदेव्यास्ततो जातश्चाह तत्र महाग्रह ।

वासुदेव्या ध्रुवाज्जात केतुर्नाम महाग्रह ॥४९॥

यह गोवर्द्धन पर्वत पर जाकर नारद के उपदेश से छै मास पयन महान् व्रत करने वाले इसने भगवान् का ध्यान किया था । तब भगवान् विष्णु नारायण प्रभु परम प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने उसके लिये आकाश मण्डल म प्रीति से नभोमय पद दे दिया था ॥४४॥ माया शक्ति म उसके परम रम्य मुख को देखकर दशो दिशा म ध्रुव को स्वामी मान कर भक्ति से बिनम्र हो गई थी ॥४५॥ ध्रुव भी साक्षात् भगवान् सव का पूज्य हो गया था । वह स्वयं भगणों का पति दिवपति जानने के

योग्य है ॥४६॥ नभ का पति—कानकर और वह शिशु मार पति था ।  
पाँच तत्त्वों वाली माया प्रकृति थी उसका पति वह स्वयं था ॥४७॥ इस  
निये घरा में भीम नाम वाला महाग्रह उत्पन्न हो गया था । इसके  
अनंतर जलदेवी शुक्र नाम वाला वहा पर महाग्रह उत्पन्न हुआ था ॥४८॥  
इसके पश्चात् बह्मि देवी में वहा में महाग्रह समुत्पन्न हुआ । वासुदेवी में  
ध्रुव से केतु नाम वाले महाग्रह ने जन्म धारण किया था ॥४९॥

ग्रहभूतः स्थितस्तत्र नभोदेव्यां तदुद्भवः ।

राहुर्नाम तथा घोरो महाग्रह उपग्रहः ॥५०॥

पूर्वस्यां दिशि वै तस्माज्जातश्च रावतो गजः ।

आग्नेय्यां दिशि वै तस्मात्पुण्डरीको गजोऽभवत् ॥५१॥

वामनः कुमुदश्चैव पुष्पदन्तः क्रमाद्गजाः ।

सार्वभौमः सुप्रतीको नभोदिक्षु तु तत्सुताः ॥५२॥

अभ्रमुःकपिला चैव पिगलाख्या इमाः क्रमात् ।

ताम्रकर्णी शुभ्रदन्ती चाङ्गना चाङ्गनावती ॥५३॥

भूमिदिक्षु करिष्यश्च जातास्तस्मात्तु तत्प्रियाः ।

भर्गिनी च तथामाता मुता चैव स्नुषा तथा ॥५४॥

पशुयोन्युद्भवानां च नृणां ता योपितस्सदा ।

देवयोन्युद्भवानां च नृणां पत्नी स्मृता स्वसा ॥५५॥

मनुवंशोद्भवानां च नृणां चान्योद्भवाः स्त्रियः ।

इति धर्मो विधात्रोक्तो मया प्रोक्तः सुरा हि वः ॥५६॥

वहां पर ग्रह भूत होकर वह स्थित हो गया था । उसका उद्भव  
नभोदेवी में हुआ था । राहु नाम का महाग्रह अति घोर उपग्रह है ॥५०॥  
पूर्वदिशा में उससे ऐरावत नाम वाला हाथी समुत्पन्न हुआ था ।  
आग्नेयी दिशा में उससे पुण्डरीक नाम धारी गज की उत्पत्ति हुई थी  
॥५१॥ वामन-कुमुद और पुष्प दन्त गज तथा सार्वभौम-सुप्रतीक क्रम से  
गज हुए थे जो नभो दिशाओं में थे । उनके पुत्र अभ्रमु-कपिला और  
पिगल नाम वाले क्रम से हुए थे । ताम्रकर्णी-शुभ्रदन्ती-चाङ्गना और  
चाङ्गनावती भूमि की दिशाओं में करिष्या उससे उत्पन्न हुई थी ।

उनकी प्रिया भगिनी-माता-सुता और स्नुषा हुई थी । पशुयोनि म जन्म लेने वाले मनुष्या की वे सदा स्त्रियां थीं । जो देवयोनि म उद्भव वान नर थे उनकी पत्नी स्वसा थी । मनुष्य में जन्म ग्रहण करने वालों की अ योद्धमव स्त्रियां थीं । हे देवगण ! विद्याता ने यह धम कहा है और मैं आपकी कह कर सुना दिया है ॥५२ ५६॥

द्विधा ध्रुवस्स विज्ञेयो भूमेरुर्द्धमघस्तथा ।

सद्गुण स दिवारूपो रात्रिरुपस्तमोगुण ॥५७

अधोध्रुवे सदा रात्रिर्नारकास्तत्र वै स्थिता ।

ऊर्ध्वध्रुवे दिवा नित्य तपोमध्ये निशा दिवा ॥५८

महो जनस्नपस्सत्य तेषु नित्य दिन स्मृतम् ।

रौरवश्चाधकूपश्च तामिस्र च तमोमयम् ।

तेषुनित्य स्मृता रात्रि कल्पमान च कोविदै ॥५९

स तु पूर्वमवे चासीद्ब्राह्मणो माधवप्रिय ।

पष्टयन्द सवतीर्थेषु प्रात स्नान चकार ह ॥६०

तीर्थ पुण्यात्स वै विप्रो माधवो माधवप्रिय ।

सुनीत्या नर्ममासाद्य ध्रुवो भूत्वा रराज ह ।

पट्त्रिंशच्च सहस्रन्द राज्य कृत्वा ध्रुवोऽभवत् ॥६१

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्य स ध्रुव पचमो वसु ।

गुजरे देश आगम्य चक्ष्यजात्या समुद्भव ।

नरश्रीर्नाम विद्यातो गुणवश्यस्य वै सुत ॥६२

कुसीदगुणगुप्तश्च नरश्री पुनवत्सल ।

त्यक्त्वा प्राणान्ययौ स्वर्गं स वैश्यतनयो ध्रुव ॥६३

वह ध्रुव भूमि के ऊर्ध्व भाग में और अधोभाग में दो प्रकार का जानना चाहिए । दिवारूप यह सत्त्व के गुण धाला है और रात्रि रूप वह तमोगुण वाला है ॥५७॥ अधोभाग के ध्रुव में सदा ही रात्रि रहा करती है । वहा पर नरक वाले लोग स्थित रहते हैं । ऊर्ध्वभाग के ध्रुव में नित्य ही दिन रहता है उन दोनों के मध्य में दिन और निशा दोनों रहा करते हैं ॥५८॥ महलोक-जन लोक-उपो लोक और मत्स्य लोक इन

चारो मे नित्य ही दिन रहता है । रौरव—अन्ध कूप—तामिस्र ये अन्धकार मय और तमोगुण वाले हैं । उनमें सर्वदा ही रात्रि कही गई है । कोविद लोगो के द्वारा एक कल्प तक उसका भान बताया गया है ॥५६॥ वह पहिले जन्म मे माधव का प्रिय ब्राह्मण था । साठ वर्ष तक समस्त तीर्थों मे उसने प्रातःकाल का स्नान किया था ॥६०॥ तीर्थों के पुण्य के प्रभाव से वह विप्र माधव का प्रिय हो गया था । फिर मुनीवि मे गर्भ प्राप्त करके ध्रुव हुआ था और दीप्तिमान हो गया था । छत्तीस सहस्र वर्ष तक राज्य सुख का अनुभव करके वह ध्रुव हो गया था ॥६१॥ सूतजी ने कहा—गुरु के इस वाक्य का श्रवण करके पचम वमु वह ध्रुव गुर्जर (गुजरात) देश मे आकर वैश्य जाति मे समुद्भूत हुआ था । इसका नरथी यह नाम प्रसिद्ध था और यह गुण वैश्य नाम वाले वैश्य का पुत्र था ॥६२॥ इसका पुत्र कुमीद गुण गुह्य था । पुत्र का वत्सल नरथी अपने प्राणो का त्याग करके स्वर्ग लोक को चला गया था । वह ध्रुव वैश्य जन्य था ॥६३॥

प्रत्यह स हरेः क्रीडा वृन्दावनमहोत्तमे ।

शिवप्रसादात्प्रत्यक्षा दृष्ट्वा हर्षमवाप्तवान् ॥६४॥

यस्य पुत्रविवाहे च भगवान्भक्तवत्सलः ।

यादवैस्सह संप्राप्तस्तस्य वाञ्छितदायकः ॥६५॥

पुरी काशी समागम्य नरथीभक्तराट् स्वयम् ।

रामानन्दस्य शिष्यभूद्विष्णुधर्म विशारद ॥६६॥

कदाचिद्भगवानस्त्रिगंगाकूलेऽनसूयया ।

साद्ध तपो महत्कुवन्ब्रह्माध्यानपरोऽभवत् ॥६७॥

तदा ब्रह्मा हरिदशभुः स्वस्ववाहनमास्थिताः ।

वर ब्रूहीति वचन तमाहुस्ते सनातनाः ॥६८॥

इति श्रुत्वा वचस्तेषां स्वयभूतनयो मुनिः ।

नैव किञ्चिद्वचः प्राह सस्थितः परमात्मनि ॥६९॥

तस्य भाव समालोक्य त्रयो देवाः सनातनाः ।

अनसूया तस्य पत्नी समागम्य वचोऽब्रुवन् ॥७०॥

वृन्दावन महोत्सव मे प्रतिदिन उसने भगवान् की हरि की क्रीडा को शिव के प्रसाद से प्रत्यक्ष रूप मे देखकर बड़ा ही अधिक हर्ष प्राप्त किया था ॥६४॥ जिसके पुत्र के विवाह मे भक्तों पर अधिक प्यार करने वाले भगवान् यादवों के साथ सम्प्राप्त हुए थे जो कि उसके वाञ्छित के देने वाले थे ॥६५॥ काशीपुरी मे आकर भक्तों के राजा नरथी स्वयं स्वामी रामानन्द के शिष्य हो गये थे जो विष्णु धर्म के महापण्डित थे ॥६६॥ मृग गुरु बृहस्पति जी ने बड़ा—बिम्बी समय भगवान् अत्रि मुनि गंगा के तट पर अनसूया के साथ महान् तप करते हुए ब्रह्म के ध्यान मे तत्पर हो गये थे ॥६७॥ उस समय मे ब्रह्मा—हरि और शम्भु ये तीनों अपने-अपने वाहनो पर समावृत्त होकर वे सनातन 'वरदान की याचना करो जो कुछ भी तुमको अभीष्ट हो'—यह वचन उस अत्रि मुनि से बोले थे ॥६८॥ उनके इस वचन का श्रवण करके स्वयम्भू के पुत्र मुनि ने कुछ भी वचन नहीं कहा था क्योंकि वह उस समय परमात्मा मे ही सलग्न होकर स्थित थे ॥६९॥ वे सनातन तीनों देवो ने उसके भाव को देख कर उसकी पत्नी जो अनसूया थी उसके पास जाकर कहा था ॥७०॥

लिंगहस्त स्वयं रुद्रो विष्णुस्तद्रसवद्धनं ।

ब्रह्मा कामब्रह्मालोपं स्थितस्तस्यावश गत ।

रतिं देहि मदाधूर्णो नो चेत्प्राणास्त्यजाम्यहम् ॥७१॥

पतिव्रताऽनसूया च श्रुत्वा तेषा वचोऽशुभम् ।

नैव किंचिद्वचः प्राह कोपभीता सुरान्प्रति ॥७२॥

मोहितास्तत्र ते देवा गृहीत्वा ता बलात्तदा ।

गैथुनाय समुद्योगं चक्रुर्मयाविमोहिताः ॥७३॥

तदा क्रुद्धा सती सा वै ताञ्छशापं मुनिप्रिया ।

मम पुला भविष्यति यूयं कामविमोहिताः ॥७४॥

महादेवस्य वै लिंगं ब्रह्मणोऽस्य महाशिरः ।

चरणी वासुदेवस्य पूजनीया नरैस्सदा ।

भविष्यति सुरश्रेष्ठा उपहासोऽयमुत्तम ॥७५॥



इति श्रुत्वा वचो घोरं नमस्कृत्य मुनिप्रियाम् ।

तुष्टुबुर्भक्तितनूनाश्च देवपाठैश्च ऋद्धमयैः ॥७६॥

अनसूया तदा प्राह भवन्तो मम पुत्रकाः ।

भूत्वा शापं मदीयं च त्यक्त्वा तृप्तिमवाप्स्यथ ॥७७॥

इस स्वयं लिङ्ग को हाथ में लिए हुए हैं—विष्णु, उसके रस का वर्द्धन करने वाले हैं और काम ब्रह्मतोष ब्रह्मा भी यहाँ पर स्थित हैं जोकि उसके अवश को प्राप्त हुए हैं। हे महापूण ! अब तू रति का दान दे नहीं तो मैं प्राणों का त्याग करता हूँ ॥७६॥ पातिव्रत धर्म का पूर्ण पालन करने वाली अनसूया ने इस उनके अशुभ वचन को सुन कर देवों के प्रति अत्यन्त क्रुद्ध होने के भय से डरी हुई होकर उसने कुछ भी उनको उत्तर नहीं दिया था ॥७७॥ वहाँ पर देवगण मोहित होगये थे और उस अनसूया को बल पूर्वक उस समय पकड़ लिया था तथा माया से अत्यन्त विमोहित होते हुए उसने उसके साथ मैथुन करने का उद्योग किया था ॥७८॥ जब इसको देखा तो मुनि की प्रिया को बड़ा क्रोध उत्पन्न होगया था और उस सती ने उनको शाप दे दिया था—तुम काम से विमोहित होगये हो अब तुम सब मेरे पुत्र होकर जन्म लोगे ॥७९॥ महादेव के इस लिङ्ग की—ब्रह्मा के महाशिर की और वासुदेव विष्णु के चरणों की ही सदा मनुष्यों के द्वारा पूजा हुआ करेगी। हे सुरभ्रष्टो ! आप इसी प्रकार से पूजा के योग्य होओगे और यह एक उत्तम उपहारा होगा ॥८०॥ इस प्रकार का परम योग वचन सुन कर उन्होंने मुनि प्रिया को नमस्कार किया था और भक्ति से अत्यन्त विनम्र होकर वेद पाठ की ऋचाओं के द्वारा उसकी स्तुति करने लगे थे ॥८१॥ इसके पश्चात् अनसूया ने कहा—आप सब तीनों मेरे पुत्र बन कर मेरे शाप का त्याग करके फिर परम तृप्ति करेंगे ॥८२॥

इत्युक्ते वचने ब्रह्मा चंद्रमाश्च तदा ह्यभूत् ।

दत्तात्रेयो हरिः साक्षाद् वासा, भगवान्हरः ।

तत्पापपरिहारार्थं योगवन्तो बभूवुरे ॥८३॥

एतस्मिन्न तरेदेवी प्रवृत्तिस्मव घामिणी ।  
 विधि विष्णु हर चान्य चक्रे सा गुणरूपिणी ॥७८॥  
 मन्वन्तरमतो जात तेषा योग प्रकुर्वताम् ।  
 हृषिताश्च त्रयो देवास्समागम्य च तान्प्रति ॥७९॥  
 उवाच वचन रम्य तेषा मगलहेतवे ।  
 चन्द्रमाश्च भवेत्सोमो वसु पट सुरप्रिय ॥८०॥  
 रुद्राशश्चैव दुर्वासा प्रत्यूष सप्तमो वसु ।  
 दत्तात्रेयमयो योगी प्रभासश्चाष्टमो वसु ।  
 तेषा वाक्य समावर्ण्यं वमरस्ते त्रयोऽभवन् ॥८१॥  
 इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्य वसवो हृषितास्तथ ।  
 स्वाशेन भूतल जग्मु कलिशुद्धाय दारुणे ।  
 दाक्षिणान्ये राजगृहे वैश्यजात्या समुद्भव ॥८२॥  
 पीपा नाम सुत सोम देवस्य तदा ह्यभूत् ।  
 कृत राज्यपद तेन यथा भूपेन तत्पुरे ॥८३॥

इस प्रकार मे वचन कहे जाने पर उस समय ग्रहा चन्द्रमा हुए थे ।  
 हरि दत्तात्रेय हुए और भगवान् हर साक्षात् दुर्वासा हुए थे । वम पाप  
 के परिहार के लिए ये योग बाने हुए थे ॥७८॥ इस बीच मे सर्व धम  
 वाली प्रकृति देवी ने जोकि गुणों के रूप बानी थी विधि-विष्णु और  
 हर को अथ बनाकर स्थिर कर दिया ॥७९॥ उनके योग करते हुए  
 मन्वन्तर होगया था । परम प्रसन्न तीनों देव उनके मगन के लिए अति  
 रम्य वचन कहने लग थे । चन्द्रमा सोम होजावे और सुरप्रिय छटा  
 वसु हो जावेगा ॥८० ८१॥ रुद्र का अश दुर्वासा योगी प्रभास  
 आठवाँ वसु होगा । उनके वाक्य का श्रवण करके वे तीनों वसु होगये  
 थे ॥८२॥ सूतजी ने कहा—यह गुरु क वचन सुनकर तीनों वसु परम  
 हर्षित होते हुए अपने अश से कलिशुद्ध के लिए भूतल चले गये थे ।  
 वहाँ दारुण दाक्षिणात्य राजगृह मे वैश्य जाति मे उनका समुद्भव  
 हुआ था ॥८३॥ उस समय मे देव का सुत सोम पीपा नामधारी हुआ ।  
 उसने उम पुर में भूप की भाँति ही राज्य पद का उपभोग किया था ॥८४॥

रामानन्दस्य शिष्योऽभूद्धारकां स समागतः ।  
 हरेमुद्रां स्वर्णमयीं प्राप्य कृष्णात्स वै नृपः ।  
 वैष्णवेभ्यो ददौ तत्र प्रेततत्त्वविनाशिनीम् ॥८५॥  
 प्रत्यूषश्चैव पांचाले वैश्यजात्यां समुद्भवः ।  
 भार्गपालस्य तनयो नानको नाम विश्रुतः ॥८६॥  
 रामानन्दं समागम्य शिष्यो भूत्वा स नानकः ।  
 स वै श्लेच्छान्वशीकृत्य सूक्ष्ममार्गं यदर्शयत् ॥८७॥  
 प्रभासो वै शांतिपुरे ब्रह्मजात्यां समुद्भवः ।  
 शुक्लदत्तस्य तनयो नित्यानन्द इति स्मृतः ।  
 इति ते वसुमाहात्म्यं मया शौनक वर्णितम् ॥८८॥

यह स्वामी रामानन्द का शिष्य हुआ था और वह द्वारका में  
 आगया था । उस राजा ने हरिकृष्ण से स्वर्णमयी मुद्राएं प्राप्त करके  
 जोकि प्रेत तत्व की विनाश करने वाली थी उसने वैष्णवों को देदी थी  
 ॥८५॥ प्रत्यूष पांचाल अर्थात् पंजाब देश में वैश्य जाति में समुद्भूत  
 हुआ था । यह मार्ग पालक पुत्र था और इसका नाम नानक प्रसिद्ध  
 था ॥८६॥ यह नानक भी स्वामी रामानन्द के समीप में उपस्थित होकर  
 उनका शिष्य होगया था । उस नानक ने श्लेच्छों को वश में करके  
 उन्हें सूक्ष्म मार्ग दिखलाया था ॥८७॥ प्रभास जो था वह शांतिपुर  
 में ब्रह्मजाति में समुत्पन्न हुआ था । यह शुक्लदत्त का पुत्र था और  
 नित्यानन्द इस नाम से प्रसिद्ध था । हे शौनक ! यह वसुओं का माहात्म्य  
 मैंने तुमको वर्णन कर के सुना दिया है ॥८८॥

॥ चैतन्य वर्णन में जगन्नाथ माहात्म्य ॥

भट्टोजिस्त्वं च शुद्धात्मा शिवभक्तिपरायणः ।  
 कृष्णचैतन्यमागम्य नमस्कृत्य वचोऽब्रवीत् ॥१॥  
 महादेवो गुरुः स वै शिव आत्मा शरीरिणाम् ।  
 विष्णुर्ब्रह्मा च तद्दासी तर्हि तत्पूजनेन किम् ॥२॥

इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विशदब्दवयोवृतः ।

विहस्याह स भट्टोजि नाथ शंभुमहेश्वरः ॥३॥

समर्थो भगवाञ्छुभुः कर्ता किञ्च शरीरिणाम् ।

न मर्ता च विना विष्णुं संहर्तायिं सदा शिवः ॥४॥

एकमूर्तिस्त्रिधा जाता ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः ।

शाक्तमार्गेण भगवान्ब्रह्मा मोक्षप्रदायकः ॥५॥

विष्णुर्वैष्णवमार्गेण जीवाना मोक्षदायकः ।

शंभुर्वै शैवमार्गेण मोक्षदाता शरीरिणाम् ॥६॥

शाक्त सदाश्रमो गेही यज्ञभुविपतृदेवगः ।

वानप्रस्थाश्रमी यो वै वैष्णवः कन्दमूलभुक् ॥७॥

इस अध्याय मे कृष्ण चैतन्य के चरित्र के वर्णन मे जगन्नाथ के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—वह भट्टोजि शुद्ध आत्मा वाला और शिव की भक्ति में परायण था । वह कृष्ण चैतन्य महाप्रभु के पास आकर उनको नमस्कार करके यह वचन बोला—॥१॥ महादेव गुरु हैं और शरीर धारियों के शिव आत्मा हैं । विष्णु और ब्रह्मा तो उनके दोनों दास हैं फिर इनके पूजन करने से क्या लाभ है ॥२॥ यह सुनकर श्रीमन्मन्त्र की अवस्था वाला यज्ञांश हँस कर भट्टोजि ने बोला—यह महेश्वर शम्भु नहीं हैं ॥३॥ समर्थ भगवान् शम्भु शरीर धारियों का क्या नहीं करने वाला है । वह विष्णु के बिना भरण करने वाला नहीं है । यह शिव तो सदा सहार करने वाला होते हैं ॥४॥ एक ही मूर्ति है जो ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर इन तीन रूपा में झोगई है । भगवान् ब्रह्मा शक्तिमार्ग के द्वारा मोक्ष के प्रदान करने वाले हैं ॥५॥ विष्णु वैष्णव मार्ग के द्वारा जीवोंको मोक्ष प्रदान किया करते हैं । शम्भु शैव पद्धति के द्वारा शरीर धारियों के मोक्ष दाता होते हैं ॥६॥ शाक्त सदाश्रम गेही और यज्ञ भुक् तथा पितृ देवों का अनुगमन वाला होना है । जो वानप्रस्थ आश्रम मे रहने वाला वैष्णव है कन्द मूल का उपभोक्ता होता है ॥७॥

यत्याश्रमः सदा रौद्रो निर्गुणः शुद्धविग्रहः ।  
 ब्रह्मचर्याश्रमस्तेषामनुगामी महाश्रमः ॥८॥  
 इति श्रुत्वा गुरोर्वीर्यं शिष्यो भूत्वा स वै द्विजः ।  
 तृतीयागं च वेदानां व्याचक्ष्यौ पाणिनिकृतम् ॥९॥  
 तदाज्ञया च सिद्धान्तकौमुद्यास्स चकार ह ।  
 तत्रोष्य दीक्षितो धीमान्कृष्णचैतन्यसेवकः ॥१०॥  
 वराहमिहिरो धीमान्स च सूर्यपरायणः ।  
 द्वाविंशाब्दे च यज्ञांशे तमागत्य वचोब्रवीत् ॥११॥  
 सूर्योऽयं भगवान्सालात्त्रयो देवा यतोऽभवन् ।  
 प्रातर्ब्रह्मा च मध्याह्ने विष्णुःसायं सदाशिवः ॥१२॥  
 अतो रवेः शुभा पूजा त्रिदेवयजनेन किम् ।  
 इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विहस्याह शुभं वचः ॥१३॥  
 द्विधा बभूव प्रकृतिरपरा च परा तथा ।  
 नाममात्रा तथा पुष्पमात्रा तन्मात्रिका तथा ॥१४॥  
 शब्दमात्रा स्पर्शमात्रा रूपमात्रा रसा तथा ।  
 गन्धमात्रा तथा ज्ञेया परा प्रकृतिरष्टधा ॥१५॥

यत्याश्रम सदा रौद्र होता है जो निर्गुण और शुद्ध विग्रह वाला है ।  
 उनका ब्रह्मचर्य आश्रम अनुगामी होता है और यह महान् आश्रम है  
 ॥८॥ यह गुरु का वचन सुन कर वह द्विज शिष्य होगया था और उसने  
 वेदों का जो तीसरा अंग पाणिनि कृत व्याकरण है उसकी व्यवस्था की  
 थी ॥९॥ उसकी आज्ञा से ही उस भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी  
 की रचना की थी । परम धीमान् कृष्ण चैतन्य के शिष्य दीक्षित ने यह  
 रचना यहाँ पर रह कर ही की थी ॥१०॥ सूतजी ने कहा—धीमान्  
 वराह मिहिर जो या वह सूर्यदेव की उपासना में परायण रहता था ।  
 जब यज्ञांश बार्दग वर्ष की अवस्था वाला होगया था तब उसके पास  
 आकर यह वचन बोला—यह सूर्य भगवान् हैं । तीनों बड़े देव उसी से  
 उत्पन्न हुए हैं । प्रातः काल में ब्रह्मा हुए—मध्याह्न में विष्णु की उत्पत्ति  
 हुई और सायं काल में सदाशिव समुत्पन्न हुए हैं ॥११-१२॥ इसलिये सूर्यदेव

की ही पूजा शुभ है इन ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर तीन देवों की पूजार्था  
स क्या लाभ है । यथाश ने यह मुनवर हँसकर यह शुभ वचन बोला  
था ॥१२॥ यह प्रकृति परा और अपरा दो प्रकार की हुई थी । नाम  
मात्रा तथा पुष्पमात्रा तथा तन्मात्रिका और शब्दमात्रा-स्पर्शमात्रा-रूप  
मात्रा-रसा और गन्धमात्रा इस प्रकार से परा प्रकृति आठ प्रकार की  
है ॥१४ १५॥

अपराया जीवभूता नित्यशुद्धा जगन्मयी ।

भूमिरापोऽनलो वायु र्ध मनोबुद्धिरेव च ।

अहकार इति ज्ञेया प्रकृतिश्चापराष्टधा ॥१६

विष्णुर्ब्रह्मा महादेवो गणेशो यमराज गुह ।

कुबेरो विश्वकर्मा च परा प्रकृतिदेवता ॥१७

सुमेरुवरुणा वह्निर्वायुश्च ध्रुवस्तथा ।

सोमो रविस्तथा शेषोऽपरा प्रकृतिदेवता ॥१८

अतः सोमवती रुद्रो रवि स्वामी विधि स्वयम् ।

शेषस्वामी हरि साक्षान्नमस्तभ्यो नमोनम ॥१९

इति श्रुत्वा सदा विप्र शिष्यो भूत्वा च तद्गुरो ।

तदाज्ञया चतुर्थां गज्योति सास्त्र चकार ह ॥२०

वराहसहिता नाम बृहज्जातकमेव हि ।

क्षुद्रतन्नास्तथान्यान्वै कृत्वा तत्र स चावसत् ॥२१

अपरा प्रकृति में जीवभूता नित्यशुद्धा जगन्मयी-भूमि-जल-तेज-  
वायु-आकाश-मन-बुद्धि और अहकार ये सब हैं आठ प्रकार की ही  
इस तरह से अपरा प्रकृति भी है ॥१६॥ विष्णु-ब्रह्मा-महादेव-गणेश-  
यमराज-गुह-कुबेर और विश्वकर्मा ये सब पराप्रकृति के देवता हैं ॥१७॥  
सुमेरु-वरुण-वह्नि-वायु-ध्रुव-सोम-रवि तथा शेष ये सब अपरा  
प्रकृति देव हैं ॥१८॥ इसलिये सोम का स्वामी रुद्र हैं और रवि का  
स्वामी स्वयं ब्रह्मा हैं शेष के स्वामी हरि साक्षात् हैं उन सबके लिये  
बार-बार नमस्कार है ॥१९॥ यह सब अवण करके वह विप्र शिष्य  
होकर उस गुह की आज्ञा प्राप्त कर चौथा जो वेदों का अग ज्योतिष

शास्त्र है उसकी रचना वराह मिहिर ने की थी ॥२०॥ वराहसंहिता नामक और बृहज्जातक छोटे तथा अन्य तन्त्र ग्रन्थ समूहों की रचना करके वह वहां पर बस गया था ॥२१॥

वाणीभूषण एवापि शिवभक्ति परायण ।

कृष्णचैतन्यमागम्य वचः प्राह विनम्रधीः ॥२२

विष्णुमाया जगद्धात्री संका प्रकृतिस्तृप्ता ।

तया जातमिदं विश्वं विश्वाद्देवसमुद्भव ॥२३

विश्वेदेवस्स पुरुषशक्तिजो बहुधाभवत् ।

ब्रह्मा विष्णुर्हरश्च देवाः प्रकृतिः सभवा ।

अतो भगवती पूज्या तर्हि तत्पूजनेन किम् ॥२४

इति श्रुत्वा स यज्ञाशो विहस्याह द्विजोत्तमम् ।

न वै भगवती श्रेष्ठा जडरूपा गुणात्मिका ॥२५

एका सा प्रकृतिर्माया रचितुजगता क्षमो ।

पुरुषस्य सहायेन योपितेव नरस्य च ॥२६

देवीभागवते शास्त्रे प्रसिद्धेयं कथा द्विज ।

कदाचित्प्रकृतिर्देवी स्वेच्छयेद जगत्खलु ॥२७

निर्मितं जडभूतं तद्ब्रह्मा बोधितं तया ।

न चैतन्यमभूद्विप्रा विस्मिता प्रकृतिस्तदा ॥२८

सूतजी ने कहा—वाणीभूषण भी शिव की भक्ति में परम परायण था । यही भी कृष्ण चैतन्य महाप्रभु के पास आकर विनम्र भाव में यह वचन बोला—॥२२॥ विष्णु माया जगत् की धात्री है । वह एक प्रकृति उत्कृष्ट है । उससे यह जगत् उत्पन्न हुआ है और विश्वदेव से इस विश्व का उद्भव हुआ है । विश्वदेव वह पुरुष बहुधा शक्ति से उत्पन्न हुआ था । ब्रह्मा-विष्णु और हर ये सब देव प्रकृति से ही सम्भूत होने वाले हैं । इसीलिए भगवती का ही यजन करना चाहिए, इन मंत्रों के पूजन करने में क्या लाभ है ? ॥२३-२४॥ उन ब्राह्मण की यह बात सुनकर यह यज्ञाशु ■ मन्त्र द्विजोत्तम से बोला—भगवती श्रेष्ठ नहीं है । वह तो जड रूप धारी और गुणात्मिका अर्थात् मत्वादि तीन गुणों के स्वरूप

गानी है । एक वह एक प्रकृति माया जगतो की रचना करने को क्षम  
पुरुष की सहायता से ही हुई है । जिस तरह कोई स्त्री पुरुष की सहा-  
यता से शिशु का सृजन किया करती है । हे द्विज ! यह कथा तो देवी  
भगवत् नामक शास्त्र में प्रसिद्ध है । कदाचित् प्रकृति देवी ने अपनी ही  
इच्छा से इस जगत् का निर्माण किया था तो यह जड़ भूत था । उसने  
बहुधा इसे बोधित किया था किन्तु यह चैतन्य नहीं हुआ था । हे विप्र !  
तब यह प्रकृति बहुत ही विस्मित हुई थी ॥२५-२८॥

शून्यभूतं च पुरुषं चैतन्यं समतोपयत् ।

प्रविष्टो भगवान्देवीमायाजनितगोलके ॥२६॥

स्वप्नवद्वा स्वयं जातश्चैतन्यमभवज्जगत् ।

अतः श्रेष्ठः स भगवान्पुरुषो निर्गुणः परः ॥२७॥

प्रकृत्या स्वेच्छया जातो लिंगरूपस्तदाऽभवत् ।

पुंल्लिंगप्रकृतौ जातः पुंल्लिंगोऽयं सनातनः ॥२८॥

स्त्रील्लिंगप्रकृतौ जातः स्त्रील्लिंगोऽयं सनातनः ।

नपुंस्कप्रकृतौ जातः क्लीवरूपः स वै प्रभुः ॥२९॥

अव्ययप्रकृतौ जातो निर्गुणोऽयमधोक्षजः ।

नमस्तस्मै भगवते शून्यरूपाय माक्षिणे ॥३०॥

इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं शिष्यो भूत्वा स वै द्विजः ।

त्रिविशाब्दे च यज्ञाशे तत्र वासमकारयत् ॥३१॥

छंदोग्रंथं तु वेदागं स्वनाम्ना तेन निर्मितम् ।

राधाकृष्णपरं नाम जप्त्वा हर्षं मवाप्तवान् ॥३२॥

तब शून्यभूत चैतन्य पुरुष को भली भाँति उसने सन्तुष्ट किया था  
अर्थात् उसका स्तवन किया था । तब भगवान् ने इस देवी माया के  
द्वारा जनित गोलक मे प्रवेश किया था ॥२६॥ तब स्वप्न हुआ और यह  
समस्त जगत् चैतन्य होगया था । अतएव वह भगवान् पुरुष ही श्रेष्ठ  
है जो निर्गुण और पर है ॥२७॥ प्रकृति मे जब स्वयं उत्पन्न हुआ तो  
उस समय वह लिंगरूप होगया था । पुंल्लिंग प्रकृति मे उत्पन्न हुआ  
यह सनातन पुंल्लिंग होता है ॥२८॥ जब स्त्री लिंग प्रकृति मे यह जात



गी स्वयं मन्त्र प्रकार से समय होते हैं ॥३७॥ नित्य-अव्यक्त-पर-सूक्ष्म है । उससे ही प्रकृति का उद्भव होता है । इसीलिए वह भगवान् पूजन व योग्य है । इस प्रकृति के यजन मे क्या लाभ है ? ॥३८॥ यह उम घन्वन्तरि द्विज की बात का श्रवण करके ममस्त आस्त्रो के जाता यनाश होकर बोले-यह पुरुष थपठ नहीं है । यह भी प्रकृति के बिना कुछ भी करने के लिए समय नहीं होता है ॥३९॥ वाराह पुराण मे यह शुभ कथा अत्यन्त सुप्रसिद्ध है । किमी समय मे निरर नाममात्र पुरुष ने स्वेच्छा से स्वयं ही बहुत प्रकार का होगया था जैसे कोई प्रेत होता है ॥४०॥ यह पर पुरुष जगतो की रचना करने के काय मे असमर्थ होगया था । तब इसने प्रकृति देवी की जो सनातनी थी चिरकाल तक स्तुति की थी ॥४१॥ उम समय दधीन उमको प्राप्त करके महत्त्व की रचना की थी । वह अहंकार महत् से उत्पन्न हुआ और उस अहंकार से पांच तन्मात्रिकाएँ उत्पन्न हुई थी ॥४२॥

महाभूतायतोऽप्यासस्तै सजातमिदं जगत् ॥४३॥

अतस्सनातनौ चोभौ पुरुषात्प्रकृति परा ।

प्रकृते पुरुषश्चैव तस्मात्ताभ्या नमोनम ॥४४॥

इति घन्वन्तरि श्रुत्वा शिष्यो भत्वा च तद्गुरो ।

ततोऽप्यर्च्य वेदाग कल्पवेद चकार ह ।

सुश्रुतादपरे चापि शिष्या घन्वन्तरे स्मृता ॥४५॥

जयदेवस्स वै विप्रो बौद्धमागपरायण ।

कृष्णचैतन्यमागम्य पञ्चविंशवयोवृत्तम् ।

नत्वावाच वचो रम्य स च श्रेष्ठ उपापति ॥४६॥

यस्य नाभेरभूत्पद्मं ब्रह्मणा सह निगतम् ।

अतस्स ब्रह्मसूनाम सामवेदेषु गीयते ॥४७॥

विश्वो नारायणस्साक्षाद्यस्य केतौ समास्थित ।

विश्वकेतुरतो नाम न निरुद्धोऽनिरुद्धक ॥४८॥

ब्रह्मवला च तत्पत्नी नित्या चोपा महोत्तमा ।

स वै लोकहितार्थाय स्वयमर्चावतारक ॥४९॥

होता है तो यह मनातन स्त्रीलिंग होता है। नपुंसक प्रकृति में जब होता है तो वह प्रभु वकीव रूप वाला होता है ॥३२॥ अथ्यय प्रकृति में जात होने पर यह निर्गुण अशोक्षत्र होता है। उस शून्य रूप वाले साक्षी स्वरूप में स्थित भगवान् के लिए नमस्कार है ॥३३॥ इस यज्ञाश के वचन को सुनकर वह द्विज भी उनका शिष्य होगया था और तेईस वर्ष वाले यज्ञाश के होने पर इसने वहा पर अपना निवाम किया था ॥३४॥ इमने वेदों का अग स्वरूप जो छन्दों का ग्रन्थ है वह अपने नाम से उसने रचित किया था। और धीराद्या कृष्ण के नाम का जप करके यह परम हृवं को प्राप्त हुआ था ॥३५॥

धन्वतरिर्द्विजो नाम ब्रह्मभक्तिपरायणः ।

कृष्णचैतन्यमागम्य नत्वा वचनमब्रवीत् ॥३६॥

भवास्तु पुरुषः श्रेष्ठो नित्यशुद्धस्सनातनः ।

जडभूता च तन्माया समर्थो भगवान्स्वयम् ॥३७॥

नित्योऽव्यक्त परः सूक्ष्मस्तस्मात्प्रकृतिरुद्भवः ।

अतः पूज्यस्स भगवान्प्रकृत्याः पूजनेन किम् ॥३८॥

इति श्रुत्वा वहिस्याह यज्ञाशस्सर्वशास्त्रगः ।

नायं श्रेष्ठस्स पुरुषो न क्षेमः प्रकृति विना ॥३९॥

पराणे चैव वागहे प्रसिद्धेय कथा शुभा ।

कदाचित्पुरुषो नित्यो नाममात्रः स्वकेच्छया ।

बभूव बहुधा तत्र यथा प्रेनस्तथा स्वयम् ॥४०॥

असमर्थो विरचितुं जगन्ति पुरुषः परः ।

तुष्टाव प्रकृति देवी चिरकाल सनातनीम् ॥४१॥

तदा देवी च तं प्राप्य महत्तत्त्व धकार ह ।

-सोऽहंकारश्च महतो जातस्तन्मात्रिकास्ततः ॥४२॥

सूतजी न ब्रह्मा—धन्वन्तरि नाम वाला एक ब्राह्मण था जो ब्रह्मा की भक्ति में परायण रहता था। उसने महा प्रभु कृष्ण चैतन्य के पास उपस्थित होकर यह वचन ब्रह्मा—॥३६॥ आप तो श्रेष्ठ पुरुष हैं नित्य शुद्ध और सनातन हैं। उनकी जो माया है वह तो अदभूत है। भगवान्

ही स्वयं मन्त्र प्रकार से समर्थ होते हैं ॥३७॥ नित्य-अव्यक्त-पर-सूक्ष्म हैं । उससे ही प्रकृति का उद्भव होता है । इसलिए वह भगवान् पूजने के योग्य हैं । इस प्रकृति के यजन मे क्या लाभ है ? ॥३८॥ यह उम घन्वन्तरि द्विज की बात का श्रवण करके समस्त आस्तो के ज्ञाता यशश हँसकर बोले—यह पुरुष श्रेष्ठ नहीं है । यह भी प्रकृति के बिना कुछ भी करने के लिए समर्थ नहीं होता है ॥३९॥ धराह पुराण मे यह शुभ कथा अत्यन्त सुप्रसिद्ध है । किमी समय मे त्रितय नाममात्र पुरुष ने स्वेच्छा से स्वयं ही बहुत प्रकार का होगया था जैसे कोई प्रेत होता है ॥४०॥ यह पर पुरुष जगतो की रचना करने के कार्य मे असमर्थ होगया था । तब इसने प्रकृति देवी की जो सनातनी थी चिरकाल तक स्तुति की थी ॥४१॥ उम समय देवी ने उमको प्राप्त करके महत्त्व की रचना करी थी । वह अहंकार महत्त्व से उत्पन्न हुआ और उम अहंकार से पांच तन्मान्निकाएँ उत्पन्न हुई थी ॥४२॥

महाभूताम्यतोऽप्यासंस्तैः सजातमिदं जगत् ॥४३॥

अतस्सनातनौ चोभौ पुरुषात्प्रकृतिः परा ।

प्रकृतेः पुरुषश्चैव तस्मात्ताभ्या नमोनमः ॥४४॥

इति घन्वन्तरि श्रुत्वा शिष्यो भूत्वा च तद्गुरोः ।

तत्रोप्यचैव वेदार्गं कल्पवेद चकार ह ।

मुश्रुतादपरे चापि शिष्या घन्वन्तरेः स्मृताः ॥४५॥

जयदेवस्स वै विप्रो बौद्धमार्गपरायणः ।

शृण्वन्चैतन्यमागम्य पश्चविंशद्वयवृत्तम् ।

नत्वोवाच वचो गम्य स च श्रेष्ठ उपापनि ॥४६॥

यस्य नाभेरभूत्पद्मं ब्रह्मणा सह निगतम् ।

अतस्स ब्रह्मसूर्नाम सामवेदेषु गीयते ॥४७॥

विश्वो नारायणस्साक्षाद्यस्य वेतो समास्थितः ।

विश्ववेतुरतो नाम न निरुद्धोऽनिर्द्वन्द्वक ॥४८॥

ब्रह्मवेला च तत्पत्नी नित्या चोपा महोत्तमा ।

स वै लोकहितार्याय स्वयमर्चावितारकः ॥४९॥

फिर उन पंच तन्मात्राओं से पाँच महाभूतों की उत्पत्ति हुई थी । उन महाभूतों के द्वारा यह जगत् समुत्पन्न हुआ है ॥४३॥ इसलिये ये दोनों ही सनातन हैं । पुरुष से प्रकृति पर है और प्रकृति से पुरुष भी पर है । इसलिये उन दोनों प्रकृति और पुरुष के लिये बार बार नमस्कार है ॥४४॥ धन्वन्तरि ने यह यज्ञाश के वचन श्रवण करके उस गुरु का वह शिष्य हो गया था । और वहाँ पर ही निवास करके उसने वेदों का अथ स्वरूप कल्प वेद की रचना की थी । सुश्रुत से दूसरे भी धन्वन्तरि के शिष्य बताये गये हैं ॥४५॥ सूतजी ने कहा—एक जयदेव नाम वाला ब्राह्मण था जो कि बौद्ध धर्म के मार्ग में परायण था । जब महाप्रभु कृष्ण चैतन्य पच्चीस वष की अवस्था वाले थे तब उनके पास वह जयदेव आया था । उसने यज्ञाश को नमस्कार करके उस उपा पति श्रेष्ठ द्विज ने यह परम सुन्दर वचन बोला था—॥४६॥ जिसकी नाभि से ब्रह्मा के साथ ही पद्म निकल कर हुआ था इसीलिये वह ब्रह्मसू इस नाम से सामवेदों में गाया जाता है ॥४७॥ विश्व साक्षात् नारायण जिसकी केतु में समास्थित है जिस कारण से विश्व केतु यह नाम है और न तो उसका नाम निरुद्ध है और अनिरुद्ध ही है ॥४८॥ ब्रह्म केला उसकी पत्नी है जो नित्या और महोत्तमा उपा है । और वह सौंकी के हित के लिये स्वयं अर्चावतारक है ॥४९॥

इति श्रुत्वा विवस्याह यज्ञाशस्त द्विजोत्तमम् ।

वेदोनारामण साक्षात्पूजनीयो नरं सदा ॥५०॥

ततः कालस्ततः कर्म ततो धर्मं प्रयतते ।

धर्मात्कामं समुद्भूतं कामपत्नी रति स्वयम् ॥५१॥

रत्या कामात्समुद्भूतोऽनिरुद्धो नाम देवता ।

उपा सा तस्य भगिनी तेन साद्धं समुद्भवा ॥५२॥

कालो नाम स वै कृष्णा राधा तस्य सहोदरा ।

कर्मरूप स वै ब्रह्मा नियतिस्तत्सहोदरा ॥५३॥

धर्मरूपो महादेव श्रद्धा तस्य सहोदरा ।

अनिरुद्ध कथं चेशो भवतोत्त सनातन ॥५४॥

विधा सृष्टिश्च ब्रह्माण्डे स्थूला सधमा च कारणा ।  
स्थूलसृष्ट्यै समुद्भूतो देवो नारायण स्वयम् ॥५५॥  
नारायणी च तच्छक्तिस्तयोजलसमुद्भव ।  
जलाज्जातस्म वै शेषस्तस्योपरि समास्थितौ ॥५६॥

यह उम जयदेव की बात सुनकर यज्ञाश हस पड़े और फिर उम द्विजो म उत्तम से बोले—वेद ही माझात् नारायण हैं अतएव नरो के द्वारा वह सदा ही पूजन करने के योग्य होत हैं ॥५०॥ इसके पश्चात् उममे ही काल-कर्म और धर्म क्रम स प्रवृत्त हुआ करते हैं । धर्म से काम समुद्भूत हुआ है और काम की पत्नी स्वय रति है ॥५१॥ रति मे काम म अनिरुद्ध नामधारी देवता ने जन्म धारण किया है । वह उपा उमकी भगिनी है जो उमक माथ ही समुद्भूत हुई है ॥५२॥ काल नाम वाला वही कृष्ण है और राधा उमकी सजोदरा है । कम रूप वह ब्रह्मा है जिमकी नियति सहादरा है ॥५३॥ धमरूप वाला महादेव है उमकी थडा सजोदरा अर्थात् बहिन है । अनिरुद्ध आपने किस तरह सनातन ईश बताया है ॥५४॥ इस ब्रह्माण्ड मे तीन प्रकार की सृष्टि है—एक स्थूला सृष्टि है दूसरी सूक्ष्मा और तीसरी कारणा है । स्थूल सृष्टि क लिये देव नारायण स्वय समुद्भूत हुए हैं । और उनकी शक्ति नागयणी है । उन दाना मे जन का जन्म हुआ है । जन से वह शेष समुत्पन्न हुआ है । उमक ऊपर मे समास्थित हैं ॥५५-५६॥

सुप्ते नारायणे देवे नाभे पञ्जमूतमम् ।  
अननयोजनायाममुद्भूत ततो विधि ॥५७॥  
विधे स्थूलमयी सृष्टि देवतिय्यङ्गनरादिवा ।  
सूक्ष्मसृष्ट्यै समुद्भूत सोऽनिरुद्ध उपापति ॥५८॥  
ततो वीर्यमय तोय जात ब्रह्माण्डमस्तके ।  
वीर्यज्जातस्स वै शेषस्तस्योपरि म चास्थित ॥५९॥  
तस्य नाभेस्समुद्भूतो ब्रह्मा लोकपितामह ।  
सूक्ष्मसृष्टिस्ततो जाता यथा स्वप्नेपि दृश्यते ॥६०॥

हेतु सृष्ट्यै समुद्भूतो वेदो नारायण स्वयम् ।

वेदात्कालस्ततः कर्म ततो धर्मादयः स्मृता ॥६१॥

त्वद्गुरुश्च जगन्नाथ उद्भूदेशनिवासक ।

मया तत्रैव गन्तव्यः सशिष्येणाद्य भो द्विजा ॥६२॥

इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णचैतन्यकिंकरा ।

स्वांस्वाञ्छिष्यान्समाहूय तत्पश्चात्प्रययुश्च ते ॥६३॥

नारायण देव के सुप्त होने पर उनकी नाभि से उत्तम पंकज हुआ था जिसका आयाम अनन्त घोजन था फिर उससे ब्रह्मा हुए ॥५७॥ उम ब्रह्मा की यह देव-तिर्यक् और नर आदि की स्थूलमयी सृष्टि हुई थी । सूक्ष्म सृष्टि के लिये वह उपा पति अनिरुद्ध उत्पन्न हुए थे ॥५८॥ उससे ब्रह्माण्ड के मस्तक में वीर्य मय तोप उत्पन्न हुआ था । उस वीर्य से वह शेष उत्पन्न हुआ । उसके ऊपर वह आस्थित है ॥५९॥ उसकी नाभि से लोक पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था । उस ब्रह्मा से यह सूक्ष्म सृष्टि उत्पन्न हुई थी जैसे कि स्वप्न में भी दिखलाई देती है ॥६०॥ हनु सृष्टि के लिये वेद स्वयं ही नारायण उत्पन्न हुए थे । वेद से काल-काल में कम और कर्म से धर्म आदि की उत्पत्ति कही गई है ॥६१॥ आपका गुरु जगन्नाथ है जो उद्भू देश का निवास करने वाला है । हे द्विजगण । मुझे शिष्यों के सहित आज वहां पर ही जाना चाहिए । इस प्रकार के वचन को महाप्रभु कृष्ण चैतन्य के किंकरी ने श्रवण किया था और सब ने अपने २ शिष्यों की बुलाकर इसका पश्चात् वे चले गये थे ॥६३॥

शांकरा द्वादशगणा रामानुजमुपाययुः ।

नामदेवादयस्तत्र गणास्सप्त समागता ॥६४॥

रामानन्द नमस्कृत्य सस्थितास्तस्य सेवना ।

रोपणश्च तदागत्य स्वशिष्यैर्वहुभिर्वृत ॥६५॥

कृष्णचैतन्यमागम्य नमस्कृत्य स्थितः स्वयम् ।

जगन्नाथपुरी ते वै प्रययुर्मन्त्रि तत्परा ॥६६॥

निधयः सिद्धयस्तस्य तेषां सेवार्थमागताः ।

सर्वे च दशसहस्रा वैष्णवा शैवशाक्तक ॥६७॥

यज्ञाश च पुरस्कृत्य जगन्नाथपुरी ययुः ।  
 अर्चावतारो भगवाननिरुद्ध उपापतिः ॥६८  
 तदागमनमालोक्य द्विजरूपधरो मुनिः ।  
 जगन्नाथ स्वयं प्राप्तो यत्न यज्ञां शंकादयः ॥६९  
 यज्ञाशस्तं समालोक्य नत्वा वचनमब्रवीत् ।  
 किं मतं भवता जातं कलौ प्राप्ते भयानके ॥७०

भगवान् शंकराचार्य के बारहगण रामानुज के समीप मे आये थे ।  
 वहा पर नामदेव आदि सात गण आगये थे ॥६४॥ उसके सेवक स्वामी  
 रामानन्द को नमस्कार करके वहा सस्यित हो गये थे । और रोपण उस  
 समय वहा आया था जो बहुत मे अपने शिष्यों के सहित था ॥६५॥ वह  
 महाप्रभु कृष्ण चैतन्य को नमस्कार करके स्वयं वहा स्थित हो गया था ।  
 वे सब भक्ति भाव मे तत्पर होते हुए जगन्नाथ पुरी को चले गये थे  
 ॥६६॥ समस्त निधियाँ और समग्र सिद्धियाँ वहा पर उनकी सेवा करने  
 के लिये उपस्थित हो गई थी । वे सब वैष्णव शैव और शाक्तों के सहित  
 मरुवा मे दश महस्र थे । वे सब यज्ञाश को अपने सब के भागे करके  
 जगन्नाथ पुरी को गये थे । अर्चावतार भगवान् उपापति अनिरुद्ध ने उन  
 सब का आगमन देखकर द्वित्र के रूप को धारण कर मुनि जगन्नाथ स्वयं  
 वहाँ प्राप्त हो गये थे जहा पर कि यज्ञाश आदि सब लोग उपस्थित थे ।  
 ॥६७-६९॥ यज्ञाश ने उनकी देख कर उन्हें प्रणाम किया और यह वचन  
 बोले—इस भयानक कलियुग के आ जाने पर आपने क्या मन जाना  
 है ? ॥७०॥

तत्सर्वं कृपया ब्रूहि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।  
 इति श्रुत्वा तु वचनं जगन्नाथो हरिः स्वयम् ।  
 उवाच वचनं रम्यं लोकमंगलहेनवे ॥७१  
 मिथ्यदेशोद्भवा म्लेच्छा काश्यपेनैव शामिताः ।  
 ससृताः शूद्रवर्णेन ब्रह्मवर्णमुपागताः ॥७२  
 शिष्यामूलं समाधाय पाटिका वेदमुत्तमम् ।  
 यज्ञं च पूजयामासुर्देवदेव शचीपतिम् ॥७३

दु खितो भगवानिन्द्रः श्वेतद्वीपमुपागत ।  
 स्तुत्या मा बोधयामास देवमगलहेतवे ॥७४  
 प्रबद्ध मा वचः प्राह शृणु देव दयानिधे ।  
 शूद्रसंस्कृतमग्नं च खादितु न द्विजोऽर्हति ॥७५  
 तथा च शूद्रजनितैर्यज्ञैस्तृप्ति न चाप्नुयाम् ।  
 काश्यपे स्वर्गते प्राप्ते मागधे राज्ञि शासति ॥७६  
 मम शत्रुर्वलिर्दंत्यः कलिपक्षमुपागतः ।  
 निस्तेजाश्च यथाह स्या तथा वै कर्तुं मुद्यतः ॥७७

यह सब कृपा करके हमको बताइये । मैं तत्त्व रूप से इसे श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ । यह वचन सुनकर जगन्नाथ हरि स्वयं परम रम्य वचन लोक के मंगल के लिये बोले ॥७५॥ मिथ्र देश में उत्पन्न होने वाले म्लेच्छ तो काश्यप ने ही शामित कर दिये थे । शूद्र वर्ण में संस्कृत होते हुए वे ब्रह्मवर्ण को उपगत हो गये हैं ॥७६॥ अब शिखा और सूत्र को धारण करके उत्तम वेद को पढ़ते और यज्ञों के द्वारा देवों के देव शशी के पति को पूजते थे ॥७७॥ दु खित भगवान् इन्द्र श्वेत द्वीप में आ गये थे । और स्तुति के द्वारा देवों के मंगल के लिये मुझ को बोधित कराया था । जब मैं प्रबुद्ध हो गया तो मुझ से यह वचन कहें—हे देव ! दे दयानिधे ! सुनिये, शूद्र के द्वारा साधित अग्नि द्विज खान को योग्य नहीं होता है ॥७४-७५॥ और शूद्रों के द्वारा ब्रिये गये यज्ञों में तृप्ति को प्राप्त नहीं होता हूँ । काश्यप के स्वर्गगत हो जाने पर मागध राजा के शासन करने पर मेरा शत्रु दंत्य बलि कलियुग के पक्ष में आ गया है । यह ऐसा कार्य करने के लिये ही उद्यत हो गया है कि जिनमें मैं बिन्दु ही तेज से हीन हो जाऊँ ॥७६-७७॥

मिथ्रदेशोद्भवो म्लेच्छे सांस्कृती तेन संस्कृता ।

अ पा देवविनाशाय दंत्याना वद्धनाय च ॥७८

आर्येषु प्राकृती भाषा दूषिता तेन वै कृता ।

अतो मा रक्ष भगवन्भवत शरणागतम् ॥७९



इति श्रुत्वा तदाह वै देवराजमुवाच ह ।  
 भवन्तो द्वादशादित्या गन्तुमर्हन्ति भूतले ॥८०॥  
 अहं लोकहितार्थाय जनिष्यामि कलौ युगे ।  
 प्रवीणो निपुणोऽभिज्ञः कुशलश्च कृती सुखी ॥८१॥  
 निष्णातः शिक्षितश्चैव सर्वज्ञ सुगतस्तथा ।  
 प्रबुद्धश्च तथा बुद्ध आदित्या क्रमतो भवाः ॥८२॥  
 धाता मित्रोऽयमा शक्रो मेघ प्राशुर्भगस्तथा ।  
 विवस्वाश्च तथा पूषा सविता त्वाष्ट्रविष्णुकौ ।  
 कीकटे देश आगत्य ते सुरा जज्ञिरे क्रमात् ॥८३॥  
 वेदनिन्दा पुरस्कृत्य बौद्धशास्त्रमचीकरन् ।  
 तेभ्यो वेदान्ममादाय मुनिभ्यः प्रददुस्सुरा ॥८४॥

मित्र देश मे जन्म लेने जाने म्लेच्छी मे जो सास्कृती थी वह उसने  
 सस्कृत कर दी है । वह भाषा देवो के विनाश करने के लिये और दैत्यों  
 का वर्धन करने के लिये ही उमने की है ॥७८॥ आयों में प्राकृती भाषा  
 उमने दूषित कर दी है । इसलिये हे भगवन् ! आप मेरी रक्षा कीजिए ।  
 मैं अब आपके शरण मे प्राप्त हो गया हूँ ॥७९॥ यह श्रवण करके उम  
 समय मैंने देवराज से कहा था—आप बारह आदित्य भूतन में जाने के  
 योग्य होते हैं ॥८०॥ और मैं लोक के हित के लिये कनिष्ठा मे जन्म  
 ग्रहण करूँगा । प्रवीण-निपुण-अभिज्ञ-कुशल-कृती-सुखी-निष्णात-  
 शिक्षित-सर्वज्ञ और सुगत-प्रबुद्ध और बुद्ध य आदित्य क्रम से हुए  
 ॥८१-८२॥ धाता-मित्र-अयमा-शक्र-मेघ-प्राशुर्भग-विवस्वान्-पूषा-  
 सविता-त्वाष्ट्र-विष्णुक ये कीकट देश में आकर क्रम से वे सुर उत्पन्न  
 हुए थे ॥८३॥ इन्होंने सबने वेदों की निन्दा पहिले की और फिर बौद्ध  
 शास्त्रों की रचना की थी । सुरों ने उन सब वेदों को लेकर मुनियों के  
 लिये दे दिये थे ॥८४॥

वेदनिन्दाप्रभावेण ते सुरा कुस्त्रिनोऽभवन् ।  
 विष्णुदेवमुपागम्य तुष्टुबुबौद्धरूपिणम् ॥८५॥

हरिर्योगबलेनैव तेषां कुष्ठमनाशयत् ।

तद्दोषान्नग्नभूतश्च बौद्धस्स तेजसाभवत् ॥८६॥

पूर्वाद्धिग्नेमिनाथश्च पराद्धिद्वौद्ध एव च ।

बौद्धर ज्यविनाशाय दारुपापाण रूपवान् ॥८७॥

अहं सिधुतटे जातो लोकमगलहेतवे ।

इन्द्रद्युम्नश्च नृपतिः स्वर्गलोकादुपागतः ।

मन्दिरं रचितं तेन तत्राहं समुपागतः ॥८८॥

अत्र स्थितश्च यज्ञाशप्रसादमहिमा महान् ।

सर्ववाञ्छितं लोके स्थापयामास मोक्षदम् ॥८९॥

वर्णधर्मश्च नैवात्र वेदधर्मस्तथा न हि ।

व्रतं चात्र न यज्ञाशमण्डले योजना तरे ॥९०॥

येनोक्ता यावन्ती भाषा येन बौद्धो विलोकितः ।

तस्य प्राप्तं महत्पापं स्थितोऽहं तदघापहं ।

मा विलोकय नरः शूद्रकलिकाले भविष्यति ॥९१॥

वेदों की निन्दा करने के प्रभाव से वे देव कुंभी हो गये थे । वे विष्णु देव के पास आकर बौद्ध रूपी विष्णु देव की स्तुति करने लगे थे ॥८२॥ हरि ने योग के बल से ही उनके कुष्ठ का नाश कर दिया था । उनके दोष से नग्न भूत वह तेज से बौद्ध हो गया था ॥८६॥ पूर्वाद्धि से ता नेमिनाथ हो गया था और पराद्धि से बौद्ध ही हुआ था । बौद्धों का नाश के विनाश करने के लिये दारुपापाण रूप वाला हो गया था ॥८७॥ मैं सिधु के तट पर लोक के मगल हेतु के लिये उत्पन्न हुआ था । और इन्द्रद्युम्न राजा स्वर्ग लोक में उपागमन हुआ था । उसने मन्दिर की रचना की थी वहाँ पर मैं आ गया था ॥८८॥ यहाँ पर स्थित होत हुआ यज्ञाश के प्रसाद की महान् महिमा लोक में समस्त वाञ्छा की देने वाली तथा मोक्ष या प्रदान करने वाली स्थापित की थी ॥८९॥ यहाँ पर कोई भी वर्णों का धर्म नहीं है और न कोई वेद का ही धर्म है । इस यात्रान्तर यज्ञाश मण्डल में कोई व्रत ही है ॥९०॥ जिसने यावन्ती भाषा को कहा और जिसने बौद्ध को देखा उसको जो महान् पाप प्राप्त

दृष्टा में उमरे पाप का अपहरण करने वाला यही स्थित है । इस वृत्ति के समय में मेरा ध्यान करके ही नर शुद्ध हो जायगा ॥६१॥

## ॥ अकबर बादशाह वर्णन ॥

इति श्रुत्वा बलिदैत्यो देवानां विजयं महत् ।  
 रोपणं नाम दैत्येन्द्रं समाहूय वचोऽब्रवीत् ॥१॥  
 मुनस्तिमिरलिंगस्य सरूपो नाम विश्रुतः ।  
 त्वं सि तत्र समागम्य दैत्यकार्यं महत्कुरु ॥२॥  
 इति श्रुत्वा स वै दैत्या हृदि विप्राप्तरूपेण ।  
 ननाशं वेदमागस्थानेहलीदेशमास्थितः ॥३॥  
 पञ्चवर्षं कृतं राज्यं तत्सुतो बावरोभवत् ।  
 विशदब्दं कृतं राज्यं होमायुस्तत्सुतोऽभवत् ॥४॥  
 होमायुषा मदान्धेन देवताश्च निराकृताः ।  
 ते सुरा कृष्णचैतन्यं नदीहोषवने स्थितम् ॥५॥  
 तुष्टदुःखदुःखा तन श्रुत्वा क्रुद्धो हरिः स्वयम् ।  
 म्वतजसा च तद्राज्यं विघ्नभूतं चकार ह ॥६॥  
 तत्संयजनिर्तल्लोकं ह्यहोमायुश्च निराकृतः ।  
 महाराष्ट्रं नदा तत्र शेषशाकं समास्थितः ॥७॥

इस अध्याय में तिमिर लिंग के पुत्र सरूपादि का देहली में राज्य का वृत्तान्त का वर्णन तथा अकबर के राज्य के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—यह सुनकर दैत्य बलि ने कि देवों की महान् विजय हुई है रोपण नाम वाले दैत्येन्द्र को बुलाकर उससे यह वचन आता था—॥१॥ तिमिरलिंग (तमूरलिंग) का पुत्र सरूप नाम वाला प्रसिद्ध था । तब वहाँ पर आकर दैत्यो के महान् कार्य का सम्पानन कर ॥२॥ यह श्रवण कर वह दैत्य हृदय में विशेष रूप से रोप प्राप्त करके देहली में आस्थित होकर वेद माग पर चढ़ने वाला का उसने नाश कर

दिया था ॥३॥ पाँच वष पर्यन्त उसने वहाँ पर राज्य का शासन किया । फिर उसका पुत्र बाबर हुआ इसने बीस वष तक राज्य के सुख का उपभोग किया इसके होमायु नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ॥४॥ भद्र से अन्धे होमायु ने देवताओं का निरादर किया था । वे देवता कृष्ण चतुर्ध की जो कि नदीहार (नदिया) के उपवन में स्थित थे स्तुति करने लगे थे । बहुधा इसको सुन कर हरि स्वयं बहुत क्रुद्ध हुए थे । उन्होंने अपने तेज के प्रभाव से ही उसके राज्य को विघ्न भूत कर दिया था ॥५॥ उसकी सेना के जनित लोगो ने ही होमायु को निराकृत कर दिया था । उस समय में महाराष्ट्रो के द्वारा शप शाक समास्थित हुआ था ॥७॥

देहलीनगरे रम्ये म्लेच्छो राज्यं चकार ह ।

धर्मकार्यं कृतं तेन तद्राज्यं पचहायनम् ॥८॥

ग्रहचारी मुकुन्दश्च शकराचार्यगोत्रज ।

प्रयोगे च तप कुर्वन्विशच्छिष्यैर्युतं स्थित ॥९॥

बाबरेण च धूर्तेन म्लेच्छराजेन देवता ।

अशिता स तदा ज्ञात्वा बह्वी देह जुद्राव वै ॥१०॥

तस्य शिष्या गता बह्वी म्लेच्छनाशनहेतुना ।

गोदुग्धे च स्थित रोम पीत्वा स पयसा मुनि ॥११॥

मुकुन्दस्तस्य दोषेण म्लेच्छयोनीं बभूव ह ।

होमायुश्च काश्मीरे सस्थितस्तव पुत्रक ॥१२॥

जातमात्रे मुन तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ।

अकस्माच्च वरो जात पुत्रोऽयं सवभाग्यवान् ॥१३॥

पैशाचे दारुणे मार्गे न भूतो न भविष्यति ।

अतः सोमवरो नाम होमायुस्तनयस्तव ॥१४॥

रम्य देहली नगर में म्लेच्छ ने राज्य किया था । उसने धर्म का काम किया था । पाँच वष तक उसका राज्य रहा था ॥८॥ ग्रहचारी मुकुन्द जो कि शङ्कराचार्य का गोत्र में जन्मा था प्रयाग में अपने बीस शिष्यों के सहित तप करता हुआ स्थित था ॥९॥ अत्यन्त धूर्त म्लेच्छों का राजा बाबर ने देवताओं को अशित किया था । उसने यह जान कर

अपना शरीर अग्नि में हवन कर दिया था ॥१०॥ उसके जो शिष्य थे म्लेच्छों के नाश करने के लिए बलि में चले गये थे । गो दुग्ध में स्थित रोम को मुनि ने पय के साथ पी लिया था । उसके दोष से मुकुन्द म्लेच्छ योनि में हुआ था । होमायु काश्मीर में स्थित था । वहाँ पर सस्थित के ही पुत्र हुआ था ॥११-१२॥ उस पुत्र के उत्पन्न होते ही आकाश वाणी ने कहा था—यह अकस्मात् वर पुत्र उत्पन्न हुआ है जोकि सब प्रकार के भाग्य वाला है । यह दारुण पैशाच मार्ग में न कभी रहा और न आगे रहेगा । इसीलिए होमायु तेरा यह पुत्र अकबर नाम वाला है ॥१३-१४॥

श्रीधरः श्रीपति, शम्भुवरेण्यश्च मधुव्रती ।

विमलो देववान्सोमो बर्द्धनो वर्तको रुचिः ॥१५

माघाता मानकारी च केशवो माधवो मधु ।

देवापि सोमपाः शूरा मदनो यस्य शिष्यकाः ॥१६

स मुकुन्दो द्विज, श्रीमान्देवात्त्वद्गे हमागतः ।

इत्याकाशवचो श्रुत्वा हामायुश्च प्रसन्नधीः ॥१७

ददौ दान क्षुधार्तेभ्यः प्रेम्णा पुत्रमपासयत् ।

दशाब्दे तनये जाते देहलीदेशमागतः ॥१८

शेषशाक पराजित्य स च राजा बभूव ह ।

अब्द तेन कृत राज्य तत्पुत्रश्च नृपोभवत् ॥१९

सप्राप्तेऽकबरे राज्यं यत्तशिष्याश्च तत्प्रियाः ।

पूर्वजन्मनि ये मुक्ष्यास्ते प्राप्ता भूपतिं प्रति ॥२०

केशवो मानसेनश्च वैजवाक्स तु माधवः ।

म्लेच्छास्ते च स्मृतास्तत्र हरिदासो मधुस्तथा ॥२१

मध्याचार्यकुले जातो वैष्णवः सर्वरागवित् ।

पूर्वजन्मनि देवापि, स च वीरबलोऽभवत् ॥२२

श्रीधर — श्रीपति— शम्भु—वरेण्य—मधुव्रती—विमल—देवान्—सोम—

वर्द्धन—वर्तक—रुचि—मानघाता—मानकारी—केशव—माधव—मधु—देवापि—

सोमपा—शूरा—मदन ये इतने नामधारी जिसके शिष्य थे श्रीमान् वह

मुकुन्द है व वंश से तेरे घर में आगया है । इस प्रकार की आकाशवाणी

का श्रवण करके होमायु अत्यन्त प्रसन्न हुआ था ॥१५-१७॥ उस होमायु ने भूख से पीड़ितों को दान दिया था और अपने पुत्र का बड़े प्रेम से पालन किया था । जब वह पुत्र दश वर्ष का होगया था तब देहली में आगया था ॥१८॥ उसने शेष शाक को पराजित करके वह बहा का राजा होगया था । एक वर्ष पर्यन्त बहा उसने राज्य किया था इसके पश्चात् उसका पुत्र राजा हुआ था ॥१९॥ अकबर को राज्य प्राप्त होने पर उसके सात प्रिय शिष्य जो पहिले जन्म में परम मुख्य थे इस समय राजा के पास उपस्थित हुए थे ॥२०॥ केशव-मानमेत-वैजवादन-माधव वे म्लेच्छ कहे गये हैं । बहा हरिदास तथा मधु मध्वाचार्य के कुल में उत्पन्न हुए जो वैष्णव थे तथा समस्त रागों के ज्ञाता थे । पूर्व जन्म में जो देवापि नाम वाला था वह वीरबल नामधारी होकर समुत्पन्न हुआ था ॥२१-२२॥

ब्राह्मण पाश्चिमात्यो वै वाग्देवीवरदपिते ।

सोमपा मानसिहश्च गीतमा वयसमव ॥२३॥

सेनापतिश्च नृपतेरार्यभूपशिरोमणे ।

सूरश्चैव द्विजो जातो दक्षिणश्चैव पंडित ॥२४॥

वित्त्वमगल एवापि नाम्ना तन्नृपते सखा ।

नायिकाभेदनिपुणो वेदमाना स च पारग ॥२५॥

मदनो ब्राह्मणो जात पौर्वत्य स च नतं व ।

चदतो नाम गियातो रह श्रीडाशिशारद ॥२६॥

अन्यदेशे गता शिष्यास्तेषा पूर्वोत्तरयोदश ।

अनपस्य सुतो जात श्रीधर शत्रुवेदित ॥२७॥

विद्यातस्तुलसीशर्मा पुराणनिपुण भविः ।

नारीशिक्षा समादाय राघवानन्दमागतः ॥२८॥

मह पाश्चिमात्य ब्राह्मण था और वाग्देवी के वरदान से दर्पमुक्त था । सोमपा और मानसिह मोनम व श में उत्पन्न होते गये थे ॥२३॥

पह आर्य भूषों के शिरोमणि नृपति का मेना को स्त्रायी हुआ था । जो सूर था वह द्विज ही उत्पन्न हुआ था और दक्षिण भी पंडित था ॥२४॥

(वित्त्वमङ्गल नाम वाला भी उम राजा का मन्त्र था । यह नायिका भेद का बड़ा पण्डित तथा वेश्यावा ना पारंगामी था ॥२१॥) मदन नाम वाला जो था वह भी इस जन्म म ब्राह्मण ही होकर उत्पन्न हुआ था । यह पौर्वात्य था और नर्तक था । चन्दन नाम से जो विख्यात था वह गृह्य क्रीडा का महान् पण्डित था ॥२६॥ अय देश में जो शिष्य गये थे उनके पूर्व ये तेरह थे । अनपका पुत्र उत्पन्न हुआ था जो शत्रु वदित श्रीधर था ॥२७॥ तुलसी शर्मा इस नाम से विख्यात हुआ था जा कि पुराणों में परम निपुण और कवि था । नारी की शिक्षा को ग्रहण कर राघवानन्द के पास आगया था ॥२८॥

शिष्यो भूत्वा स्थित काश्या रामानन्दमतेस्थित ।

श्रीपति स बभूवोन्धो मध्वाचार्यमते स्थित ॥२९॥

सूरदास इति ज्ञेय कृष्णलीलाकर कवि ।

शम्भु चन्द्रभट्टस्य कुले जातो हरिप्रिय ॥३०॥

रामानन्दमते सस्थो भक्तिकीर्तिपरायण ।

वरेण्य सोमभुङ्गनामा रामानन्दमते स्थित ॥३१॥

ज्ञानध्यानपरो नित्य भाषाछन्दकर कवि ।

मधुव्रती स वै जातो कीलको नाम विश्रुत ॥३२॥

रामलीलाकरो धीमाघ्रामान दमते स्थित ।

विमलश्च स वै जात स नाम्नेव दिवाकर ॥३३॥

सीतालीलाकरो धीमाघ्रामान दमते स्थित ।

देववान्कृशवो जातो विष्णुस्वामिमते स्थित ॥३४॥

कविप्रियादिरचना कृत्वा प्रेतत्वमागत ।

रामज्योत्स्नामय कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥३५॥

यह रामानन्द का शिष्य हो गया और काशी में रामानन्द के मत का अनुयायी बनकर रहने लगा । वह श्रीपति अर्थात् हो गया था और मध्वाचार्य के मत में स्थित हो गया था ॥२९॥ यह सूरनाम इस नाम से जाना गया था और यह कवि था जिसने कृष्ण लीला के पदों की रचना की थी । शम्भु जो था वह चन्द्रभट्ट के कुल में उत्पन्न हुआ था जो कि

हरि प्रिय था ॥३०॥ अग्रभुज नाम वाला रामनन्द के मत का अनुयायी था । यह भक्तों की कीर्ति का वर्णन करने में परायण रहता था । यह वरेण्य ज्ञान के ध्यान में तत्पर रहता हुआ नित्य भाषा के छन्दों की रचना करने वाला कवि था । मधुवती समुत्पन्न हुआ जो कीनक इम नाम से प्रसिद्ध था ॥३१-३२॥ यह बुद्धिमान् रामानन्द के मत में स्थित होकर रामलीला किया करता था । विमल उत्पन्न हुआ यह दिवाकर-इम नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥३३॥ यह भी स्वामी रामानन्द के मत का अनुयायी था और सीता की लीला किया करता था । देववान् केशव उत्पन्न हुआ था जो कि विष्णु स्वामी के मत का अनुयायी हुआ था ॥३४॥ इस केशव कवि ने कवि प्रिया आदि ग्रन्थों की रचना की थी और अन्त में यह प्रेतत्व को प्राप्त हो गया था । इसके पश्चात् राम-ज्योत्स्नामय ग्रन्थ की रचना की थी जिससे इसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई थी ॥३५॥

सोमो जातः स वै व्यासो निम्बादित्यमते स्थितः ।

रहः क्रीडामय ग्रंथं कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥३६

वदन्तश्च स वै जातो नाम्ना चरणदासकः ।

ज्ञानमालामय कृत्वा ग्रंथं रैदासमांग ॥३७

वर्तनः स च वै जातो रोपणस्य मते स्थितः ।

रत्नमानुरिति ज्ञेयो भाषाकर्ता च जैमिनेः ॥३८

रुचिश्च रोचनो जातो मध्याचार्यमते स्थितः ।

नानाज्ञानमयी लीलां कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥३९

माघाता भूपतिर्नाम कायस्थ स बभूव ह ।

मध्याचार्यो भागवत चक्रे भाषामय शुभम् ॥४०

मानधारो नारिमावाभारीदेहमुपागतः ।

मीरानामेति विख्याता भूपतेस्तनया शुभा ॥४१

मा शोभा च तनौ यस्या गतिर्गङ्गामा विस ।

मा मोगा च बुधैः प्रोक्ता मध्याचार्यमते स्थिता ॥४२



सोम व्यास होकर उत्पन्न हुआ था । यह निम्बाकाचार्य के मत का अनुयायी था । इसने रहस्य की कीड़ा स परिपूर्ण ग्रन्थ की रचना की थी और स्वर्ग लोक को चला गया था ॥३६॥ वर्द्धन चरणदास के नाम वाला समुत्पन्न हुआ था । इसने ज्ञान माला मय ग्रन्थ की रचना की थी और यह रदास के मार्ग का अनुयायी था ॥३७॥ वर्त्तक उत्पन्न हुआ था जो कि कि रोषण के मत का अनुयायी हुआ था । यह रत्नभानु इस नाम से जानने के योग्य हुआ था । इस जैमिनि की भाषा की रचना की थी अर्थात् भाषा भाष्य जैमिनि के ग्रन्थ का किया था ॥३८॥ रुचि रोषण नाम से समुत्पन्न हुआ था जो कि मध्वाचार्य के मत का अनुसरण करने वाला था । इसने अनक प्रकार की ज्ञानमयी लीलाओं की रचना की थी और अन्त में यह स्वर्ग लोक में चला गया था ॥३९॥ माघाता जो था वह भूपति नाम वाला कायस्थ हुआ था । मध्वाचार्य ने भागवत की थी जो कि भाषामय शुभ थी ॥४०॥ मानकार नारीभाव में रहा करता था इसीलिये वह नारी के देह को प्राप्त हुआ था । यह नारी मीरा इस नाम से विख्यात हुई थी जो कि एक राजा की शुभ पुत्री थी ॥४१॥ जिसके तनु में या अर्थात् शोभा थी और जिसकी गति गज के समान थी वह विद्वानों के द्वारा मीरा कही गई थी जो कि मध्वाचार्य के मत में स्थित हुई थी ॥४२॥

एव ते वधित विप्र भाषाग्र यप्रकारणम् ।

प्रवध मगलकर कलिकाले भयकरे ॥४३॥

स भूपोऽकबरो नाम कृत्वा राज्यमकटकम् ।

शताद्धेन च शिष्यैश्च वैकुण्ठभवन ययौ ॥४४॥

सलोमा तनयस्तस्य कृत राज्य पितु समम् ।

खुदकस्तनयस्तस्य दशाब्दे च कृत पदम् ॥४५॥

चत्वारस्तनयास्तस्य नवरगो हि मध्यम ।

पितर च तथा भ्रातृञ्जित्वा राज्यमचीकरत् ॥४६॥

पूजजन्मनि दैत्योऽयमन्धको नाम विश्रुत ।

कम भूम्या तदशेन दैत्यराजाज्ञया ययौ ॥४७॥

तत्पश्चान्मरणं प्राप्तो विद्वधेन रुजा मुने ।  
 विक्रमस्य गते राज्ये सप्तत्युत्तरक शतम् ॥५४॥  
 ज्ञेयं सप्तदश विप्रयदालोमा मूर्ति गत ।  
 तालनस्य कुले जातो म्लेच्छ फलरूपोवली ॥५५॥  
 मुकलस्य कुलं हत्वा स्वयं राज्यं चकार ह ।  
 दशाब्दं च कृतं राज्यं तेन भूपेन भूतले ॥५६॥

नदीहोपवन में स्थित उस यज्ञाश्रम में यह सुनकर दुराचारी उस शाप  
 द दिया था कि तैं वंश का क्षय हो जायगा ॥५०॥ उस दुरात्मा ने  
 उनवास वर्ष तक राज्य किया था । सबाजय नाम वाला था जो कि देवों  
 के पक्ष की वृद्धि करने वाला था ॥५१॥ उसका एक महाराष्ट्र द्विज था  
 जो युद्ध की विद्या का बड़ा कुशल पण्डित था । उसने उस दुराचारी का  
 हनन किया था और उसके पुत्र के लिये उसका पद दे दिया था ॥५२॥  
 वह उस राज्य देकर दक्षिणात्य देश में देश की वृद्धि करने वाला चला  
 गया था । उसके पुत्र का नाम आलोमा था । उसने पाँच वर्ष पर्यन्त  
 उसके पद का उपभोग किया था ॥५३॥ इसके पश्चात् हे मुन । विद्वध  
 रोग से मृत्यु को प्राप्त हो गया था । राजा विक्रम के एक सौ सत्तर वष  
 राज्य के हो जाने पर हे विप्र । सत्रह जानने चाहिए जिस समय में  
 आलोम मृत्यु को प्राप्त हुआ था । तालन के कुल में बलवान् फलरूप  
 म्लेच्छ उत्पन्न हुआ था ॥५४॥ ५५॥ इसने मुकल के कुल का हनन करके  
 स्वयं राज्य शासन किया था । इसने दश वष तक भूतल में राज्य किया  
 था ॥५६॥

शत्रुभिर्मरणं प्राप्तो दैत्यलोकमुपागमत् ।  
 महामदस्तत्तनयो विशत्यब्दं कृतं पदम् ॥५७॥  
 तद्राष्ट्रे नादरो नाम दैत्यो देश उपागमत् ।  
 हत्वार्याश्च सुराज्जित्वा देशं सुरजमाययी ॥५८॥  
 महामत्स्यो हि मदस्य तनयस्तत्पितु पदम् ।  
 गृहीत्वा पञ्चवर्षान्तं स च राज्यं चकार ह ॥५९॥

महाराष्ट्रं हतो दुष्टस्तालनान्वयसमव ।

देहलीनगरे राज्य दशाब्द माघवेन वै ॥६०॥

कृत तत्र तदा म्लेच्छ आलोमा राज्यमाप्नवान् ।

तद्वाष्ट्रे बहवो जाता राजानो निजदेशजा ॥६१॥

ग्रामपा बहवो भूपा देशेदेशे बभूविरे ।

मण्डलीकपद तत्राक्षय जात महीतले ॥६२॥

त्रिशदब्दमतो जात ग्रामेभ्नामे नृपेनृपे ।

तदा तु सकला देवा कृष्णचतन्यमाययु ॥६३॥

यह फिर शत्रुओं के द्वारा मरण को प्राप्त होकर दैत्या के लोक में चला गया था । महामद उसका पुत्र था जिसने बीस वर्ष तक पद का उपभोग किया था ॥५७॥ उसके राष्ट्र में एक नादर नाम वाला (नादिर शाह) दैत्य देश में आया था । उसने सुरों को जीत कर तथा आर्यों का हनन करके बड़ा ही अत्याचार किया था और फिर वह खुरज देश में आ गया था ॥५८॥ महामत्स्य नाम वाला मद का पुत्र हुआ था । उसने अपने पिता के पद को ग्रहण करके पाँच वर्ष के अन्त तक राज्य किया था ॥५९॥ यह दुष्ट सानन के वंश में होने वाला महाराष्ट्रा (मरहठों) के द्वारा मारा गया था । फिर देहली नगर में माघव ने दश वर्ष तक राज्य किया था । वहाँ पर उस समय म्लेच्छ आलोमा ने राज्य को प्राप्त कर लिया था । उसके राष्ट्र में निज देश में उत्पन्न होने वाले बहुत राजा हुए थे ॥६०-६१॥ ग्रामों के पानन करने वाले स्वामी भूप देश-देश में हुए थे । इस महीतन में वहाँ पर अक्षय मण्डलीक पद ही गया था ॥६२॥ ग्राम-ग्राम में और नृप-नृप में तीस वर्ष व्यतीत हो गये थे । उस समय समस्त दैवगण महाप्रभु कृष्ण चैतन्य के पास आय थे ॥६३॥

यज्ञाशश्च हरि साक्षाज्ज्ञात्वा दुःख महीतले ।

महूतं ध्यानमागम्य देवान्वचनमब्रवीत् ॥६४॥

पुरा तु राघवो घीमाञ्जित्वा रावणराक्षसम् ।

वपीनुज्जीवयामास मुधावर्षेस्समतत ॥६५॥

विकटो वृजिलो जालो वरलीनो हि सिंहलः ।

जवस्सुमात्रश्च तथा नाम्ना ते सुद्रवानराः ॥६६॥

रामचन्द्रं वच प्राहुर्देहि नो वाञ्छितं प्रभो ।

रामो दशरथिः श्रीमाञ्ज्ज्ञात्वा तेषा मनोरथम् ॥६७॥

देवाङ्गनोद्भवा कन्या रावणाल्लोकरावणात् ।

दत्त्वा तेभ्यो हरिस्साक्षाद्वचनं प्राह हर्षितं ॥६८॥

भगन्नाम्ना च ये द्वीपा जालधरविनिर्मिताः ।

तेषु राज्ञो भविष्यति भवन्तो हितकारिणः ॥६९॥

नन्दिन्या गोश्वरुण्डाद्वैजाता म्लेच्छा भयानकाः ।

गुरुण्डा तातयस्तेषा तास्तु तेषु सदा स्थिता ॥७०॥

यज्ञाश साक्षात् हरि ने इस महीतल मे जो दु ख था उसको जानकर एक मुहूर्त तक ध्यान करके फिर वे देवो से यह वचन बोले ॥६४॥ पहिले धीमान् राघव ने राक्षस राज रावण को जीत कर सब ओर जो मृत बानर पड़े हुए थे उनको सुधा की वृष्टि के द्वारा उज्जीवित कर दिया था ॥६५॥ उन बन्दरो के नाम—विकर—वृजिस—जाल—वरलीन—सिंहल—जव—सुमात्र ये नाम थे और ये सुद्र वानर थे ॥६६॥ उन्होंने भगवान् रामचन्द्र से यह वचन कहे थे—हे भगवन् । हे प्रभो । आप हमको हमारा वाञ्छित वरदान प्रदान करें । दशरथ के पुत्र राम ने उनके मनोरथ को जान लिया था ॥६७॥ ताको के लिये रावण अर्थात् भयानक रावण से एक देवागना मे जन्म ग्रहण करने वाली कन्या थी । भगवान् श्रीराम ने उनको उसे देकर फिर परम हर्षित होते हुए साक्षात् हरि ने यह वचन कहा ॥६८॥ आपके नामो से जो जालन्धर के द्वारा निर्मित द्वीप हैं उन द्वीपो मे आप सब हितकारी राजा होंगे ॥६९॥ नन्दिनी गो स रुण्ड भयानक म्लेच्छ उत्पन्न हुए थे उनकी गुरुण्ड आति थी । ये उन द्वीपों मे सदा से स्थित हैं ॥७०॥

जित्वा ताञ्च गुरुण्डान्वं कुरुष्व राज्यमुत्तमम् ।

इति श्रुत्वा हरिं नत्वा द्वीपेषु प्रययमुन्दा ॥७१॥

विकटान्वयसम्भूता गुरुण्डा वानरानना ।  
 वाणिज्याथंमिहायाता गौरुण्डा बौद्धमार्गिणः ॥७२॥  
 ईशपुत्रमते सस्थास्तेषा हृदयमुत्तमम् ।  
 सत्यव्रत वामजितमक्रोध सूर्यतत्परम् ॥७३॥  
 यूय तत्रोष्य कार्यं च नृणा कुरुत मा चिरम् ।  
 इति श्रुत्वा तु ते देवा कुर्युर्वाचिकमादरात् ॥७४॥  
 नगद्वर्षा कलिकाताया स्थापयामासुरुद्यता ।  
 विकटे पश्चिमे द्वीपे तत्पत्नी विकटावती ॥७५॥  
 अष्टकौशलमार्गेण राजमन्त्र चकार ह ।  
 तत्पतिस्तु पुलोमार्चि कालिकाता पुरी स्थित ॥७६॥  
 विक्रमस्य गते राज्ये शतमष्टादश कलौ ।  
 चत्वारिंश तथाब्द च तदा राजा बभूव ह ॥७७॥

आप नौग उन गुरुण्डों पर विजय प्राप्त करके वहाँ उत्तम राज्य  
 करो । यह श्रीराम का कहा हुआ वचन श्रवण करके वे सब हरि को  
 नमस्कार करके वहाँ बड़ी प्रसन्नता से चले गये थे ॥७७॥ विकर के वंश  
 में उत्पन्न गुरुण्ड वानर के समान मुख वाले थे । वे वाणिज्य करने के  
 लिये यहाँ आये थे और वे गौरुण्ड बौद्ध धर्म के मानने वाले थे ॥७२॥  
 फिर ये ईशु के मत में सन्स्थित हो गये थे अर्थात् ईसाई हो गये थे ।  
 उनका हृदय अत्यन्त उत्तम है । सत्य व्रत वाला—काम को जीतने वाला  
 —क्रोध से रहित और सूर्य में तत्पर है ॥७३॥ आप को वहाँ निवास  
 करके मनुष्यों का कार्य करना चाहिए । अब विलम्ब मत करो । यह सुन  
 कर वे देव आदर से वाचिक करने लगे ॥७४॥ कलिकाता नगरी में  
 उद्यत होते हुए स्थापना की थी । विकर पश्चिम द्वीप में उसकी पत्नी  
 विकटावती थी ॥७५॥ उसने अष्ट कौशल मार्ग से राज मन्त्र को किया  
 था । उसका पति पुलोमार्चि कलिकाता पुरी में स्थित था ॥७६॥ कलि-  
 युग में विक्रम के राज्य के अष्टादश शत और चत्वारिंश वर्ष हुए थे तब  
 यह राजा हुआ था ॥७७॥

तदन्वये सप्तनृपा गुरुण्डाश्च बभूवुरे ।  
 चतुष्पष्टिमितं वर्षं राज्यं कृत्वा लयं गताः ॥७८॥  
 गुरुण्डे चाष्टमे भूपे प्राप्ते न्यायेन शासति ।  
 कलिपक्षो बलिदैत्यो मुर नाम महासुरम् ॥७९॥  
 आरुह्य प्रेषयामास देवदेशे महोत्तमे ।  
 स मुरो बाण्डिलं भूपं वशीकृत्य हृदि स्थितः ॥८०॥  
 आर्यधर्मविनाशाय तस्य बुद्धिं चकार ह ।  
 मूर्तिसंस्थास्तदा देवा गत्वा यज्ञाशयोगिनम् ॥८१॥  
 नमस्कृत्याद्युवन्सर्वे यथा प्राप्तो मुरोऽसुरः ।  
 ज्ञात्वा शशाप कृष्णाशो गुरुण्डान्वौद्धमार्गिणः ॥८२॥  
 क्षयं यास्यति ते सर्वे मुरस्य वशं गताः ।  
 इत्युक्ते व्रचने वस्मिन्गुरुण्डाः कालनोदिताः ॥८३॥  
 स्वसैन्यैश्च क्षयं जग्मुर्वर्षमात्रान्तरे खलाः ।  
 सर्वे त्रिशत्सहस्राश्च प्रययुर्यममदिरे ॥८४॥

उस वश में सात गुरुण्ड नृप हुए थे । चौंसठ वर्षों परिमाण तक राज्य करके वे सब लय को प्राप्त हो गये थे ॥७८॥ गुरुण्ड के आठवें राजा के होने पर जो कि न्याय के साथ शासन कर रहा था कलि के पक्ष वाले बलि दैत्य ने मुर नाम वाले महान् असुर को आरुह्य करके महान् उत्तम इस देवों के देश में भेजा था ॥७९॥ वह मुर बाण्डिल भूप को अपने वश में करके उसके हृदय में स्थित हो गया था ॥८०॥ आर्यों के धर्म को विशेष रूप से नष्ट करने के लिये उसकी वीर्य ही बुद्धि उसने कर दी । उस समय में मूर्तियों में संस्थान रखने वाले देवगण यज्ञाश योगी के पास पहुँचे थे ॥८१॥ उन सब ने यज्ञाश को नमस्कार किया और जिस तरह मुर असुर वहाँ प्राप्त हुआ था वह सब कह सुनाया था । कृष्णाश ने यह सब वृत्तान्त जान कर बौद्ध मार्ग के अनुयायी गुरुण्डों को शाप दे दिया था ॥८२॥ जो भी मुर असुर के वश में प्राप्त हो गये हैं वे सब क्षय को प्राप्त हो जायेंगे । उसके इस वचन के बहने पर काल के द्वारा प्रेरित खल गुरुण्ड अपनी सेनाओं के साथ एक ही वर्ष के अन्दर

क्षय को प्राप्त हो गये थे । वे सब तब सहस्र यमराज के मन्दिर में चले गये थे ॥८३-८४॥

वाग्दंडैस्स च भूपालो वाडिलो नाशमाप्तवान् ।

गुरुण्डो नवमः प्राप्तो भेकलो नाम वीर्यवान् ॥८५॥

न्यायेन कृतवाचाज्य द्वादशाब्द प्रयत्नतः ।

आर्यदेशे च तद्राज्यं बभूव न्यायशासति ॥८६॥

लार्डलो नाम विख्यातो गुरुण्डो दशमोहितः ।

द्वात्रिंशाब्दं च तद्राज्यं कृतं तेनैव धर्मिणा ॥८७॥

लार्डले स्वर्गं ते प्राप्ते करदकुलोद्भवा ।

आर्या प्राप्तस्तदा मोना हिमतुः गनिवासिनः ॥८८॥

वभ्रुवर्णा सूक्ष्मनसो वतुंला दीर्घमस्तकाः ।

एव लक्षाश्च संप्राप्ता देहल्या बौद्धमार्गिणः ॥८९॥

आजिको नाम वै राजा तेषां तत्र बभूव ह ।

तस्य पुत्रो देवकर्णो गगोत्रगिरि मूर्धनि ॥९०॥

द्वादशाब्दं तपो घोरं तेषां राज्यविवृद्धये ।

तदा गगवती गगां तपसा तस्य घीमतः ॥९१॥

वह वाडिल राजा वाग्दण्डों के द्वारा ही नाश को प्राप्त होगया था । हमके पश्चात् नवम गुरुण्ड जिस का नाम भेकल था और बडा ही वीर्य-वाद् था प्राप्त हुआ था ॥८५॥ इसने न्याय के साथ बारह वर्ष तक प्रयत्न पूर्वक राज्य का शासन किया था । आर्यदेश में वह न्याय का शासन वाला राज्य हुआ था ॥८६॥ दशम गुरुण्ड परम हितकारी लार्डल नाम वाला विख्यात हुआ था । उस धर्मात्मा ने भी बत्तीस वर्ष पर्यंत यहा राज्य का शासन किया था ॥८७॥ लार्डल के स्वर्ग में प्राप्त हो जाने पर मकरन्द के कुल में जन्म ग्रहण करने वाले उस समय यहाँ प्राप्त हुए थे जो मोन और हिमतुग के निवास करने वाले थे ॥८८॥ ये वभ्रुवर्ण नाम, छोटी नाक वाले, वतुंन आकार वाले और बड़े मस्तक वाले थे । इस प्रकार सब सागों बौद्ध मार्ग ने अनुयायी देहली में प्राप्त होगये थे ॥८९॥ वही पर उनका आजिक नाम वाला राजा

हुआ था । उसका पुत्र देवकर्ण नामधारी था जो गगोत्र गिरि के शिखर पर था ॥६०॥ वह उस पर्वत की चोटी पर अपने राज्य की विशेष वृद्धि के लिए बारह वर्ष तक धीरे उसने तपस्या की थी । तब उस बुद्धिमान् को तपस्या से सन्तुष्ट भगवती गंगा हुई थी ॥६१॥

स्वरूप स्वेच्छया प्राप्य ब्रह्मलोक जगाम ह ।

कुवेरश्च तदागत्य दत्त्वा तस्मै महत्पदम् ॥६२

आर्याणां मण्डलीकं च तस्मैवान्तरधीयत ।

मण्डलीको देवकर्णो बभूव जनपालकः ॥६३

पट्टधष्ठं च कृतं राज्यं तेन राजा महीतले ।

तदन्वयेष्ट भूपाश्च बभूवुर्देवपूजकाः ॥६४

द्विशताब्दं पदं कृत्वा स्वर्गलोकमुपाययुः ।

एकादशश्च यो मौनः पन्नगारिरिति श्रुतः ॥६५

चत्वारिंशच्च वर्षाणि राज्यं कृत्वा प्रयत्नतः ।

स्वर्गलोकं गतो राजा पन्नगैर्मरणं गतः ॥६६

एव च मौनजातीयैः कृतं राज्यं महीतले ॥६७

तब वह अपनी इच्छा से स्वरूप प्राप्त करके ब्रह्मलोक को चला गया था । और उस समय वहाँ कुवेर ने आकर उसे महत्पद प्रदान किया था ॥ ६२ ॥ यों का मण्डलीक वही पर अन्तर्धान होगया था । तब मण्डलीक देवकर्ण जनो का पालक हुआ था ॥६३॥ उस राजा ने सात वर्ष तक इस महीतल पर राज्य किया था । उसके वंश में आठ राजा बहुत ही देवों की पूजाार्चि करने वाले हुए थे ॥६४॥ वे सब दो शताब्दी तक अपना पद प्राप्त करते हुए फिर स्वर्ग लोक को चले गये थे । एकादश जो मौन था वह पन्नगारि नाम से प्रसिद्ध था ॥६५॥ उमने यहा चालीस वर्ष तक राज्य के सुख का उपभोग किया था और प्रयत्न के साथ राज्य शासन करके फिर वह पन्नगो के साथ मर कर स्वर्गलोक को चला गया था । ॥६६॥ इस प्रकार से मौनजाति वालो ने इस महीतल पर राज्य किया था ॥६७॥



॥ किल्किला के शासको का वर्णन ॥

वैक्रमे राज्यविगते चतुष्पष्ट्युत्तर मुने ।  
 द्वाविंशदब्दशतक भूतनन्दिस्तदा नृप ॥१  
 कुबरयक्षवान्मोना धनधान्यसमन्वितान् ।  
 साद्वलक्षान्कलैर्घोरैर्जित्वा तान्ययुद्धवारिण ॥२  
 किल्किलाया स्वयं राज्यं नागवर्षाश्चकार ह ।  
 आग्नेय्या दिशि विख्याता पुण्डरीकेण निर्मिता ॥३  
 पुरी किल्किला नाम तत्र राजा बभूव ह ।  
 पुण्डरीकादयो नागास्तस्मिन् राज्यं प्रशासति ॥४  
 गेहेगेहे जनैस्सर्वे पूजनीया बभूविवरे ।  
 स्वाहा स्वधा वषट्कारो दक्षपूजा महीतले ॥५  
 त्यक्त्वा देवानुपागम्य सस्थिता मेरुमूर्धनि ।  
 शक्राजया वृषेरस्तु शङ्खधाय समतत ॥६  
 यक्षं पद्मानादाय दक्षेभ्यः प्रददौ प्रभु ।  
 मणिस्वर्णादियस्तूनि भौनगाज्येषु यानि वै ॥७

द्वारा पडश लेकर दोनो को दे दिया था और मणि स्वर्ण आदि वस्तुएं जो भी मौन राज्य मे थी उनका पडश भी दिया था ॥६७॥

दत्तानि तानि कोशेषु पुनर्देवश्चकार ह ।

मण्डलीक पद तेन सत्कृत भूतनन्दिना ॥८॥

शताब्दं तु ततो राजा शिशु नन्दिबंभूव ह ।

नागपूजा पुरस्कृत्य तिरस्कृत्य सुरान्भुवि ॥९॥

चकार राज्य विशाब्द यशोनन्दिस्ततोऽनुज ।

भ्रात्रासन स्वय प्राप्तो नागपूजापरायणः ॥१०॥

पञ्चविंशतिवर्षाणि स च राज्यमचीकरत् ।

ततस्तत्तनयो राजा स बभूव प्रवीरक ॥११॥

एकादशाब्द तद्राज्य कर्मभूम्या प्रकीर्तितम् ।

कदाचित्स च बाह्लीके सेनया साब्दं भागतः ॥१२॥

तत्र तैरभवद्युद्ध पंशाचं म्लेच्छदाहणैः ।

मासमात्रान्तरे म्लेच्छा लक्षसख्या मृतिं गता ॥१३॥

तथा पष्टिसहस्राश्च नागभक्ता लय गता ।

बादलो नाम तद्राजा रोमजस्थो महाबल ॥१४॥

उा सभी को कोशो मे फिर देव ने कर दिया था । उस दूत नन्दी ने मण्डलीक पद को सत्कृत किया था ॥८॥ इसने आधी शताब्दी तक राज्य का शासन किया था । इसके पश्चात् शिशुनन्दि वहा का राजा हुआ था । इसने नागपूजा को ही प्रधानता दी थी और देवो का भूमि मे तिरस्कार ही कर दिया था ॥९॥ फिर इसके छोटे भाई यशोनन्दि ने बीस वर्ष पर्यन्त राज्य शासन को किया था । नाग पूजा मे परायण इसने अपने भाई का आसन स्वय प्राप्त कर लिया था । इसने भी पञ्चीस वर्ष तक राज्य सुख का उपभोग किया था । इसके पश्चान् उनका पुत्र प्रवीरक नाम वाला वहा का राजा हुआ था ॥१०-११॥ ग्यारह वर्ष तक भूमि मे उसका शासन कान बताया गया है । किसी समय वह बाह्लीक देश मे सेना ने साथ आया था ॥१२॥ वहा पर दाहण पंशाच म्लेच्छा के साथ उसका युद्ध हुआ था । एक मास के अन्तर

में ही एक लाख सख्या वाले म्लेच्छ मृत्युगत होगये थे ॥१३॥ तथा साठ हजार भाग भक्त भी लय को प्राप्त हुए थे । उनका राजा बादल वाला रोमजस्य महान् बलवान् था ॥१४॥

यशोनदिनमाहूय ददौ जालवती सुताम् ।

गृहीत्वा म्लेच्छराजस्य सुता मेहमुपागत ॥१५॥

गर्भो जानस्ततस्तस्या बभूव तनयो वली ।

वाह्लीको नाम विख्यातो नागपूजनतत्पर ॥१६॥

तदन्वये नृपा जाता वाह्लीकाश्च त्रयोदश ।

चतुश्शतानि वर्षाणि कृत्वा राज्यं मृतिं गता ॥१७॥

अयोमुखे च वाह्लीके राज्यमत्र प्रशासन्ति ।

तदा पितृगणास्सर्वे कृष्णचैतन्यमाययु ॥१८॥

नत्वोचुर्वचनं तस्य भगवञ्छृणु मे वच ।

वयं पितृगणा भूपर्नागवर्ग्यनिराकृता ॥१९॥

श्राद्धतर्पणकर्माणि तैर्वयं वर्द्धितास्सदा ।

पितृवृद्धात्सोमवृद्धिस्ततो देवाश्च तर्द्धना ॥२०॥

देववृद्धाल्लोकवृद्धिस्तस्माद्ब्रह्मा प्रजापति ।

ब्रह्मवृद्धात्परं हर्षं गेहेगेहे जनेजने ॥२१॥

अतोऽस्माश्चक्ष भगवन्प्रजा पाहि सनातनी ।

इति श्रुत्वा वचस्तेषां यज्ञाशो भगवान्ह्रि ॥२२॥

उसके बादल ने यशोनदी को बुला कर जालवती पुत्री का दान उसे करके दे दिया था । यह उस म्लेच्छ राज की पुत्री को ग्रहण करके अपने घर में आ गया था ॥१५॥ उसमें फिर गर्भ उत्पन्न हुआ और बनी पुत्र की उत्पत्ति उसमें हुई थी । यह भी वाह्लीक नाम से विख्यात हुआ था और यह नाग पूजन में परायण रहा करता था ॥१६॥ उस वंश में तेरह वाह्लीक राजा हुए थे । इन्होंने चार सौ वर्ष तक राज्य शासन किया था और फिर वे सब मृत्युगत होगये थे ॥१७॥ अयोमुख नामक वाह्लीक के यहां पर राज्य का शासन करने के समय समस्त पितृगण कृष्ण चैतन्य के पास आये थे ॥१८॥ उन्होंने कृष्ण चैतन्य का प्रणाम

करके यह वचन कहे—हे भगवन् हमारे वचनो का श्रवण कीजिए । हम समस्त पितृगण नागवश मे होने वाले भूषो के द्वारा निराकृत कर दिये गये हैं ॥१६॥ आद्य-तर्पण कर्मों के द्वारा हम सदा वर्धित होते हैं । पितृगण की वृद्धि से सोमकी वृद्धि होती है और फिर उससे देवगण वर्धित हुआ करते हैं ॥२०॥ देवों की वृद्धि से ही लोको की वृद्धि है और उससे प्रजापति ब्रह्मा वृद्धिशील होते हैं । ब्रह्म वृद्धि से घर-घर और जन-जन मे परमहंस हुआ करता है ॥२१॥ हे भगवन् ! इसलिए हमारी रक्षा करो और सनातनी प्रजा का पालन करो । उनके इन वचनो का श्रवण करके भगवान् यज्ञाश हरि ने कहा—॥२२॥

पुष्यमित्र धर्मपरमार्यवशविवर्द्धनम् ॥२३॥

जातमात्र स वै बाल षोडशाद्धवयोभवत् ।

अयोनिर्योनिभूतास्तानयोमुख पुरस्सरान् ॥२४॥

जित्वा देशान्निराकृत्य स्वयं राज्यं गृहीतवान् ।

यथा शिवाशतो जातो विक्रमो नाम भूपति ॥२५॥

शकान्गन्धर्वपक्षीयाञ्छित्वा पूज्यो बभूव ह ।

नागपक्षास्तथा भूपान्गोलकास्यान्भयकरान् ॥२६॥

पुष्यमित्रस्तदा जित्वा सर्वपूज्योऽभवद्भुवि ।

सप्तविंशच्छत वर्षं द्विसप्तत्युत्तरं तथा ॥२७॥

राज्यं विक्रमतो जात समाप्तिमगमत्तदा ।

पुष्यमित्रे राज्यपदं प्राप्ते समभवत्तदा ॥२८॥

शतवर्षं राज्यपदं तेन धर्मात्मना धृतम् ।

अयोध्या मथुरा माया काशी काची ह्यवन्तिका ॥२९॥

पुरी द्वारावती तेन राजा च पुनरुद्धृता ।

कुरुसूत्रपद्मानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥३०॥

धर्म परायण आर्य वश का विवर्द्धन करने वाला पुष्य मित्र हुआ

॥२३॥ यह बालक उत्पन्न होने के साथ ही आठ वर्ष की अवस्था वाता होगया था । वह अयोनि था और उसने योनि भूत अयोमुख पुरस्सरों को जीत कर उहे देश मे निकाल कर स्वयं राज्य को ग्रहण कर लिया

था । शिवाश से विक्रम नाम वाला राजा समुत्पन्न हुआ था ॥२४-२५॥  
 यह गन्धर्व पक्ष वाले शको पर विजय प्राप्त करके स्वयं पूज्य होगया  
 था । उसी प्रकार से नाग पक्ष वाले राजाओं को तथा भयकर गोलकस्यो  
 को उस समय जीत कर पुष्यमित्र भूतल में सर्व पूज्य होगया था ।  
 सप्तविंशत् शत और वहत्तर उत्तर वर्ष पर्यन्त विक्रम से राज्य हुआ था ।  
 इसके पश्चात् वह समाप्ति को प्राप्त होगया था । पुष्यमित्र के राज्य  
 पद प्राप्त होने पर उस समय में हुआ था ॥२६-२८॥ उस धर्मात्मा ने  
 सौ वर्ष तक राज्य पद का उपभोग किया था । अयोध्या-मथुरा-माया  
 काशी-काशी-अवन्तिका और द्वारावती पुरियों का इसी राजा के द्वारा  
 पुनः उद्धार हुआ था । इस के अतिरिक्त कुह-सूकर पद्मों के क्षेत्रों का  
 जो कि अनेक हैं पुनरुद्धार किया था ॥२९-३०॥

नैमिषोत्पलवृन्दाना वनक्षेत्राणि भूतले ।

नानातीर्थानि तेनैव स्थापितानि समन्ततः ॥३१॥

तदा कलिः स गघर्वो देवतापितृदूषकः ।

ब्राह्मणं वपुरास्थाय पुष्यमित्रमुपागमत् ॥३२॥

नत्वीवाच प्रिय वाक्य शृणु भूप दयापर ।

आर्यदेशे पितृगणा पूजार्हा श्राद्धतर्पणै ॥३३॥

अज्ञानमिति तज्ज्ञेय भुवि यत्पितृपूजनम् ।

मृता ये तु नरा भूमौ पूर्वकर्मवशानुगाः ॥३४॥

भवन्ति देहवन्तस्ते चतुराशीतिलक्षधा ।

छत्रना मयदेवेन पितृपूजा विनिर्मिता ॥३५॥

वृथा श्रमं वृथा कर्म नृणा च पितृपूजनम् ।

इति श्रुत्वा वचो घोरं विहस्याह महोपतिः ॥३६॥

भवान्मूर्खो महामूढो न जानीये पर फलम् ।

भुवलोके न ये दृष्टाः शून्यभूताश्च भास्वराः ॥३७॥

ये तु ते वै पितृगणाः पिण्डरूपविमानगाः ।

सत्पुत्रश्च विधानेन पिण्डदानं च मत्कृतम् ॥३८॥

तद्विमान नभोजात सर्वानदप्रदायकम् ।

अब्दमात्र स्थितिस्तेषा पिण्डपायसरूपिणाम् ॥३६॥

गीताष्टादशकाध्याये सप्तशत्याश्चरित्रके ।

पावित यत्तु वै पिण्ड त्रिशताब्द च तत्स्थिति ॥४०॥

इस भूतल में नैमिषोत्पन्न वृन्दों के वन क्षेत्रों को तथा अनेक तीर्थों को सब ओर उसने ही स्थापित किया था ॥३१॥ उस समय में वह गन्धर्व देव और पितृगण को दूषित करने वाला ब्राह्मण का शरीर धारण करके पुण्यमित्र के पास आया था ॥३२॥ उसको नमस्कार करके वह प्रिय वचन बोला—हे दया परायण भूष ! सुनिये, आर्य देश में पितृगण श्राद्ध और तपणों के द्वारा पूजा के योग्य हैं ॥३३॥ भूमण्डल में जो यह पितृगण का पूजन है वह अज्ञान है ऐसा जानना चाहिए । भूमि में पूर्व कर्मों के वश व अनुगामी जो मनुष्य मृत हो गये हैं वे चौरासी लाख योनियों के भेद से देहधारी हो जाते हैं । मयदेव के द्वारा छल से यह पितृगण की पूजा का निर्माण किया है ॥३४ ३५॥ मनुष्यों के द्वारा यह पितृगण का पूजन करना वृथा ही भ्रम और कम है । इस तरह से इस घोर वचन को सुनकर वह राजा हँसकर बोला ॥३६॥ आप महामूढ़ हैं और अत्यन्त मूर्ख हैं । इसके परम फल को आप नहीं जानते हैं । भुव-लोक में जो शून्यभूत और भास्वर नहीं देखे गये हैं जो पितृगण हैं वे पिण्ड रूप विमानों से गमन करने वाले हैं जो कि सत्पुत्रों के द्वारा पूण विधि विधान से पिण्ड दान किया गया है ॥३७ ३८॥ वह विमान नभ में गया हुआ सब प्रकार के आनन्द का प्रदान करने वाला होता है । पिण्ड पायस रूपी उनकी एक वर्ष पय त वहा स्थिति होती है ॥३९॥ गीता के अठारह अध्यायों के द्वारा तथा दुर्गा सप्त शती के चरित्रों से पावित किया हुआ जो पिण्ड होता है उसकी वह तीन सौ वर्ष तक हुआ करती है ॥४०॥

पुण्यमित्रगते राज्य दशोत्तरशतत्रयम् ।

तस्मिन् काले रूप अम्पुद्व्याध्रदेशनिवासिन ॥४१॥

शताद्धब्दि ततो भूमिविना राजा बभूव ह ।  
 तदा क्षुद्रा नरा लुब्धा लुठिताश्चौरदारुण ॥४२॥  
 दारिद्रमगमन्धोर विना स्वर्णं च भूरभूत् ।  
 पुनर्देवश्च भगवान्प्रार्थितस्तानुवाच ह ॥४३॥  
 देशे कौशलके जात सूर्याशाच्च महीपति ।  
 राक्षसारिरिति ग्यातो देवमागपरायण ॥४४॥  
 ममाज्ञया स वै राजा भविष्यति महीतले ।  
 ह्युक्त्वा तदधे विष्णुर्देवलोकानुपागमत् ॥४५॥  
 राक्षसारमयोयाया स्थापयामासुरेव तम् ।  
 आध्रराष्ट्रं च मह्यं राक्षसैश्च समाहृतम् ॥४६॥  
 तद्दृश्य राक्षसास्त्रित्वा ग्रामेग्रामे चकार स ।  
 तारघातो पञ्चमूल्य सुवर्णं भुवि तद्वृतम् ॥४७॥

पुण्यमित्र के राज्य के चने जाने पर सीत सी दश वर्ष तक उस  
 समय में आ धर देश में निवासी लोग सब की प्राप्ति हो गये थे ॥४१॥  
 उस समय यह भूमि पचास वर्ष तक बिना ही राजा के रही थी । उस  
 समय में क्षुद्र नर दारुण चोरो के द्वारा सताय और खूटे गये थे ॥४२॥  
 सब लोग बहुत ही अधिक दरिद्रता को प्राप्त हो गये थे और यह भूमि-  
 तल बिना ही सुवर्ण में होगया था । फिर देवों के द्वारा भगवान् की  
 प्रायना की गई थी तब भगवान् ने उनसे कहा था ॥४३॥ कौशल देश  
 में सुवर्ण से एक राजा उत्पन्न हुआ है । वह राक्षसारि-द्वय नाम के  
 प्रसिद्ध है और देशों के माग का परायण है ॥४४॥ मरने आना से वह  
 राजा महीपति में हुआ । इतना कहकर भगवान् विष्णु आर्पण हो गये  
 थे और तेज मोहा को चने गये थे ॥४५॥ उस राक्षसारि को अयोध्या  
 में ही स्थापित कर दिया था और आ धर मण्ड में जा द्रव्य था उसको  
 राक्षसा ने समाहृत कर लिया था ॥४६॥ जगत् उग द्रव्य का राक्षसों  
 का जातकर क्षाप्त नाम में कर दिया था । उगने भूतत्वं से तात्पर्य है  
 अर्थात् प्राचीन परमाणु द्रव्य का कर दिया था ॥४७॥

आरघातोः शत मूल्य राजत तेन वै कृतम् ।  
 ताम्रधातो पञ्चमूल्यमारघातोश्च तत्कृतम् ॥४८॥  
 नागधातो पञ्चमूल्यं भुवि तेनैव निर्मितम् ।  
 ताम्र पवित्रमधिकं नागो वगस्त्वथोत्तमः ॥४९॥  
 लौहधातो शत मूल्य वगोऽसौ तेन सत्कृतः ।  
 शतार्द्धाब्दं मही भुक्त्वा सूर्यलोके मुपाययौ ॥५०॥  
 तदन्वये पट्टिनृपा जाता वेदपरायणाः ।  
 पुष्पमित्रगत राज्ये चाब्दे सप्तशते गते ॥५१॥  
 कौशलान्वयसभृता भूपा स्वर्गमुपाययुः ।  
 शतार्द्धाब्दं ततो भूमिमण्डलीकं नृप विना ॥५२॥  
 क्षुद्रभूपाश्च बुभुजे देशे देशे च भागवः ।  
 तन्ने बँदरदेणीयो नाम्ना भूपो विशारदः ॥५३॥  
 आर्यदेशमुपागम्य लक्षसंन्यसमन्वितः ।  
 क्षुद्रभूपान्वशीकृत्य मण्डलीको बभूव ह ॥५४॥  
 नानाकलैश्च कर्माणि विचित्राणि महीतले ।  
 ग्रामेग्रामे नराश्चक्रुर्वर्णसकरवारकाः ॥५५॥  
 ब्रह्मक्षत्रमयोवर्णो नाममात्रेण दृश्यते ।  
 वैश्यप्राया नरा आर्या शूद्रप्रायाश्च कारिणः ॥५६॥  
 तद्राष्ट्रे मनुजाश्चासन्नाममात्रं सुरार्चकाः ।  
 पट्टिवर्षं पद तेन कर्मभूम्या च सत्कृतम् ॥५७॥

ताम्रधातु से पञ्च मूल्य और आर धातु से सौ गुना मूल्य राजत धातु का तत्कृत था ॥४८॥ नाग धातु से पञ्चगुना मूल्य भूतल में उसके ही द्वारा निर्मित किया गया था । ताम्र अधिक पवित्र है, नाग और वग भी उसी प्रकार से उत्तम है ॥४९॥ यह वग लौह धातु से शतगुन मूल्य वाला उसी ने किया था । यह पचास वर्ष तक इस भूमि के सुख का उपभोग करके फिर सूर्य लोक को चला गया था ॥५०॥ उसके वश में आठ राज वेदों में परम परायण हुए थे । पुष्पमित्र के राज्य को सात सौ वर्ष व्यतीत हो चुके थे ॥५१॥ इस प्रकार स कौशल वंश में होने वाले



# उत्तरपर्व



## ॥ मंगलाचरण ॥

कल्याणानि ददातु वो गणपतियंस्मिन्ननुष्टुप्ते सति  
क्षोदीयस्यपि कर्मणि प्रभवितु ब्रह्मापि जिह्यायते ।  
भेजे यच्चरणारविन्दमसकृत्सौभाग्यभाग्योदयस्ते  
नैपा जवति प्रसिद्धि मगमद् वेन्द्रलक्ष्मीरपि ॥१॥  
शश्वत्पुण्यहिरण्यगर्भरसनासिहासनाध्यासिनी  
सेयं वागधिदेवता वितरतु श्रेयासि भूयासि वः ।  
यत्पादामलकोमलागुलिनखज्योत्स्नाभिरुद्धेल्लितः  
शब्दब्रह्मसुधाबुधिबुधमनस्युच्छ्रयल खेलति ॥२॥  
नमस्तस्मै विश्वोदयविलयरक्षाप्रकृतये शिवाय  
बलेशौघच्छिदुरपद पद्मप्रणतये ।  
अमन्दस्वच्छन्दप्रथितपृथुलीलातनुभृते  
त्रिवेदीवाचामप्यपथनिजतत्त्वस्थितिकृते ॥३॥  
यस्य गण्डतले भाति विमला पद्मपदावली ।  
अक्षमानैव विमला स नः पायाद्गणाधिपः ॥४॥  
ॐ नमो वासुदेवाय सशार्ङ्गाय सकेतवे ।  
सगदाय सचक्राय सशखाय नमो नमः ॥५॥  
नमः शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे ।  
सवृषाय सशूलाय सकपालाय सेन्दवे ॥६॥  
शिवं ध्यात्वा हरिं स्तुत्वा प्रणम्य परमेष्ठिनम् ।  
चित्तभानुं च भानुं च नत्वा ग्रन्थमुदीरयेत् ॥७॥

मन्दोत्तमप्रणमः—गणपति, व्यापको, समस्त, अन्त्यार्णो, को, देव, ।, लिख

गणेश के अतुष्ट होने पर छोटे से वर्म में भी ब्रह्मा भी करने को समर्थ

नहीं होते हैं और हिचकिचाते हैं । और जिसके चरणारविन्द का बार-बार सेवन ब्रह्मा ने किया था देवेन्द्र लक्ष्मी भी उसके द्वारा ही सोभाग्य भाग्योदयों से जगत् में प्रतिष्ठि को प्राप्त हुई है ॥१॥ सर्वदा परम पवित्र हिरण्यगर्भ की रचना रूपी सिंहासन पर अध्यास करने वाली वह यह वाग्देवी आपको बहुत अधिक श्रेयों का वितरण करे । जिसके चरणों की अमल और कोमल अंगुलियों के नखों की ज्योत्स्ना से उद्वेलित शब्द ब्रह्म रूपी सुधा के समुद्र बुधों के मन में उच्छृङ्खलता पूर्वक घेला करता है ॥२॥ विश्व के उदय-विलय और रक्षा की प्रकृति वाले उस शिव के लिए नमस्कार है जो वनेशों के समूह के छेदन करने वाले पाद पद्म की प्रणति वाले हैं । वे शिव आनन्द और स्वच्छन्द प्रथित बहुत सी लीलाओं के करने के लिये शरीर को धारण करने वाले हैं और त्रिनेदी वाचाओं के भी अवयव अपने तत्त्व से स्थिति के करने वाले हैं ॥३॥ जिसके गण्ड तन पर विमल चमरों की पंक्ति शोभा दिया करती है और वह अशों की माला की भाँति विमला है वह गणों के स्वामी हमारी रक्षा करें ॥४॥ भगवान् वागुदेव के लिए जो शार्ङ्ग धनुष-नेत्रु-गदा-चक्र और शंख ने युक्त हैं बार-बार नमस्कार है ॥५॥ शिव के लिये जो सोम-गण-मूनु-वृष-भून-कपाल और इन्दु के मल्लित हैं बार-बार हमारा नमस्कार है ॥६॥ मदा शिव का दशन करके हरि की स्तुति करके और परमेश्वरी को प्रणाम करके तथा चित्रभासु और भासु को नमस्कार करके द्रव्य को उदीरित करने हैं ॥७॥

छत्राभिषिक्तं घर्मजं घर्मगुत्रं युधिष्ठिरम् ।

द्रष्टुमश्यामता हृष्टा व्यामायाः परमपंथः ॥८॥

भार्कण्डेयः समान्डव्यः शाण्डिल्यः शारदायनः ।

गौतमो गामयो गार्ग्यः शातातपपराशरो ॥९॥

जामदग्न्यो भरद्वाजो भृगुर्भागुरिमेव च ।

उत्तारः संगमिगिरी शौनकः शाकटायनिः ॥१०॥

पुलस्त्यः पुलहो दाल्भ्यो बृहदग्नयः गण्डोमनः ।

नारदः पयशो जह्नु रसायनपरायणम् ॥११॥

तानृपोनागतान्दृष्ट्वा वेदवेदाङ्गपारगान् ।

भक्तिमान्भ्रातृभिः साद्धं कृष्णघोम्यपुर सर ॥१२

युधिष्ठिरः सप्रहृष्टः समुत्थायाभिवाद्य च ।

अर्घ्यमाचमनं पाद्यमासनानि स्वयं ददौ ॥१३

उपविष्टेषु तेष्वेव तपस्विषु युधिष्ठिरः ।

विनयादनतो भूत्वा व्यासं वचनमब्रवीत् ॥१४

एक समय छत्राभिषिक्त—धर्म के पूज्य ज्ञाता— धर्म के पुत्र युधिष्ठिर का दर्शन करने के लिये परम हृषित होकर व्यास आदि परमपिण्य आये थे ॥१२॥ उन महर्षियों में भार्कण्डेय—माण्डव्य—शाण्डिल्य—शाकटायन गौतम—गालव—गार्ग्य—शातातप—पराशर—जामदग्न्य—भरद्वाज—भृगु—भागुरि उत्तक—शङ्ख—लिखित—शौनक—शाकटायनि—पुलस्त्य—पुलह—दाल्भ्य—वृहदश्व—सलोमश—नारद—पर्वत—जह्नु—अथावसु—परावसु ये सभी थे । इन ऋषियों का दर्शन कर जोकि बड़ा आनंद हुआ था और वेदों तथा वेदाङ्गों का पारगामी महा मनीषी थे राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों को साथ लेकर तथा कृष्ण घोम्य को आगे करके परम प्रहृष्ट होता हुआ समुत्थित हुए और उन सब का अभिवादन किया तथा स्वयं अर्घ्य—आचमन—पाद्य और सब के लिए आसन राजा ने दिये थे ॥१३॥ वे समस्त तपस्वी गण जब यथा स्थान उपविष्ट होगये तो विनय से विनम्र होकर युधिष्ठिर व्यास जी से यह वचन बोले—॥१४॥

भगवत्स्वप्नसादेन प्राप्तं राज्यं महं मया ।

विक्रम्य निहतं सत्ये सानुबन्धं सुयोधन ॥१५

सरोगस्य यथा भोगं प्राप्तोऽपि न सुखावहः ।

हत्वा ज्ञातीस्तथा राज्यं न सुखं प्रतिभाति मे ॥१६

यत्सुखं पावनं प्रीतिवनमूलफलाशिनाम् ।

प्राप्य गा च हृत्तारतिं न तदस्ति पितामह ॥१७

यो नो बन्धुर्गुणोपा सदा शर्मं च वर्मं च ।

स मया राज्यलोभेन भीष्म पापेन घातितः ॥१८

अविवेकमहं धास्ये मनो मे पापपङ्किलम् ।

क्षालयित्वा तव गिरा बहुदर्शितवारिणा ॥१६

संश्रुतानि पुराणानि वेदास्सांगा मया विभो ।

ममाद्य धर्मसर्वस्वं प्रज्ञादीपेन दर्शय ॥२०

एते सधर्मगोप्तारो मुनयः समुपगताः ।

पिबन्तो नेत्रभ्रमरैर्भवतो मुखपंकजम् ॥२१

अर्थशास्त्राणि यावन्ति धर्मशास्त्राणि यानि वै ।

श्रुतानि सर्वशास्त्राणि श्रीष्माङ्गागीरधीसुतात् ॥२२

हे भगवन् ! आपके ही प्रसाद से मैंने यह महान् राज्य प्राप्त किया है । विक्रम करके अपने अनुबन्ध के सहित सुयोधन युद्ध में निहत हो गया है ॥१५॥ जो रोग से युक्त होता है उसको यदि भोग प्राप्त भी हो जाता है तो वह जिस तरह सुख प्रदान करने वाला नहीं होता है, उसी भाँति अपने समस्त ज्ञाति के जनों का हनन करके यह प्राप्त राज्य भी मुझे सुख देने वाला नहीं मालूम होता है ॥१६॥ हे पितामह ! जो पावन सुख और प्रीति वन के मूल और फलों के खाने वालों को होती है वह हम विशाल भूमि को प्राप्त करके और शत्रुओं का हनन करके भी वैसी इस समय नहीं है ॥१७॥ जो हम सबका बन्धु-गुरु और रक्षक था तथा सदा कल्याण स्वरूप एवं धर्म रूप था वह भीष्म मैंने राज्य के ही लोभ से महापापी ने मरवा दिया है ॥१८॥ मैंने बहुत बड़ा अविवेक धारण कर लिया है और मेरा मन पाप के कीच में युक्त है । हे विभो ! मैंने पुराणों का श्रवण किया है और साङ्गवेद भी सुने हैं । आज आप मुझे अपनी प्रज्ञा के दीप से धर्म के सर्वस्व को दिखा दें ॥१९-२०॥ ये सभी धर्म की रक्षा करने वाले मुनिमण्डल यहाँ आगये हैं जो आपके मुखरूपी पंकज का नेत्र रूपी भ्रमरों के द्वारा पान कर रहे हैं ॥२१॥ जितने भी अर्थशास्त्र हैं और जो भी बताने वाले शास्त्र हैं वे सभी शास्त्र भागीरथ के पुत्र भीष्म प्रपितामह के मुख से श्रवण किए हैं ॥२२॥

स्वर्ग गते शान्तनवे भवानृष्णोऽथ यादव ।  
 सुहृत्त्वाद्बन्धुभावाच्च नान्य शिक्षयिता मम ॥२३॥  
 सत्य सत्यवतीसूनुर्द्धमराजाय वक्ष्यति ।  
 विशेषधर्मनिखिलान्मुनी नाम विशेषत ॥२४॥  
 यदाप्येय तदाट्यात मया भीष्मेण तेऽनघ ।  
 मार्कण्डेयेन धौम्येन लोमशेन महर्षिणा ॥२५॥  
 धर्मज्ञो ह्यसि मेघावी गुणवान्प्राज्ञसत्तम ।  
 न तेऽस्त्यविदित किञ्चिद्धर्माधर्मविनिश्चये ॥२६॥  
 पार्श्वस्थिते हृषीकेशे केशवे केशिसूदने ।  
 कस्यचित्कथने जिह्वा तत्र सपरिवर्तते ॥२७॥  
 कर्तापालयिता हर्ता जगता यो जग मय ।  
 प्रत्यक्षदर्शी सवस्य धर्मन्विक्ष्यत्यसौ तव ॥२८॥  
 समादिश्येति कतव्यं भगवान्बादरायण ।  
 पूजित पाण्डुतनयैर्जगाम स्वतपोवनम् ॥२९॥  
 स्वाभाष्य भारतविधातरि सप्रयाते ते कौतु-  
 काकुलधियो मुनय प्रशान्ता ।  
 किं पृच्छति क्षपितभारतलोकशोक  
 किं वक्ष्यतीह भगवा यदुवशवीर ॥३०॥

महाराज शांतनु के पुत्र के स्वर्ग में चले जाने पर भगवान् यादव वृष्ण ही सुहृद् हान के भाते होने से और बन्धु भाव के होने से मेरे शिक्षा देने वाले हैं अन्य कोई भी नहीं है ॥२३॥ सत्यवती के पुत्र धर्मराज के लिये सत्य वहेग जो कि समस्त विशेष धर्म हैं और विशेष करके मुनियों के हैं ॥२४॥ श्री व्यास जी ने कहा—हे अनघ ! जो कुछ मुझे अब कहना चाहिए या कहना है वह सब तो भीष्म ने तुमको कह ही दिया है मार्कण्डेय—धौम्य और महर्षि लोमश के द्वारा भी कहा गया है ॥२५॥ आप तो धर्म के ज्ञाता हैं और मेघा से भी समवित हैं तथा गुणवान् एवं प्राज्ञा म श्रेष्ठतम हैं । धर्म और अधर्म का क्या स्वरूप होता है—इसके विषय निश्चय करने के विषय में आपको कुछ भी

अव्यक्त नहीं है ॥२६॥ हृषीकेश भगवान् के पास मे स्थित होने पर जो कि केशि दैत्य के सूदन और केशव है किसकी जिह्वा कुछ भी कहने के लिए वहा सपरिवर्तित होती हैं ? ॥२७॥ जो जगत् की रचना करने वाला—पालन करने वाला और सहरण करने वाला एव जगन्मय है । यह तो सबका प्रत्यक्षदर्शी है । यही आपको धर्मों को बतायेंगे ॥२८॥ भगवान् वादरायण इति कत्तव्य का समादेश करके पाण्डु के पुत्रों द्वारा पूजित होते हुए अपने तपस्या करने वाले वन में चले गये थे ॥२९॥ भारत की रचना करने वाले के अपना कथन करके चल जाने पर वे समस्त मुनिगण कौतुक से आकुल बुद्धि वाले प्रशांत होगये थे । वे सब यही कौतुक अपने हृदयों में रख रहे थे कि अब भारत महायुद्ध के शोक को क्षीप्त करने वाले धर्म राज युधिष्ठिर क्या पछेंगे और यदु-वश के वीर भगवान् महा पर क्या उत्तर के रूप में कहेंगे ॥३०॥

### ॥ ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और वर्णन ॥

कस्य प्रतिष्ठा निर्णिष्टा को हेतु कि परायणम् ।  
 कस्मिन्नैतत्स्रष्ट घाति कस्मादुत्पद्यते जगत् ॥१॥  
 कति द्वीपा समद्राश्च कियतो हि कुलाचला ।  
 कियत्प्रमाणवनेर्भवनानि कियति च ॥२॥  
 पौराणश्चैव विषयो यत्पृष्टोऽह त्वयानघ ।  
 श्रुतोऽनुभूतश्च मया ससारे सरता चिरम् ॥३॥  
 अजाय विश्वरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।  
 नमस्तस्मै भगवत वादेवाय वेद्यसे ॥४॥  
 अत्र ते वणयिष्यामि शृणु पाथ पुरातनम् ।  
 याज्ञवल्क्येन मूनिना भविष्य भास्वतापति ।  
 पृष्टो यदुत्तर प्रादादृषिभ्यस्तमया श्रुतम् ॥५॥  
 धन्य यशस्यमायुष्य सर्वाशुभविनाशम् ।  
 भविष्योत्तरमेतत्त वक्ष्यामि युधिष्ठिर ॥६॥

एकात्मक त्रिदेवत्य चतु पचसुलक्षणम् ।

गुणकालादिभेदेन सदसत्सप्रद शितम् ॥७॥

इस अध्याय में श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर का सम्वाद और श्रीकृष्ण का द्वारा युधिष्ठिर के प्रति समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के वृत्तांत कथन का वर्णन किया जाता है । राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन् ! किस की प्रतिष्ठा निर्दिष्ट की गई है ? इसका क्या हेतु है और क्या परायण है । यह जगत् किस में लय को प्राप्त होता है और किससे यह उत्पन्न होता है ? ॥१॥ इस विश्व में कितने द्वीप हैं—कितने समुद्र हैं और कितने कुलवन हैं ? इस भूमि का कितना प्रमाण है और कुल भवन कितने होते हैं ? ॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे अनघ ! तुमने यह पुराणों का विषय मुझ से पूछा है । यह मैंने इस ससार में सरण करत हुए सुना है और इसका अनुभव भी चिरकाल तक किया है ॥३॥ उस अज मा-विश्वरूप—निगुण स्वरूप और गुणात्मा वेधा भगवान् वासुदेव के लिए नमस्कार है । अब यहां पर हे पाथ ! तुम से पुरातन का वर्णन करूंगा । आप इसका श्रवण करिये ॥४॥ याज्ञवल्क्य मुनिन भास्वतापति से भविष्य पूछा था । उस समय में उनने ऋषियो के लिये उतर दिया था वह मैंने श्रवण किया था ॥५॥ हे युधिष्ठिर ! यह भविष्य परम धन्य-यश का देने वाला आयु की वृद्धि करने वाला और सम्पूर्ण अशुभों के नाश करने वाला है । अब मैं इसे ही तुमसे कहना हूँ ॥६॥ तीनों देवताओं की एका मता चार पांच सुलक्षण और गुण तथा काल आदि के भेद से सत् और असत् भली भाँति प्रदर्शित किया है ॥७॥

एक एव जगद्योनि प्रतियोनिषु सस्थितः ।

एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥८॥

ब्रह्मा विष्णुर्वृषावश्च त्रयो देवाः सता मताः ।

तामभेद क्रियाभेदाभिद्यते नात्मना म्वयम् ॥९॥

प्रक्रिया चानुष्गश्च उपोद्भातस्तथैव च ।

उपसहार इत्यतश्चतुष्पाद प्रकीर्तितम् ॥१०॥

समता प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च ।  
 वशानुचरितं चैकं पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥११॥  
 एष वक्तव्यविषयः सुमहान्प्रतिभाति मे ।  
 तथाप्युद्देशतो वन्मि सगं प्रति तवानघ ॥१२॥  
 महदादिविशेषान्तं सर्वरूप्यं सलक्षणम् ।  
 पञ्चप्रमाणं पट्वक्ष्यं पुरुषाधिष्ठितं जगत् ॥१३॥  
 अव्यक्ताज्जायते बुद्धिमहानिति च सा स्मृता ।  
 अहकारास्तु महत्तन्नि गुणः स च पठ्यते ॥१४॥

इस समस्त जगत् का एक ही योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान है जोकि प्रतियोनियो में संस्थित हो रहा है । वही एक प्रकार से और बहुत प्रकार से जल में चन्द्रमा की भाँति दिखलाई दिया करता है ॥८॥ ब्रह्मा—विष्णु और वृषाक से तीन देवता सत्पुरुषों के माने हुए कहे जाते हैं । ये नामों के भेदों के द्वारा तथा कम करने के भेदों से भिन्न हात हैं स्वरूप से स्वयं ये भिन्न नहीं हैं ॥९॥ प्रक्षिया—अनुपम रूपोद्धात और उपसहार ये चार पाद कहे गये हैं ॥१०॥ समत—प्रति सग वश मन्वन्तर और वशानुचरित ये ही पांच पुराणों के लक्षण हुआ करते हैं ॥११॥ यही कहन योग्य विषय बहुत बड़ा मुझे प्रतीत होता है । हे अनघ । तुम्हारे प्रति तथापि उद्देश से सग को बताता हूँ ॥१२॥ महद् आदि के विशेषान्त वाला, स्वरूप के सहित, लक्षण से युक्त पांच प्रमाण वाला तथा पट्वक्ष्य पुरुष से अधिष्ठित यह जगत् है ॥१३॥ अव्यक्त से बुद्धि उत्पन्न होती है वह महान् इस नाम से नहीं गई है । फिर अहकार महान् से समुत्पन्न होता है और वह त्रिगुण वाला पदा जाया करता है ॥१४॥

तन्मात्राणि च पञ्चाहुरहद्वारान्च सात्त्विकात् ।  
 जातानि तन्मयो भूतानि भूतभ्यः मचराचरम् ॥१५॥  
 जलमूर्तिमयं विष्णो नष्टे स्थानवरजगम् ।  
 भूनात्मकमभूदण्डं महत्तदुदकशयम् ॥१६॥



सृष्ट्या शक्त्या च निर्भिन्न तदण्डमभवद्दिघा ।  
 भूकपालमथैकं तदिद्वितीयमभवन्नभ ॥१७  
 उत्त्व तस्याभवन्मरुजरायु पर्वता स्मृता ।  
 नद्यो घमन्य सञ्जाता क्लेद सवन्नग पय ॥१८  
 योजनाना सहस्राणि षोडशाघ प्रतिष्ठित ।  
 उत्सेधे चतुराशीतिर्द्वात्रिंशद्धर्वविस्तृत ।  
 भूमिपकजविस्तीर्णा कर्णिका मेरुह्वयने ॥१९  
 आदित्यश्चादिदेवत्वा तत्ताभूत्त्रिगुणात्मक ।  
 प्रातः प्रजापतिरसौ मध्याह्ने विष्णुरिष्यत ।  
 रुद्रोऽपराह्णसमये स एवैकस्त्रिघामत ॥२०

तन्मात्रा पाँच कही गई हैं जो सात्त्विक अहकार से उत्पन्न हुई हैं ।  
 उन पाँच तन्मात्राओं से पाँच भूत होते हैं । और फिर इन पंच महाभूतों  
 से इस चराचर जगत् की समुत्पत्ति हुआ करती है जो यह सब दिखाई  
 दे रहा है ॥१५॥ जल की मूर्ति वाले भगवान् विष्णु ने समग्र स्यावर और  
 जगम जगत् के विनष्ट होजाने पर भूतात्मक महत्त अणु उसी उदक में  
 घायन करने वाला होगया था ॥१६॥ सृष्टि और शक्ति से निर्मित वह दो  
 भागों में होगया था । उसका एक भाग भू कपाल था और दूसरा भाग  
 नभ था ॥१७॥ उसका उत्त्व मेरु जरायु होगया जो पर्वत कहे गये हैं ।  
 नदियाँ जो घी के घमनियाँ होगई थीं और सबन्न गमनशील पय क्ले  
 होगया था ॥१८॥ सोलह सहस्र योजन नीच का भाग था । ऊँचाई  
 चौरासी सहस्र और ऊँच विस्तार तीस सहस्र था । भूमि पकज की  
 विस्तीर्ण कर्णिका मेरु कहा जाता है ॥१९॥ आदित्य आदिदेव होने के  
 कारण वहाँ पर त्रिगुणात्मक था । यह प्रातः काल में प्रजापति-मध्याह्न  
 में विष्णु और दोपहर के बाद रुद्र रूप वह एक ही तीन स्वरूपात्मन हुआ  
 था ॥२०॥

स्वायम्भुवो मनु पूर्वं ततः स्वारोचिषोऽभवत् ।  
 उत्तमस्तामसश्चैव रवतश्चाधुपेति पट् ॥२१

वैवस्वतोऽयमधुना वर्तते मनुस्तमः ।  
 यस्य पुत्रैः प्रपौत्रैश्च विभक्तये वसुन्धरा ॥२२॥  
 आदित्या वसवो रुद्रा एकादश तथाश्विनौ ।  
 उपस्रयः समाख्याता देव वैवस्वर्तेऽस्तरे ॥२३॥  
 विप्रचित्तिहिरण्याख्यौ दैत्यदानवसत्तमौ ।  
 तयोर्वंशे तु बहवो दैत्यदानवसत्तमाः ॥२४॥  
 पञ्चाशद्गुणितकोटियोजनानां महत्तया ।  
 सद्बद्धीपसमुद्रायाः प्रमाणमवनेः स्मृतम् ॥२५॥  
 पिण्डेन च सहस्राणि सप्ततिर्जलमध्यतः ।  
 गौरिवैषा सुमहती भ्राजते न च लीयते ॥२६॥  
 लोका लोकः परतरः पर्यतोऽग्रमहोच्छ्रयः ।  
 द्वैतमर्थं स नियतो योऽसौ रविरुचामपि ॥२७॥  
 नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लयः ।  
 नित्यश्चतुर्धो विज्ञेयः कालो नित्यापहारकः ॥२८॥

सबसे पूर्व स्वायम्भुव मनु हुए, उसके पश्चात् स्वरोचिष हुए थे ।  
 फिर क्रम से उत्तम—तामस—रैवत और चाक्षुष ये छँ मनु हुए हैं । जो  
 यह इस समय वर्तमान है वह वैवस्वत मनु है जोकि सबसे उत्तम कहा  
 जाता है । जिसके पुत्र और पौत्रों से यह वसुन्धरा विभक्त है ॥२१-२२॥  
 आदित्य—वसुगण—एकादश रुद्र—अश्विनी कुमार और तीन उषा वैवस्वत  
 मन्वन्तर में देव कहे गये हैं ॥२३॥ विप्रचित्ति और हिरण्याक्ष श्रेष्ठ  
 दैत्य दानव थे । उन दोनों के वंश में बहुत—से दैत्यदानव  
 हुए थे ॥२४॥ पचास गुणित करोड़ योजनों की महत्ता से मातङ्गी और  
 सात समुद्र बानी भूमिका प्रमाण कहा गया है ॥२५॥ और पिण्ड से  
 सत्तर हजार जल के मध्य में यह गौ की भाँति भ्राजमान हुआ परती  
 है और लीन नहीं होनी है ॥२६॥ अग्रभाग में महान् उच्छ्रय यावा  
 मोका लोक पर्यन्त पर तर है । द्वैत अर्थ में यह नियत है जो यह रवि

की किरणां म भी है ॥२७॥ त्वं नेमित्तिक-प्राकृतिक और आत्यन्तिक  
और चौथा नित्य जाना चाहिए । काल नित्य का अपहारक है ॥२८॥

उत्पद्यते स्वयं यस्मात्तत्तस्मिन्नेव लीयते ।

रक्षति च परे पुं सि भूतानामेव निश्चय ॥२९॥

यथतद्वृत्तुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।

दृश्यते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥३०॥

प्रतिलीनेषु भूतेषु विबुद्ध सकल जगत् ।

वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वर ॥३१॥

हिंसाहिंसां मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृत्तानृते ।

ते त त्रिना प्रपद्यते पुनस्तेष्वेव कर्मसु ॥३२॥

भूर्दशगुणेन पयसा सवृता तच्च तेजसा ।

तेजोऽनिलेन नभसा तदगुणेनानिलो वृत ॥३३॥

भूतादिना तधाकाश भूतादिर्महतावृत ।

महान्परिवृतस्तेन पुरुषेणाविताशिता ॥३४॥

एव विधानामण्डानां सहस्राणि शतानि च ।

उत्पन्नानि विनष्टानि भावितानि महात्मना ॥३५॥

चैकुण्ठकोष्ठगतमेतदशेषताया रम्यात्

जगत्सुरनरोरगसिद्धनद्धम् ।

पश्यति शुद्धमुनयो बहिरतरे च माया

चराचरगुरोरपरं च काचित् ॥३६॥

जितसे स्वयं उत्पन्न होता है उसमे ही विलीन हो जाता है और  
पर पुरुष मे रमा करता है भूतो का यह निश्चय है ॥२९॥ जिस तरह  
ऋतु मे ऋतु के लिए अर्थात् चिह्न होते हैं और वे पर्यय मे नाना रूप  
वाले हुमा करते हैं तथा वे ही समय समय पर दिखलाई दिया करते हैं  
ठीक उसी भाँति युग आदि म भाव भी दिखाई दिया करते हैं ॥३०॥  
भूतो के प्रतिलीन होजाने पर विबुद्ध वह महेश्वर ही आदि मे इस  
समस्त जगत् को वेद के शब्दा से ही निर्माण करता है ॥३१॥ हिंस्र

और अहिंस-मृदु और क्रूर-धर्म और अधर्म-आवृत और अनृत वे सब फिर उही कर्मों में प्राप्त होते हैं ॥३२॥ यह भूमि दशगुने जन से आवृत है वह जल तेज में और तेज वायु से और वह अनिल तद्रूप आकाश से आवृत है ॥३३॥ तथा भूतादि आकाश और भूनादि मन्त्रतत्त्व से आवृत होना है । वह महान् उस अविनाशी पुरुष के द्वारा परिवृत होता है ॥३४॥ इस प्रकार के अण्ड सँकड़ो और सहस्रो होने हैं । महान् आत्मा वाले के द्वारा उत्पन्न हुए हैं-विनष्ट हुए हैं और आगे होंगे ॥३५॥ यह वैकुण्ठ कोष्ठ गन अशपत्ता में ख्यात है और यज्ञ जगत् सुर-नर-उरग और सिद्धों से नद्ध है । जो शुद्ध मुनिगण हैं वे वही और अन्तर में देखते हैं । यह चराचर गुरुकी कोई अपरा ही माया है ॥३६॥

### ॥ सासारिक जीवन के दोष ॥

देवत्व मानुषत्व च त्रियवत्त्वं केन कमणा ।  
 प्राप्नोति पुरुष केन गभवास सुदारुणम् ॥१॥  
 गर्भस्थश्च किमश्नाति कथमत्पद्यत पुनः ।  
 दत्तोत्थानादिका दोषा कथं तरति दुस्तरम् ॥२॥  
 बालभावे कथं पुष्टिं स्याद्युवा केन कमणा ।  
 कुलीन केन भवति सुरूप सुधनं कथम् ॥३॥  
 कथं दारावाप्नोति गृहं सवगुणैर्युतम् ।  
 पण्डित पुत्रवास्त्यागी स्यादामयविवर्जित ॥४॥  
 कथं सुखेन म्रियते कथं मुक्ते शुभाशुभम् ।  
 सवमेवामलमते गहनं प्रतिभाति मे ॥५॥

इस अध्याय में जन्म-संसार-दोषों के आख्यायन का वर्णन किया जाता है । युधिष्ठिर ने कहा—यह पुरुष देवत्व-मानुषत्व और त्रियवत् किस कर्म से प्राप्त किया करता है और किस कर्म के द्वारा सुदारुण गर्भ में आवास पाया करता है ? ॥१॥ जिस समय यह प्राणी गर्भ में स्थित होकर रहता है वहाँ यह क्या खाता है और फिर यह कैसे उत्पन्न होता है ? दत्त और उत्थानक आदि दोषों का जहाँ बहूत ही दुस्तर है

कैसे पार किया करता है ? ॥२॥ बान भाव में इसकी पुष्टि कैसे होती है और यह किस कम के द्वारा युवा होता है ? यह कुलीन-सुन्दर रूप वाला—सुधन से युक्त कैसे हुआ करता है ? ॥३॥ यह स्त्रियों की प्राप्ति कैसे किया करना है और समस्त गुण गण से समन्वित घर इस किस प्रकार प्राप्त होता है । पण्डित पुत्रों वाला—रोगी और रोगों से रहित किस तरह होता है ? ॥४॥ किस तरह यह जीवात्मा सुख से मरता है और शुभ तथा अशुभ के भोगों को कैसे भोगता है । इस अमल मत में सभी कुछ मुन बहुत गहम प्रतीत होता है ॥५॥

शुभैर्देवत्वमाप्नोति मिथैर्मनुष्यता व्रजेत् ।

अशुभैः कमभिर्जन्तुस्त्रियग्योनिषु जायते ॥६॥

प्रमाण श्रुतिरेवात्र धर्माधर्मविनिश्चये ।

पाप पापेन भवति पुण्य पुण्येन कर्मणा ॥७॥

ऋतुकाले तदा भुक्त निर्दोष यत्न सस्वितम् ।

तदा तद्व्याधुना स्पृष्ट खीरक्त नैकता व्रजेत् ॥८॥

विसर्गकाले शुक्रस्य जाय करणसमुत् ।

भृत्य प्रविशत योनिं कमभिः स्वर्गत्रयाजित ॥९॥

तच्छुक्ररक्तमेकस्थमेकाहात्कलल भवेत् ।

पञ्चरात्रेण कलल बुद्बुदा कारता व्रजेत् ॥१०॥

बुद्बुद सप्तरात्रेण मासपेशी भवत्तत ।

द्विसप्ताहाद्भवेत्पेशी रक्तमासहृद्वाचित ॥११॥

बीजस्यवाकुरा पेश्या पञ्चविंश तिरात्रत ।

भवति मासमात्रेण पञ्चधा जायते पुन ॥१२॥

श्रीकृष्ण ने कहा—शुभ कर्मों से यह प्राणी देवत्व की प्राप्ति किया करता है और जो कम शुभ तथा अशुभ से मिश्रित होते हैं उनसे मानुषता की प्राप्ति किया करता है । जब बिल्कुल अशुभ ही कम होते हैं तो यह निष्क योनियो में उत्पन्न होता है ॥६॥ धर्म और अधर्म विशेष निश्चय करने में श्रुति ही यहाँ पर प्रमाण होता है । पाप (बुरे) कम से पाप हाना है और पुण्य कम से पुण्य हुआ करता है ॥७॥ ऋतुकाल में उम

समय जो मुक्त है वह निर्दोष है जिसके द्वारा सस्थित उसकी वायु से स्पृष्ट होकर स्त्री के रक्त से एकता को प्राप्त हो जाता है ॥८॥ शुक्र के (वीर्य के) विसर्ग के समय म करणो (इन्द्रियो) से समुत्त जीव भृत्य अपने कर्मों से नियोजित होकर योनि में प्रवेश करता है ॥९॥ वह शुक्र और रक्त एकस्थ होकर एक दिन में वह कलल हो जाता है । वह कलल पाँच रात्रि में बुद्बुदाकार को प्राप्त हो जाता है ॥१०॥ वह बुद्बुद सात रात्रि में मास पेशी के रूप में होना है । फिर दो सप्ताह में रक्तमास से दृढाक्षित पेशी होती है ॥११॥ पच्चीस रात्रि में बीज के अकुरो की भाँति पेशी के मास मात्र समय में पाँच फिर खण्ड हो जाते हैं ॥१२॥

ग्रीवा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठशस्तथोदरम् ।

मासद्वयेन सर्वाणि क्रमशः सम्भवति च ॥१३॥

निभिर्मसि प्रजायत सद्रव्याकुरसधयः ।

मासैश्चतुर्भिरगुल्यः प्रजायते यथाक्रमम् ॥१४॥

मुख नासा च कर्णौ च जायन्ते पश्च मासकं ।

दक्षपक्तिस्तथा गुह्यं जायते च नखा पुनः ॥१५॥

कर्णौ च रघ्नसहिती पण्मासाभ्यन्तरेण तु ।

पायुर्मण्डूमुपस्थश्च नाभिश्चाप्युपजायते ॥१६॥

सधयोये च गात्रेषु मासैर्जायति सप्तभिः ।

अङ्गप्रत्यङ्गसंपूर्णं शिरः केशसमन्वितं ॥१७॥

विभक्तावयवः पुष्टः पुनर्मासाष्टकेन च ।

पञ्चात्मकसमायुक्तः परिपक्वः स तिष्ठति ॥१८॥

मातुराहारवीर्येण पटविधेन स तिष्ठति ।

रसेन प्रत्यहं बालो वधते भरतर्षभ ॥१९॥

ततोऽहं सप्रवक्ष्यामि यथाश्रुतमरिदमः ।

नाभिसूत्रनिबन्धेन वर्द्धते स दिनेदिने ॥२०॥

ततः स्मृतिं लभे जीवः संपूर्णोऽस्मिञ्छरीरके ।

सुखं दुःखं विजानाति निद्रास्यन् पुरा कृतम् ॥२१॥

फिर दो मास में श्रोत्र—शिर—स्वन्ध—पृष्ठ वक्ष और उदर सब क्रम से उत्पन्न हो जाते हैं ॥१३॥ फिर तीन मास में द्रव्याकुर सन्धियोंके सहित उत्पन्न हो जाते हैं । चार मासों में यथाक्रम अगुलियाँ उत्पन्न होती हैं ॥१४॥ पाँच मास में मुख—नासिका—दो कान, दाँतों की पक्ति—गुह्य और नख उत्पन्न हो जाते हैं ॥१५॥ छिद्र के सहित कान छै मास के अन्दर पैदा होते हैं । पायु (गुदा) मेढू (मूत्रेन्द्रिय) नाभि भी उत्पन्न हो जाती हैं ॥१६॥ जो इस शरीर में सन्धियाँ हाती हैं वे सात मासों में बन जाया करती हैं और अग तथा प्रत्यग से सम्पूर्ण तथा केशो स समन्वित विभक्त अवयवों वाला पूर्ण पुष्ट आठ मास में उदरस्थ शिशु हो जाया करता है और फिर वह पचारमक समायुक्त होकर गम में स्थित रहा करता है जो कि पूर्ण-तया परिपक्व होता है ॥१७॥ छै प्रकार के माता के आहार के धीरे से वह बड़ा स्थित रहता है । हे भरतपति ! प्रतिदिन रस के द्वारा बालक वृद्धि का प्राप्त होता है ॥१८॥ हे अरि दय ! यह सब मैं तुमको यथाश्रुत बतला दूँगा । नाभि के सूत्र (नाल) के निबन्ध से वह दिनों दिन बड़ा करता है ॥२०॥ इसके पश्चात् वह जीवात्मनः स्मृति की प्राप्ति किया करता है क्योंकि उसका यह शरीर साग सम्पूर्ण हो जाता है । उस समय वह सुख और दुःख को भी जानने लगता है और पुराकृत निद्रा स्वप्न का भी उसे ज्ञान हो जाता है ॥२१॥

मृतश्चाह पुनर्जातो जातश्चाह पुनर्मृत ।

नानायोनि सहस्राणि मया दृष्टानि तानि वै ॥२२॥

अधुना जातमात्रोऽह प्राप्तसंस्कार एव च ।

एतच्छ्रेयं करिष्यामि येन गर्भे न सश्रय ॥२३॥

गर्भस्थश्चित्तये देवमह गर्भाद्विनि सृत ।

अध्येष्ये चतुरो वेदान्ससारविनिवर्तकान् ॥२४॥

एव स गर्भदुखेन महता परिपीडित ।

जीव कर्मवशा दास्ते मोक्षोपायं विचिंतयन् ॥२५॥

यथा गिरिवराक्रांत कश्चिद्दुःखेन तिष्ठति ।

तथा जरायुणा देही दुःखे तिष्ठति चेष्टित ॥२६॥

पतितः सागरे यद्वद्दुःखैरास्ते समाकुलः ।

गर्भोदकेन सिक्तांगस्तथास्ते व्याकुलः पुमान् ॥२७॥

लोहकुम्भे यथा न्यस्तः पच्यते कश्चिदग्निना ।

तथा स पच्यते जंतुर्गर्भस्थः पीडितोदरः ॥२८॥

उसे उम दशा में यह ज्ञान भी हो जाता है कि मैं मर गया था और फिर मैंने जन्म धारण किया था और उत्पन्न होकर भी फिर मेरी मृत्यु हो गई थी । मैंने इस तरह अनेक प्रकार की सहस्रों योनियों देखी हैं ॥२२॥ इस बार अब मैं उत्पन्न होते ही संस्कार प्राप्त करके ही ऐसा कल्याण के मार्ग का कार्य करूंगा कि जिससे फिर मुझे गर्भवास का कष्ट न भोगना पड़े ॥२३॥ इस तरह जीवात्मा गर्भ में स्थित होता हुआ देव का चिन्तन करना है कि मैं इस घोर गर्भ से निकल कर संसार से विशेष निवृत्ति कराने वाले चारों वेदों का अध्ययन करूंगा ॥२४॥ इस तरह से महान् गर्भ के दुःख से परिपीड़ित जीव कर्म यज्ञ से मोक्ष-प्राप्ति के उपायों को सोचता हुआ रहा करता है ॥२५॥ जैसे कोई गिरिवर से आक्रान्त हुआ बड़े दुःख से स्थित रहा करता है उगी तरह यह देही जरायु से चेटित होता हुआ दुःख में स्थिति रखता है ॥२६॥ नागर में पतित जिन दुःखों से समानुल्ल अर्थात् पूरा बेचैन होता है उसी तरह मे गर्भोदक से सिक्त अंगों वाला पुरुष अत्यन्त व्याकुल रहा करता है ॥२७॥ जैसे कोई लोहे के षट् में रखा हुआ अग्नि के द्वारा पकाया जाता हो ठीक उसी भाँति गर्भ में स्थित जन्तु पीडितोदर होकर बड़ा पकाया जाया करता है ॥२८॥



गर्भात्कोटिगुण दुःख योनियनप्रपीडनात् ।

समूर्च्छितस्य जायेत जायमानस्य देहिनः ॥३२॥

शरवत्पीड्यमानस्य यत्रैणैव समततः ।

शिरसि ताड्यमानस्य पापमुद्गरकेण च ॥३३॥

गर्भान्निष्क्रम्यमाणस्य प्रबलैः सूतिमारुतैः ।

जायते सुमहद्दुःख परित्राणमतिदत्त ॥३४॥

यत्रेण पीडिता यद्वान्नि.सरा. स्युस्तिलेक्षवः ।

तथा शरीर निःसार योनियनप्रपीडितम् ॥३५॥

आग्नि वर्ण वाली सुइयो से निरन्तर विभिन्न होने वाले अर्थात् छिदे हुए जो जो दुःख होता है उससे आठ गुना दुःख गर्भ में रहने की हालत में जीव को हुआ करता है ॥३२॥ गर्भ के आवास से पर बंध देने वाला दूसरा कोई भी कहीं भी आवास नहीं है । हे राजन् ! यह गर्भ का निवास देहधारियों को अत्यधिक दुःख देने वाला—सुघोर और अत्यन्त सकट से युक्त होता है ॥३०॥ इस तरह से यह गर्भ का दुःख जो प्राणियों को हुआ करता है वह मैंने कह दिया है । यह चर और स्थिर सभी को आत्म गर्भ के अनुसार हुआ करता है ॥३१॥ गर्भ के निवास में जो दुःख होता है उससे बरोड गुना दुःख तब होता है जब वह उत्पन्न होता है और उस समय योनि के यन्त्र से उसे बाहिर निकलने में प्रपीडित होता है । स्वर्णकार की तन्त्री से तार की खिचाई की भाँति उसके शरीर को बड़ी पीडा होती है और जायमान देही मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है । उस समय शर की भाँति वह पीडित उस यन्त्र से निकलने में हुआ करता है । ऐसी पीडा होती है मानो उसके शिर में पापखपा मुद्गर से ताडन किया गया हो ॥३१-३३॥ जब वह जीव गर्भ से निकलने वाला होता है तो उस समय में प्रसव की वायु से जो कि अत्यन्त प्रबल होती है उसको मद्गान् दुःख होता है और अपने परित्राण के लिये बुद्धि किया करता है ॥३४॥ यन्त्र के द्वारा जैसे तिल और ईख निस्तार होकर निकला करते हैं उसी तरह से जीवात्मा का यह शरीर भी एक प्रकार से सार रहित-ना योनि-यन्त्र से प्रपीडित होकर हो जाता है ॥३५॥

अहो मोहस्य माहात्म्य येन व्यामोहित जगत् ।  
 जिघ्रन्पश्यन्स्वक दोष कायस्य न विरज्यते ॥३६॥  
 एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादिशुचि ध्रुवम् ।  
 त्वङ्मात्रसारं नि सारं कदलीसारसन्निभम् ॥३७॥  
 गभस्थस्य स्मृतिर्यामीत्सा जातस्य प्रणश्यति ।  
 समूर्च्छितस्य दुःखेन योनियत्र प्रपीडनात् ॥३८॥  
 वायुना चास्य मोहसङ्गेन देहिनः ।  
 स्पृष्टमात्रेण घोरेण ज्वरं समुपशायते ॥३९॥  
 तेन ज्वरेण महता महामोहं प्रजायते ।  
 समूढस्य स्मृतिभ्रंशं शीघ्रं सजायते पुनः ॥४०॥  
 स्मृतिभ्रंशात् तस्येह पूर्वकर्मवशेन च ।  
 रतिं सजायते तूष्णं जतोस्तस्यैव जन्मनि ॥४१॥  
 रक्तो मूढस्य लोकोऽयमकार्यं सप्रवर्तते ।  
 न चात्मानं विजानाति न परं विन्दते च स ॥४२॥

अहो ! बड़ा आश्चर्य है कि मोह का बँगा अद्भुत यह माहात्म्य है कि जिसने इस समस्त जगत् को अपने प्रभाव से व्यामोहित बना रक्खा है । अपने दाप को सूचना हुआ और देखता हुआ भी जो कि इस शरीर का होता है फिर भी इनसे विरक्त नहीं होता है ॥३६॥ इस प्रकार से यह शरीर स्वभाव से ही निश्चय ही अपरित्र है । स्वचा मात्र ही इसका स्वर है और बदवी सार के समान निस्सार होना है ॥३७॥ गर्भ में स्थित रहते हुए जो इसका स्मृति होती है वह जैसे ही यह उदग्न होना है तब विष्ट हो जाती है क्योंकि यानियत्र के प्रकृत पीडन से जो दुःख का भार होना है उसमें मूर्च्छा आता है कारण ही यह तब भुन जाया करता है ॥३८॥ मोह नाम यात्रा बाहिर की वायु से जो कि अत्यन्त घोर है स्पष्ट होना है पर प्रसार का उदर उदग्न हो जाता है ॥३९॥ उम महान् उदर में महामोह हो जाया करता है । जब महामोह में ममूढ़ता आता है तो उस ममूढ़ की स्मृति का नाश हो जाता है ॥४०॥ स्मृति जो कि गर्भ की दगा में थी जब छूट जाती है तो

उससे उसको यहा पूर्वजन्म मे किये हुए कर्मों से बशीभूत होकर फिर उस जन्तु को उस जन्म मे ही शीघ्र रति उत्पन्न हो जाया करती है ॥४१॥ यह लोक तो रागानुरक्त होता ही है फिर इस मूढ को यह अवायों मे प्रवृत्ति करा देता है । यह फिर अपने आपके स्वरूप को नहीं पहिचानता है और न यह पर को ही प्राप्त कर पाता है ॥४२॥

न श्रूयते पर श्रेयः सति चक्षुषि नेक्षते ।

समे पथि शनंगच्छन्स्खलतीव पदेपदे ॥४३

सत्या बुद्धौ न जानाति बोध्यमानो बुधैरपि ।

ससारे विरूयते तेन रागलोभवशानुगः ॥४४

गर्भस्मृतेरभावेन शास्त्रमुक्तं महर्षिभिः ।

तद्दुःखमथनार्थाय स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् ॥४५

ये सत्यस्मिन्परे जाने सर्वकामार्थसाधके ।

न कुर्वन्त्यामनः श्रेयस्तदत्र महद्दुःखम् ॥४६

अव्यक्तैर्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्ये दुःखं महत्पुनः ।

इच्छन्तपि न शक्नोति कर्तुं वक्तुं च सत्क्रियाम् ॥४७

दत्तोत्थाने महद्दुःखं मौलेन व्याधिना तथा ।

बालरोगैश्च विविधैः पीडा बालग्रहैरपि ॥४८

तृड्बुभुक्षापरीतागः कश्चित्तिष्ठति रारटन् ।

विष्णूनभक्षणमपि मोहाद्बालः समाचरेत् ॥४९

वह ऐसा मूढ मोह मे अन्धा तथा बधिर हो जाता है कि परम श्रेय की बात को सुनता ही नहीं है और नेत्रों के होने हुए भी वह कुछ भी नहीं देखा करता है । सम मार्ग मे भी धीरे-धीरे जाता हुआ पेंड पेंड पर गिरता रहता रहता है ॥४३॥ बुद्धि के होने पर भी बड़े-बड़े विद्वानों के के द्वारा बोध्यमान होता हुआ भी नहीं समझ पाता है । इसी कारण से फिर वह इस ससार मे राग और लोभ के बशीभूत होता हुआ वनेश पाया करता है ॥४४॥ गर्भ में जो स्मृति रहती है उसका अभाव हो जाने के ही कारण से महर्षि महानुभावों ने शास्त्र का बचन किया है जो

उस दुःख के मथन करने के लिये ही है और स्वर्ग तथा दोनों का प्रदान करने वाला भी होता है ॥४५॥ इस परज्ञान के होने पर भी जो समस्त काम और अर्थों का साधक होता है जो इस दुःखपूर्ण ससार में मोह के वशी भूत हैं और अपनी आत्मा के श्रेय का सम्पादन नहीं किया करते हैं यही एक यहाँ बड़ी अद्भुत बात है ॥४६॥ इन्द्रियो की वृत्ति अव्यक्त होने के कारण बचपन में महान् दुःख तो है किन्तु उसे भोगने पर भी हटाने की इच्छा रखता हुआ भी सक्रिया के बहने तथा उसे करने की सामर्थ्य नहीं रखता है ॥४७॥ दातों के निकलने में बड़ा दुःख होता है शिरकी व्याधि से कष्ट असह्य भोगता है । अनक प्रकार के अग्न्य बहुत-से बाल रोगों से जो नि बाल ग्रह होते हैं पीड़ा सहन करता है । भूख तथा प्यास से परीत अग्न वाला कोई रटन करता हुआ स्थित रहता है । मोह से बालक विष्टा और भूत्र का भक्षण भी कर लेता है ॥४८-४९॥

कौमारे कर्णवेधेन मातापित्रोश्च ताडनात् ।

अक्षराध्ययनात्पु सा दुःख स्याद्गुरुशासनात् ॥५०॥

प्रसन्नोद्विग्नवृत्तिश्च कामरागप्रपीडनात् ।

रोगोद्धतस्य सततं क्रुत सौम्यं च यौवने ॥५१॥

ईर्ष्या च महददुःख मोहाद्रकास्य जायते ।

नेत्रस्य कृपितस्यैव रागो दुःखाय केवलम् ॥५२॥

न रात्रौ विदते निद्रा कोपाग्निपरिपीडित ।

दिवा वापि क्रुत सौम्यमर्थोपार्जनचित्तया ॥५३॥

जराभिभूत पुरप. पत्नीपुत्रादि बाधवै. ।

अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यैश्च परिभूयते ॥५४॥

धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च न जरीयत ।

शक्त साधयितुं तस्माच्छरीरमिदमात्मनः ॥५५॥

यानपित्तकफादीनां वैषम्यं व्याधिरुच्यते ।

तस्मात्साधिमयज्ञेयं शरीरमिदमात्मनः ॥५६॥

जब कौमार अवस्था आ जाती है तो बर्गों के न तथा माता पिता के तारन से और ज्ञान में अशक्तों के अध्ययन से एवं गुरु के ज्ञान से

भी पुरुषों को दुःख होता है ॥५०॥ प्रमत्त इन्द्रियो की वृत्ति वाला है किन्तु काम राग के प्रपीडन से सतत रोगोद्धत पुरुष को यौवन में भी सुख कहा है ? अर्थात् कोई सुख युवावस्था में भी नहीं होता है ॥५१॥ मोह से रक्त को ईर्ष्या होने से महान् दुःख हुआ करता है । कुपित नेत्र का राग भी केवल दुःख के लिये ही होता है ॥५२॥ कोप की अग्नि से पीडित पुरुष रात्रि में भी निद्रा प्राप्त नहीं किया करता है और दिन में भी उसे धन के उपाजर्जन की बराबर चिन्ता रहने से सुख कहा है ? अर्थात् धनार्जन की सतत चिन्ता बनी रहने के कारण सुख नहीं होता है ॥५३॥ जब मनुष्य वृद्धावस्था से घिर जाता है तो परनी-पुत्र आदि बाधनों से तथा दुराचार वाले भृत्यों से अशक्त होने के कारण परिमव (तिरस्कार) को प्राप्त होता है ॥५४॥ बुढ़ा पुरुष धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की साधना करने में अशक्त हो जाता है । इससे यह शरीर ऐसा है जिससे आत्म-कल्याण नहीं हो पाता है ॥५५॥ वात कफ और पित्त आदि की जो विषमता है वही व्याधि के नाम से कही जाती है । इस लिये अपना यह शरीर व्याधिमय ही जानना चाहिए ॥५६॥

वाताद्यव्यतिरिक्तत्वाद्व्याधीना पञ्जरस्य च ।

रोगैर्नानाविधैर्यानि देहदुःखान्यनेकधा ।

तानि च स्वात्मवेद्यानि किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥५७॥

एकोत्तर मृत्युशतमृत्स्मिन् देहे प्रतिष्ठितम् ।

तत्रैक कालसयुक्त शेषाश्चागन्तव्यं स्मृता ॥५८॥

येत्विहागतव्यं प्रोक्तास्ते प्रशाम्यति भेषजं ।

जपहोमप्रदानंश्च कालमृत्युर्न शाम्यति ॥५९॥

यदि चापि न मृत्युः स्याद्विषमद्यादशकित ।

न सति पुरुषे तस्मादपमृत्युविभीतयः ॥६०॥

विविधा व्याधयः शस्त्र सर्पाद्या प्राणिनस्तथा ।

विपाणि जगमाद्यानि मृत्योर्द्वाराणि देहिनाम् ॥६१॥

पीडित सर्वरोगाद्यैरपि धन्वन्तरि स्वयम् ।

स्वस्थीकृतुं न शक्नोति प्राप्तमृत्युं च देहिनाम् ॥६२॥

नोपध न तपो दान न मन्त्रा न च बाधवाः ।

शक्नुवति परित्रातुं नर कालेन पीडितम् ॥६३॥

वासाद्य व्यतिरिक्तत्व होने से व्याधियों के पञ्जर के नाना प्रकार के रोगों से जो देह दुःख हैं वे अनेक प्रकार के होते हैं और वे अपनी ही आत्मा के द्वारा जानने एवं अनुभव करने के योग्य होते हैं । मैं अन्य क्या बताऊँ ॥५७॥ इस देह में एक सौ एक मृत्यु प्रतिष्ठित हैं । उनमें एक काल से संयुक्त होता है और शेष आगन्तुक होते हैं । ऐसा कहा गया है ॥५८॥ जो आगन्तुक मृत्यु होते हैं वे भेषजों के द्वारा प्रशान्त हो जाया करते हैं और जप—होम तथा दान आदि से भी उनका प्रशमन होता है किन्तु जो काल मृत्यु होता है वह किसी भी प्रकार से शान्त नहीं होता है ॥५९॥ यदि काल मृत्यु नहीं है तो अशक्ति होकर विष भी खालेवे उससे अपमृत्यु के भय पुरुष में नहीं होते हैं ॥६०॥ देह धारियों की मृत्यु के अनेक द्वार होते हैं—बहुत प्रकार ॥ रोग—शस्त्र—सर्प आदि विषैले प्राणीवर्ग—विष—जगम आदि ये सभी मृत्यु प्राप्त होने के साधन हैं ॥६१॥ समस्त रोगों से पीडित देहधारी को जिसको कि काल मृत्यु प्राप्त हो गया हो धन्वन्तरि स्वयं भी स्वस्थ नहीं कर सकते हैं ॥६२॥ बाल के द्वारा पीडित पुरुष की रक्षा करने की समर्थ्य औपध—तप—दान—मन्त्र और बाधव किसी में भी नहीं होती है ॥६३॥

रसायनतपोजप्यर्थोगसिद्धं महात्मभिः ।

कालमृत्युरपि प्राज्ञैस्तीर्यते नालसंघ्नं रैः ॥६४॥

नास्ति मृत्युसम दुःख नास्ति मृत्युसम भयम् ।

नास्ति मृत्युसमस्त्रासः सर्वेषामेव देहिनाम् ॥६५॥

सद्भार्यापुत्र मित्राणि राज्यं श्वयंघनानि च ।

अवधानि च वंराणि मृत्युः सर्वाणि धृन्तति ॥६६॥

हे जनाः किं न पश्यध्व सहस्रस्यापि मध्यतः ।

जनाः शतायुषः पञ्चभवति न भवति च ॥६७॥

अशीतिव्य विपद्यन्ते वेचित्सप्ततिका नराः ।

परमायुष स्थित पष्टिस्तर्च्य वानिश्चित पुनः ॥६८॥

यस्य यावद्भवेदायुर्देहिना पूर्वकर्मभिः ।

तस्यार्द्धमायुषो रात्रिर्हरते मृत्युरूपिणी ॥६८॥

बालभावेन मोहेन वार्द्धक्ये जरया तथा ।

वर्षाणां विंशतिर्याति धर्मकामार्थवर्जिता ॥७०॥

रसायन—तप—जपो के द्वारा योग सिद्ध महात्माओं से जो परम प्राज्ञ हैं कालमृत्यु का भी तरण किया जाता है किन्तु आलस्य युक्त नरों के द्वारा नहीं किया जाता है ॥६४॥ इस ससार में मृत्यु के समान कोई दुःख नहीं है और मृत्यु के तुल्य अन्य कोई भय भी नहीं होता है । मृत्यु के बराबर कोई त्रास भी समस्त देह धारियों को अन्य कोई नहीं हुआ करता है ॥६५॥ सुन्दर सती भार्या—पुत्र—मित्र राज्य—वैभव—ऐश्वर्य—धन और अवलम्ब वर इन सब को एक मृत्यु ही ऐसा है जो काट दिया करता है ॥६६॥ हे जनो ! क्या तुम नहीं देखा करते हो ? हजारों मनुष्यों के बीच में सौ वर्ष की आयु वाले पुरुष पाँच ही होते हैं और नहीं भी हुआ करते हैं ॥६७॥ कुछ तो अस्सी वर्ष की आयु में ही विपन्न हो जाया करते हैं, कुछ मत्तर वर्ष की उम्र में समाप्त होजाते हैं । आजकल तो परमायु साठ वर्ष की ही मानी जाती है । वह भी कोई निश्चित नहीं है ॥६८॥ जिस पुरुष की देहधारियों के पूर्व कर्मों के अनुसार जितनी आयु होती है उस आयु का आधा भाग तो मृत्यु का बाली रात्रि ही हरण कर लिया करती है ॥६९॥ बाल भाव से, मोह से और बुढ़ापे में वृद्धावस्था से वर्षों के बीस तो वैसे ही धर्मकाम और अर्थ से वर्जित हो जाते हैं अर्थात् बीस वर्ष तक वह कुछ धर्मदि का साधन नहीं कर पाता है ॥७०॥

आगतुकर्मभयं पुंसां व्याधिशोकैरनेकधा ।

भक्ष्यतेऽर्द्धं च तत्रापि यच्छेष तच्च जीवति ॥७१॥

जीवितात च मरण महाघोरमवाप्नुयात् ।

जायते जन्मकोटीषु मृत कर्मघशात्पुनः ॥७२॥

देहभेदेन यः पुंसां वियोगः कर्मसक्षयात् ।

मरणं तद्विनिर्दिष्टं नान्यथा परमार्थतः ॥७३॥

महातपप्रविष्टस्य च्छिद्यमानेषु ममसु ।

यददुःख मरणे जतोऽतस्येहोपमा क्वचित् ॥७४॥

हा तात मात कातेति रुद्रन्नेव हि दुःखित ।

मडूक इव सर्पेण ग्रस्यते युत्मुना जन ॥७५॥

बाधवै सपरिष्वक्त प्रियैः स परिवारित ।

निश्चसन्दीर्घमुष्ण च मुखेन परिशुष्यति ॥७६॥

मन्दते चैव खट्वाया परिवर्तन्मुहुर्मुहुः ।

समूढ क्षिपतेऽत्यथ हस्तपादावितस्तत ॥७७॥

आग तुक भयो स जोकि पुरुषा के व्याधि और शोक स्वरूप हुआ करते हैं और अनेक होते हैं आधा भाग आयु का खालिया जाता है उसमे भी जो कुछ शप रहता है उसनी आयु तक वह जीवित रहा करता है ॥७१॥ जीवन के अन्त मे यह महान् घोर कष्ट को प्राप्त किया करता है और मृत होकर भी पुन कर्मों के वश यह करोडो जन्मों को धारण कर उत्पन्न हुआ करता है ॥७२॥ जो देह के भद होने से पुरुषों का कर्मों के सक्षप होने वियोग होता है उसको ही मरण इस नाम से कहा जाता है अथवा परमाथ म यह कुछ भी नहीं है क्योंकि आत्मा तो नित्य है उसकी मृत्यु कभी नहीं होती है ॥७३॥ महातप मे प्रविष्ट पुरुष के छिद्यमान मर्मों मे जन्तु को जो दुःख मरण मे होता है उसकी यहा कही भी कोई उपमा नहीं है अर्थात् समानता बनाने वाली वस्तु नहीं है ॥७४॥ हा तात । हा मात । हा का त । इस प्रकार से अत्यन्त दुःखित हुाकर रुदन करता हुआ जन्तु मँढक को राप की भाँति मृत्यु क द्वारा ग्रस लिया जाता है ॥७५॥ बाधवों के द्वारा सपरिष्वक्त होता हुआ और प्रियजनो के द्वारा चारो ओर से घरा हुआ दीप गम द्वास लता हुआ मुख से परिशुष्यमाण हो जाता है ॥७६॥ खाट मे पड़ा हुआ मरने वाला प्राणो रोता है और बार बार करवटें बदना करता है । यह समूढ अपने हाथ और पैरों को बहुत अधिक इधर उधर उस समय मे फकता रहता है ॥७७॥



खट्वांतो काक्षते भूमि भूमेः खट्वां पुनर्महीम् ।  
 विवशस्त्यक्तलज्जश्च मूत्रविष्ठानुलेपितः ॥७८  
 याचमानश्च सलिलं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ।  
 चित्तयानश्च वित्तानि कस्यंतानि मृते मयि ॥७९  
 पश्चावटान्खन्यमानः कालपाशेन कषितः ।  
 म्रियते पश्यतामेव जननां घुघुरस्वनः ॥८०  
 जीवस्तृणजलोकेव देहाद्देह विशेत्कमात् ।  
 संप्राप्योत्तरकालं हि देहं त्यजति पौर्वकम् ॥८१  
 मरणात्प्रार्थनादुःखमधिकं हि विवेकिनः ।  
 क्षणिक मरणाद्दुःखमनन्तं प्रार्थनाकृतम् ॥८२  
 जगता पतिरथित्वाद्विष्णुर्वामनता गतः ।  
 अधिकं कोऽपरस्तस्माद्यो नया स्थितिं लाघवम् ॥८३

कभी खाट से भूमि पर पडने की इच्छा करता है तो फिर भूमि से खाट पर जाकर पडने की चाहना होती है । यह मृत्यु के निकट समय में विवश—सा होकर लज्जा हीन होजाया करता है तथा मूत्र और विष्ठा से भी लियदा हुआ हो जाता है ॥७८॥ कभी पानी की याचना का सकेत किया करता है और निकटतम मृत्यु वाले प्राणी के कण्ठ—ओष्ठ और तालु शुष्क हो जाते हैं । वह यह सोचता रहता है कि मेरे मरजाने पर ये धन के वैभव किसके होंगे ॥७९॥ इस तरह पश्चावटो को खोदता हुआ अर्थात् कान नाक मुख को हाथ से चलाता हुआ जन्तु काल के पाश के द्वारा कषित होजाता है और धुरंटे की ध्वनि कण्ठ से करता हुआ समस्त भूषणों के देखते हुए ही मरजाता है ॥८०॥ यह जीव तृणजलो का की भाँति क्रम से देह से दूसरे देह प्रवेश किया करता है । उत्तर काल को सम्प्राप्त करके पौर्वक देह का त्याग करता है ॥८१॥ विवेकी को मरण से प्रार्थना दुःख अधिक होता है क्योंकि मरण वा दुःख तो क्षणिक ही होता है और प्रार्थना कृत दुःख अनन्त हुआ करता है ॥८२॥ ससार का सर्वेश्वर भी अर्था होने के कारण

भगवान् विष्णु वामनारूप को (वीना) प्राप्त होगया था । उससे अधिक  
अन्य कौन है जो लाघव को प्राप्त नहीं होगा ॥८३॥

ज्ञातं मयेदमधुना मतं भवति यद्गुरु ।

न पर प्रार्थयेद्भूयस्तृष्णा लाघवकारणम् ॥८४॥

आदौ दुःख तथा मध्ये दुःखमते च दारुणम् ।

निसर्गात्सर्वभूतानामिति दुःखपरंपरा ॥८५॥

वर्तमानान्यतीतानि दुःखान्येतानि यानि तु ।

नरा न भावयत्यज्ञा न विरज्यति तेन ते ॥८६॥

अत्याहारान्महद्दुःखमनाहारान्महत्तमम् ।

तुलित जीवित कष्टं मन्येऽप्येवं कुतः सुखम् ॥८७॥

बुभुक्षा सर्वरोगाणा व्याधिः श्रेष्ठतमः स्मृतः ।

स चात्त्रौषधिलेपेन क्षणमात्रं प्रशाम्यति ॥८८॥

क्षुद्रघाधिवेदनातुल्या नि शेषबलकर्तनी ।

तयाभिभूतो म्रियते यथान्यैर्व्याधिभिर्न हि ॥८९॥

तद्रसोपि हि कामाद्वा जिह्वाग्रे परिवर्तते ।

तत्क्षणाद्वाढ्यकालेन कठं प्राप्य निवर्तते ॥९०॥

मैंने अब यह गुरु मत जान लिया है कि पुन दूसरे से प्रार्थना नहीं  
करनी चाहिए क्योंकि यह तृष्णा ही लाघव करने कारण होता है ॥८४॥  
आदि में दुःख, मध्य में दुःख और अन्त में दारुण दुःख होता है । समस्त  
प्राणियों की स्वभाव से ही यह दुःखों की परम्परा होती है ॥८५॥  
वर्तमान—जीते हुए जो ये दुःख हैं उनको अज्ञ नर नहीं ध्यान में रखते  
हैं और इसी कारण से वे विरक्त भी नहीं होते हैं ॥८६॥ अत्यन्त आहार  
से महान दुःख होता है और अनाहार से भी महान् कष्ट होता है ।  
तुलित जीवन भी कष्टमय होजाता है । अतः यह मानते हैं कि सुख कहा  
है अर्थात् किसी प्रकार से भी कही सुख है ही नहीं ॥८७॥ भूख समस्त  
रोगों की श्रेष्ठतम व्याधि है—ऐसा कहा गया है और वह अन्न की  
औषध के लेप से क्षण मात्र के लिये ही प्रशमन को प्राप्त हुआ करती है  
॥८८॥ क्षुधा की व्याधि वेदना के समान होती है । यह पूर्ण बल को

समाप्त कर देने वाली है । इससे अभिभूत प्राणी मर ही जाया करता है जैसा कि अन्य व्याधियों से नहीं होता है ॥८६॥ उसका रस भी अथवा काम से जिह्वा के अग्र भाग में ही परिवर्तित होता है । वह भी क्षण मात्र में बार्द्धकाल से कण्ठ को प्राप्त करके निवृत्त हो जाता है ॥८७॥

इति क्षुब्धाघितप्तानामन्नमौषधवत्स्मृतम् ।  
न तत्सुखाय मन्तव्यं परमार्थेन पठितं ॥८९॥  
मृतोपमो यश्चेक्षेत सर्वकार्यविवर्जितः ।  
तत्रापि च कुतः सौख्यं तमसाच्छादितात्मनः ॥९०॥  
प्रबोधेऽपि कुतः सौख्यं कार्यरूपहृतात्मनः ।  
कृपिगोरक्षवाणिज्यसेवाध्वादिपरिश्रमे ॥९१॥  
प्रातर्मूत्रपुरीषाभ्यां मध्याह्ने तु बुभुक्षया ।  
तृप्ता कामेन बाध्यन्ते जतवोऽपि विनिद्रया ॥९२॥  
अर्थस्योपाजने दुःखमर्जितस्यापि रक्षणे ।  
आये दुःखं व्यये दुःखमर्थेभ्यश्च कुतः सुखम् ॥९३॥  
चौरेभ्यः सलिलादग्नेः स्वजनात्पार्थिवादपि ।  
भयमर्थवता नित्यं मृत्योः प्राणभृतामिव ॥९४॥  
खेयात् पक्षिभिर्मांसं भक्ष्यते श्वापदं भुवि ।  
जले च भक्ष्यते मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वित्तवान् ॥९५॥

इस प्रकार से क्षुधा की व्याधि से तप्त होनेवालों के लिए यह अन्न ही औषध के समान कहा गया है । उसे भी पण्डितों के द्वारा सुख के लिए नहीं मानना चाहिए । जैसा कि परमार्थ रूप से होता है ॥८९॥ समस्त कार्यों से रहित होकर जो एक मृत के समान देखता है वहा पर भी तम से आच्छादित आत्मा वाले को सुख कहा है ? अर्थात् सुख नहीं होता है ॥९०॥ कृपि—गो पालन—वाणिज्य—सेवा और मार्गं गमन आदि परिश्रम के कार्यों से उपहत आत्मा वाले को प्रबोध हो जाने पर भी कहीं भी सुख नहीं होता है ॥९१॥ प्रातः काल में मूत्र और पुरीष से तथा मध्याह्न में भूख से सुख का अभाव होता है ।

यदि काम से तृप्त भी हों तो भी जन्तु विनिद्रा से बाधित होते हैं और उन्हें सुख नहीं होता है ॥६४॥ धन से भी कोई सुख नहीं होता है पहिले तो अर्थ के उपाजन में महान् कष्ट होता है और अजित की रक्षा करने में दुःख होता है । अतः इसके आय और व्यय दोनों में ही दुःख होता है । अर्थ से भी इस संसार में सुख कही भी वस्तुतः नहीं होता है ॥६५॥ अर्थ वालों को चोरों से—सलिल से—अग्नि से—अपने जनों से और राजा से नित्य ही भय रहा करता है जैसे प्राणियों का मृत्यु का भय हुआ करता है । ये सभी धनी के धन के प्राप्त करने वाले हुआ करते हैं ॥६६॥ आकाश में गये हुए के मांस का पक्षियों के द्वारा भक्षण किया जाता है । भूमि में व्यापकों के द्वारा उसका मांस खाया जाता है जल में मत्स्यों के द्वारा भक्षण किया जाता है तात्पर्य यह है कि वित्त वाला सभी जगह जाया ही खाया करता है ॥६७॥

विमोहयन्ति सपत्सु तापयन्ति विपत्तिषु ।

लेदयन्त्यर्जनाकाले कदा ह्यर्थाः सुखावहाः ॥६८॥

यथार्थपतिरुद्विग्नो यश्च सर्वार्थनिःस्पृहः ।

यतश्चार्थपतिर्दुःखी सुखी सर्वार्थनिःस्पृहः ॥६९॥

शीतेन दुःखं हेमन्ते ग्रीष्मे तापेन दारुणम् ।

वर्षासु वातवर्षाम्यां कालेऽप्येवं कुतः सुखम् ॥७०॥

विवाहविस्तरे दुःखं तदगमोद्वहने पुनः ।

प्रसवेऽत्यदोषंश्च दुःखं दुःखादिकर्मभिः ॥७१॥

दन्ताक्षिरीगैः पुत्रस्य हा कष्टं किं करोम्यहम् ।

गावो नष्टाः वृषिर्ममना वृषाः बवापि पलायिताः ॥७२॥

अमी प्राघूर्णकाः प्राप्ता भक्त्यन्द्रे च मे गृहे ।

बालापत्या च मे भार्या कः करिष्यति रंघनम् ॥७३॥

प्रदानकाले कन्यायाः कीदृशश्च वरो भवेत् ।

इति चिन्ताभिभूतानां कुतः सौम्यं कुटुम्बिनाम् ॥७४॥

अब सम्पत्ति की गूब वृद्धि होती है तो उस दशा में सम्पत्तिर्हारी तर्फी की विमोहिता कर देती है । शक्ति की दशा में ये नाश किया

करती हैं और अर्जन कर लेने के समय में खेद करती हैं । य अर्थ प्राणी को कब सुखी वह हुए हैं ? अर्थात् कभी भी नहीं होते हैं ॥६८॥ अर्थपति जो होता है वह उद्विग्न रहता है और सदा दुखी ही बना रहता है जो सर्वार्थ से निस्पृह होता है वह सुखी होता है । हेमन्त में शीत से और ग्रीष्म में ताप से दारुण दुःख होता है तथा वर्षा में वात और वर्षा से दुःख है इस तरह किसी भी काल में सुख नहीं है । विवाह के विस्तर में दुःख तथा उसके गम के उद्वह्न में और प्रसव में दुःख होता है । सतान के द्वारा दुःखादि कर्मों से दुःख होना है । ग्राहस्थ में दात और नेत्रों के रोगों से पुत्र को कष्ट है हाय क्या करूँ ? गर्भे नष्ट होगई—कृपि मारी गई है, वृष कहीं चले गये हैं—ये मेहमान आगये हैं मरे गृह में बच्चों वाली स्त्री है कौन इनके लिये रक्षण करेगा । ऐसी अनेक चिन्ताओं का दुःख होता है । कया व प्रदान काल में कर कैसा होना चाहिए—इस प्रकार की चिन्ताओं से अभिभूत कुटुम्बियों को सुख कभी नहीं होता है ॥६९॥ १०४॥

कुटुर्वाचिताकुलितस्य पुंस श्रुतं च शीलं च गुणाश्च सर्वे ।  
अपक्वकुम्भे निहिता इवाप प्रयातिदेहेनसमं विनाशम् ॥१०५॥  
राज्येपि च महद्दुःखं सधिविग्रहचिन्तया ।  
पद्मादपि भयं यत्र तत्र सौम्यं हि कीदृशम् ॥१०६॥  
सजातीयाद्वधं प्राप्य सर्वेषामिव देहिनाम् ।  
एकद्रव्याभिलाषित्वाच्छुनामिव परस्परम् ॥१०७॥  
नाप्रधृष्यन्त्येव कश्चिन्नृपः दयानोस्ति भूतने ।  
निखिलं यस्तिरस्कृत्य सुखं तिष्ठति निभयः ॥१०८॥  
आजन्मनः प्रभृति दुःखमयं शरीरं  
वर्मात्मकं तव मया कथितं नरेन्द्र ।  
दानोपवासार्चयमंश्च कृतंस्तदव  
सर्वोपभागगुणभास्वतीह पुंसाम् ॥१०९॥

कुटुम्ब की चिन्ता में आतुरित पुरुष व श्रुत शील और समस्त गुण वच्चे पडे में रक्ष्य हुए पानों की क्षान्ति देह व साथ ही विनाश को

इस अध्याय में अधर्म पाप भेदों का वर्णन किया जाता है । श्रीकृष्ण ने कहा—पुरुषों का अधर्म कर्म अर्थात् नीच कर्म ही अधर्म से भी अधर्म-पतन होता है । नरकों के समुद्र में जो महान् धोर होते हैं यातना पाना ही पाप कहा जाता है ॥१॥ अधर्म के भेद चित्त वृत्ति के प्रति-प्रभेद से जानने के योग्य होते हैं । स्थूल सूक्ष्म और सुसूक्ष्म अनेक प्रकार के करोड़ों ही भेद होते हैं ॥२॥ उनमें जो पापों के समूह स्थूल होते हैं वे नरक प्राप्त करने के हेतु हुआ करते हैं । उन्हें अब संक्षेप से कहा जाता है । वे मन वाणी और शरीर के साधन स्वरूप होते हैं ॥३॥ पराई स्त्रियों में सक्त्य करना—चित्त से अनिष्ट का चिन्तन करना—न करने योग्य कार्य में अभिनिवेश यह चार प्रकार का मानस कर्म होता है ॥४॥ अनिष्टार्थ अर्थात् सम्बन्ध रहित प्रत्याप करना—असत्य बोलना—अप्रिय वचन और दूसरों के अपवाद का पशुन्य अर्थात् दूसरों की बुराई करना यह चार तरह का वाचिक कर्म होता है ॥५॥ जो भक्षण करने के अयोग्य वस्तु है उनका भक्षण करना—हिंसा करना—मिथ्या काम का सेवन करना और दूसरों की धन सम्पत्ति का लूट लेना यह चार प्रकार का कायिक कर्म होता है ॥६॥

ये द्विपन्ति महादेव ससाराण्वतारणम् ।

समस्तपापकोपेतास्ते यान्ति नरवाग्निपु ॥७॥

ब्रह्मघ्नश्च सुराहश्च स्नेही च गुरतल्पग ।

महापातकिनश्च ते तत्ससर्गा च पचम ॥८॥

क्रोधाद्वेपाक्तयात्लोमाद्ब्राह्मण विशसति ये ।

प्राणातिको महाशोषो ब्रह्मघ्नास्ते प्रवीतिता ॥९॥

ब्राह्मण च समाहूय याचमानमन्निश्चनम् ।

पश्चाद्वास्तीति तं ब्रूयात्स चैव ब्रह्महा स्मृत ॥१०॥

यस्तु विद्याभिमानेन नित्यं जयति यं द्विजान् ।

समासीनं गभामध्यं ब्रह्महा सोऽपि वीनित ॥११॥

मिथ्यागुणं मयात्मानं नयत्युत्तरपंथं यत्नात् ।

गुरुणा च विन्द्या यं स चैव ब्रह्महा स्मृत ॥१२॥

धुतृष्णसतप्तदेहाना द्विजाना भोक्तुमिच्छताम् ।

समाचरति यो विघ्न तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥१३॥

जो पुरुष इस ससार रूपी सागर से तारण करने वाले महादेव हैं उनसे द्वेष किया करते हैं वे सब प्रकार के पातको से युक्त नरको की अग्नियो में जाकर गिरा करते हैं ॥७॥ ब्राह्मण का हनन करने वाला—सुरा का पान करने वाला—चोरी करने वाला और गुरु पत्नी से प्रसंग करने वाला ये चार महापातकी होते हैं और इनका ससर्ग करने वाला पाँचवाँ भी महापातकी माना जाता है ॥८॥ क्रोध से—द्वेष से और लोभ से जो ब्राह्मण का विशसन (ताडन) किया करते हैं प्राणात्मिक महान् दोष होता है वे सब ब्रह्मघ्न कहे गये हैं ॥९॥ ब्राह्मण को मुला कर जो अकिञ्चन और याचना करने वाला हो पीछे उससे यह कह देते हैं कि देने को कुछ भी नहीं है वह ऐसा कहने वाला भी ब्राह्मण कहा गया है ॥१०॥ जो कोई अपने विद्या के अभिमान से नित्य ही ब्राह्मणों को पराजित किया करता है और सभा के मध्य में बैठकर ऐसा करता है वह भी ब्रह्म अर्थात् ब्राह्मण का हनन करने वाला ही कहा गया है ॥११॥ मिथ्या गुणों के द्वारा अपने आप को जो बलपूर्वक उत्कृष्टता दिया करता है और जो गुरुजनों के विरुद्ध रहता है वह पुरुष भी ब्रह्म घाताया गया है ॥१२॥ भूख प्यास से तप्त देहो वाले—ब्राह्मणों को खिलान की जो इच्छा करने वाले हो उस उनके काय में जो विघ्न डाल देता है उसे भी ब्रह्मघातक कहत हैं ॥१३॥

पिशुन सर्वलोकाना छिद्रान्वेषणतत्पर ।

उद्वेगजनन क्रूर स चैव ब्रह्महा स्मृत ॥१४॥

गवा तृष्णामिभूताना जलाथमुपसपताम् ।

समाचरति यो विघ्न स चैव ब्रह्महा स्मृत ॥१५॥

परदोषमभिजाय नृपवर्णं करोति य ।

पापीयान्पिशुन धुद्र स चैव ब्रह्महा स्मृत ॥१६॥

देवद्विजगवा भूमि पूर्वमुक्ता हरेत्तु यः ।  
 प्रनष्टामपि कालेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥१७  
 द्विजवित्तापहरणे न्यायतः समुपाजिते ।  
 ब्रह्महत्यासम ज्ञेय पातक नात्र सशयः ॥१८  
 अग्निहोत्रपरित्यागो यस्तु याज्ञिककर्मणाम् ।  
 मातापितृपरित्यागः कूटसाक्ष्य सुहृद्वधः ॥१९  
 गवा मार्गे बने चाग्नि पुरे ग्रामे च दीपययेत् ।  
 इपि पापनि घोराणि सुरापनसमानि तु ॥२०

समस्त लोगो की बुराई करने वाला—लोगो के छिद्रो (छिपी हुई बुराइयो) की खोज-बीन करने के कार्य में परायण रहने वाला—लोगो को उद्वेग उत्पन्न कर देने वाला—क्रूर (निंद्यी) भी पुरुष ब्रह्महा कहा गया है ॥१४॥ प्यास से बेचैन जल के लिये जाने वाली गौओ के जल-पान करने के कार्य में जो विघ्न उत्पन्न कर देता है अर्थात् किसी प्रकार को रुकावट डालता है वह व्यक्ति भी ब्रह्मा बताया गया है ॥१५॥ दूसरे के दोष को भली-भाँति न जान कर ही जो राजा के कानों में दोष बता कर डाल देता है वह बड़ा पापी पिशुन और क्षुद्र है तथा वह भी ब्रह्मा कहा गया है ॥१६॥ ब्राह्मण—देवता और गौ इनकी पूर्व भोग में लाई हुई भूमि का जो हरण कर लेता है चाहे वह समय से प्रनष्ट भी हो गई हो उसको भी ब्राह्मण का घातक कहते हैं ॥१७॥ जो न्याय से भली-भाँति उपाजित किया गया है ऐसे ब्राह्मण के वित्त का अपहरण करने पर ब्रह्महत्या के तुल्य ही पातक होता है यह जान लेना चाहिए । इसमें तनिक भी सशय नहीं है ॥१८॥ याज्ञिक कर्म करने वालों को अग्नि होत्र का परित्याग कर देना—माता पिता को त्याग देना—झूठी गवाही देना—मित्र का वध कर डालना—गौओ के मार्ग में और बन में अग्नि लगा देना तथा नगर और ग्राम को जला देना इन कर्मों को जो कोई भी करता है ये सब उसके महा घोर पाप होते हैं और सुरा (मदिरा) के पान करने के समान ही माने जाते हैं ॥१९-२०॥



वृषाणा वृषणान्येव पापिष्ठा गालयति ये ।  
 बाहयति च गा वध्या ते महानारका स्मृता ॥२१॥  
 आश्रम समनुप्राप्त क्षुत्तृष्णाश्रमपीडितम् ।  
 येऽतिथि नाभिमन्यते ते वै निरयगामिन ॥२२॥  
 अनाथ विकल दीन बाल वृद्ध कृशातुरम् ।  
 नानुकपति ये मूढास्ते यान्ति निरयाणवम् ॥२३॥  
 अजाविको माहिपक सामुद्रो वृषलीपति ।  
 शूद्रविट्क्षत्रवृत्तिश्च नारकी स्याद्विजाघम ॥२४॥  
 शिल्पिन कारुका वैद्या हेमकारा नटा द्विजा ।  
 कृतकौक्षेय सयुक्तास्तथान्ये नारका स्मृता ॥२५॥  
 यश्चोदितमतिक्रस्य स्वेच्छया वा हरेत्करम् ।  
 नरके तु स पच्येत यश्च दडरुचिभवेत् ॥२६॥  
 उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्वर्गश्च प्रपीड्यते ।  
 यस्य राज्ञ प्रजा रुष्टा पच्यते नरकेषु स ॥२७॥  
 ये द्विजा प्रतिगृह्णन्ति नृपस्यान्यायवर्तिन ।  
 प्रयाति तेषु घोराणि नरकाणि न सशय ॥२८॥

बैलो के वृषणों को जो महापापी गला दिया करते हैं और वध  
 ( वधिया ) गौ को जो बाहित किया करते हैं वे महानारकी होते हैं  
 ऐसा कहा गया है ॥२१॥ जो अपने आश्रम में प्राप्त हो गया और भूख-  
 प्यास और श्रम से पीडित है ऐसे अतिथि का जो पालन नहीं करते  
 हैं अर्थात् सत्कार नहीं करते हैं वे मनुष्य नरक में गामी हुआ  
 करते हैं ॥२२॥ जिसका कोई नाथ अर्थात् देख-रेख करने वाला  
 स्वामी न हो ऐसे अनाथ की-विकल अर्थात् किसी भी कारण से बेचैन  
 को—दीन अर्थात् जिसके पास कुछ भी न हो—बालक—वृद्ध—वृश को  
 अर्थात् अत्यन्त दुबल एवं क्षण और आतुर अर्थात् रोग से पीडित को  
 पाकर जो उन पर दया नहीं करते हैं वे महामूढ़ नरक में समुद्र में  
 जाया करते हैं ॥२३॥ मेढ—बकरी रगने वाला तथा भैंसों का पालन वाला  
 समुद्र की यात्रा करने वाला, वृषणी का पति तथा शूद्र, वैश्य व क्षत्रियो

की वृत्ति को करने वाला अधम द्विज नारकी होता है ॥२४॥ शिल्पी कारक-चंद-हेमकार और नट जो द्विज होते हैं तथा कृत्त कौक्षेय से सयुक्त होते हैं उस प्रकार से अन्य नारकीय कहे गये हैं ॥२५॥ जो किसी भी उदित पर अतिक्रमण करके अपनी इच्छा से नर का हरण किया करता है और जो दण्ड देने की रुचि वाला होता है वह नरक में पच्यमान होता है । अधिकृत उत्कोचो के द्वारा अर्थात् अपना अधिकार कह कर रिश्वत लेने से तथा तस्करो के द्वारा जिस राजा की पीडित (सताई हुई) की जाती है और इन पीडितों से अधिक वह प्रजा रूष्ट रहा करती है वह राजा नरक में जाकर वेदना को सहन किया करता है ॥२७॥ अन्याय से शासन का व्यवहार करने वाले राजा का जो द्विज दान ग्रहण किया करते हैं, वे ब्राह्मण भी घोर नरको में जाकर पचन किया करते हैं—इस में कुछ भी सशय नहीं है ॥२८॥

पारदारिकचौराणा यत्पाप पार्थिवस्य तत् ।

भवेदरक्षतस्तस्माद्धोरस्तस्य प्रतिग्रह ॥२९॥

अचौर चौरवत्पश्येच्चौर वाऽचौररूपवत् ।

अविचार्य नृपस्तस्माद्धातयन्नरकं व्रजेत् ॥३०॥

घृततंलान्नपानानि मधुमाससुरासवम् ।

गुडेक्षुक्षारशकानि दधिमूलफलानि च ॥३१॥

तृण काष्ठ पुष्पपत्रमोपध कास्यभाजनम् ।

उपानच्छत्रशकटभासन शयनावरम् ॥३२॥

ताम्र सीस त्रपु काच शखाद्य च जलोद्भवम् ।

वार्क्षं वा वैणवाद्य वा गृहेषूपस्कराणि च ॥३३॥

ऊर्णाकार्पासकौशेयभगपटोद्भवानि च ।

स्थूलसूक्ष्माणि वस्त्राणि ये च लोभाद्वरति च ॥३४॥

एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च ।

नरकारिणि ध्रुव याति नरा वा नाल सशय ॥३५॥

यद्वा तद्वा परद्रव्यमपि सर्पपमात्रकम् ।

अपहृत्य नरो याति नरकं नाल सशय ॥३६॥

एवमाद्यैर्नरः पापैस्त्रातेः समनतरम् ।

शरीर यातनार्थाय पूर्वाकारमवाप्नुयात् ॥३७॥

पराई स्त्री की चोरी करने वालों को जो पाप होता है वही पाप उस राजा को भी होता है जो रक्षा करने वाले नहीं होते हैं इसलिये उसका जो प्रतिग्रह होता है वह भी महान् घोर हुआ करता है ॥२६॥ जो राजा बिना चोरी करने वाले को चोर की भांति समझता है और जो वास्तव में चोर होता है उसे चोर की भांति नहीं देखता है और इस का ठीक विचार न करके ही घात किया करता है वह राजा नरक का गामी होता है ॥३०॥ धृत-तल-अन्नपान-मधु-मांस-मुरासव-गुड-ईख-क्षार-शाक-दधि-मूल-फल-तृण-काष्ठ-पुष्प-पत्र औषध-काँसे का पान-उपानत्-छत्र-शकट-आसन-शयन के वस्त्र अर्थात् विस्तर-ताम्र-सीसा-त्रयु-काच-शङ्ख आदि जल से उत्पन्न-वाक्ष-वैष्णव आदि-गृह के उपस्कर-ऊन-कपास के बने हुए वस्त्र-कौशेय (रेशमी वस्त्र)-भग पट्ट से उद्भव होने वाले स्थूल और सूक्ष्म वस्त्र-इनको जो लोभ से हरण किया करते हैं ॥३१-३८॥ और इसी प्रकार के अन्य विविध प्रकार के द्रव्यों को हरण करते हैं वे मनुष्य निश्चय ही नरको में जाया करते हैं, इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥३५॥ जो कुछ भी हो वह एक सरसो के बराबर भी पराये द्रव्य को अपहरण करने से मनुष्य नरको को प्राप्त होता है-इसमें विष्कुल भी सशय नहीं है ॥३६॥ इस प्रकार के अन्य पापों से उत्क्रान्ति के अनन्तर मनुष्य यातना भोगने के लिये ही पहिले आकार वाले शरीर को प्राप्त किया करता है ॥३७॥

यमलोक व्रजेत्तेन शरीरेण यमाज्ञया ।

यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमान सुदु खित. ॥३८॥

तिर्यङ्मानुपदेहानामघर्षेन्निरतात्मनाम् ।

धमराज स्मृतः शास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः ॥३९॥

विनयाचारयुक्ताना प्रमादात्खलितात्मनाम् ।

प्रार्थिञ्चतैर्गुरु शास्ता न च तैर्दृश्यते यमः ॥४०॥

पारदारिकचौराणामन्यायव्यवहारिणाम् ।

नृपतिः शासकस्तेषां प्रच्छन्नानां च धर्मराट् ॥४१॥

तस्मात्कृत्स्नस्य पापस्य प्रायश्चित्तं भूमाचरेत् ।

नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि ॥४२॥

यः करोति स्वयं कर्म कारयेद्वापि मोदयेत् ।

कायेन मनसा वाचा तस्य चाधोगतिः फलम् ॥४३॥

इति संक्षेपतः प्रोक्ताः पापभेदाः ससाधनाः ।

कथ्यते गतयश्चित्रा नराणां पापकर्मणाम् ॥४४॥

वाक्यायचित्तजनितैर्वहुभेदभिर्घ्नैः

कृत्यैः शुभाशुभफलोदयहेतुभूतैः ।

भास्वत्सुरेशभुवन नरकाननेकान्

संप्राप्नुवति मनुजा मनुजैर्द्रव्यचन्द्र ॥४५॥

यमराज की आज्ञा से उस शरीर से यह पापी यमलोक को जाता है और महान् घोर यमराज के दूतों के द्वारा ले जाया जाने वाला अत्यन्त दुःखित होता हुआ जाया करता है ॥३८॥ अधर्म में निरत रहने वाले तिर्यक् और मानुष देहों का सुघोर अनेक प्रकार के बंधों के द्वारा धर्मराजा शासन करने वाला कहा गया है ॥३९॥ जो विनय और आचार से युक्त हैं और प्रमाद वज्र स्थूलित आत्मा वाले हो जाते हैं अर्थात् किसी भूल से आचार से स्खलन जिनका हो गया है उन का शास्ता गुरु प्रायश्चित्तों के द्वारा पापों की निवृत्ति करने वाला शासक होता है और फिर उनको यमराज का दर्शन नहीं करता होता है ॥४०॥ पर दारा की चोरी करने वालों का तथा अन्याय से पूर्ण व्यवहार करने वालों का शासक राजा हुआ करता है । यदि ऐसे कर्म करने वाले लुप्त छिप कर किया करते हैं और नृपति की दृष्टि में नहीं आते हैं तो फिर उनका शासन एव दण्ड विधान धर्मराज ही किया करता है ॥४१॥ अतएव जो भी कोई पाप किये गये हैं उनका प्रायश्चित्त अवश्य ही करना चाहिए । नहीं तो पापों का फल बिना भोगे हुए सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी नष्ट नहीं होता है और वह तो

अवश्य भोगना ही पढता है ॥४२॥ जो स्वयं पाप का कर्म करता है या किसी से कराता है अथवा उसका समर्थन करता है चाहे शरीर से या मन से अथवा वचन से किसी भी प्रकार से ऐसा करे उसका फल अवश्य ही अधोगति होता है ॥४३॥ इस तरह से साधन सहित पापों के भेद संक्षेप में बता दिये गये हैं । पाप कम करने वाले मनुष्यों की विचित्र गतियां कही जाती हैं ॥४४॥ हे मनुजेंद्र चन्द्र ! वाणी-शरीर और चित्त से उत्पन्न होने वाले बहुत से भदों से विभिन्न शुभ और अशुभ फल के उदय के हेतु स्वरूप कर्मों से मनुष्य देदीप्यमान सुरराज के भवन (स्वर्ग) को तथा अनेक प्रकार के नरका को प्राप्त हुआ करता है ॥४५॥

### ॥ शुभाशुभ गति और यमयातना ॥

अथैभि पातकैर्याति यमलोक चतुर्विधं ।  
 सत्रासजनन घोर विवशा सर्वदेहिन ॥१॥  
 गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः ।  
 पुंस्त्री नपु सकैर्वृद्धैर्जातिव्य सर्वजतुभि ॥२॥  
 शुभाशुभफल तल दोहना प्रविचायते ।  
 चित्रगुप्तादिभिः सभ्यैर्मध्यस्थैः सर्वदंशिभिः ॥३॥  
 न तेऽत्र प्राणिनः सति ये न याति यमक्षयम् ।  
 अवश्य हि कृत भोक्तव्य तद्विघारितम् ॥४॥  
 तत्र ये शुभकर्माणः सोम्यचित्ता दयान्विताः ।  
 ते नरा याति सोम्येन पथा यमनिवेतनम् ॥५॥  
 स प्रदद्याद्विजे द्राणामुपानत्काष्ठापादुकाम् ।  
 स वराश्वेन महता सुख याति यमालयम् ॥६॥  
 अन्नदान विशेषेण धम राजपुरे नरा ।  
 यस्माद्याति सुखेनैव तस्माद्धर्मं समाचरेत् ॥७॥

इस अध्याय में शुभ और अशुभ गति के फलों की प्राप्ति के वर्णन में यम की यातना के प्रकारों का वर्णन किया जाता है । धीकृष्ण ने कहा—मृत्यु की प्राप्ति के पश्चात् विवश होकर समस्त देह धारी लोग इन चार प्रकार के पातकों से सत्रास के उत्पन्न करने वाले घोर यमलोक का जाया करते हैं ॥१॥ गर्भ में स्थित—जायमान अर्थात् उत्पन्न होने वाले—बालक—तर्पण—प्रौढ—वृद्ध पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक समस्त जन्तुओं के द्वारा जान लेना चाहिए ॥२॥ वहाँ पर सब कुछ देखने और जानने वाले मध्यस्थ सभ्य चित्रगुप्त आदि के द्वारा देह धारियों के अशुभ कर्मों के फल का विचार किया जाता है ॥३॥ यहाँ पर ऐसे कोई भी प्राणी नहीं हैं जो यमराज के घर में नहीं जाते हैं अर्थात् एक बार तो वहाँ सभी प्राणियों को जाना ही पड़ता है । उनका जो कुछ भी किया हुआ कम है वह अवश्य ही उन्हें भोगना ही पड़ता है ॥४॥ वहाँ पर जो शुभ कर्म करने वाले सौम्य चित्त से युक्त और दया से समन्वित प्राणी होते हैं वे नर सौम्य मार्ग के द्वारा ही रामराज के निकेतन में जाया करते हैं ॥५॥ जो पुष्प श्रेष्ठ ब्राह्मणों को उपानत या काष्ठ पादुकाओं का दान किया करते हैं वे बहुत अच्छे अश्व के द्वारा ममालय में सुख पूर्वक जाते हैं ॥६॥ विशेषता से अन्न का दान मनुष्यों के लिए धर्मराज के पुर में महत्व रखता है जिससे कि वे सुख के साथ वहाँ जाया करते हैं । इससे धर्म का आचरण अवश्य करना चाहिए ॥७॥

ये पुन क्रूरकर्माण पापा दानविवर्जिता ।

ते धोरेण पथा याति दक्षिणेन यमालयम् ॥८॥

पडशीतिसद्दसाणि योजनानामतीत्य यत् ।

वैवस्वतपुरं जय नानारूपव्यवस्थितम् ॥९॥

समीपस्थमिवाभाति नराणां शुभकर्मणाम् ।

पापानामतिदूरस्थं पथा रौद्रेण गच्छताम् ॥१०॥

तीव्रकटवयुक्तेन शकरानिचितेन च ।

क्षुरघारनिर्भस्तीव्रं पापानिचितेन च ॥११॥

क्वचिन्महाजलौकामि क्वचिन्महाजगरै पुन ।  
 मक्षिकाभिश्च रौद्रामि क्वचित्सर्पैर्विपोल्वर्णै ॥१७॥  
 मत्तमातगयूथैश्च बलोन्मत्तै प्रमाथिभिः ।  
 पथानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णशृगैर्महावृषै ॥१८॥  
 महाविपाणैर्महिषैरुष्टैर्मत्तैश्च खादकैः ।  
 डाकिनीभिश्च रौद्रामिविकरालैश्च राक्षसैः ॥१९॥  
 व्याधिभिश्च महाघोरैः पीड्यमाना व्रजति च ।  
 महाघूलीविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना ॥२०॥  
 महापापाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रया ।  
 क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन दीघमाणा व्रजति च ॥२१॥

कही पर इस मार्ग में फैले हुए विविध प्रकार के तापो से व्याप्त होता है ऐसा वाँसो का वन है । किमी जगह बालू में परिपूर्ण होता है । बड़े ही फट से जिम में प्रवेश किया जाता है ॥१५॥ कही पर यह मार्ग गम पानी से व्याप्त है तथा कही पर कारीप की अग्नि भरी हुई है । कही २ पर सिंह और वृको से समाकीर्ण मार्ग होता है तथा दक्ष और दारुण बीटो से परिपूर्ण रहता है ॥१६॥ कही पर बड़े २ जलोका और कही महान् अजगरो से घिरा हुआ यह मार्ग होता है । कही पर भयानक मन्त्रियो से भरा हुआ रहता है तो किसी जगह अत्यन्त विपद्घर सर्पों से परिपूर्ण होता है । किसी जगह बल से अत्यन्त उन्मत्त और प्रमथनशील मत्त हाथियो से घिरा हुआ यह मार्ग मिला करता है । किमी जगह ऐसे विशाल बोल भरे हुए हैं जो मार्ग को अपने तीक्ष्ण सींगों से खोद रहे हैं ॥१७ १८॥ बड़े २ विपाणों वाले भैसे-मदोमत्त ऊट जो खाया करते हैं वह मार्ग परिपूर्ण कही पर रहा करता है । भयानक डाकिनी और विकराल राक्षस तथा महाघोर व्याधियाँ इन सबसे पीडित होते हुए पापी लोग यमपुर को जाया करते हैं । बड़ी मारी घूल में मिनी हुई महान् प्रचण्ड वायु और महान् पापाणों की, नर्प, से, क-प्यन्त, होते हुए बिना किमी आश्रय वाले पापी कही पर, विजली ना प्रपान से जो बहुत ही बड़ा होता है वहा जाने हैं ॥१९ २०॥

महता वाणवर्षेण विध्यमानाश्च सर्वशः ।  
 पतद्भ्रिर्वज्रसंघातैरुत्कापातैश्च दारुणैः ॥२२॥  
 प्रतप्तागारवर्षेण दह्यमाना व्रजति च ।  
 तप्तेन पाशुवर्षेण चूर्यमाणा रुदति च ॥२३॥  
 महामेघरवेधोरैर्विश्रास्यते मुहुर्मुहुः ।  
 निशितायुधवर्षेण चूर्यमाणा नरैर्व्रता ।  
 महाक्षाराम्बुधाराभिः सिच्यमानाद्रवति च ॥२४॥  
 महाशीतेन मरुता तीक्ष्णेन परुषेण च ।  
 समतात्पीड्यमानास्ते शुष्यते संकुचति च ॥२५॥  
 इत्थ मार्गेण रौद्रेण पार्थैर्विरहितेन च ।  
 निरालवेन दुर्गेण निर्जनेन समततः ॥२६॥  
 अविश्रामेण महता निर्गतापाश्रयेण च ।  
 तमोरूपेण कष्टेन सर्वदुःखाश्रयेण च ॥२७॥  
 नीयते देहिनः सर्वे ये भूढाः पापकर्मिणः ।  
 यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्यत्नात् ॥२८॥

वही पर मार्ग में महान् वाणों की वर्षा होती है उससे मिथे हुए  
 होकर और सब ओर से गिरते हुए वज्र के सघातो तथा दाहण उत्का-  
 पातो से एव प्रतप्त अगारों की वर्षा से जलते हुए यमपुर को पापात्मा  
 प्राणी जाया करते हैं । तपी हुई धूल की वर्षा पूरित होते हुए मार्ग  
 में पापी नर रुदन करते हैं ॥२२-२३॥ बड़े भारी विशाल मेघों की  
 बढकदार ध्वनि से बार-बार डराये जाया करते हैं । तीक्ष्ण आयुधों की  
 वर्षा से चूर्णमाण और नरों से वृत्त बहा जाते हैं । महाक्षार जल की  
 धाराओं से भीगे हुए द्रवित होते हैं ॥२४-२५॥ बहुत ठण्डी हवा से जो  
 तीली और कठोर होती है सभी ओर से पीड्यमान होते हुए घूम जाते  
 हैं और मिकुट जाते हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार से यमपुर का  
 पापियों के जाने वाला महान् रौद्र होना है जिसमें कोई भी  
 अन्य राहगीर नहीं रहता है । यह अवसम्ब में हीन-दुर्ग और सभी ओर  
 से जल रहित होता है ॥२७॥ विश्राम से दूर एव जन के आश्रय से



जित अन्धकारमय—कष्टग्रह और समस्त दुखों से परिपूर्ण यह मार्ग है इस मार्ग से मूढ़ पाप कर्म करने वाले देह धारी सब १ जाये जाया करते हैं । इनको महान् घोर रामराज की आज्ञा का पालन करने वाले यमदूतों के द्वारा बलात् (जबदस्ती से) ले जाये जाते हैं ॥२७-२८॥

एकाकिन पराधीना मित्रवधुविवजिता ।

शोचन स्वानि कर्माणि रुदतश्च मुहुर्मुहु ॥२९॥

प्रेतभूता विवस्त्राश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ।

कृशाङ्गा भीतभीताश्च दह्यमाना क्षुधाग्निना ॥३०॥

बद्धा शृ खलया केचिदुत्ताना पादयोर्नरा ।

आकृष्यते घृष्यमाणा यमदूतैर्वलोत्कटं ॥३१॥

पुनश्चाधोमुखाश्चान्ये घृष्यमाणा सुदु खिता ।

केशपाशनिबद्धाश्च कृष्यत रज्जुभिर्नरा ॥३२॥

ललाटे चाकुशैस्नीक्ष्णैर्भिन्ना कृष्यति देहिन ।

उत्ताना रटमानाश्च क्वचिदगारवर्त्मना ॥३३॥

पाश्चाद्वाह्व सबद्धाश्च जठरे च प्रपीडिता ।

पूरिता शृ खलाभिश्च हस्तयोश्च प्रकीलिता ॥३४॥

ग्रीवायामद्धं चन्द्रेण क्षिप्यमाणा इतस्तत ।

शिदने च वृषणे बद्धा नीयते चर्मरज्जुना ॥३५॥

पापात्मा प्राणी एकाकी ( अकेले )—पराधीन और वहाँ मित्र तथा बन्धुओं से रहित रहने वाले बार बार रोते हुए अपने किए हुए कर्मों के विषय में चिन्ता किया करते हैं कि हमने ऐसे बुरे कर्म क्यों किये थे जिनके कारण अब उनका यह महान् कष्ट भोगना पड़ रहा है ॥२९॥ प्रेत भूत वस्त्रों से हीन (नग्न) और सूखे हुए कण्ठ—होठ और तालु चाने दुबले अंगों से युक्त—बहुत डरे हुए भूख की आग से दह्यमान होते हैं ॥३०॥ सकलों से बँधे हुए और कुछ मनुष्य पैरों से उत्तान (ऊँचे उठे हुए) वन में उत्कट यमराज के दूतों के द्वारा जबदस्ती से घिसते हुए सींचे जाया करते हैं ॥३१॥ अथ लोभ फिर नीचे को मुख वाले तथा अन्य रज्जुओं से बँधे हुए केशपाश वाले बहुत ही दु खित

दशा में घिसटते हुए खींचे जाते हैं ॥३२॥ बहुत ही पैसे अकुश से ललाट जिन देह धारियों का भिन्न हो रहा है और उत्तान एव रट लगाते हुए कृष्णमाण हो रहे हैं । कहीं पर अंगारों से पूर्ण भस्म में भुजा और कंधों में पीछे से बंधे हुए और उदर में पीड़ा प्राप्त करने वाले जाया करते हैं । कहीं सकल से पूर्णतया बंधे हुए और हाथों में कौलें लगी हुई हैं ऐसे पापी लोग से जाये जाते हैं । किसी जगह गरदन में हाथ से पकड़ कर धक्के खाकर फेंके गये इधर-उधर चले जाते हैं । शिश्न और नृपण को चमड़े की रस्सी से बाँध कर ले जाये जाया करते हैं ॥३३-३५॥

एव पथातिकष्टेन प्राप्ता यमपुर तदा ।

प्रज्ञापितास्तदा दूर्तनिवेश्यते यमाग्रतः ॥३६॥

तस्य ये शुभकर्माणिस्ताश्च समानयेद्यसः ।

स्वागतासनदानेन पादार्घ्येण प्रियेण च ॥३७॥

धन्या यूय महात्मान आत्मनो हितकारिण ।

येनदिव्यसुखार्थाय भवद्भिः मुकृत कृतम् ॥३८॥

इदं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम् ।

स्वर्गं गच्छध्वमतुल सर्वकामसमन्वितम् ॥३९॥

ततो भुक्त्वा महाभोगानते पुण्यस्य सक्षयात् ।

यत्किञ्चिदल्पमनुभ पुनस्तदिह भोक्ष्यथ ॥४०॥

ते चापि धर्मराजान नरा पुण्यानुभावतः ।

पश्यति सौम्यवदन पितृभूतमिवात्मनः ॥४१॥

ये पुनः पापकर्माणिस्ते पश्यति भयानकम् ।

पापाविशुद्धनयना विपरीतात्मबुद्धयः ॥४२॥

इस तरह अत्यन्त कष्टप्रद मार्ग के द्वारा वे पापात्मा अनुप्य यमराज के पुर में जाकर उस समय प्राप्त होने हुए यमराज के आगे निवेशित किये जाते हैं ॥३६॥ वहाँ पर जो सौम्यभाग्य से जाये गये शुभ कर्म वाले प्राणी होते हैं वे तो यमराज के द्वारा सम्मानित होने हैं । उनका बड़ा स्वागत किया जाता है और अपंग्राह्य आदि देकर उन्हें प्रेम पूर्वक

आसन दिया जाता है ॥३७॥ उससे कहा जाता है—आप महान् आत्मा वाले धन्य हैं जिन्होंने अपनी आत्मा का हित किया है और दिव्य सुख के लिए आपने सुव्रत किया है । आपके लिए यह विमान है जोकि दिव्य स्त्री आदि भोगों में भूषित है । इस पर सवार होकर आप अतुल और समस्त प्रकार के कामनाओं से ममन्वित स्वर्ग को जाइय ॥३८-३९॥ वहा सुखभोग कर फिर भोगों के अन्त में थोड़ा कुछ अशुभ कर्म हो तो उसका फल इसके अन्त में भोग लना जब कि आपके पुण्यों का क्षय हो जावे ॥४०॥ व लोग अपन किय हुए पुण्यों के अनुभाव से उस धर्म-राज को बहुत ही मौम्य मुख वाला अपन पिता के समान देखा करते हैं । जा जहा पापपूर्ण कर्मों क करन वाल होने हैं वे उसी यमराज को पाप के कारण अविशुद्ध नरों वाले तथा विपरीत आत्म वृद्धि वाले बहुत ही भयानक रूप वाला देखा करत हैं ॥४१-४२॥

दष्टाकरालवदन भ्रुकुटीकुटिलेक्षणम् ।

ऊर्ध्वनेत्र महाश्मश्रुप्रस्फुरदधरोत्तरम् ॥४३

अष्टादशभुज क्रुद्ध नीलाजनचयोपमम् ।

सवार्धुर्धोद्यतकर ग्रहादण्डेन तर्जकम् ॥४४

महामहिषमारुढ दीप्ताग्निसमलोचनम् ।

रक्तमाल्याम्बरधर महामेघमिवोच्छ्रितम् ॥४५

प्रलयाबुदनिर्घोष पिवतमिव सागरम् ।

प्रसतमिव लोकानामुद्गिग्तमिवानलम् ॥४६

मृत्युश्च सत्समीपस्य कालानलसमप्रम ।

कालश्चाजनसकाश कृतातश्च भयानक ॥४७

भारी चोग्रा महामारी कालरालि सुदारुणा ।

विविधा व्याधय कष्टा नानारूपभयावहा ॥४८

शक्तिशूलाकुशधरा पाशचक्रासिधारिणः ।

वज्रदण्डधरा रौद्रा क्षुद्रतृणीधनुधरा ॥४९

पापी प्राणिमो को यह यमराज दाडो म करान मुक्त वाला—तिरछी भीहो से मुक्त नया बाना—ऊपर को उठ हुए बेसो बाना तथा बडी २

दाद्री मूँछों में कड़कड़ाते हुए दोटों वाला दिखाई देता है ॥४३॥  
 अठारह भुजाओं में युक्त क्रोधपूर्ण—नीले काजल के ढेर के समान वर्ण  
 वाला—गमरत आयुधों में पूर्ण करों वाला और ब्रह्मदण्ड से तर्जना करने  
 वाला—एक विमान भ्रम पर सवार तथा जलती हुई अग्नि के समान  
 नेत्रों वाला—नाम वस्त्र धारण करने वाला और महान् मेरु की शिखर  
 के मुख्य ऊँचा दिखाई देता है ॥४५॥ प्रलयकाल के मेघ के समान घोष  
 करता हुआ मानों नागर का पान कर रहा हो और समस्त लोको का  
 प्राप्त कर रहा हो तथा अग्नि का उद्गमन कर रहा हो ऐसा उसका स्वरूप  
 भयानक दिखलाई दिया करता है ॥४६॥ कालानल के समान प्रभा  
 वाला मृग्यु उसके सभीष में स्थित रहता है जो काले अंजन के सदृश है  
 और कृतांत अति भयानक होता है ॥४७॥ मारी—उग्रा—महामारी—बाल  
 रात्रि शुदादणा अनेक भय देने वाले रूपों को धारण करने वाली  
 व्याधियाँ एवं अनेक प्रकार के कष्ट यहाँ उपस्थित रहा करते हैं ॥४८॥  
 शक्ति—शूरा और अंगुण को धारण करने वाले—पाश, चक्र और अति को  
 रखने वाले—यषा, दण्ड धारी और दुद्र तूणीर तथा धनुष लिये हुए  
 महान् रौद्र रंग के दूत यहाँ पर उपस्थित रहा करते हैं ॥४९॥

असंख्याता महाधीर्याः क्रूराश्चास्त्रनसंप्रभाः ।  
 सर्वायुधोद्यतगरा यमदूता भयानकाः ॥५०॥  
 अनेन परियारेण महापारेण संवृतम् ।  
 यमं पश्यन्ति पापिष्ठाश्चित्रगुप्तं च भीषणम् ।  
 निर्भर्त्सयन्तं चात्यन्तं यमं सदुपकारिणम् ॥५१॥  
 चित्रगुप्तश्च भगवान्धर्मवाक्यैः प्रबोधयन् ।  
 भोभो दुष्कृतकर्मणिः परद्रव्यापहारिणः ।  
 गविता रूपवीर्येण परदारविमर्दकाः ॥५२॥  
 यत्स्वयं क्रियते कर्म तत्स्वयं भुज्यते पुनः ।  
 तत्किमात्मोपपाताद्यं भवद्भिर्दुष्कृतं कृतम् ॥५३॥  
 इदानीं किं प्रतप्यध्वं ॥५४॥ स्वकर्मभि  
 भुञ्जध्वं स्वानि कर्मः ॥५५॥ योजस्ति कर्तव्यं

एते च पृथिवीपाला संप्राप्ता मत्समीपत ।

स्वकीये कर्मभिर्धोरैर्दुष्प्रज्ञा बलगविता ॥५५॥

भोभो नृपा दुराचारा प्रजाविध्वसकारिण ।

अल्पकालस्य राजस्य कृते किं दुष्कृत कृतम् ॥५६॥

ऐसे काजल के ममान कानी प्रभा वाले—महागराक्रमी—क्रूर—धम्पूर्ण आयुध हाथों में लिये भयानक असंख्य दूत वहाँ पर उपस्थित रहा करते हैं ॥५०॥ ऐसे अनेक परिवार से जो कि महान् धोर है वह यमराज सवृत होता है । ऐसे यम को और महाभीषण चित्रगुप्त को महापापी लोग वहाँ देखा करते हैं जो कि सद्गुणकारी यम राजा अत्यन्त डौट लगाता रहता है ॥५१॥ चित्रगुप्त धर्म युक्त वाक्यों से प्रबोध कराते हुए कहते हैं—हे बुरे पाप पूण कर्म करने वालों ! हे पराये द्रव्य को हरण करने वालों ! आप लोग अपने रूप और वीर्य स बड़े ही गर्वित होकर पराई स्त्रियों का विमदन करते थे ॥५२॥ अच्छा आप लोगो ने स्वय ही ऐसे पापकर्म किये हैं उनका अब बुरा फल भी स्वय आप ही भोग रहे है । तुमने अपनी आत्मा के उपघात के लिये ही ये दुष्कृत किये हैं । अब इतने प्रतप्त क्यों हो रहे हैं जब कि अपने किये हुए कर्मों के कारण पीड़्यमान हो रहे हैं । अपने कर्मों का ही यह तुमको फल मिल रहा है इसे भोगना ही पड़ेगा । इसमें किसी अन्य का कोई भी दाव नहीं है ॥५३ ५४॥ देखो, ये पृथिवी के पालक राजा मेरे समीप में सम्प्राप्त हुए हैं । ये भी अपने किये हुए दुष्कर्मों से जो कि अत्यन्त घोर है उनसे युक्त महामूढ़ और बल के शब से युक्त हैं । इतना कह कर राजाओं को सम्बोधित करके वहाँ—हे दुराचार वाले राजाओं ! तुम प्रजा के विध्वस करने वाले हो । तुमने थोड़े से समय तक भोगने के योग्य राज्य के लिये इतना बड़ा दुष्कृत क्यों किया है ? ॥५५ ५६॥

भोभोश्चण्ड महाचण्ड गृहीत्वा नृपतीनिमान् ।

विशोध्यध्व पापेभ्य क्रमेण नरकाग्निषु ॥५७॥

तत शीघ्र सन्मुत्थाप्य नृपासमृह्य सज्जको ?

भ्रामयित्वातिवेगेन विक्षिप्योर्ध्वं विगृह्य च ॥५८॥

दाढी मूँछों में फड़फड़ाते हुए होठों वाला दिखाई देता है ॥४३-४४॥  
 अठारह भुजाओं से युक्त क्रोधपूर्ण—नीले काजल के ढेर के समान वर्ण  
 वाला—समस्त आयुधों से पूर्ण करने वाला और ब्रह्मादृष्ट से तर्जना करने  
 वाला—एक विशाल भैसे पर सवार तथा जलती हुई अग्नि के समान  
 नेत्रों वाला—लाल वस्त्र धारण करने वाला और महान् मेरु की शिखर  
 के तुल्य ऊँचा दिखाई देता है ॥४५॥ प्रलयकाल के मेघ के समान घोष  
 करता हुआ मानों सागर का पान कर रहा हो और समस्त लोको का  
 प्रास कर रहा हो तथा अग्नि का उद्दमन कर रहा हो ऐसा उसका स्वरूप  
 भयानक दिखलाई दिया करता है ॥४६॥ कालानल के समान प्रभा-  
 वाला मृत्यु उसके समीप में स्थित रहता है जो बाले अजन के सदृश है  
 और वृत्तात अति भयानक होता है ॥४७॥ मारी—उग्र—महामारी—बाल  
 रात्रि सुदारुणा अनेक भय देने वाले रूपों को धारण करने वाली  
 व्याधिया एवं अनेक प्रकार के वष्ट वहाँ उपस्थित रहा करते हैं ॥४८॥  
 शक्ति-शूल और अशुभ को धारण करने वाले—गाण, चक्र और अस्ति को  
 रखने वाले—वज्र, दण्ड धारी और शुद्ध तूणीर तथा धनुष लिये हुए  
 महान् रौद्र यम के दून वहाँ पर उपस्थित रहा करते हैं ॥४९॥

असंख्याता महावीर्याः क्रूराश्चाञ्जनसंप्रभाः ।

सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानकाः ॥५०॥

अनेन परिवारेण महाघोरेण संवृतम् ।

यम पश्यति पापिष्ठाश्चित्रगुप्त च भीषणम् ।

निर्मलसंमंतं चात्यन्तं यमं सद्रूपकारिणम् ॥५१॥

चित्रगुप्तश्च भगवान्धर्मवाक्यैः प्रबोधयन् ।

भोभो दुष्टकर्मणः पश्वन्व्यापहारिणः ।

गविता रूपदीर्घेण पश्वदन्विमर्दवाः ॥५२॥

यत्स्वयं क्रियते कर्म तत्स्वयं भुज्यते पुनः ।

तत्किमात्मोपपानार्थं भवद्भिर्दुष्टैः कृतम् ॥५३॥

इदानीं किं प्रनप्यध्वं पीडयमानाः स्वकर्मभिः ।

भुञ्जध्वं स्वानि कर्माणि नात्र दोषोऽग्निं वम्यचिन् ॥५४॥

जि नरको म नर अपन कर्मों के अनुरूप विविध प्रकार की यातनाओं से पीड़ित किया जाने हैं जब तक कि उनका कर्मों का प्रणय नहीं होता है बार बार भोगन रहा करते हैं ॥६४॥

भृश युमुक्षया पीडा मूच्छयातिपिपासया ।

अत्युष्णेतातिशीतन पापाना समरेण च ॥६५॥

एवमादिमहाघोरा यातना पापकारिण ।

एवंक नरक चैव जलशाय महेश ॥६६॥

प्रत्येक यातनाश्चित्रा सर्वेषु नरकेषु च ।

यष्ट यपनतेतापि सोढु सर्वैश्च नारकै ॥६७॥

एत च विविधैर्घोरैर्यायमानाश्च कमभि ।

अत्रिते नैव पापिष्ठा विविधा पापकारिण ॥६८॥

महाघोरानभिघोराग्न्या वानाग्निसदृशोपमा ।

श्रुतंरेतमहारीद्रं अत्रित मृदुचतस ॥६९॥

ततस्तनान कथिता पापा गच्छति तास्वयम् ।

पुल्लमिसकलत्रायं यदा पुण्य त्वपावृतम् ॥७०॥

एकाकी दह्यते तेन न च पश्यति तानि स ।

आत्मना च घृत पाप भोक्तव्य ध्रुवमात्मना ॥७१॥

अतः त भूख से पीडा और अतः त पिपासा से मूर्च्छा तथा अति उष्ण और अति शीत पापों के समरण से इस प्रकार का महान् घोर यातनाएँ पाप करने वाले एक एक नरक में भोगते हैं जो कि संबन्धी और सहस्रा की संख्या में हैं । प्रत्येक नरक में विविध यातनाएँ होती हैं । समस्त नरको में सड़को वय तक बगैर सहन करना पड़ना है । और सभी का नरक में इसी तरह से भोगना होता है ॥६५ ६७॥ ये नारकी प्राणी नरक में विविध प्रकार के कर्मों से जो कि अत्यन्त घोर होते हैं यातना पाये हुए पाप करने वाले पापी मरते नहीं हैं ॥६८॥ महाघोर और अभिघोर नाम वाले नालाग्नि के सदृश उपमा वाले हैं इन महान् रीद्रों के सुनने से ही मृदु चित्त वाले मर जाया करते हैं । इसीलिये यहाँ पर कहे हुए पाप स्वयं उनके गम जाने हैं । अब पुनः मित्र और कनन

सर्वप्राणेन महता मुतप्ये तु शिलातले ।  
 अस्फालयति तरसा वज्रे णेव महाद्रुमम् ॥५६  
 ततः स रक्तश्रोतोभिः स्रवते जर्जरीकृतः ।  
 स निःसृजस्तदा देही निश्च्रेष्ट सप्रजायते ॥५७  
 ततः स वायुना स्मृष्टः शनैरुज्जीवते पुनः ।  
 ततः पापविशुद्धयै क्षिप्यते नरवर्णवे ॥५८  
 अष्टाविंशतिरेवाधः क्षितेर्नरकबोटयः ।  
 सप्तमस्य तलस्याने घोरे तमसि सस्थिताः ॥५९  
 रौरवप्रभृतानां च नरकाणां षातं स्मृतम् ।  
 चत्वारिंशत्तममधिकं महानरकमडनम् ॥६०  
 येषु पापा प्रपच्यन्ते नराः कर्मानुत्पतः ।  
 याननाभिः चित्राभिरात्मप्रशयाद्भुतम् ॥६१



पच्यमान हुआ करते हैं ॥७६॥ इस कारण से हम जीवित में चक्कर होने पर पाप कभी भी नहीं करना चाहिए । पाप करने पर तो उनमें निश्चय ही नर स्वयं नरकी में जाया करते हैं ॥७७॥

य. करोति नरः पाप तस्यात्मा ध्रुवमप्रियः ।  
पापस्येह फल दुःख तद्भोक्तव्यमिहात्मना ॥७८॥  
कथं तं पापनिरता नरा रात्रिषु शेरते ।  
मरणात्तरिता येषां नारकी तीव्रयातना ॥७९॥  
एवदिलष्टविशुद्धाश्च सावशेषेण कर्मणा ।  
ततः क्षिप्तिं समासाद्य जायन्ते देहिनः पुनः ।  
स्यावरा विविधाकारास्तृणगुल्मादिभेदतः ॥८०॥  
तनानुभूय दुःखानि जायते कीटयोनिषु ।  
निष्क्राताः कीटयोनिभ्यो जायन्ते पक्षिणस्ततः ॥८१॥  
सहिलष्टाः पक्षि भावेन भवति मृगजादिषु ।  
मार्गं दुःखमतिक्लम्य जायते पशुयोनिषु ॥८२॥  
क्रमाद्गोयोनिमासाद्य जायन्ते मानवाः पुनः ।  
एव योनिषु सर्वासु परिक्रम्य क्रमेण तु ।  
कालातरवशाद्याति मानुष्यमतिदुर्लभम् ॥८३॥  
व्युत्क्रमेणापि मानुष्यं प्राप्यते पुण्यगोचरात् ।  
विचित्रा गतयः प्रोक्ताः कर्मणा गुरुलाघवात् ॥८४॥

जो मनुष्य पाप कर्म करता है उसकी आत्मा निश्चय ही अप्रिय होती है क्योंकि यहाँ पर पाप का उस आत्मा के द्वारा फल भोगने के योग्य होता है ॥७८॥ इस प्रकार से बड़ी विषष्टता से विशुद्ध हुए साव-  
शेष कर्म के द्वारा फिर इसके बाद में देहधारी पुन भ्रमण्डल में प्राप्त होकर उत्पन्न हुआ करते हैं । वे पापों में निरत रहने वाले मनुष्य रात्रि में कैसे सोते हैं क्योंकि मृत्यु के पश्चात् ही उनके लिये नारकी तीव्र यातना उपस्थित रहा करती है ॥७९-८०॥ भ्रमण्डल में भी विविध आकार-प्रकार वाले स्यावर-तृण-गुल्म आदि के भेद वाले जीवन प्राप्त होते हैं । इन सब का अनुभव करके जहाँ कि बहुत तरह के दुःख रहा

मनुष्य का जीवन ही एक ऐसा है जो स्वर्ग और मोक्ष का प्रदान कराने वाला है । इस अर्थात् दुर्लभ मनु के जीवन को प्राप्त करके जो स्वर्ग और मोक्ष दोनों का साधन नहीं किया करता है वह मृत होकर बहुत समय तक तप्यमान हुआ करता है अर्थात् पीडा प्राप्त किया करता है ॥८५॥ देव और असुर इन सभी को मनुष्य जीवन प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ है । इस मनुष्य जीवन को प्राप्त करके क्या करनी चाहिए जिससे नरक में जाना न होवे ॥८६॥ स्वर्ग और अपवर्ग के लाभ करने के लिये यदि समुचित नहीं होता है तो नरकगामी होना पड़ता है । स्वर्ग का मूल द्वार यह मनुष्य का जीवन होता है । इसलिये इसका बड़े यत्न से अनुपालन करना चाहिए ॥८७॥ धर्म के मूल से ही समस्त अर्थों के साधन करने वाला मनुष्य जीवन प्राप्त हुआ करता है । इसे प्राप्त करके भी यदि तरा लाभ करने में कोई यत्न नहीं है तो मूल की रक्षा तो यत्न से करनी ही चाहिए ॥८८॥ मनुष्य के जीवन में भी विप्र का होना तो और भी अधिक दुर्लभ होता है । उसे जो प्राप्त कर लेता है अर्थात् ब्राह्मण का शरीर प्राप्त हो जाता है और इसे प्राप्त करके भी अपनी आत्मा के कल्याण को जो नहीं किया करता है उससे अन्य कौन चेतना शून्य होगा ? ॥८९॥ समस्त देशों में मध्य देश पर अर्थात् श्रेष्ठ कहा गया है । इसलिये स्वर्ग और मोक्ष तथा यश मनुष्यों के द्वारा प्राप्त किया जाता है ॥९०॥ इस परम पुण्य मय भारतवर्ष में अध्रुव मनुष्य जीवन प्राप्त करके जिसने किसी ने भी अपनी आत्मा का श्रेय किया है उसने स्वयं अपनी आत्मा की रक्षा करली है । जिसने अपनी आत्मा का श्रेयसाधन नहीं किया है उसने स्वयं अपनी आत्मा को घचित एव प्रतारित कर दिया है ॥९१॥

भोगभूमि स्मृत स्वर्ग कर्मभूमिरिय मता ।

इह यत्क्रियते कर्म स्वर्गे तदुपभुज्यत ॥९२॥

यावत्स्वास्थ्य शरीरस्य तावद्धर्म समाचर ।

अस्वस्थश्चातियत्नेन न किञ्चित्कर्तुं मुत्सहेत् ॥९३॥

करते हैं, फिर वे प्राणी कीट पतंग आदि योनियों में जन्म ग्रहण किया करते हैं । कीट योनियों से निकल कर वाद में पक्षियों के स्वरूप में जन्म लिया करते हैं । पक्षिभाव से सस्निष्ट ये मृग आदि में उत्पन्न हुआ करते हैं । इस तरह दुःख का अतिक्रमण करके फिर पशुओं की योनियों में उत्पन्न होते हैं ॥८१-८२॥ इस तरह क्रम से गो योनि को प्राप्त करके फिर मानव का शरीर ग्रहण किया करते हैं । इस तरह समस्त योनियों में क्रम से पूरी परिक्रमा समाप्त करके कालान्तर के वश से यह अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जीवन की प्राप्ति हुआ करती है ॥८३॥ पुण्य गोघर होने से इस नियम के व्युत्क्रम से भी कभी-कभी मनुष्य जीवन प्राप्त किया जाता है । ये कर्मों का जाल बड़ा ही अद्भुत होता है और इनकी गलियाँ भी बहुत विचित्र हुआ करती हैं । कर्मों का गौरव और साधव भी हुआ करता है ॥८४॥

मानुष्यं यः समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् ।  
 द्वयोर्न साध्यत्येकं स मृतस्तप्यते चिरम् ॥८५॥  
 देवासुराणां सर्वेषां मानुष्यमतिदुर्लभम् ।  
 तत्संप्राप्य कथाः कुर्यान्न गच्छेन्नरकं यथा ॥८६॥  
 स्वर्गापि वर्गलाभाय यदि नास्ति समुद्यतः ।  
 स्वर्गस्य मूलं मानुष्यं तद्यत्नादनुपालयेत् ॥८७॥  
 धर्ममूलेन मानुष्यं लब्ध्वा सर्वार्थसाधकम् ।  
 यदि लाभे न यत्नस्ते मूलं रक्षस्व यत्नतः ॥८८॥  
 मनुष्यत्वे च विप्रत्वं यः संप्राप्यातिदुर्लभम् ।  
 न करोत्यात्मनः श्रेयः कोन्यस्तस्मादचेतनः ॥८९॥  
 सर्वेषामेव देशानां मध्यदेशः परः स्मृतः ।  
 अतः स्वर्गश्च मोक्षश्च यशः संप्राप्यते नरैः ॥९०॥  
 एतस्मिन्भारते पुण्ये प्राप्य मानुष्यमध्रुवम् ।  
 यः कुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा रक्षितः स्वयम् ।  
 यः कुर्यान्नात्मनः श्रेयस्तेनात्मा वंचितः स्वयम् ॥९१॥

होते चले जाते हैं अर्थात् टुकड़े २ करके यह आयु समाप्त देखते-देखते होती रहा करती है । रातदिन के बहाने से यह आयु ही तो समाप्त हुआ करती है किन्तु किस निये तुम्हें इसका ज्ञान नहीं होता है ? ॥६५॥ जबकि यह नहीं जाना जाता है कि यह मृत्यु किस समय में किसकी हो जायगी तो जब अचानक ही मृत्यु प्राप्त होगी तो उस समय में कौन तुम्हें धीरज प्राप्त करायेगा ? ॥६६॥ उस समय में तो यहाँ पर ही यह सभी कुछ ठाट-बाट छोड़कर अकेले ही निश्चय रूप से जायगा । इसलिये उस समय के वास्ते पायेय के लिये इस धन को क्यों नहीं दान किया करता है ? ॥६७॥ जो तू यहाँ दान धर्म करता है वही तुम्हें उस यमपुर के महामार्ग में पायेय का काम देता है । जो दान धर्म के पायेय को ग्रहण करने वाले व्यक्ति हैं वे सुख पूर्वक उस महामार्ग में जाया करते हैं । इसके अभाव में यह अन्तु पायेय से रहित होता हुआ उस मार्ग में क्लेश प्राप्त किया करता है ॥६८॥

येषा द्विजेन्द्रवाहिनी पूणभाडा तु गच्छति ।

स्वगदेशस्य पुरतास्तथा लाभ पदेपदे ॥६९॥

इति ज्ञात्वा नर पुण्य कुर्यात्पाप विवर्जयेत् ।

पुण्येन याति देवत्वमपुण्यान्नरक व्रजेत् ॥७०॥

ये मनागपि देवेश प्रपन्ना शरण शिवम् ।

तेपि धीर न पश्यति यमस्य ददम नरा ॥७१॥

किं तु पापमंहाधोरै किञ्चित्काल शिवाज्ञया ।

भवतिप्रेत राजानस्ततो याति शिवालयम् ॥७२॥

ये पुन सर्वभावेन प्रतिपन्ना महेश्वरम् ।

न त लिप्यति पापेन सद्यपत्रमिवायसा ॥७३॥

तस्माद्विवर्धयेद्भक्तिमीश्वरे सतत बुध ।

तन्माहात्म्यविचारेण भवदोषविरागत ॥७४॥

आरुणेण शरीरेण ह्यध्रुवं य प्रसाधयेत् ।  
 ध्रुवं तस्य परिभ्रष्टध्रुवं नष्टमेव च ॥६४  
 आमुषः खंडखंडानि निपतन्ति तवाग्रतः ।  
 अहोरात्रापदेशेन किमर्थं नावबुध्यसे ॥६५  
 यदा न जायते मृत्युः कदा कस्य भविष्यति ।  
 आकस्मिके हि मरणे धृतिं विदेत कस्तदा ॥६६  
 परित्यज्य यदा सर्वमेकाकी यास्यसि ध्रुवम् ।  
 न ददासि तदा कस्मात्पायेयार्थमिदं धनम् ॥६७  
 गृहीतदानपात्रेणा सुखं याति महाध्वनि ।  
 अन्धया निलस्यते जंतुः पात्रेयरहितः पथि ॥६८  
 स्तयं भे समस्त प्रकार के सुखों का साम्राज्य रहता है और पुण्य के

होते चले जाते हैं अर्थात् टुकड़े २ करके यह आयु समाप्त देखते-देखते होती रहा करती है । रातदिन के बहान से यह आयु ही तो समाप्त हुआ करती है किन्तु किस लिये तुझे इसका ज्ञान नहीं होता है ? ॥६५॥ जबकि यह नहीं जाना जाता है कि यह मृत्यु किस समय में किसकी हो जायगी तो जब अचानक ही मृत्यु प्राप्त होगी तो उस समय मे कौन तुझे घोरज प्राप्त करायेगा ? ॥६६॥ उस समय मे तो यहा पर ही यह सभी कुछ ठाट-बाट छोडकर अकेले ही निश्चय रूप से जायगा । इसलिये उस समय के वास्ते पायेय के लिये इस धन को क्यों नहीं दान किया करता है ? ॥६७॥ जो तू यहा दान धर्म करता है वही तुझे उस यमपुर के महामार्ग मे पायेय का काम देता है । जो दान धर्म के पायेय को ग्रहण करने वाले व्यक्ति हैं वे सुख पूर्वक उस महामार्ग मे जाया करते हैं । इसके अभाव मे यह जन्तु पायेय से रहित होता हुआ उस मार्ग मे क्लेश प्राप्त किया करता है ॥६८॥

येषा द्विजेन्द्रवाहिनी पूर्णभाटा तु गच्छति ।

स्वर्गदेशस्य पुरतास्तेषा लाभः पदेपदे ॥६९॥

इति ज्ञात्वा नरः पुण्यं कुर्यात्पापं विवर्जयेत् ।

पुण्येन याति देवत्वमपुण्याघ्नरकं व्रजेत् ॥१००॥

ये मनागपि देवेश प्रपन्नाः शरणं शिवम् ।

तेपि घोरं न पश्यन्ति यमस्य वदनं नराः ॥१०१॥

किं तु पापमंहाघोरं, विञ्चित्वा ल शिवाज्ञया ।

भवति प्रेत राजानस्ततो याति शिवालयम् ॥१०२॥

ये पुनः सर्वभावेन प्रतिपन्ना महेश्वरम् ।

न ते लिप्यन्ति पापेन सद्यप्यमिवाभसा ॥१०३॥

तस्माद्विघर्षयेद्भक्तिमिश्रं भक्तं बुधः ।

तस्माहात्म्याविचारेण भवदोषाविरागतः ॥१०४॥

अध्रुवेण शरीरेण ह्यध्रुव य प्रसाधयेत् ।  
 ध्रुव तस्य परिभ्रष्टध्रुव नष्टमेव च ॥६४॥  
 आयुष छडच्छडानि निपतति तदाग्रत ।  
 अहोरात्रापदेशेन किमर्थं नावबुध्यसे ॥६५॥  
 यदा न ज्ञायते मृत्यु कदा वस्य भविष्यति ।  
 आकस्मिके हि मरणे घृति विदेत वस्तदा ॥६६॥  
 परित्यज्य यदा सधमेवाकी यास्यसि ध्रुवम् ।  
 न ददासि तदा वस्मात्पाथेयार्थमिदं धनम् ॥६७॥  
 गृहीतदानपाथेया सुख याति महाध्वनि ।  
 अन्यथा क्लिश्यत जतु पाथेयरहितं पथि ॥६८॥

स्वर्ग में समस्त प्रकार के सुखों का साम्राज्य रहता है और पुण्य के प्रभाव से उन सुखों का उपभोग करने के लिये मनुष्य वहाँ जाकर सीमित समय तक रहा करते हैं अतः वह केवल भोगों की ही भूमि होता है । यह भूमण्डल अर्थात् मनुष्य लोक ब्रह्मों के करने का क्षेत्र है इसलिये यह ब्रह्म भूमि कहा गया है । यहाँ शुभ कर्म किये जाते हैं उनका फल ही स्वर्ग में प्राप्त होकर भोगा जाया करता है ॥६२॥ शरीर में रोगादि की अनक बाधाएँ साथ रहा करती हैं अतएव जब तक इस शरीर की स्वस्थता है तभी तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए । जब यह शरीर रोग एवं वाढ वय आदि से अस्वस्थ हो जाता है तो फिर अत्यन्त यत्न करने पर भी कुछ भी करने का उत्साह एवं शक्ति नहीं रहा करती है ॥११॥ यह शरीर तो अध्रुव अर्थात् अनित्य ही है इस अध्रुव शरीर से जो अध्रुव का ही अर्थात् अनित्य नाशवान् वस्तुओं का ही साधन किया करता है उसका ध्रुव मोक्ष आदि तो परिभ्रष्ट हो ही जाता है क्योंकि उसने उनके प्राप्त करने का कोई प्रयत्न ही नहीं किया है और अध्रुव है जिसके प्राप्त करने में सारा जीवन व्यय कर दिया वह तो अध्रुव अर्थात् अनित्य ही है अर्थात् नष्ट हो ही जाता है । तात्पर्य यह है कि इस तरह उसे जीवन में कुछ भी सार सम्प्राप्त नहीं होता है और वह यो ही चला जाता है ॥६४॥ इस आयु के खण्ड खण्ड तेरे आगे निपतित

होते चले जाते हैं अर्थात् टुकड़े २ करके यह आयु समाप्त देखते-देखते होती रहा करती है । रातदिन के बहान से यह आयु ही तो समाप्त हुआ करती है किन्तु किम लिये तुझे इसका ज्ञान नहीं होता है ? ॥६५॥ जबकि यह नहीं जाना जाता है कि यह मृत्यु किस समय में किसकी हो जायगी तो जब अचानक ही मृत्यु प्राप्त होगी तो उस समय में कौन तुझे धीरज प्राप्त करायेगा ? ॥६६॥ उस समय में तो यहा पर ही यह सभी कुछ ठाट-बाट छोड़कर अकेले ही निश्चय रूप से जायगा । इसलिये उस समय के वास्ते पायेय के लिये इस धन को क्यों नहीं दान किया करता है ? ॥६७॥ जो तू यहा दान धर्म करता है वही तुझे उस यमपुर के महामार्ग में पायेय का काम देता है । जो दान धर्म के पायेय को ग्रहण करने वाले व्यक्ति हैं वे मुख पूर्वक उस महामार्ग में जाया करते हैं । इसके अभाव में यह जन्म पायेय से रहित होता हुआ उस मार्ग में बलेश प्राप्त किया करता है ॥६८॥

येषा द्विजेन्द्रवाहित्री पूर्णभाडा तु गच्छति ।

स्वर्गदेशस्य पुरतास्तेषा लाभः पदेपदे ॥६९॥

इति ज्ञात्वा नरः पुण्यं कुर्यात्पाप विवर्जयेत् ।

पुण्येन याति देवत्वमपुण्यान्नरक व्रजेत् ॥१००॥

ये मनागपि देवेश प्रपन्नाः शरण शिवम् ।

तेपि घोर न पश्यति यमस्य वदनं नरा ॥१०१॥

किं तु पापमहाघोरं किञ्चित्काल शिवाज्ञया ।

भवतिप्रेत राजानस्ततो याति शिवालयम् ॥१०२॥

ये पुनः सर्वभावेन प्रतिपन्ना महेश्वरम् ।

न ते लिप्यति पापेन सक्षपत्रमिवाभसा ॥१०३॥

तस्माद्विवर्धयेद्भक्तिमीश्वरे सतत बुधः ।

तन्माहात्म्यविचारेण भवदोषविरागतः ॥१०४॥



पापानि पच परमार्थतयैव पार्थ  
 दुःख प्रदानि सुचिर पितृ राजलोके ।  
 अन्यानि यानि चिरकालभयानकानि  
 यवतु न याति किल तानि परिस्फुटानि ॥१०५॥

जिनकी द्विजेन्द्र वाहिनी पूर्ण भाण्ड वाली जाती है उनको स्वर्ग देश के भागे पद-पद पर लाभ होता है ॥६६॥ यह जानकर मनुष्य को पुण्य ही करना चाहिए और पाप को विवर्जित कर देना चाहिए । पुण्य से मानव देवत्व को प्राप्त होता है और अपुण्य अर्थात् पाप से नरक में जाया करता है ॥१००॥ जो छोटा भी देवों के ईश शिव की शरण में प्रपन्न हो गया है वे मनुष्य भी यमराज के महा घोर मुख को नहीं देखा करते हैं ॥१०१॥ किंतु महान् घोर पापों से शिव की आज्ञा से कुछ काल पर्यन्त प्रेत राजा होते हैं और इसके पश्चात् शिव के आलय को चले जाया करते हैं ॥१०२॥ जो सदाभी भाव से भगवान् महेश्वर की प्रपत्ति में प्राप्त हो जाते हैं वे पाप से जल से पद्मपत्र की भाँति लिप्त नहीं हुआ करते हैं ॥१०३॥ इसलिये युध पुरुष को ईश्वर में अपनी भक्ति निरन्तर बढ़ानी चाहिए । यह भय दोष के विराग से अथवा उससे माहात्म्य को विचार करके शिव में भक्ति भाव करना चाहिए ॥१०४॥ हे पाप ! पाँच पाप पपमायता से ही पितृराज के लोक में अधिव समय तक लक्षप्रद होते हैं । अन्य जो भी पाप हैं वे चिरकाल तक भयानक होते हैं वे परिस्फुट रूप से कहने में नहीं आते हैं ॥१०५॥

### ॥ शकट व्रत का माहात्म्य ॥

यदेतत्ते समाख्यात गभीर नरबाण्वम् ।  
 व्रतोपवासनियमप्सवेमोत्तीर्यन्त सुखम् ॥१॥  
 दुर्लभ प्राप्य मानुष्य विद्युत्पतनचञ्चलम् ।  
 तथात्मान समादध्याद्भ्रश्यते न पुनर्यया ॥२॥  
 दानव्रतमयी कीर्तिर्यस्य स्यादिह देहिना ।  
 पनलोवेर्जिष स तथा ज्ञापते जातिवर्द्धन ॥३॥

ज्ञायते नेह नामुत्र व्रतस्वाध्यायवर्जित ।

पुरुष पुरुषव्याघ्र तस्माद्व्रतपरो भवेत् ॥४॥

अत्र ते कथयिष्यामि इतिहास पुरातनम् ।

सिद्धेन सह सवादमवत्या ब्राह्मणस्य हि ॥५॥

योगाद्विसिद्ध्या ससिद्ध कश्चित्सिद्धो महीतलम् ।

चचार विकृत कृत्वा वपु परमभीषणम् ॥६॥

निगीर्णदतो लम्बोष्ठः पिगाक्षस्तनुमूढंज ।

त्रुटितं कर्णो दुर्वण, शीर्णवस्त्रो महोदरः ॥७॥

चिपिटाक्ष स्फुटितपाज्जघाढघः कृशकूर्परः ।

दिश पश्यति सहृष्टो वभ्रामोद्भ्रातचित्तवत् ॥८॥

इस अध्याय में शकट व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है ।

श्रीकृष्ण ने कहा—आपको यह गम्भीर नरको के सागर का वर्णन करके बता दिया है । जिस समुद्र को व्रत-उपवास और नियमों के प्लव (नौका) से सुख पूर्वक उत्तीर्ण किया जाता है ॥१॥ यह मनुष्य का जीवन अत्यन्त दुर्लभ होता है इसको प्राप्त करके जो कि विद्युत् के पतन के समान चंचल हैं उस प्रकार से अपने आपको सावधान रखना चाहिए जिससे फिर भ्रष्ट न होने पावे ॥२॥ इस सत्तार में जिस देहधारी की व्रत और दान से परिपूर्ण कीर्ति विद्यमान रहा करती है वह परलोक में भी उसके द्वारा शक्ति का वर्धन करने वाला जाना जाता है ॥३॥ हे पुरुष व्याघ्र ! व्रत और स्वाध्याय से रहित पुरुष इस लोक में और परलोक में नहीं जाना जाता है । इससे व्रत परायण होना ही चाहिए ॥४॥ इस विषय में मैं तुमको एक अनि रमणीय पुराना इतिहास कहता हूँ जो कि अवन्ती पुरी में एक ब्राह्मण का सिद्ध के साथ सम्वाद हुआ था ॥५॥ योगाद्वि सिद्धि से ससिद्ध कोई सिद्ध अपने शरीर को अत्यन्त विकृत और परम भीषण बना कर भूतल में विचरण किया करता था ॥६॥ निगीर्ण दाँतो वाला—लम्बे होठों से युक्त पीली आँखों वाला—बड़े केशों से समन्वित—एक कान से त्रुटित—दुर्वण—शीर्ण वस्त्रों वाला और महान् उदर वाला एवं चिपिट नत्रों वाला—स्फुटित पैर और आँखों से युक्त—कृशकूर्पर वाला तथा

दिशाओ को देखकर परम प्रसन्न होता हुआ एक उद्धान्त चित्त वाले की तरह ध्रमण किया करता था ॥७-८॥

मूलजालिकविप्रेण दृष्टः पृष्ठश्च को भवान् ।

कदा स्वर्गात्समायातः केन कार्येण मे वद ॥८॥

कचिद्दृष्टा त्वया रभा भाभासितदिगतरा ।

चित्तसमोहनकरी देवानामेकमुन्दरी ॥९॥

गत्वा मद्बचनाद्वाच्या निर्वाच्या दोषदर्शिभिः ।

आवत्यस्त्वा कुशलिनीं पृच्छति स्म द्विजोत्तमः ॥११॥

सिद्धः प्रसिद्ध त विप्रं प्राहेद विस्मयान्वितः ।

कथं त्वयाह विज्ञातं स्वर्गादिभ्यागतं स्फुटम् ॥१२॥

ब्राह्मणस्त मथोवाच विज्ञातोऽसि भया यथा ।

तथा तेऽहं प्रवक्ष्यामि क्षीणाघौषावधारय ॥१३॥

गात्रत्रय विरूप स्याद्वितीय वा स्वरूपतः ।

दृष्ट्वा सर्वांग वैरूप्यं विज्ञातोऽसि ततो भया ॥१४॥

मूल जालिक नाम वाले विप्र ने उसको देखा तो उसने उससे पूछा—  
आप कौन हैं ? आप स्वर्ग से कब आये हैं ? आप यहाँ किस कार्य से आये हैं—यह सब मुझे बताइये ॥८॥ कथा आपने कहीं पर रम्मा को देखा है ? जो कि अपनी दीप्ति से दिगान्तरो को भासित करने वाली है । तथा चित्त के समोहन कर देने वाली है और देखों की एक ही मुन्दरी है ॥९॥ आप जाकर मेरे वचन उमने कह देंगे जो कि दोषदर्तियों के के द्वारा निर्वाच्या है । एक अवन्ती पुरी का रहने वाला ब्राह्मण तुम्हारी कुशलता पूछता था ॥११॥ वह मित्र विस्मय में भरकर उस प्रसिद्ध विप्र से यह बोला—आपने मुझे कैसे जान लिया है कि मैं स्वर्ग से स्पष्टतया आया हूँ ॥१२॥ इसके अनन्तर उस ब्राह्मण ने उससे कहा कि मैंने त्रिम तरह से तुमको जान लिया है । अब मैं उगी को आपको हे क्षीण पापो के समूह वाले । बताना हूँ आप अवधारण करिये ॥१३॥ तीन पात्र तो विरूप हैं अथवा द्वितीय स्वरूप में है । आपके गर्वांगों को विरूपता को दग्ध कर मैंने आपको पहिचान लिया है ॥१४॥

दुल्लब्धा प्रकृति साक्षादनुभूतवरी भवेत् ।  
 प्रकृतेरन्यथाभाव सर्वथा लक्ष्यते जनं ॥१५॥  
 विप्रस्यैववच श्रुत्वा जगामादर्शनं धनं ।  
 पुन कंश्चिदहोरात्रं राजगाम स ता पुरीम् ॥१६॥  
 मूलजालकविप्रेण पृष्ट प्राहामरावतीम् ।  
 गतोऽह पृष्टवास्तत्र रमा विभ्रमकारिणीम् ॥१७॥  
 शक्रस्यावसरे वृत्ते व्रजन्त्या स्वगृह मया ।  
 त्वत्सदेश समाख्यात सावदत्त्वो न वेधि तम् ॥१८॥  
 विद्याया कलया चापि पौरुषेण यत्नेन च ।  
 तमसा वा पुमान्मर्त्यो दिवि विज्ञायते चिरम् ॥१९॥  
 ब्राह्मणस्तमथोवाच मुग्धा दग्धग्निसम्भवा ।  
 न भक्षयामि शकट व्रतेनैतेन वेत्ति माम् ॥२०॥  
 तस्यैतद्वचन श्रुत्वा स सिद्ध सुविशुद्धधी ।  
 प्रहस्यामग्न्य त विप्र जगामादर्शनं पुन ॥२१॥

साक्षात् दुर्लब्धा प्रकृति अनुभूत करने वाली होती है । प्रकृति का जो अन्यथा भाव है वह मनुष्यो के द्वारा लक्षित हो जाया करता है ॥१५॥ विप्र के इस प्रकार के वचनों का श्रवण कर वह सिद्ध धीरे से अदर्शन की प्राप्ति होगया था । फिर कुछ अहोरात्र के पश्चात् उस पुरी में वह आया था ॥१६॥ मूल जालिक विप्र के द्वारा पूछे गये उसने कहा—मैं अमरावती को गया था और वही पर मैंने विभ्रम कारिणी रम्भा से पूछा था ॥१७॥ इन्द्र की सभा का समय समाप्त होजाने पर जिस समय वह अपने घर को जा रही थी मैंने उस समय में आपका सन्देश उससे कहा था । उसने कहा मैं उसको नहीं जानती हूँ ॥१८॥ विद्या से—कला से—पौरुष से और व्रत से अथवा तप से मनुष्य पुमान् स्वर्ग में चिरकाल में जाना जाया करता है ॥१९॥ इसके पश्चात् ब्राह्मण ने उस सिद्ध से कहा—वह दग्ध अग्नि से उत्पन्न होने वाली मुग्धा 'मैं शकट को नहीं खाता हूँ—इस व्रत से मुझको जानती है ॥२०॥ उस

ब्राह्मण के इस वचन को सुन कर सुविशुद्ध बुद्धि वाला वह सिद्ध होकर उस विप्र को आमन्त्रित कर फिर अदर्शन को प्राप्त हो गया था ॥२१॥

कदाचिच्चरता तेन स्वर्गमार्गं यदृच्छया ।

दृष्ट्वा रभा द्विजप्रोक्तं सर्वमेव निवेदितम् ॥२२

को न जानामि त विप्र शकटव्रतचारिणम् ।

भूलजालैर्वर्तयत महाकालवनाश्रयम् ॥२३

दर्शनादथ सभापादुपकारात्सहासनात् ।

चतुर्धा स्नेहनिर्वधो नृणां सजायतेऽधिकः ॥२४

न दर्शनं न सभाया कदाचित्सह तेन मे ।

नामश्रवणमात्रेण स्नेहः सदृशितो महान् ॥२५

इत्येवमुक्त्वा रभोरू रभा जगभारिणोक्तिम् ।

विस्मयोत्फुल्लनयना जगाम गजगामिनी ॥२६

गत्वा निवेदयामास स्नेहव्रतविचेष्टितम् ।

पुरतो रुद्धहृदया ब्राह्मणस्य च धीमत ॥२७

शक्र प्रोवाच चार्द्वगी गीर्वाणहृदयगमाय ।

किमानयामि त विप्र समीप तव सुव्रतम् ॥२८

किसी समय यदृच्छा से स्वर्ग के मार्ग में विचरण करते हुए उसने रम्भा को देखा और उसने द्विज के द्वारा कहा हुआ समस्त वृत्तान्त उससे निवेदन कर दिया था ॥२२॥ रम्भा ने कहा—मैं उस शकट व्रत के करने वाले ब्राह्मण को नहीं जानती हूँ कि वह कौन है । जोकि भूल जाओ वा अपवर्त्तिन करने वाला है और महाकाल के वन में आश्रय करने वाला है ॥ २३ ॥ दशन से—सम्भाषण करने से—उपकार करने से—साथ बैठने से चार प्रकार से ही मनुष्यों का अधिक निर्वन्ध होता है ॥२४॥ न तो कभी दर्शन ही हुआ और न कभी सम्भाषण हुआ तथा किसी समय साथ रहना भी मेरा उमर साथ नहीं हुआ है । केवल नाम के श्रवण से ही ऐसा महान् स्नेह दिखाया है—इतना ही कहकर रम्भा ने समीप उग्राँ वाली जगभारिणाऽन्वि रम्भा विस्मय से उत्फुल्ल नयनी वाली गज गीर्वाणि गमन करत वाली चली गई थी

॥२५-२६॥ उमने जाकर इन्द्र के आगे रुद्ध हृदय वाली रम्भा ने धीमान् ब्राह्मण का स्नेह व्रत का विचेष्टित निवेदन कर दिया था ॥२७॥ इन्द्र ने सुन्दर अगो वाली और देवी की हृदयङ्गमा रम्भा से कहा—क्या उस सुव्रत विप्र को तुम्हारे पास ले आवें ? ॥२८॥

दिव्यमाल्यावरधर दिव्यस्त्रगनुलेपनम् ।

विमानवरमारोप्य दर्शयामास त पुन ॥२९॥

शकटव्रतमाहात्म्यमित्येतत्त मयोदितम् ॥३०॥

राज्यश्रिय जगति सर्वजनोपभोग्यामा-

प्नोति शक्रशिवकेशवयोनिवासम् ।

नाप्राप्यमस्ति भुवने सुदृढव्रताना

तस्मात्सदा व्रतपरेण नरेण भाव्यम् ॥३१॥

इसके पश्चात् दिव्य माल्य और दिव्य वस्त्र धारण करने वाले दिव्य स्त्रक् और अनुलेपन वाले उस विप्र को एक श्रेष्ठ विमान पर चढ़ा कर दिखलाया था ॥२९॥ यह शकट व्रत का माहात्म्य है जोकि मैंने तुमको बताया है ॥३०॥ व्रत के प्रभाव से मनुष्य सब जनो के उपभोग करने के योग्य राज्य श्री को प्राप्त किया करता है । इस व्रत के प्रभाव से इन्द्र शिव और केशव के निवास स्थान की प्राप्ति कर लेता है । जो सुदृढ व्रत वाले हैं उनको भुवन में कुछ भी अप्राप्य तो होता ही नहीं है । इसीलिए मनुष्य को सदा व्रत परायण अवश्य ही होना चाहिए ॥३१॥

॥ तिलक व्रत का माहात्म्य ॥

ब्रह्म श केशवादीना गौर्या गणपतेस्तथा ।

दुर्गासूर्याग्निमोमाना व्रतानि मधुसूदन ॥१॥

शास्त्रातरेषु दृष्टान तव बुद्धिगतानि च ।

तानि सर्वाणि मे देववद देवकिनन्दन ॥२॥

प्रतिपत्क्रमयोगेन विहिता यस्य या तिथिः ।

देवस्य तस्या यत्कार्यं तदशेषेण कीर्तय ॥३॥

वसते किशुकाशोकशोभने प्रतिपत्तिथिः ।

शुक्ला तस्या प्रकुर्वीत स्नानं नियमतत्परः ॥४॥

नारी नरो वा राजेन्द्र सत्पर्यं पितृदेवताः ।

नद्यास्तीरे तडागे वा गृहे वा नियतात्मवान् ॥५॥

पिष्टातकेन विलिखेद्वत्सरं पुरुषावृत्तिम् ।

ततश्चन्दनचूर्णेन पुष्पधूपादिनार्चयेत् ॥६॥

दीपैश्चापि सन्वेद्यैः पूजयेद्वत्सरं तदा ।

मासतु नामभिः पञ्चाश्रमस्यारातयोजितैः ।

पूजयेद्ब्राह्मणान्विद्वान्मन्त्रवेदोदितं शुभैः ॥७॥

इस अध्याय में तिथि का व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है ।  
 युधिष्ठिर ने कहा—हे मधुसूदन ! ब्रह्मा—ईश—केशव आदि का तथा  
 गौरी और गणपति का एक दुर्गा—सूर्य—अग्नि और सोम का व्रत शास्त्रा-  
 न्तरो में देखा गया है और ये सब धन आपके बुद्धिगत ही हैं । हे देववि-  
 नन्दन ! हे देव ! उन सब को कृपा कर मुझे बताइये ॥१-२॥ प्रति पक्ष  
 तिथि के धर्म से जिस देवता की जो भी तिथि हो उस तिथि में देवता  
 का जो भी कार्य हो वह पूर्ण रूप से वर्णन कीजिएगा ॥३॥ श्रीकृष्ण  
 ने कहा—सन्त ऋतु में जो कि ठाक और अशोक के वृक्षों में परम  
 शोभाशाली ऋतु होती है प्रतिपत्ति तिथि यह भी चुनना हो उसमें स्नान  
 नियम से तत्पर होकर करना चाहिए ॥४॥ हे राजेन्द्र ! नारी हो  
 अपना नर हो पहिले विनृणन का धनी भाति तर्पण कर । नियत आत्मा  
 यात्रा होकर नदी के तट पर—नद्याग पर अथवा गृह में तर्पण करना  
 चाहिए ॥५॥ युधिष्ठिर ने सगर को एक पृथ्वी की आहुति दाना दिया  
 चाहिए । फिर उसका चन्दन का गूरा और पुष्पाशन गन्ध आदि  
 पूजन के समस्त उपचारों के द्वारा अर्चन करना चाहिए ॥६॥ उस  
 समय वाटर की दीप और नैऋत के द्वारा पूजा करनी चाहिए । माग-

ऋतु के नामों से आराधन योजियो के द्वारा पीछे नमस्कार करके विद्वान् ब्राह्मणों की शुभ वैदिक मन्त्रों द्वारा पूजा करनी चाहिए ॥७॥

सवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीडावत्सरोऽ-

भित्सरोऽसि उपसस्ते कल्पता

अहोरात्रास्त कल्पतामघमासस्ते

कल्पता मासास्त कल्पतामृत

वस्त कल्पन्ता सवत्सरस्ते कल्पताम् ॥८॥

एवमभ्यर्च्य वासोभि पश्चात्तमभिवेष्टयेत् ।

कालोद्भूतैर्मूलफलैर्वैद्यैर्मोदकादिभि ॥९॥

ततस्त प्राथयेत्पश्चात्पुर स्थित्वा कृताजलि ।

भगवस्त्वत्प्रसादेन वर्षं शुभदमस्तु मे ॥१०॥

एवमुक्त्वा यथाशक्ति दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।

ललाटपट्टे तिलकं कुर्याद्वदनपकजम् ॥११॥

ततः प्रभृत्यनुदिनं तिलकालकृतं मुखम् ।

धाय सवत्सरं यावच्छशिनेव नमस्तलम् ॥१२॥

एव नरो वा नारी वा व्रतमेतस्समाचरेत् ।

सदैव पुरुषं व्याघ्रं भोगान्भुवि भुनक्त्यसौ ॥१३॥

भूता प्रेता पिशाचाश्च दुर्वारा वैरिणो ग्रहा ।

निरयका भवत्येते तिलकं वीक्ष्य तत्क्षणात् ॥१४॥

आप सवत्सर है—परिवत्सर है—इडावत्सर है—अभितसर है—आपके उपा कल्पित होव । आपके अहोरात्र कल्पित होवें । आपके अघ मास कल्पित होव । आपके अहोरात्र अघमास मास और सवत्सर कल्पित होवें । इस प्रकार से उसकी अभ्यचना करके वस्त्रों से उसको अभिवेष्टित करना चाहिए । समय पर उत्पन्न होने वाले फल—मूल—नैवेद्य और मोदक आदि को समर्पित करे ॥८॥ इसके पश्चात् उसकी प्रायना करनी चाहिए और उसके आगे हाथों को जोड़ कर स्थित हावे । हे भगवन् ! आपके प्रसाद से मुझ यह पूरा वर्ष शुभ देने वाला होवे ॥१०॥ इस प्रकार से कह कर यथा शक्ति ब्राह्मण के लिये दक्षिणा देनी



चाहिए । तलाट पट्ट में चादन पकज तिलक करे । उस दिन से लेकर अनुदिन मुख को तिलक से अलंकृत करना चाहिए ॥११॥ जब तक सम्बत्सर हो तब तक नभस्तल को शशि की भाँति धारण करना चाहिए इस प्रकार से नर या नारी इस व्रत का समाचरण करे । हे पुरुषव्याघ्र । यह व्यक्ति सदा ही भूतल में भोगों का उपभोग करता है ॥१२-१३॥ भूत प्रेत और पिशाच दुर्वाह शत्रुगण और ग्रह उसी क्षण में तिलक को देख कर ये सब निरर्थक हो जाया करते हैं ॥१४॥

पूर्वमासीन्महीपालो नाम्ना शत्रु जयो जयी ।

चित्रलेखेति तस्याभूद्भार्या चारित्रभूषणा ॥१५॥

तया व्रतमिदं चैत्रे गृहीतं द्विजसन्निधौ ।

संवत्सर पूजयित्वा घृत्वा हृदि जनार्दनम् ॥१६॥

असूयु क्षेप्तुकामो वा समागच्छति यः पुर ।

प्रयाति प्रियकृत्तस्या दृष्ट्वा मुखमधोमुख ॥१७॥

सपत्नीदर्पापहरा वशीकृतमहीतला ।

भर्तुं रिष्टा प्रहृष्टा च सुखमास्ते निराकुला ॥१८॥

तावत्करेणाभिभूतो भर्ता पुत्र सवेदन ।

शिरोऽर्या नाश प्रयात सुहृदा दुःखदायक ॥१९॥

धर्मराजपुरं प्राप्नु सर्वभूतापहारक ।

तस्मि क्षणे महाराज धर्मराजस्य विवरा ॥२०॥

तस्य द्वारमनुप्राप्ता प्रवेष्टु गृहमञ्जसा ।

शत्रु जय समानेतु धालमृत्युपुरं सरा ॥२१॥

पहिले जब मही महीपाल नाम धाला राजा था । उसकी चारित्र भूषण वाली चित्रलेखा नाम की भार्या थी ॥१५॥ उगन चान्द्रण की मन्त्रिणि में चैत्र के महीर में दम दम को ग्रहण किया था और एवं मन्वन्तर पर्यन्त पूजन करके हृदय में भगवान् चादन का ध्यान किया था ॥१६॥ कोई भी अमूया (निन्दा) करने वाला शपथ करा भी नामना माना जन उमरा आगे आता था तो उमरा मय दण्ड कर नीचे का मुँह करके उमरा प्रिय होकर यत्ना

जाया करता था ॥१७॥ वह चित्रलेखा अपनी सपत्नियों के दर्प को हरण करने वाली और समस्त महीतल को यशोकृत करने वाली थी । परम प्रसन्न और अपने स्वामी की अत्यन्त इष्ट होकर निराकुल मुख पूर्वक रहा करती थी ॥१८॥ तब तक कर से अभिभूत स्वामी और वेदना से युक्त पुत्र शिर की आर्ति (दुःख) से नाश को प्राप्त होगया जोकि सुहृदों को बहुत ही दुःख दायक हुआ था ॥१९॥ उसी क्षण में समस्त प्राणियों के अपहरण करने वाले महाराज धर्मराज के सेवक धर्मराज के पुर को प्राप्त करने के लिए उसके द्वार पर आये थे जो कि तुरन्त ही उनके घर में प्रवेश करने वाले थे । वे बाल मृत्यु को आगे लिये हुए थे और शत्रुञ्जय को लेने को आये थे ॥२०॥

पार्श्वस्थिता चित्रलेखा तिलकालकृताननाम् ।

दृष्ट्वा प्रनष्टसकल्पा परावृत्य गताः पुनः ॥२१॥

गतेषु तेषु स. नृप पुत्रेण सह भारत ।

नीरुजो बुभुजे भोगा-पूर्वकर्माजिताञ्छुभान् ॥२२॥

एतद्ब्रत महाभाग कीर्तित ते महोदयम् ।

शकरेण समाख्यातं मम पूर्व युधिष्ठिर ॥२३॥

एतन्निलोकतिलकालकभूषण ते

ख्यात व्रत सकलदुःख हरं पर च ।

इत्य समाचारति यः स सुख विहृत्य

मर्त्यं प्रयाति. पदमापदि पद्मयोनेः ॥२४॥

उस समय उसके समीप में स्थित तिलक से अलकृत मुख वाली चित्र-लेखा वहाँ पर थी उसको देख कर वे अपने साथ लिवा ले जाने वाले सकल्प को नष्ट करके पुन वापिस लौट कर चले गये थे । उनके चले जाने पर हे भारत ! वह राजा पुत्र के साथ रोग रहित होकर पूर्व कर्म से अर्जित शुभ भोगों को भोगने लगा था ॥२२-२३॥ हे महाभाग ! यह महान् उदय वाला व्रत तुमको बतला दिया है । हे युधिष्ठिर ! मुझे पहिले शकर ने यह व्रत कहा था ॥२४॥ यह त्रिलोक तिलकालक भूषण मैंने तुम से कह दिया है । यह व्रत समस्त दुःखों का हरने वाला

प्रधान है । जो कोई भी पुरुष इस व्रत का समाचरण किया करता है वह मनुष्य सुख पूर्वक विहार करके मृत्यु होने पर भगवान् पद्मयोनि के पद को प्राप्त किया करता है ॥२५॥

### ॥ अशोक व्रत का माहात्म्य ॥

आश्वयुच्छुक्लपक्षस्य प्रथमेऽर्हति दिनोदये ।

अशोक पूजयेद्दक्षं प्ररूढशुभपल्लवम् ॥१॥

विरूढं सप्तधान्यैश्च गुणैर्कर्मोदकं शुभैः ।

फलैः कालोद्भूतैर्दिव्यैर्त्रालिकैरैः सदाडिमैः ॥२॥

युष्पधूपादिना तद्वत्पूजयेत्तद्दिनेऽनघ ।

अशोक पाठवश्चेष्टं शोक नाप्नोति कुत्रचित् ॥३॥

पितृभ्रातृपतिश्चत्थश्चशुराणां तथैव च ।

अशोक शोकजमनो भव सर्वत्र न. कुले ॥४॥

इत्युच्चार्य ततो दद्यादध्यं श्रद्धासमन्वितम् ।

पातकाभिरलकृत्य प्रच्छाद्य शुभवाससा ॥५॥

दमयती यथा म्वाहा यथा वेद्वती सती ।

तथाशोकव्रतादस्माज्जायते पतिवल्लभा ॥६॥

वने व्रजत्या सटर्मः सीतया सप्रदर्शित ।

दृष्ट्वाऽशोक वने प्रार्थं पल्लवालकृतावरम् ॥७॥

कृत्वा समीपे भर्तारं देवरं च तिलाक्षतैः ।

दीपालंकृतनंवेद्यधूपसूत्रफलाञ्चनैः ॥८॥

अर्चयित्वा हविर्तोऽग्नौ रक्ताशोवो मुघिष्ठिर ।

मयित्वा प्राञ्जलिभूत्वा शृण्वतो राघवस्य च ॥९॥

इमं अध्याय मे अशोक व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है ।

धीश्वर ने कहा—आदित्य मास के शुक्ल पक्ष में, प्रथम दिन मे दिन के उदय होने के समय मे ही प्रष्ट शुभ पल्लवों मे मयन्वित अशोक गृध्र का पूजन करना चाहिए ॥१॥ विरूढ़ किये हुए मास प्रकार के धान्यों से—

गुणको से तथा शुभ मोदको के द्वारा एव फल-उभ समय मे समुत्पन्न होने वाले दिव्य नारियलो से जो कि दाडिमो के सहित हो-पुष्प-धूप-दीप-गन्ध-अक्षत आदि सम्पूर्ण पूजन करने के समुचित उपचारो से हे अनघ ! उसी की भांति उस दिन म उसका पूजन करना चाहिए । हे पाण्डव श्रेष्ठ ! वह अशोक की पूजा करने वाला व्यक्ति कही पर भी कभी शोक को प्राप्त नहीं हुआ करता है अर्थात् उसे कभी शोक होने का अवसर ही नहीं आता है ॥२-३॥ अशोक का अर्चन करने के समय मे पूजा करने वाले को उससे प्रार्थना करनी चाहिए—हे अशोक ! आप हमारे कुल म शोक के शमन करने वाले सबल होवें ॥४॥ यह प्रार्थना करके इसके अन तः फिर अशोक को अर्घ्य दें जो कि पूर्ण श्रद्धा के भाव से समर्पित होना चाहिए । पताकाओ से खूब अच्छी तरह अलंकृत करके सुन्दर वस्त्र से उसका प्रच्छादन करना चाहिए ॥५॥ जिस प्रकार से राजा नल की स्त्री दमयंती थी—और स्वाहा तथा सती देववती थी वैसे ही इस अशोक के व्रत से स्त्री पनि वल्लभा हो जाया करती है ॥६॥ वन मे गमन करने वाली जनक नन्दिनी सीता ने सद्धर्म भली भांति दर्शित किया था । उमने वन मे अशोक वृक्ष को देख कर जो कि पल्लवो से अलंकृत अम्बर वाला था समीप मे स्वामी को और देवर को स्थित करके तिल-अक्षत-दीप-अलंकार-नैवेद्य-धूप-सूत्र और फलो से जो अर्चन के उपचार थे अशोक का पूजन करके हे युधिष्ठिर ! उस रक्ताशोक से जानकी ने प्रार्थना की थी । श्रीराघवेन्द्र के श्रवण करते हुए मैथिली ने हाथ जोडकर यह प्रार्थना की थी ॥७६॥

चिर जीवतु मे वृद्ध श्वशुर कोशलेश्वर ।

भर्ता मे देवराश्रय जीवतु भरतादय ।

कोशल्यामपि जीवन्ती पश्येयमिति मैथिली ॥१०॥

ययाचे त महाभागा द्रुम सत्योपयाचनम् ।

प्रदक्षिणमुपावृत्य ततस्ते प्रययु पुन ॥११॥

एवमभ्यापि या नारी पूजयेद्भूवि त नगम् ।

तिलतडुलसमिश्रयवग्रोधूमसर्पपै ॥१२॥

क्षमाप्य वन्दयेन्मूलं पादपं रक्तपल्लवम् ।  
 मन्त्रेणानेन कीर्तय प्रणम्य स्त्री पतिव्रता ॥१३  
 महावृक्ष महाशाख मकरध्वजमन्दिर ।  
 प्रार्थये त्वां महाभाग वनोपवनभूषण ॥१४  
 एवमाभाष्य तं वृक्षं दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ।  
 सखीभिः सहिता साध्वी ततः स्वमवन व्रजेत् ॥१५  
 याः शोकनाशनमशोकतरुं तरुण्यः  
 संपूजयति मुसुमाक्षतधूपदीपैः ।  
 ताः प्राप्य सौख्यमतुलं भुवि भर्तृजातं  
 गौरीपद प्रमुदिताः पुनराप्नुवति ॥१६

भूतल में स्वामी से प्राप्त होने वाला अतुल सुख प्राप्ति करके फिर प्रमुदित होकर गौरी के पद को प्राप्त किया करती हैं ॥१६॥

## ॥ बृहत्तपोव्रत का माहात्म्य ॥

अथ पापापहं वक्ष्ये बृहद्व्रतमनुत्तमम् ।  
 सुरासुरमुनीनां च दुर्लभं विधिना शृणु ॥१॥  
 पर्वण्याश्वयुजस्याते पायसं घृतसयुतम् ।  
 नक्तं भुञ्जीत शुद्धात्मा ओदनं वंक्ष्वान्वितम् ॥२॥  
 आचम्याथ शुचिभूत्वा विल्वजं दत्तधावनम् ।  
 भक्षयित्वा महादेवं प्रणम्येदमुदीरयेत् ॥३॥  
 अहं देवव्रतमिदं कर्तुं मिच्छामि शाश्वतम् ।  
 तवाज्ञया महादेव यथा निर्वहते कुरु ॥४॥  
 इत्येवं नियमं कृत्वा यावद्वर्षाणि षोडश ।  
 तिथयः प्रतिपत्पूर्वा भजिष्यामीत्यनुक्रमात् ॥५॥  
 ततो मागशिरे मासि प्रतिपद्यपरेऽहनि ।  
 पृष्ट्वा गुरुं चोपवासं महादेवं स्मरन्मुहुः ॥६॥  
 स्नात्वा देवं समभ्यर्च्य रात्रौ प्रज्वाल्य दीपकान् ।  
 यमुनां च महादेवं नत्वा पश्चात्प्रिमक्षयत् ॥७॥  
 महादेवरता विप्रान्सपत्नीकान्यतव्रतान् ।  
 षोडशाष्टौ तदर्धं वा एकं वा शक्त्यपेक्षया ॥८॥  
 आमत्र्य स्वगृहं गत्वा महादेवं स्मरन्क्षिती ।  
 शुचिवस्त्रास्तृतायां तु निराहारो निशि स्वपेत् ॥९॥

इस अध्याय में बृहत्तपोव्रत के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—इसके अनन्तर मैं सम्पूर्ण पापों के अपहरण करने वाले सर्वोत्तम बृहद्व्रत के विषय में वर्णन करता हूँ । यह व्रत सुर और असुर और मुनिगण सब के लिये ही अत्यन्त दुर्लभ है । अब इसे विधि पूर्वक श्रवण करो ॥१॥ आश्विन मास के अन्तिम पर्व में घृत से

समुक्त पायस रात्रि के समय में खानी चाहिए । शुद्ध आत्मा वाले को वैश्वान्वित ओदन का भोजन करना चाहिए ॥२॥ आचमन करके और परम पवित्र होकर वित्त्व वृक्ष की दांतुन चबा कर श्रीमहादेव को प्रणाम करके यह बहे ॥३॥ मैं इस शाश्वत देव व्रत को करने की इच्छा करता हूँ । हे महादेव ! आपकी आज्ञा ऐसी है उसी कारण से इसे मैं करना चाहता हूँ जिस तरह से इस व्रत का पूर्ण साग सम्पादन हो जावे और मैं पूरी तरह से इसका निर्वाह कर लूँ आप ऐसी कृपा करें ॥४॥ इस प्रकार से नियम करके जब तक सोनह वर्ष हो पहिली प्रतिपदा तिथियो का भजन करूँगा—इस अनुक्रम से करे ॥५॥ इसने अनन्तर मार्गशीर्ष मास में प्रतिपदा में दूसरे दिन गुरु से उपवास के विषय में पूछकर श्रीमहादेव का बार-बार स्मरण करे । स्नान करके देवता की अर्चना करे । रात्रि में दीपकों की प्रश्वलित करके यमुना और महादेव को प्रणाम करके पीछे निर्माग्नित करना चाहिए ॥६-७॥ श्रीमहादेव में रति रखने वाले—यत-व्रत विप्रों को जो अपनी पत्नियों के सहित हों, सोनह—आठ या इमने भी आधे चार या जैसी शक्ति हो उसने अनुमार एक ही विप्र को आमन्त्रित करके अपने घर जावे । श्रीमहादेव का स्मरण करता हुआ रात्रि में पवित्र वस्त्र के बिछोने वाली भूमि में निराहार नपन करता चाहिए ॥८-९॥

### ॥ यमद्वितीया-व्रत का माहात्म्य ॥

मरयन्थास्तिषयः पार्थ द्वितीयाया परिश्रुता ।  
 मासं श्रुतुमिच्छन्तः प्रातृष्टुक्कथाः कल्पमापहा ॥१॥  
 गोपिताश्च सदा सोने न प्रोक्तान्न मया क्वचिन् ।  
 प्राप्तास्तस्मिन् ताः पार्थ शृणु मया मया हि ताः ॥२॥  
 एता मु आकरो मासि अन्या भाद्रपदे तथा ।  
 अपराश्चतुर् मासि चातुर्थी वीरिचि नवे ॥३॥

श्रावणे कलुषा नाम प्रोष्ठपादे च गीमला ।

आश्विने प्रेतसंचारा कार्तिके च यमा स्मृता ॥४॥

कस्मात्सा कलुषा प्रोक्ता कस्मात्सागीमला मता ।

कस्मात्सा प्रेतसंचारा कस्माद्याम्या प्रकीर्तिता ॥५॥

पुरा वृत्रवधे वृत्त प्राप्त राज्ये पुरवरे ।

ब्रह्महत्यापनोदाथमश्वमेधे प्रवर्तिते ॥६॥

क्रोधादिन्द्रेण वज्रेण ब्रह्महत्या निपूदिता ।

पट्खण्डा च कृता क्षिप्ता वृक्षे तोये महीतले ॥७॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाथ । द्वितीया से आदि लेकर अय तिथियाँ बहुत ही परिश्रुत हैं । चार मासों के द्वारा वर्षा काल के शुक्ल कलम के अपहरण करने वाले होत हैं ॥१॥ ये सदा लोक में परम गुप्त रखे गये हैं और मैंने कही भी इनको नहीं कहा है । हे पाथ । उनको मैं अब प्रकाश में लाता हूँ उन सबको मेरे द्वारा तुम श्रवण करो ॥२॥ एक तिथि तो श्रावण मास में होती है—अय भाद्रपद में है—दूसरी आश्विन में होती है एवं चौथी कार्तिक मास है ॥३॥ श्रावण में जो है उसका कलुषा नाम है । भाद्र पद मास में गीमला नाम वाली होती है । आश्विन में प्रेत संचारा नाम स युक्त होती है । कार्तिक मास में यमा नाम वाली कही गयी है ॥४॥ युधिष्ठिर ने कहा—किस कारण से वह कलुषा कही जाती है और किस हेतु के होने से दूसरी का नाम गीमला कहा गया है ? प्रेतसंचारा—इम नाम होने का भी क्या कारण है और किस हेतु वष यमा कही गयी है ? ॥५॥ श्रीकृष्ण ने कहा—प्राचीन काल में जब वृणासुर का वध होगया था तो इंद्र ने अपना राज्यासन पुन प्राप्त कर लिया था । किन्तु ब्रह्महत्या का पाप अवश्य ही हुआ था उसके दूर करने के लिये अश्वमेध यज्ञ प्रवृत्त हुआ था ॥६॥ इंद्र ने क्रोध से वज्र के द्वारा ब्रह्महत्या का निपूदन कर दिया था और उसके छै खण्ड कर दिये थे तथा उनको क्रम से वृक्ष-जल महीतल नारी ब्रह्महन् और अग्नि में डाल दिया था ॥७॥



नार्या ब्रह्महने वह्नी सविभज्य यथाक्रमम् ।  
 तत्पाप श्रावणे व्यूहं द्वितीयाया दिनोदये ॥८॥  
 नारीवृक्षनदीभूमिवह्निब्रह्महनेष्वथ ।  
 निमंलीकरण जातमतोर्थं कलुषा स्मृता ॥९॥  
 मधुकंटभयो रक्ते पुरा मग्नेति मेदिनी ।  
 अष्टागुला पवित्रा सा नारीणां तु रजो मलम् ॥१०॥  
 नक्ष पूरमला. सर्वा वह्ने धूमशिखा मलः ।  
 कलुषाणि चरत्यस्या तेनैषा कलुषा मता ॥११॥  
 गीर्गिरा भारती वाणी वाचा मेघा सरस्वती ।  
 गीर्मल वहते यस्माद्वितीया गीर्मला मता ॥१२॥  
 देवपितृघर्माणां निदका नास्तिकाः शठाः ।  
 तेषां सा वाग्मलव्यूहा द्वितीया तेन गीर्मला ॥१३॥  
 अनध्यायेषु शास्त्राणि पाठयति पठति च ।  
 शाब्दिकास्तार्किका.श्रीतास्तेपाशब्दापशब्दजाः ।  
 मला व्यूहा द्वितीयायामतोर्थं गीर्मला च सा ॥१४॥

वही पाप श्रावण मास में द्वितीया में दिन के उदय समय में व्यूह  
 रूप में नारी-वृक्ष-नदी-भूमि-वह्नि और ब्रह्महन् में होता है ॥८॥  
 यह निमंलीकरण अर्थ उत्पन्न हुआ था इसी लिये यह कलुषा कही गयी  
 है ॥९॥ पहिले समय में यह मेदिनी मधु कंटभ के रुधिर में मग्न होगई  
 थी । केवल आठ अंगुल वाली पवित्र रही थी । नारियों का जो रज  
 होता है वही मल है ॥१०॥ सभी नदियाँ पूरमल वाली हैं और अग्नि  
 की जो धूँआँ की शिखा है यही मल होता है । इसमें सभी कलुष  
 चरण किया करते हैं इसी कारण से इसको कलुषा माना गया है ॥११॥  
 गीः-गिरा-भारती-वाणी-वाचा-मेघा और सरस्वती ये सभी उसके नाम  
 हैं । गी जिससे मल का वहन करती है इसीलिए उसका नाम गीर्मला  
 कहा गया है ॥१२॥ देव-श्रुति-पितृगण के घर्मों के जो निन्दन-नास्तिक  
 और शठ लोग होने हैं वह उनके वाग्मन में व्यूह द्वितीया है अतएव  
 उसे गीर्मला कहा गया है ॥१३॥ अनध्याय के दिनों में जो शास्त्रों की

स्वयं पढ़ते हैं तथा दूसरों को पढ़ाया करते हैं ऐसे शाब्दिक-तार्किक और जो श्रौत हैं उनके शब्दों के द्वारा अपशब्दों से उत्पन्न मन व्यूढ द्वितीया में होते हैं इसी अर्थ के कारण वह गीमंला कही गयी है ॥१४॥

प्रेतास्तु पितर प्रोक्तास्तेषा तस्या तु सचर ।

द्वितीयाया च लोकेषु तेन सा प्रेतसचरा ॥१५॥

अग्निष्वात्ता वह्निपद आज्यपा सोमपास्तथा ।

पितृपितामहप्रेतसचरात्प्रेतसचरा ॥१६॥

पुत्रे पौत्रेश्च दौहित्रे स्वधामसं सुपूजिता ।

श्राद्धदानमखंस्तृप्ता यात्यत प्रेतसचरा ॥१७॥

कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयाया युधिष्ठिर ।

यमो यमुनया पूर्व भोजित स्वगृहे तदा ॥१८॥

द्वितीयाया महोत्सर्गं नारकीयाश्च तपिता ।

पापेभ्यो विप्रमुक्तास्ते मुक्ता सर्वे विबधना ।

भ्रामिता नर्तितास्तुष्टा स्थिता सर्वे यदृच्छया ॥१९॥

तेषा महोत्सवो वृत्तो यमराष्ट्रे सुखावह ।

ततो यमद्वितीया सा प्रोक्ता लोके युधिष्ठिर ॥२०॥

अस्या निजगृहे पार्थ न भोक्तव्यमतो बुधैः ।

स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ॥२१॥

जो प्रेत हैं वे तो पितर ही कहे गये हैं उनका उसमें सञ्चार होता है इसी कारण वह द्वितीया लोको में प्रेत सञ्चरा नाम से प्रसिद्ध है ॥१५॥ अग्निष्वात्त-वह्निपद-आज्यप-सोमप और पितृ पितामह प्रेतों के सञ्चारण होने से इसको प्रेत सञ्चरा कहा जाता है ॥१६॥ पुत्रों पौत्रों दौहित्रों और स्वधा मत्नों के द्वारा भलीभांति समचित्त होकर श्राद्धों के दान रूपी मखों से सतृप्त हाते हुए सब जाते हैं, अतएव यह प्रेत सञ्चरा इस नाम वाली है ॥१७॥ हे युधिष्ठिर ! कार्तिक मास में शुक्ल पक्ष की द्वितीया में यमराज यमुना बहिन के द्वारा पहिले भोजन कराया गया था और उस समय में अपने गृह में ही उसे खिलाया था ॥१८॥ द्वितीया में महोत्सर्ग में जो भी नारकीय प्राणी थे, वे तपित हुए

ये और पापों में विमुक्त होकर सभी बन्धनों से रहित होते हुए छुटकारा पागये थे (वे सब स्वच्छन्दता से भ्रमण करने वाले प्रसन्नता से नृत्य करते हुए यह कृत से परम सन्तुष्ट होकर स्थित होगये थे ॥१६॥) उनका एक यमराज के राज्य में बड़ा महोत्सव हांगया था जो बहुत ही सुख देने वाला था । हे युधिष्ठिर ! तभी से लोक में वह तिथि यमद्वितीया इस नाम कही गयी है ॥२०॥ हे पार्थ ! बुद्ध पुरुषों को इस यमद्वितीया में अपन घर में भोजन नहीं करना चाहिए । स्नेह के साथ अपनी बहिन के हाथ से ही पुष्टि का बढ़ाने वाला भोजन करना चाहिए ॥२१॥

दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानत ।

स्वर्णालिकारवस्त्राद्यै पूजासत्कारभोजनं ॥२२

सर्वा भगिन्य सपूज्या अभावे प्रतिपत्तिगा ।

पितृव्यभगिनी हस्तात्प्रथमाया युधिष्ठिर ॥२३

मातुलस्य सुताहस्तादद्वितीयाया पुनर्नृप ।

पितृमातृस्वसारौ ये तृतीयाया तयो करात् ॥२४

भोक्तव्य सहजायाश्च भगिन्या हस्तत परम् ।

सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्य बलवद्धनम् ॥२५

धन्य मशस्यमायुष्य धर्मकामार्थवद्धनम् ।

व्याप्यात सकल स्नेहात्सरहस्य मया तव ॥२६

यस्या तिथौ यमुनया यमराजदेव

सम्भो जितो जगति सत्त्वरसौहृदेन ।

तस्या स्वसु करतलादिह यो भुनक्ति

प्राप्नोति वित्तमथ भोज्यमनुत्तम स ॥२७

फिर बहिनो के निये विधान पूर्वक दानों का प्रदान करना चाहिए उनका सुवर्ण—अनार और वस्त्र आदि से तथा उत्तम भोजनो के द्वारा पूजन एवं सत्कार करना चाहिए ॥२२॥ सभी बहिनो का पूजन करना चाहिए । यदि अपनी सभी सहोदर भगिनी न हो तो इस अभाव में इस विधान की प्रतिपत्ति करने वाली अपने पितृव्य (चाचा) की पुत्री बहिनें भी हाती हैं । उमके ही हाथ में हे युधिष्ठिर ! पहिली

द्वितीया मे या प्रथमा तिथि मे भोजनादि करे ॥२३॥ मामा की पुत्री के हाथ से फिर हे नृप । द्वितीया मे करे । जो पिता माता की जो बहिनें हैं तृतीया मे उनके हाथ से करे ॥२४॥ जो सहज भगिनी हों उसके हाथ से भोजन करना परमोत्तम है अतः उसी के हाथ से करे । सबो मे भगिनी के हाथ से ही पुष्टि के बढ़ाने वाला भोजन करना चाहिए ॥२५॥ यह परमधन्य—यश के बढ़ाने वाला—आयु की वृद्धि करने वाला तथा धर्म-काम और अर्थ के बढ़ाने करने वाला है । मैंने श्वस्य के साथ स्नेह से इस सब की व्याख्या की है और तुमको बता दिया है ॥२६॥ जिस तिथि मे यमराज देव बहिन यमुना के द्वारा भली भाँति भोजन कराया गया था जगत् मे सत्त्वर सौहार्द के साथ उस तिथि मे अपनी बहिन के करतल से जो भी कोई भोजन करता है वह यहा पर उत्तम भोजन-धन और सुख की प्राप्ति किया करता है ॥२७॥

### ॥ अशून्यशयन व्रत का माहात्म्य ॥

भगवन्भवता प्रोक्त धर्मादि सुसाधनम् ।  
गार्हस्थ्यं तच्च भवति दपत्यो प्रीयमाणयो ॥१॥  
पत्नीहीन पुमान्पत्नी भर्त्रा विरहिता तथा ।  
धर्मकामार्थसमिद्धी न स्याता मधुसूदन ॥२॥  
तद्वद्ब्रूहि देवदेवेश विधवा स्त्री न जायते ।  
व्रतेन येन गोविद पत्न्याऽविरहितो नर ॥३॥  
अशून्यशयनी नाम द्वितीया शृणु ता मम ।  
यामुपोष्य न घृण्य प्राप्नोति स्त्री युधिष्ठिर ॥४॥  
पुत्नीविमुक्तश्च नरो न कदाचित्प्रजायते ।  
शेते जगत्पतिर्विष्णु स्त्रिया साद्धं यदा विल ॥५॥  
अशून्यशयन नाम तदा ग्राह्या च सा तिथिः ।  
उपवासेन नक्तनेन तथैवायाचितेन च ॥६॥

कृष्णपक्षे द्वितीयाया श्रावणे नृपसत्तम ।

स्नानं नद्या तडागे वा गृहे वा नियतात्मवान् ॥७॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन् । आपने गाहंस्थ्य आश्रम को धर्म-अर्थ आदि का सुन्दर साधन स्वरूप बतलाया है किंतु वह तभी होता है जब दोनों दम्पतियों में परम प्रेम हो ॥१॥ हे मधुसूदन ! जो पुरुष पत्नी से हीन हो और जो स्त्री अपने भर्ता से विरहित हो उनको तो धर्म-अर्थ और काम की सिद्धि ही नहीं होगी ॥२॥ हे देव देवेश ! ऐसा कुछ बतलाइये कि स्त्री कभी विधवा ही न होवे तथा ऐसा कोई व्रत हो जिसके द्वारा पुरुष कभी अपनी पत्नी के विरह वाला न होवे ॥३॥ श्रीकृष्ण ने कहा—अथ तुम मुझसे अशूय शयनी नाम वाली द्वितीया के विषय में श्रावण करो । हे युधिष्ठिर ! इसका उपवास करके स्त्री कभी भी वैधव्य के दुःख को प्राप्त नहीं करती है ॥४॥ पुरुष भी कभी इससे अपनी पत्नी से विमुक्त कभी भी नहीं होता है जिस समय में जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु अपनी स्त्री के साथ में शयन किया करते हैं ॥५॥ वह तिथि अशून्य शयन के नाम से ही ग्राह्य होती है जिसमें उपवास से रहा जावे अथवा रात्रि में अयाचित के द्वारा भोजन किया जावे ॥६॥ हे नृपश्रेष्ठ ! श्रावण म कृष्ण पक्ष में द्वितीया के दिन किसी नदी में अथवा तालाब में या गृह में नियत आत्मा वाले पुरुष को स्नान करना चाहिए ॥७॥

कृत्वा पितृन्मनुष्याश्च देवान्सतप्य भक्तिमान् ।

स्यङ्गिल चतुरस्त्रं तु मृन्मयं वारयेत्ततः ॥७॥

तत्रस्थं श्रीघरं श्रीशं भक्त्याभ्यर्च्य श्रिया सह ।

नैवेद्यमुष्णधूपार्घ्यं फले वालीद्भवे शुभं ॥८॥

इममुच्चारयेन्मन्त्रं प्रणम्य जगतः पतिम् ।

श्रीवत्सघारिञ्छीवात श्रीधामञ्छीपतेऽयम् ॥९॥

गाहंस्थ्यं मा प्रणाश मे यातु धर्मायैकामदम् ।

अग्नयो मा प्रणम्यतु मा प्रणश्यन्तु देवता ।

पितरो मा प्रणश्यतु मत्तो दापत्यभेदतः ॥११॥

लक्ष्म्या वियुज्यते कृष्ण न कदाचिद्यथा भवान् ।

तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे प्रणश्यतु ॥१२

लक्ष्म्या न शुन्य वरद यथा ते शयन सदा ।

शय्या भभाष्यशून्यास्तु तथा जन्मनिजन्मनि ॥१३

एव प्रसाद्य पूजा च कृत्वा लक्ष्म्या हरेस्तथा ।

चन्द्रोदये स्नानपूर्वं पञ्चगव्येन सयुतम् ।

विप्राय दक्षिणा दद्यात्स्वशक्त्या फलसयुताम् ॥१४

भक्तिभाव से समन्वित पुरुष को पितृगण-मनुष्य बृन्द और देवों का भली-भाँति तर्पण करके एक चौकोर मिट्टी का स्पण्डिल बनवाना चाहिए ॥८॥ उसमें विराजमान श्री के स्वामी श्रीधर भगवान् का श्री के साथ भक्तिभाव पूर्वक अभ्यर्चन करे जो कि नंदेद्य-पुष्प-धूप-फल आदि से करना चाहिए । उस काल में जो भी शुभ फलादि उत्पन्न हो उन्हें ही ग्रहण करे ॥९॥ जगत् के स्वामी को प्रणाम करे और इम मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए—हे श्रीवत्स के धारण करने वाले । श्री के कान्त । हे श्री के घाम । श्री के स्वामिन् । हे अव्यय । धर्म-काम और अर्थ के प्रदान करने वाला मेरा यह गार्हस्थ्य आश्रम कभी नाश को प्राप्त न होवे । ये अग्नियाँ इसका नाश न करें तथा देवगण प्रनष्ट न करें । ये पितृगण इसका नाश न करें और मुझ से कभी भी मेरे दाम्पत्य जीवन का विछोह न होवे ॥१० ११॥ हे श्रीकृष्ण । आप जिस प्रकार से लक्ष्मी से कभी भी वियुक्त नहीं हुआ करते हैं हे देव । उमी भाँति यह मेरा भी कलत्र का सम्बन्ध कभी नष्ट न होवे ॥१२॥ हे वरों के दाता । जिस तरह आपकी शय्या सदा ही लक्ष्मी से शून्य नहीं रहती है वैसे ही मेरी शय्या भी जन्म जमान्तर में मेरी पत्नी से शून्य कभी न होवे ॥१३॥ इस प्रकार से लक्ष्मी नारायण को प्रसन्न करके तथा उनकी लक्ष्मी और हरि दातो की पूजा करने चन्द्रमा के उदय के समय में पहिले स्नान करके जो कि पञ्चगव्य से सयुत हो विप्र को अपनी शक्ति के अनुसार फलों से सयुत दक्षिणा देनी चाहिए ॥१४॥

अनेन विधिना राजन्यावन्मासचतुष्टयम् ।  
 कृष्णपक्षे द्वितीयाया प्रागुक्तविधिमाचरेत् ॥१५॥  
 कार्तिके चाथ संप्राप्ते शय्या श्रीकातसयुताम् ।  
 सोपस्करा सोदकुभा सान्ना दद्याद्द्विजातये ॥१६॥  
 प्रतिमास च सोमाय अर्घ्यं दद्यात्समनकम् ।  
 दध्यक्षर्तमूल फले रत्ने सौवर्णभाजनै ॥१७॥  
 गगनागणसद्दीप दुग्धान्धिमथनोद्भव ।  
 आभासितदिगाभोग रमानुज नमोस्तु ते ॥१८॥  
 एव करोति यः सम्यङ्नूनरो मासचतुष्टयम् ।  
 तस्य जन्मत्रय यावद्गृहभङ्गो न जायते ॥१९॥  
 अशून्यशयनश्चैव धर्मकामार्थसाधकः ।  
 प्रवत्यव्याहृतैश्चर्यं पुरुषो नात्र सशयः ॥२०॥  
 नारी च पार्थ धर्मज्ञा व्रतमेतद्यथाविधि ।  
 या करोति न सा शोच्या बन्धुवर्गस्य जायते ॥२१॥  
 वैधव्यं दुर्भगत्व च भर्तृत्यागश्च सत्तमः ।  
 प्राप्नोति जन्मत्रितयं न सा पांडुकुलोद्बहः ॥२२॥  
 एषा ह्यशून्यशयना नृपते द्वितीया ख्याता  
 समस्तकलुषापहराऽद्वितीया ।  
 एता समाचरति यः पुरुषोऽथ योषित्प्राप्नो-  
 त्यसौ शयनममहाप्रचहभोग्यम् ॥२३॥

इस विधान से हे राजन् ! जब तक मे प्रावृट् वार के चार मास  
 रह बराबर कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि म पहिने बताई हुई विधि का  
 समाचरण करना चाहिए ॥१५॥ कार्तिक मास के प्राप्त हो जाने पर  
 सभी उपस्करों के सहित जन के कुम्भ से युक्त श्रीकात से समुक्त शय्या  
 को जो कि अन्न के भी सहित हो द्विजाति को दान म देनी चाहिए ॥१६॥  
 प्रत्येक मास में सोम व लिये दधि-अदत-मूत्र-फल-रत्न और सुवर्ण के  
 पात्रों के दार मन्त्रों के सहित अर्घ्य देना चाहिए ॥१७॥ हे रमानुज !  
 आप गगन रुपी अग्नि व सुंदर एवं समुज्ज्वल दीप हैं । आपकी उत्पत्ति

क्षीर सागर के मन्थन से हुई है और आप दिशाओं के आभोग को आभासित करने वाले हैं । आपके लिये नमस्कार है ॥१८॥ जो मनुष्य इस प्रकार से भनी-भाँति चार महीने तक किया करता है उसके तीन जन्म पर्यन्त गृह का भग नहीं हुआ करता है ॥१९॥ यह अशून्य शयन व्रत धर्म-अर्थ और काम का साधक होता है । इससे पुरुष अव्याहत वैभव वाला होता है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥२०॥ हे पार्थ ! जो नारी धर्म के जानने वाली है वह इस व्रत को यथाविधि किया करती है वह कभी भी बन्धु वर्ग के लिये शोच्य नहीं होती है ॥२१॥ वैधव्य-दुर्भगत्व और भर्तृत्याग को हे श्रेष्ठ पाण्डुकुलोद्भव ! तीन जन्म पर्यन्त नहीं प्राप्त किया करती है ॥२२॥ हे नृपते ! यह द्वितीया अशून्य शयना नाम वाली प्रसिद्ध है । यह समस्त क्लृप्तो के अपहरण करने वाली अद्वितीय होती है । इसका जो भी कोई पुरुष या स्त्री समान्वरण करती है व महान् उत्तम भोगने के योग्य शयन को प्राप्त किया करते हैं ॥२३॥

## ॥ गोप्पद तृतीया-व्रत का माहात्म्य ॥

पार्थ भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे दिनोदये ।

तृतीयाया चतुर्थ्या च शुद्धाया प्रतिवत्सरम् ॥१॥

उपवासेन गृह्णीयाद्व्रत नाम्ना तु गोपदम् ।

स्तात्वा नरो वा नारी वा पुष्पधूपविलैपनै ॥२॥

दध्यक्षतंश्च मालाभिः पिष्टकैर्वनालया ।

अभ्यजयेद्गवा शृ ग खुर पुच्छान्तमेव च ॥३॥

दद्याद्गवाह्निक भक्त्या तासा पूर्वापराह्वयोः ।

अनग्निपाक भुञ्जीत तैलक्षारविर्वर्जितम् ॥४॥

व्रजतीना गवा नित्यमायातीना च भारत ।

पुरद्वारेय वा गोष्ठे मन्त्रेणानेन मन्त्रित् ।

अर्घ्यं प्रदद्याद्गृष्ट्या वा गवा पादेयु पाडव ॥५॥



माता रुद्राणा दुहिता वसूना स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।

प्रनुवोच चिकितुषे जनाय मा गामनागामदिति वधिष्ठ ॥६॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्यं ! भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष में दिन के उदय काल में प्रति वर्ष शुद्ध तृतीया या चतुर्थी तिथि में उपवास के साथ गोपद नाम वाले व्रत का ग्रहण करे । नर हो अथवा नारी हो स्नान करके पुष्प-धूप-दीप-विलेपन-दही-अक्षत-माला एवं पिष्टक के द्वारा बत्तालया गायों के श्रृंग-धुर और पूँछ के अन्त भाग का अभ्यञ्जन करना चाहिए ॥१-३॥ भक्तिभाव से उनको पूर्वाह्न और अपराह्न में आह्निक देवे और तैल तथा क्षार से रहित अनग्नि पाक का भोजन करना चाहिए ॥४॥ हे भारत ! जाती हुई और आती हुई गायों का नित्य ही पुर के द्वार पर-गोष्ठ में निम्न मन्त्र के द्वारा मन्त्र वेत्ता को, अघ्न अथवा गृष्ट्या देना चाहिए । हे पाण्डव ! अथवा गौओं के चरणों में देवे ॥५॥ यह मन्त्र है—रुद्रो की माता-वसुओं की दुहिता-आदित्यों की स्वसा और आप अमृत की नाभि है । अभीष्ट जन के कभी प्रतिकूल मत होओ । अनागा अदिति गाय का वध करो ॥६॥

गावो मे अग्रत सन्तु गावो मे सतु पृष्ठत ।

गावो मे हृदये सतु गवा मध्ये वसाम्यहम् ॥७॥

इत्थ सपूज्य दत्त्वाध ततो गच्छेद्गृहाश्रमम् ।

पचम्या क्रोधरहितो भुञ्जीत गोरस दधि ॥८॥

शालिपिष्ट फल शाक तिलमन्न च शोभनम् ।

भुक्तावसाने राजेन्द्र सयतस्ता निशा स्वपेत् ॥९॥

प्रभाते गोपद दत्त्वा ब्राह्मणाय हिरण्मयम् ।

क्षमयेच्च गवा नाथ गोविन्द गरुडध्वजम् ॥१०॥

अच्यतेऽत्र यथा गावस्तथा गोवधनो गिरि ।

प्रणम्याच्युतमुद्रदिश्य शृणु यत्फलमाप्नुयात् ॥११॥

गौए मेर आगे रह—गौए ही मेरे पृष्ठ भाग में हार्वे—गौए मेरे हृदय में रहें और गौओं के मध्य में ही मैं सदा निवास किया करू ॥७॥ इस

प्रकार से गोओ का भली भाँति पूजन करके तथा अर्घ्य देकर फिर गृहाध्यम में चले जाना चाहिए । पंच की तिथि में क्रोध से रहित होकर गोरस दधि का भोजन करे । शालि पिष्ट-फल-शाक-तिल और शोभन अन्न का भोजन करे । हे राजेन्द्र ! मुक्त के अवसान में सयत होकर उस रात्रि में शयन करे ॥८६॥ प्रभात के समय में ब्राह्मण के लिये हिरण्य गोपद का दान करके गोओ के नाथ गरुडध्वज गोविन्द से क्षमापन करावे ॥९०॥ यहाँ पर जिस प्रकार गायों का अर्चन किया जाता है उसी भाँति गोवद्ध न गिरि का भी समचन होता है । भगवान् अभ्युक्त का उद्देश्य लेकर प्रणाम करे । इसका जो भी फल प्राप्त करे—उसका श्रवण करो ॥९१॥

गोभक्तो गोव्रत कृत्वा भक्त्या शक्त्या च गोपदम् ।

सौभाग्य रूपलावण्य प्राप्नोति पृथिवीतले ॥९२॥

गोतणकाकुल गेह गोकुल च समासत ।

धनधान्यसमोपेतशालीक्षुरसमृद्धिमान् ॥९३॥

सत्तान पूजित लब्ध्वा ततः स्वर्गोऽमरो भवेत् ।

दिव्यरूपधर सन्धी दिव्यालकारभूषित ॥९४॥

गन्धर्गीतिवाद्यन सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ।

दिव्य युगशत छित्वा ततो विष्णुपुर व्रजेत् ॥९५॥

यो गोपदव्रतमिदं कुरुते त्रिरात्रं वा

वा वै प्रपूजयति गोरसपूजनाव्च ।

गोविन्दमादिपुरुषं प्रणतं सविनामालोकं

मुत्तममुपैति भवा पवित्रम् ॥९६॥

गो का भक्त भक्तिभाव से गो व्रत करवे और शक्ति से गोपद करके इस पृथिवी तल में परम सौभाग्य एवं रूप लावण्य की प्राप्ति किया करता है ॥९२॥ गोओ के वरसों से समाकुल गृह और सक्षय से गोकुल-धन-धाय से समुपेत-शाली इक्षु रस की समृद्धि वाला हो जाता है ॥९३॥ प्रतिष्ठित सत्तति का लाभ होता है फिर इसके पश्चात् स्वर्ग में अमर हो जाया करता है । जो दिव्यरूप के धारण करने वाला—सम्धारी

तथा दिव्य भूषणो से विभूषित होता है ॥१५॥ वहा पर गधर्वों के द्वारा गीत वाद्यो से और अप्सराओ के द्वारा सेव्यमान हुआ करता है । वहा पर दिव्य सौ युग काटकर फिर वह विष्णुपुर को गमन किया करता है ॥१५॥ जो इस गोपद व्रत को तिरात्र किया करता है और गायो का गोरस पूजन से प्रकृष्ट रूप से पूजन करता है तथा आदि पुरुष गोविन्द का प्रणाम किया करता है वह सावित्र उत्तम लोक को प्राप्त करता है जो गौओ से परम पवित्र है ॥१६॥

### ॥ हरितालीतृतीया-व्रत का माहात्म्य ॥

शुक्ले भाद्रपदस्यैव तृतीयाया समचयेत् ।  
 सर्वधैर्यैस्तो विरूढा भूतो हरितशाद्वलाम् ।  
 हरकाली देवदेवी गौरी शकरवल्लभाम् ॥१॥  
 गधै पुष्पै फलैर्धूपैर्नैवेद्यैर्मोदकादिभि ।  
 प्रीणयित्वा समाच्छाद्य पद्मरागेन भास्वता ॥२॥  
 घण्टावाद्यादिभिर्गीतै शुभैर्दिव्यकथानुगै ।  
 कृत्वा जागरण रात्रौ प्रभाते ह्युदगते रवौ ॥३॥  
 सुवासिनीभि सा नेया मध्ये पुष्पजलाशये ।  
 तस्मिन्विसजयेत्पाथ हरकाली हरिप्रियाम् ॥४॥  
 भगवन्हरकालीति का देवी प्रोच्यत भुवि ।  
 आद्र धार्यै स्थिता कस्मात्पूज्यते स्त्रीजनेन सा ।  
 पूजिता किं ददातीह सर्वं मे ब्रूहि केशव ॥५॥  
 सवपापहरा दिव्या भक्त शृणु कथामिमाम् ।  
 आसीद्दक्षस्य दुहिता कालीनाम्नी तु कन्यका ॥६॥  
 वर्णेनापि च सा कृष्णा नवनीलोत्पलप्रभा ।  
 सा च दत्ता त्र्यम्बकाय महादेवाय शूलिने ॥७॥

श्रीकृष्ण ने कहा—भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में तृतीया तिथि में उस विरूढ भूता हरितशाद्वला या सवधायी से अर्चन करना चाहिए ।

हरकाली-देवदेवी-गौरी-शकर वल्लभा वह है ॥१॥ गन्ध-पुष्प-फल-  
धूप और मोदक आदि नैवेद्य से उस देवी को प्रसन्न करके तथा भासमान  
पद्मराग से उसका समाच्छादन करके ॥२॥ घण्टा बाज आदि से-गीतो  
से-शुभ एव दिव्य कथानुगो से रात्रि में जागरण करके प्रभात में जब  
रवि का उदय होता है ॥३॥ उसी समय में सुवासिनियों के द्वारा उसको  
किसी परम पुण्य जलाशय के मध्य में पहुँचाना चाहिए । हे पार्थ ! उस  
हरकाली हरि प्रिया का उसमें विसर्जन कर देवे ॥४॥ युधिष्ठिर ने कहा-  
हे भगवन् ! इस भूमण्डल में हरकाली कौनसी देवी कही जाती है ?  
आर्द्रधान्यो से स्थित वह स्त्री जनो के द्वारा ही क्यों पूजी जाया करती  
है ? जब यह पूजित होती है तो फिर यह क्या दिया करती है ? हे  
केशव ! यह सभी कुछ मुझे आप बतलाइये ॥५॥ श्रीकृष्ण ने कहा-  
यह समस्त पापों के हरण करने वाली परम दिव्य कथा है । इसको अब  
तुम मुझ से श्रवण करो । दक्ष की पुत्री एक काली नाम की कन्या थी ।  
वह वरुण से भी कृष्ण थी और नवीन नील कमल के समान आभा वाली  
थी । वह कथा अम्बक शूलधारो महादेव के लिये दी गई थी ॥६॥

विवाहिता विधानेन शखतूर्यानुनादिना ।

यत्कुर्यादागतर्देवैब्राह्मणाना च निस्वनै ॥८॥

निर्वर्तिते विवाहे तु तथा सार्धं त्रिलोचन ।

क्रोडते विविधैर्भोगैर्मनस प्रीतिवर्धनै ॥९॥

अथ देवसमानस्तु कदाचित्स वृषध्वज ।

आस्थानमडपे रम्ये आस्ते विष्णुसहायवान् ॥१०॥

तत्तस्यश्वाह्वयामास नर्मणा त्रिपुरातक ।

काली नीलोत्पलश्यामा गणमातृगणावृताम् ॥११॥

एह्येहि त्वमिह कासि कृष्णाजनसमन्विते ।

कालमुदरि मत्पाश्वर्धवले त्वमुपाविश ॥१२॥

एवमुत्क्षिप्तमनसा देवी सक्रुद्धमानसा ।

आसयामास ताम्राक्षी बाष्पगद्गदया गिरा ॥१३॥

हरकर्मसमुत्पन्न हरकाये हरप्रिये ।

मा त्राहीशस्य मूर्तिस्ये प्रणतास्तु नमोनमः ॥२०॥

इत्थ सपूज्य नैवेद्य दद्याद्विप्राय पाडव ।

ता च प्रातर्जले रम्ये मन्त्रेणैव विसर्जयेत् ॥२१॥

शकर ने जिस कारण से मेरी उपमा कृष्ण वर्ण से दी है अथवा हरकाली को बुलाया है जो देवपिण्ड से सेवित है । इसलिये मैं अब इस कृष्ण देह को जलती हुई अग्नि में हवन कर डालूंगी । इतना कह कर वह निपिड भी ब्री गई थी तो भी रोष से युक्त होकर अपने निर्णय पर दृढ़ ही बनी रही थी ॥ १५-१६॥ उमने हरित छाया कान्ति को हरित शाद्वल में छोड़ दिया था और जलनी हुई अग्नि में दोष को राग से क्षिप्त कर दिया ॥१७॥ फिर वह पर्वत राज के घर में गौरी हुई थी जो महादेव के देह के अर्द्ध भाग में स्थित होती हुई सुरों के द्वारा भली-भाँति पूजित होती है ॥१८॥ इस प्रकार से वह हरकाली—इस नाम से गौरीश की व्यवस्थित हुई । हे पाण्डव ! वह महादेवी इस निम्न मन्त्र से पूजने के योग्य है ॥१९॥ मन्त्रार्थ—हे हर के कर्म से समुत्पन्न होने वाली ! आप तो हर की काया हैं और हर की प्रिया हैं । ईश की मूर्ति में स्थित रहने वाली ! मेरी रक्षा करो । हम प्रणत हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है ॥२०॥ हे पाण्डव ! इस भाँति अच्छी तरह अर्चना करके नैवेद्य विप्र को देवे । और प्रातः काल में उसको रम्य जल के भीतर इसी मन्त्र के द्वारा विसर्जन कर देना चाहिए ॥२१॥

अचितासिमया भक्त्या गच्छ देवि सुरालयम् ।

हरकाले शिवे गौरि पुनरागमनाय च ॥२२॥

एव य पाडवश्रष्ठ हरकालीव्रत चरेत् ।

वर्षवर्षे विधानेन नारी नरपत शुभा ॥२३॥

सा यत्फलमवाप्नोति तच्छृणुष्व नराधिप ।

मर्त्यलोके चिर तिष्ठेत्सर्वरोगविजिता ॥२४॥

सर्वभोगसमायुक्ता सोभाग्यवलगाविता ।

पुत्रपौत्रसुहृन्मित्रनप्तृदोहित्रसकुला ॥२५॥

साग्र वर्षशत यावद्भोगान्भुक्त्वा महीतले ।

ततोवसाने देहस्य शिवज्ञाना महामुने ॥२६॥

चिरभद्रा महाकालनदीश्वरविनायका ।

तदाशार्ङ्गिकरा सर्वे महादेवप्रसादतः ॥२७॥

सपूर्णसूर्यगणसप्तविरुद्धशस्या

ता वै हिमाद्रितनया हरकालिकाप्याम् ।

संपूज्य जागरमनुद्धतगीतवाच्यं

यच्छति या इह भवति पतिप्रियास्ता ॥२८॥

हे देवि ! मेरे द्वारा आप भक्ति के सहित पूजित हुई हो, अब आप सुरालय में गमन करो । हे हरकाले ! शिवे ! हे गौरि ! फिर आगमन करने के लिये ही यह आपका इस समय विसर्जन है ॥२२॥ हे पाण्डव श्रेष्ठ ! इस प्रकार से जो इस हरकाली व्रत का समाचरण किया करता है । हे नरपते ! प्रतिवर्ष में जो शुभा नारी इसको किया करती है ॥२३॥ हे नराधिय ! यह नारी जो इसका फल प्राप्त करती है उसका श्रवण करो । वह इस मनुष्य लोक में चिरकाल पर्यन्त सब रोगों से रहित होकर स्थित रहा करती है ॥२४॥ सभी प्रकार के भोगों से समायुक्त होकर सौभाग्य के बल से गर्व वाली होती है । वह पुत्र-पौत्र-सुहृत्-मित्र-भाती और धेयतो से समाकुल होती है ॥२५॥ वह उत्तम सौ वर्ष पर्यन्त इस महीतल में सभी भोगों का उपभोग करके फिर देह के अन्त में वह शिव के ज्ञान वाली है महामुने ! चिरभद्रा-महाकाल-नन्दीश्वर-विनायक आदि सब महादेव के प्रसाद से उसकी याज्ञा के बिबर हुआ करते हैं ॥२६-२७॥ सम्पूर्ण सूर्यगण के सप्त से विरुद्ध शस्या वाली उस हरकालिका नाम से युक्त हिमाद्रि तनया का पूजन करके जो अनुद्धत गीत वाच्यो के द्वारा जागरण किया करती है वे नारी इस लोक में पति की परम प्रिया होती है ॥२८॥

## ॥ ललिता तृतीया व्रत का माहात्म्य ॥

अथ पृच्छामि भगवन्व्रत द्वादशमासिकम् ।

ललिताराधन नाम मासमासक्रमेण वा ॥१॥

शृणु पांडव यत्नेन यथा वृत्त पुरातनम् ।

शकरस्य महादेव्या सवाद कुरुसत्तम ॥२॥

कैलासशिखरे रम्ये बहुपुष्पफलोपगम् ।

सहकारद्रुमच्छत्रे चपकाशोकभूषिते ॥३॥

कदम्बकुलामोदवशोकृन्मधुव्रते ।

ममूररवसघुष्टे राजहंसोपशोभिते ॥४॥

मृगक्षगजसिंहैश्च शाखामृगगणावृते ।

गन्धर्वयक्षदेवपिसिद्धकिन्नरपन्नगै ॥५॥

तपस्विभिर्महाभागै सेवमान समतत ।

सुखासीन महादेव भूतसर्प समावृतम् ॥६॥

अप्सरोभि सरिवृतमुमा नत्वाब्रवीदिदम् ।

भगवन्देवदेवेश शूलपाणे वृषध्वज ॥७॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन् ! इसके उपरान्त अब मैं बारह मासों में होने वाले व्रत के विषय में पूछता हूँ । ललिता के आराधन नाम वाले व्रत को जो क्रम से मास मास में होता है ॥१॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाण्डव ! ध्यान पूर्वक ध्वनि करो । हे कुरुक्षेत्र ! एक परम पुरातन शकर और महादेवी का सम्वाद हुआ था ॥२॥ कैलास पर्वत का शिखर परम रम्य है जहाँ बहुत से पुष्प एवं फल वाले वृक्ष हैं । वह शिखर आम के वृक्षों से एक दम ढका हुआ सा है तथा चम्पक और अशोक के वृक्षों से भी रुचिभूषित रहता है ॥३॥ कदम्ब-कुल की गन्ध । मधुकर वृक्ष पर बशीभूत रहा करते हैं । चारों ओर भोरों की ध्वनियों से परिपूर्ण रहता है । राजहंस भी वहाँ उसकी शोभा बढ़ाने वाले हैं ॥४॥ मृग रीछ-हाथी-गिह और शाखा-मृग के समूहों । वह पिरा रहता है । गन्धर्व-यक्ष देव ऋषि-सिद्ध-किन्नर और पन्नग तथा महान्

भाग वाले तपस्विगण के द्वारा चारों ओर वह कैलास का शिखर सेवित रहता है । वहां पर भूतगणों के द्वारा समावृत महादेव सुख पूर्वक विराजमान रहा करते हैं ॥५-६॥ अप्सराओं के गण से परिवृत रहने वाले शिव से एक बार उमा देवी ने नमस्कार करके वचन कहा था ॥७॥

कथयस्व महेशान तृतीयावृतमुत्तमम् ।

सौभाग्यं लभते येन धन पुत्रान्पशून्सुखम् ॥८

नारी स्वर्गं शुभं रूपमारोग्यं श्रियमुत्तमाम् ।

एवमुक्तो दयितया भार्यया प्रीतिपूर्वकम् ।

विहस्य शंकरः प्राह किं व्रतेन तव प्रिये ॥९

ये कामास्त्रिषु लोकेषु दिव्या भूम्यन्तरिक्षजाः ।

सर्वेपि तेन चायत्ता वश्यस्तेहं ततः पतिः ॥१०

सत्यमेतत्सुरेशान त्वयि दृष्टे न दुर्लभम् ।

किञ्चित्त्रिभुवनाभोगभूषणे शशिभूषणे ॥११

भक्त्या स्त्रियो हि मां देव प्रजपति शुभाशुभम् ।

विरूपाः सुलभाः काश्चिदपुत्रा बहुपुत्रकाः ॥१२

सुशीलास्तपसा काश्चिच्छ्वश्रूभिः पीडिता भृशम् ।

शौचाचारसमायुक्ता न रोचन्तेथ कस्यचित् ॥१३

एवं बहुविधैर्दुःखैः पीड्यमानास्तु दारुणैः ।

शरणं मां प्रपन्नास्ताः कृपाविष्टा ततो ह्यहम् ॥१४

उमादेवी ने कहा—हे भगवन् ! देव देवेश ! हे शूलपाण ! हे वृष-  
ध्वज ! आप तो महान् ईश है । मुझे उत्तम तृतीया के व्रत की बतलाइये  
जिसके द्वारा सौभाग्य-धन-पुत्र-पशु और सुख का लाभ होता है ॥८॥  
नारी शुभ स्वर्गरूप-आरोग्य तथा उत्तम श्री की प्राप्ति किया करती है  
इस प्रकार से दयिता के द्वारा पूछने पर जोकि भार्या ने बहुत ही प्रीति  
के साथ प्रश्न किया था भगवान् शंकर हसकर बोले—हे प्रिये ! आपको  
इस व्रत से क्या प्रयोजन है ॥९॥ तीनों लोकों में जो भी कामनाएं हैं  
वे दिव्य-भूमि और अन्तरिक्ष में उत्पन्न वाली वे सभी आपके अधीन ही



हैं क्योंकि मैं आपका स्वामी ही आपके वशगत रहना है ॥१०॥ उमा ने कहा—हे सुरेशान ! यह बिल्कुल सत्य ही है कि आपके दर्शन प्राप्त करने पर फिर कुछ भी दुर्लभ नहीं रहा करता है क्योंकि आप तो विभुवन के आभोगो के भूषण हैं और शशि के भूषण वाले हैं ॥११॥ स्त्रिया भक्ति से हे देव ! शुभाशुभ मेरा जाप किया करती हैं । कुछ विधारी विरूपा हैं कुछ सुलभा हैं । कोई बिना पुत्र वाली हैं तो कुछ बहुत पुत्रों से युक्त होती हैं ॥१२॥ कोई सुशीला तप से युक्त हैं और कुछ सासों के द्वारा बहुत ही उत्पीडित रहने वाली हैं । शौच और आचार से युक्त है किन्तु कुछ भी प्रिय नहीं लगा करता है ॥१३॥ इस प्रकार से बहुत तरह के दुःखों से जोकि परम दारुण हैं पीड्यमान होती हुई वे मेरी शरणागति ग्रहण किया करती हैं तब उन पर मुझे कृपा करने के लिए विवश होना पड़ता है ॥१४॥

येन ता सुखसभोगरूपलावण्यसपदा ।

पुत्रैः सौभाग्यवित्तौघैर्युक्ता. स्यु सुरसत्तम ।

तन्मे कथय तत्त्वेन व्रतानामुत्तम व्रतम् ॥१५॥

माघे मासि सिते पक्षे तृतीयाया यतव्रताः ।

मुप प्रक्षाल्य हस्तौ च पादौ चैव समाहिता ॥१६॥

उपवासस्य नियम दत्तधावनपूर्वकम् ।

मध्याह्ने तु तत स्नान वित्त्वेरामलकै शुभै ॥१७॥

स्नात्वा तीर्थजले शुभ्रे वाससी परिधाय च ।

सुगन्धं मुमनोभिश्च प्रभूतं कु कुमादिभिः ॥१८॥

अर्चयति सदा देवि त्वा भक्त्या भक्तवत्सले ।

चर्पू राक्षस्यया धूपनैवेद्यं शर्करादिभिः ॥१९॥

यदृच्छानामसपन्नं धूपदीपाचंनादिभिः ।

नाम्नेशानी गृहीत्वा तु प्रतोषदृष्ट्वा तत ॥२०॥

पात्रे तागमये शुद्धे जसापन्नविमिश्रिते ।

सहिर्गण्य द्विज गृत्वा मसपूर्वं समाधिना ॥२१॥

हे सुरसत्तम ! जिसके द्वारा वे सुख-सम्पन्न-रूप-लावण्य की सम्पदा तथा पुत्र एव सौभाग्य वित्तो के समूहो से युक्त होती हैं । उस श्रुति में अत्युत्तम व्रत को आप तत्त्व पूर्वक मुझे बतलाइये ॥१५॥ ईश्वर ने कहा—माघ मास के शुक्ल पक्ष में तृतीया तिथि के दिन में यतव्रत होकर मुख धोवें और समाहित होकर दोनों हाथों पंरों को धो डालें ॥१६॥ दन्त धावन पूर्वक उपवास के नियम को ग्रहण करे । मध्याह्न के समय में वित्त्व-आवले के शुभ फलों से फिर स्नान करे ॥१७॥ किसी शुभ्र तीर्थ के जल में स्नान करवे वस्त्रों का परिधान करे । इसके अनन्तर सुन्दर गन्ध वाले पुष्पों से तथा प्रचुर कुकुम आदि उपचारों से आपका पूजन करते हैं ॥१८॥ हे देवि ! आप तो भक्तों पर पूर्ण धत्सलता रखने वाली हैं । फिर भक्ति भाव से सदा आपका भजन किया करते हैं । पूजन के उपचारों में कपूर आदि-धूप-नैवेद्य और शर्करा प्रभृति सब का ग्रहण किया जाता है ॥१९॥ यहच्छा लाभ से जो भी सम्पन्न हो धूप-दीप आदि अर्चनीय चार उन्हीं से ईशानों के नाम से ग्रहण करवे एक घटिका पर्यन्त प्रतीक्षा करे ॥२०॥ परम शुद्ध ताम्रमय पात्र में जो जल एव अद्यतो स विमिश्रित हो समाधि से मन्त्र पूर्वक सहिरण्य द्विज को करे ॥२१॥

शिरसि प्रक्षिपेत्तोयं ध्यायती मनसेप्सितम् ।

ग्रह्यावर्तात्ममायाता ग्रह्यायोनेविनिर्गता ॥२२॥

भद्रेश्वरा ततो देवी ललिता शकरप्रिया ।

गगाद्वारादर प्राप्ता गङ्गाजलपवित्रिना ॥२३॥

सौभाग्यारोम्यपुत्रायंमर्थार्थं हृवन्समे ।

आयाता घटिका भद्रे प्रतीक्षस्व नमोनम ॥२४॥

दत्त्वा हिङ्ग्य सत्तर्पणं प्रायणीयात्तपुणोदकम् ।

आचम्य प्रयतो भूत्वा भूमिस्या क्षापेत्क्षपाम् ॥२५॥

ध्यायमाना उमां देवी तस्मिन् स्थिते शङ्खमुस्तरे ।

द्वितीयेहि गत भ्याग्या तर्पेथाभ्यर्च्य पावन्तीम् ॥२६॥

यथाशक्ति द्विजान्पूज्य ततो भुञ्जीत वाग्यता ।

एव तु प्रथमे मासि पूजनीयासि कालिके ॥२७॥

द्वितीये पार्वती नाम तृतीये शकरप्रिया ।

भवान्यथ चतुर्थे त्व स्कन्दमाताथ पञ्चमे ॥२८॥

मन मे अपने अभीष्ट मनोरथ का ध्यान करते हुए शिर पर जल का प्रक्षेप करे ब्रह्मावस्त से समायात और ब्रह्मयोनि से विनिर्गत भद्रेश्वरा ललिता शकर की प्रिया देखी गयाजल से पवित्र होकर गंगाद्वार से भगवान् हर को प्राप्त हुई थी ॥२२-२३॥ हे हरवल्लभे ! सौभाग्य-आरोग्य पुत्र और अर्थ के लिये आप समायात हुई हैं । हे भद्रे ! एक गड़ी पर्यन्त प्रतीक्षा करिए । आपको बारम्बार नमस्कार है ॥२४॥ फिर उमको हिरण्य देकर कुशोदक का प्राशन कराना चाहिए । आचमन करके प्रयत्न होवे । तथा भूमि में ही स्थित होकर उस रात्रि को बितावे ॥२५॥ हरितपत्र सस्तर में उमादेवी का ध्यान करे । फिर दूसरे दिन में स्नान करके उसी भाँति पार्वती का अभ्यर्चन करना चाहिए ॥२६॥ यथाशक्ति द्विजों का पूजन करके फिर मौन व्रत पूर्वक स्वयं भोजन करे । हे कालिके ! इसी प्रकार से प्रथम मास में पूजनीय है ॥२७॥ दूसरे मास में पार्वती नाम से तथा तीसरे में शकर प्रिया नाम से और पाचवें मास में स्कन्दमाता इस नाम से पूजन करे ॥२८॥

दक्षस्य दुहिता पष्ठे मैनाकी सप्तमे स्मृता ।

कात्यायन्यष्टमे मासि नवमे तु हिमाद्रिजा ॥२९॥

दशमे मासि विख्याता देवि सौभाग्यदायिनी ।

उमा त्वेकादशे मासि गौरी तु द्वादशे परा ॥३०॥

कुशोदक पयः सप्तिर्गोमूत्रं गोमय फलम् ।

निवपन्न कंटकारी गवा शृङ्गोदकं दधि ॥३१॥

पञ्चगव्य तथा शायः प्राशनानि क्रमादमी ।

मानिमासि स्थिता ह्येवमुपवासपरायणा ॥३२॥

ददाति श्रद्धयन्तानि वाचके ब्राह्मणोत्तमे ।

कुमु भमाज्य नवण जीरकं गुडमेव च ॥३३॥

दत्तरेभिः सूर्यस्था त्व सूर्यस्था तुष्यसि प्रिये ।

मासिमासि भवेन्मन्त्रो गकारो द्वादशाक्षरः ॥३४॥

ओङ्कारपूर्वको देवि नमस्कारात् ईरितः ।

एभिस्त्व पूजिता मत्तैस्तुष्यसि व्रततः प्रिये ॥३५॥

छठे मास मे दक्ष की दुहिता नाम से और सातवें मे मैनाकी नाम से बताई गई है । आठवें मास मे कात्यायनी नाम से—नवम मास मे हिमाद्रिजा नाम से पूजन करे ॥२६॥ दशम मास मे हे देवि ! सौभाग्य-दायिनी विख्यात है । ग्यारहवें मास मे परा गौरी नाम से भजन करना चाहिए ॥३०॥ कुशोदक-पय-घृत-गोमूत्र-गोमय-फल-नीम के पत्र-कट-कारी गौओं के शृंग का उदक-दधि-पञ्चगव्य तथा शाक ये क्रम से प्राशन होते हैं । मास-मास मे इस प्रकार से उपवास करने मे परायण होकर स्थित रहे ॥३१-३२॥ जो वाचन करने वाला ब्राह्मण हो उसे श्रद्धा के सहित कुसुम्भ-आप्य-स्रवण-जीरा और गुड़ देना चाहिए ॥३३॥ इससे सूर्यलोक मे स्थित होवे । हे प्रिये ! सूर्यस्था आप परम सन्तुष्ट होती हैं । मास मास मे द्वादशाक्षर गकार मन्त्र होता है ॥३४॥ हे देवि ! इसके पूर्व मे ओङ्कार है और अन्त मे नमस्कार बतलाया गया है । इन मन्त्रों से पूजित आप हे प्रिये ! परम सन्तुष्ट हो जाती है ॥३५॥

तुष्टा त्वभीप्सितान्नामानन्ददासि प्रीतिपूर्वकम् ।

समाप्ते तु व्रते तस्मिन्ब्राह्मण वेदपारगम् ॥३६॥

सहित भार्ययाभ्यर्च्य गघपुष्पादिभि शुभम् ।

द्विज भर्तृश्वर कृत्वा उमा भार्या तथैव च ॥३७॥

अन्न सदक्षिण दद्यात्तथा शुक्ले च वाससी ।

रक्त वासोयुग दद्यात्त्वामुद्दिश्य हरप्रिये ॥३८॥

ब्राह्मणे श्रद्धया युतस्तस्या फलमिद शृणु ।

दशवर्षसहस्राणि लोका-प्राप्य परापरां ॥३९॥

भोदते भर्तृसहिता यथेद्रेण शची तथा ।

मानुषत्व पुन प्राप्य भवेन भर्ता सहैव सा ॥४०॥

हो जाया करती है ॥४२॥ जो धावन किये हुए इस ललिता देवी के व्रत की कया भक्ति भाव से श्रवण करती है जिसको मैंने स्नेह के साथ कहा है वह भी व्रतोपवास करने के ही फल की भागिनी होती है ॥४३॥ जो ललितांग यष्टि लक्ष ललिता का भलीभाँति पूजन करके गन्धोदक अमृत घटी को शिर पर प्रक्षिप्त किया करती है वह स्वर्ग में पहुँच कर ललिताओं में ललाम भूता होती है और भूषों के स्वामी पति को प्राप्त कर इस भूमण्डल का सुखोपभोग किया करती है ॥४४॥

### ॥ अक्षय तृतीया—व्रत का माहात्म्य ॥

धनुनात्र किमुक्तेन किं ब्रह्मक्षरमालया ।

[ वैशाखस्य सितामेकां तृतीयां शृणु पाण्डव ॥१

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।

यदस्यां क्रियते किञ्चित्सर्वं स्यात्तदिहाक्षयम् ॥२

आदौ कृतयुगस्येयं युगादिस्तेन कथ्यते ।

सर्वपापप्रशमनी सर्वसौख्यप्रदायिनी ॥३

शाकले नगरे कश्चिद्धर्मनामाभवद्वणिक् ।

प्रियंवदः सत्यरतो देवब्राह्मणपूजकः ॥४

तेन श्रुतं वाक्यमानं तृतीया रोहिणी पुरा ।

यदा स्यादयुधसंयुक्ता तदा सा च महाफला ॥५

तस्यां यद्दीयते किञ्चित्सर्वं चाक्षयं भवेत् ।

इति श्रुत्वा स गंगायां सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥६

गृहमागत्य करकान्माघानुदकसंयुतान् ।

अंबुपूर्णगृहे कुम्भान्क्रमान्निःशेषतस्तदा ॥७

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाण्डव ! यहाँ पर बहुत अधिक कथन से क्या लाभ है जिनमें बहुत से अक्षरों की माला का प्रयोग हो ऐसी वाणी से

तथाप्यक्षयमेवास्य क्षय याति न तद्धनम् ।

श्रद्धापूर्वं तृतीयाया यदुत्त विभव विना ॥१४

यद—गोधूम—चणक—सक्तु—दधि—ओदन ईख क्षीर विकार आदि पदार्थ जो कि हिरण्य से युक्त थे शक्ति पूर्वक वणिक् ने पवित्र और शुद्ध मन से ब्राह्मणों को दान में समर्पित किये थे । भार्या ने उसे रोका भी था क्योंकि वह अपने कुटुम्ब में आसक्त चित्त वाली थी ॥८६॥ सब कुछ को नाशवान् मानकर तब तक वह सत्त्व में स्थित रहा था । धर्म-अर्थ और काम में समासक्त रहा फिर जब तक बहुत समय व्यतीत हो गया था ॥१०॥ तो यह बारम्बार वामुदेव का स्मरण करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ था । इसके पश्चात् वह कुशावती में नरेश्वर क्षत्रिय होकर समुत्पन्न हुआ था ॥११॥ उसके धर्म से समर्जित अक्षय समृद्धि हो गई थी । उसने श्रद्धा दक्षिणा से समन्वित जिनकी समाप्ति की गई थी ऐसे महान् यज्ञों का यजन किया था ॥१२॥ इसमें गौ भूमि और सुवर्ण आदि के अर्हतिश बहूत से दान दिये थे । दीन जनो को तृप्त करते हुए तथा आत्यों के दुःख हटाते हुए कामपूर्वक भोगों का उपभोग किया था ॥१३॥ इतना दानादि सब कुछ करने पर भी उसका धन क्षीण नहीं हुआ था । क्योंकि बिना विभव के भी तृतीया में श्रद्धा पूर्वक दान किया था ॥१४॥

एतद्व्रत मयाप्यात श्रूयतामत्र यो विधि ।

उदकु भा सकरका स्नानसर्वरसैर्युतान् ॥१५

ग्रीष्मिक सवमेवात्र सस्यदान प्रशस्यते ।

छत्रोपानतप्रदान च गोभूकाचनवाससाम् ॥१६

यद्यदिष्टम चान्यत्तर्ह्यमविशकया ।

एतत्त सवमाग्यात विमन्यच्छ्रोनुमिच्छसि ॥१७

अनाज्यय न मे विश्विदस्ति स्वस्त्यस्तु तज्जघ ॥१८

अस्या तिथौ क्षयमुपैति हुत न दत्त तेनाक्षया

च मुनिभि वयिता तृतीया ।

उद्दिश्य यत्सुरपितृ क्रियते मनुष्यैस्त

ज्ञाक्षय भवति भारत सर्वमेव ॥१९

यह व्रत मैंने बतला दिया है इसमें जो विधि है उसका श्रवण करो । उदक के पूर्ण कृम्भो को जिसमें करक (ओरा के लड्डू) पड़े हुए हो—स्नान के सर्व रसों से युक्त हो उनका दान करे । ग्रीष्म के उपयोगी सभी कुछ इसमें दान देवे तथा शस्य दान की भी बहुत प्रशंसा की गई है । छाता—उपानत का दान तथा गो—भूमि और सुवर्ण का दान एव वस्त्रों का दान करे ॥१५-१६॥ जो-जो भी इष्टतम पदार्थ है और अन्य पदार्थ हैं उनको बिना किसी शका के देना चाहिए । यह सभी कुछ तुमको बतला दिया है । अब अन्य तुम क्या श्रवण करना चाहते हो ? ॥१७॥ हे अनघ ! मुझे तुम्हारे सामने न कहने के योग्य कुछ भी नहीं है । तुम्हारा कल्याण होवे ॥१८॥ इस तिथि में हनन किया हुआ और दान दिया हुआ कभी क्षय को प्राप्त नहीं होता है । इसी कारण से मुनियों ने इसको अक्षय कहा है । जो सूर और पितृगण का उद्देश्य करके मनुष्यों के द्वारा किया जाता है हे भारत ! वह सभी अक्षय हो जाता है ।

## ॥ विनायक चतुर्थी व्रत का माहात्म्य और विधान ॥

यन्नसिद्धयन्ति कर्माणि प्रारब्धानि नरोत्तमै ।

तत्केन कारणेनैतत्पृष्ठो मे ब्रूहि माधव ॥१॥

विनायकोर्थसिद्धयर्थं लोकस्थं विनियोजित ।

गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥२॥

तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत ।

स्वप्नेऽवगाहतेऽयर्थं जल मुण्डाश्च पश्यति ॥३॥

काषायवाससश्चैव ब्रव्यादाश्चाधिरोहति ।

अत्यजर्गभैरुष्ट्रै सहैकत्रावतिष्ठते ॥४॥

व्रजमानस्तथात्मान मन्यते तु गत परं ।

विमना विफलारभ ससीदत्यनिमित्तत ॥५॥

पातकी विहीनच्छायो म्लानत्वहेतुलक्षण ।

करभारूढमात्मान महिषखरग तथा ॥६॥

यातुधानाश्रितं यानं श्मशानस्यांतिकं नृप ।  
 वीक्षेत कुरुशार्दूल स्वप्नांते नात्र संशयः ।  
 तैलाद्रमात्रं स्वं देहं करवीरविभूषितम् ॥७॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे माधव ! जो श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा आरम्भ किये हुए कर्म सिद्ध नहीं होते हैं इसका क्या कारण है—यह मैं आपसे पूछना चाहता हूँ सो आप कृपया मुझे बतला दीजिए । श्रीकृष्ण ने कहा—लोक के अर्थों की सिद्धि के लिये विनायक को विशेष रूप से नियोजित किया गया है । गणों के आधिपत्य पर भगवान् रुद्र तथा ब्रह्मा ने—इनकी ही नियुक्ति की है ॥१-२॥ उसके द्वारा जो उपसृष्ट होता है उसके लक्षणों को समझ लो । स्वप्न में अत्यन्त जो अवगाहन किया करता है तथा मुण्डों को जो देखता है ॥३॥ कापाय वस्त्र धारियों को देखता है तथा क्रव्यादों का अधिरोहण करता है । स्वप्न में अन्त्यज—गर्दम और उष्ट्रों के साथ एक ही स्थान में अवस्थित होता है ॥४॥ व्रजमान होता हुआ जो परों के द्वारा आत्मा को गण मानता है वह उदास और विफल आरम्भ वाला होता हुआ बिना ही निमित्त के दुःख पाता है ॥५॥ पातकी—विहीन कान्ति वाला तथा ग्लानत्व हेतु के लक्षण वाला होता है । करम पर आरुढ़ अपने आपको देखता है तथा महिष और खर से गमन करने वाला देखा करता है ॥६॥ यातुधानों के आश्रित मान तथा श्मशान के समीप में है नृप ! हे कुरुशार्दूल ! जो स्वप्न के अन्त में देखता है—इसमें संशय नहीं है । तैल से आद्र अपने देह को एवं करवीर से भूषित शरीर को देखता है ॥७॥

तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनंदनः ।  
 कुमारी न च भर्तारमपत्यं गर्भमंगना ॥८॥  
 आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा ।  
 वणिग्लाभं न चाप्नोति कृषिं चैव कृषीवलः ॥९॥  
 स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।  
 गौरसर्पपक्त्वेन वस्त्रेणाच्छादितस्य तु ॥१०॥



सर्वोपघे सर्वगन्धर्विलिप्तशिरसस्तथा ।

शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु वारे वा धिपणस्य तु ॥११॥

पुष्ये च वीरनक्षत्रे तस्यैव पुरतो नृप ।

भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिर्वाच्या द्विजेः शुभैः ॥१२॥

चत्वार ऋग्यजु सामाथर्वणप्रवणास्ततः ।

व्योमकेशं तु सपूज्य पार्वती भूमिजं तथा ॥१३॥

कृष्णस्य पितर चाय अवतारं सित तथा ।

धिपण क्लेदपुत्रं च कोण लक्ष्मीं च भारत ।

विधु तुद बाहुलेय नन्दकस्य च धारिणम् ॥१४॥

उससे उपसृष्ट राजा का पुत्र राज्य को प्राप्त नहीं करता है । कुमारी स्वामी को और अगना गर्भ में अपत्य को प्राप्त नहीं किया करती है ॥८॥ श्रोत्रिय आचार्य पद को तथा शिष्य अध्ययन को—वणिक लाभ को और किसान कृषि को प्राप्त नहीं करता है ॥९॥ उसका स्नपन किसी भी पुण्यदिन में विधि पूर्वक करना चाहिए । गौर संपप (सरसो) के वस्त्र से आच्छादित होवे ॥१०॥ सर्वोपघों से—सर्वगन्धो से विलिप्त शिर वाला होवे । शुक्ल पक्ष में चतुर्थी तिथि में अथवा धिपण के वार में—पुष्य और वीर नक्षत्र में हे नृप ! उसके ही आगे स्थित होवे । भद्रासन पर उपविष्ट होवे तथा फिर शुभ द्विजों के द्वारा स्वस्ति वाचन करना चाहिए ॥११-१२॥ चार ऋक्-यजु-साम और अथर्व के प्रवण विप्र होवें इसके पश्चात् व्योमकेश का तथा पार्वती और भूमिज का भली-भाँति पूजन करें ॥१३॥ कृष्ण के पिता सित अवतार—धिपण—क्लेद पुत्र—कोण—लक्ष्मी—विधु-तुद—बाहुलेय और नन्दक के धारण करने वाले का हे भारत ! पूजन करे ॥१४॥

अश्वस्यानाद्गजस्थानाद्दल्मीकात्सगमाद्घदात् ।

मृत्तिका रोचना रत्न गुग्गुल चाप्सु निक्षिपेत् ॥१५॥

यदाहृत ह्येकवर्णश्चतुर्भिः कलशैर्हंदात् ।

चर्मण्यान्बुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासन तथा ॥१६॥

सहस्राक्ष शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् ।  
 तेन त्वामभिषिचामि पावमान्य पुनस्तु मे ॥१७॥  
 ॐ भग ते वरुणो राजा भग सूर्यो बृहस्पति ।  
 भगमिन्द्रश्च वायुश्च भग सप्तर्षयो ददुः ॥१८॥  
 यत्ते केशेषु दीर्घाय सीमन्ते यच्च मूर्धनि ।  
 ललाटे कर्णयोरक्षणोरापस्तदध्नस्तु सर्वदा ॥१९॥  
 स्नातस्य सार्षप तैलं स्रुवेणौदु वरेण तु ।  
 जुहुयान्मूर्ध्नि शकलान्सव्येन प्रतिगृह्य च ॥२०॥  
 मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालकटकटौ ।  
 कूष्माण्डो राजपुत्रश्चैत्यते स्वाहासमन्वितैः ॥२१॥

अश्वो के रहने के स्थान से—गजो के बँधने के स्थान से—बल्मीक से—सगम से—हृद से मृत्तिका लावे उसको रोचना—रत्न और गुग्गुलु को जल में प्रक्षिप्त करे ॥१५॥ एक वर्ण वाले चार कलो से हृद से जो आहुत है उसे आनहुह चर्म में रक्त में स्थापित करे तथा भद्रासन लगावे ॥१६॥ सहस्राक्ष शतधार ऋषियो ने पावन किया है । उससे आपका अभिषेचन करता हूँ । पवमानी वे मुझे पवित्र करें ॥१७॥ तुम्हें राजा वरुण ने भग दिया है—सूर्य—बृहस्पति ने इन्द्र और वायु ने तथा सप्तर्षियो ने भग दिया है ॥१८॥ जो तेरे केशों में दीर्घाय है—सीमन्त में तथा मूर्धा में है । ललाटे में कानों में और आँखों में दीर्घाय विद्यमान है उसे ये जल सर्वदा के लिये विनष्ट कर देवे ॥१९॥ नवस्नात हो जावे तो औदुम्बर स्तुव से सार्षप तैल की मूर्धा में आहुतियाँ देवे और शकलो को सव्य से प्रति ग्रहण करे ॥२०॥ मित्र—सम्मित—शाल—कटकट—कूष्माण्ड और राज पुत्र अन्त में स्वाहा पद से समन्वित मन्त्रों से देवे ॥२१॥

नामभिर्वलिमन्त्रैश्च नमस्वारसमन्वितैः ।

दद्याच्चतुष्पथे पूर्णं कुक्षानास्तीर्णं सर्वतः ॥२२॥

हृतावृतास्तडुलाश्चपल लोदनमेव च ।

मत्स्यान्ह्यपववाश्च तथा मासमतावदेव तु ॥२३॥

पुष्पान्वित सुगन्ध च सुरा च त्रिविधामपि ।

मूलक पूरिका पूपास्तथैवोडेरकस्रज ॥२४॥

दध्यन्न पायस चैव गुडवेष्टितमोदकम् ।

विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोविकाम् ।

दूर्वासर्पप पुष्पाणा दत्त्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिम् ॥२५॥

रूपदेहि जय देहि भग भवति देहि मे ।

पुत्रान्देहि धन देहि सर्वकामाश्च देहि मे ॥२६॥

नमस्कार से युक्त नामा तथा बलि के भक्तों के द्वारा वस्तुष्य में सब ओर कुशो को प्रसारित कर शेष में बलि देनी चाहिए ॥२२॥ कृता कृत वण्डुल-चपन-ओदक अपक्व मत्स्य इतना ही मास होवे ॥२३॥ पुष्पों से समवित सुगन्ध-नीनो प्रकार की सुरा-मूलक-पूरिका-पूप-ओडेरक स्रज-दधि अन्न-पायस-गुडवेष्टित मोदक हो । इसके पश्चात् विनायक की जननी अम्बिका का उपस्थान करें और दूध-सरसो पुष्पो से पूरा अञ्जलि करके अर्घ्य देना चाहिए ॥२४ २५॥ हे देवि ! आप रूप-लावण्य प्रदान करें-भग देवें-पुत्रों को देवें-धन देवें और मेरी सभी कामनाओं को पूरा कर देवें ॥२६॥

प्रबल कुरु मे देवि बलविरयातिसम्भवम् ।

शुक्लमाल्यावरधर शुक्लगन्धानुलेपन ।

भोजयेद्ब्राह्मणा दद्याद्वस्त्रयुग्म गुरोरपि ॥२७॥

एव विनायक पूज्य ग्रहाश्चैव विधानतः ।

कमणा फलमाप्नोति श्रिय प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥२८॥

आदित्यस्य सदा पूजा तिलक स्वामिनस्तथा ।

महागणपतेश्चैव कुर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥२९॥

विनायक विनयसत्त्ववता नराणां

स्नान प्रशस्तमिह विघ्नविनाशकारि ।

कुर्वति ये विधिवदत्र भवति तेषां

कार्याण्यभीष्टफलदानि न सशयोऽतः ॥३०॥

हे देवि ! मेरा बल—विख्याति आदि अति प्रबल कर देवें । फिर शुक्ल मातृय और अम्बरधारी तथा शुक्ल गन्ध का अनुलेपन करने वाला होकर ब्राह्मणों का भोजन करावे और गुरु को भी करावे तथा दो वस्त्र देवे ॥२७॥ इस प्रकार से विनायक का पूजन करके एव विधि पूर्वक ग्रहों का भी यजन करके मनुष्य कर्मों का फल प्राप्त किया करता है और उत्तम श्री को भी पा जाता है ॥२८॥ सदा भगवान् आदित्य की पूजा तथा स्वामी का तिनक एव महागुणपति की पूजा करने वाला मनुष्य सिद्धि की प्राप्ति करता है ॥२९॥ विनय सत्त्व वाले पुरुषों का विनायक स्नान यहां पर परम प्रशस्त होता है और विघ्नो के विनाश का करने वाला है । जो मनुष्य यहां पर इसको किया करते हैं उनके कार्य अभीष्ट फलों के देने वाले अवश्य ही होते हैं—इसमें बिल्कुल भी संशय नहीं है ॥३०॥

अथाविघ्नकर राजन्कथयामि व्रत तव ।

येन सम्यक्कृतेनेह न विघ्नमुपजायते ॥३१॥

चतुर्ध्यां फाल्गुने मासि गृहीतव्यं व्रत त्विदम् ।

नमताहारेण राजेन्द्र तिलाक्षं पारण स्मृतम् ॥३२॥

तदेव वल्ली होतव्यं ब्राह्मणाय च तद्भवेत् ॥३३॥

शूराय वीराय गजाननाय लम्बोदरायैवरदाय चैव ।

एव तु संपूज्य पुनश्च होम क्रियादिश्रुती विघ्नविनाशहेतोः ॥३४॥

। चातुर्मास्या व्रतं चैव कृत्वेत्य पञ्चमे तथा ।

सौवर्णं गजवक्रं तु कृत्वा विप्राय दापयेत् ॥३५॥

साग्रपात्रं : पायसमृतैश्चतुर्भि सहितं नृप ।

पञ्चमन तिलं साढं गणेशाभिष्टतेन च ॥३६॥

मृन्मयान्यपि पात्राणि वित्तहीनस्तु कारयेत् ।

हेरय राजतं तट्टद्विघ्नाननं दापयेत् ।

इत्य व्रतमिदं कृत्वा सर्वविघ्ने प्रमुच्यते ॥३७॥

## विनायक चतुर्थी व्रत का माहात्म्य और विधान ] [ ३६५

कर लेने पर यहाँ कोई भी किसी प्रकार का विघ्न उठता ही नहीं है ॥२१॥ फाल्गुन मास में चतुर्थी तिथि में इस व्रत को ग्रहण करना चाहिए । हे राजेन्द्र ! इसमें नक्ताहार (रात्रि में भोजन) होता है और तिलान्न का धारण किया जाता है ॥२२॥ वही वह्नि में हवन करे और वही ब्राह्मण के लिये होवे ॥२३॥ शूर के लिये—वीर के लिये—गजानन के लिये—नम्बोदर और एक रद के लिये है । इस प्रकार से भस्ती भाँति पूजन करके व्रत धारण करने वाले को विघ्नों के विनाश करने के हेतु से पुनः होम करना चाहिए ॥२४॥ इस व्रत को चार मास तक करे और पाँचवें मास में एक सुवर्ण का निर्मित गजवक्त्र लेकर विप्र को दिलाना चाहिए ॥२५॥ हे नृप ! पायस से भरे चार ताम्र पात्रों के सहित एक पाँचवाँ पात्र ग्रहण करे जो तिस्रो ब्रह्मा तथा गणेश से अधिष्ठित होवे ॥२६॥ यदि धनकी हीनता हो तो मिट्टी के पात्रों से भी इस क्रिया को करा सकता है उसी भाँति राजतः हेरम्ब को उसी विधि—विधान से दिलाना चाहिए । इस प्रकार से इस व्रत को करके मनुष्य समस्त विघ्नों से छुटकारा पा जाया करता है ॥२७॥

हयमेघस्य विघ्ने तु सजाते सगर पुरा ।

एतदेव व्रतं चोत्त्वा पुनरथ प्रलब्धवान् ॥३८॥

तथा रुद्रेण देवेन त्रिपुर निघ्नता पुरा ।

एतदेव कृतं यस्मात्त्रिपुरस्तेन घातित ॥३९॥

मया समुद्र विशता एतदेव व्रतं कृतम् ।

तेनाद्रिद्रुमसंयुक्ता पृथिवी पुनरुद्घृता ॥४०॥

अन्यैरपि महीपालैरेतदेव कृतं पुरा ।

तपोऽर्थिभिर्यज्ञ सिद्धर्थं निर्विघ्नं स्यात्परतप ॥४१॥

अनेन कृतमात्रेण सर्वविघ्नं प्रमुच्यते ।

मया इत्यत्र मया तत्राह नृपः गण ॥४२॥

विघ्नानि तस्य न भवति गृहे कदाचि-  
द्धर्मार्थकामसुखसिद्धिविघातकानि ।

य. सप्तन्दुशकलाकृतिका तदत

१ विघ्नेशमर्चयति नक्तकृती चतुर्थ्याम् ॥४३॥

प्राचीन काल में हयमेघयज्ञ के कर्म में विघ्न उत्पत्ति हो जाने पर राजा सगर ने इसी व्रत का समाचरण विधि पूर्वक किया था और फिर गुप्त हुए अश्व की प्राप्ति की थी ॥३८॥ पहिले समय में महान् देव रुद्र ने त्रिपुरासुर का हनन करने के समय में भी इसी व्रत को किया था जिसका फल यह हुआ कि उन्होंने त्रिपुर का वध निर्विघ्न कर दिया था ॥३९॥ मैंने भी जिस समय मैं समुद्र में प्रवेश किया था उस समय में यही व्रत किया था । इससे पर्वतो और द्रुमो से समुक्त पृथिवी का पुनरुद्धार किया था ॥४०॥ पहिले अन्य बड़े-बड़े राजाओं ने भी यही व्रत किया था । हे परन्तप ! अयियों के द्वारा यज्ञ की सिद्धि के लिये तप निर्विघ्न हुआ करता है ॥४१॥ इस व्रत के करने भर से ही सभी विघ्नो से मनुष्य छुटकारा पा जाया करते हैं । भगवान् वराह का वचन है कि इस व्रत के करने वाला मृत हो जाने पर रुद्रपुर की प्राप्ति करता है ॥४२॥ उस पुरुष के घर में किसी समय में भी विघ्न नहीं हुआ करता है जो धर्म-अर्थ-काम-सुख-सिद्धि के विघात करने वाले हैं । जो सप्तमी में इन्दु के छण्ड की आवृत्ति का चतुर्थी में नक्त-कृती तदत विघ्नेश का समर्पण करता है उस विघ्नो का सर्वथा अभाव होता है ॥४३॥

## ॥ शान्ति व्रत का माहात्म्य ॥

शान्तिव्रतं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैवमनाधुना ।

यन चीर्णेन शान्तिं स्यात्सयदा गृहमधिनाम् ॥१॥

पचम्या शुक्लपक्षस्य कार्तिगे मासि पार्थिव ।

आरभ्य वषमेव तु ह्यग्नौ याम्नवर्जितम् ॥२॥

नक्त देव च सपूज्य हरि शेषोपरिस्थितम् ।  
 अनतायेति पादौ तु घृतराष्ट्राय वै कटिम् ॥३॥  
 उदर तक्षकायेति उर कर्कोटकाय च ।  
 पद्माय कर्णौ सपूज्य महापद्माय क्षौर्युगम् ॥४॥  
 शलपालाय वक्षस्तु कुशिकायेति वै शिरः ।  
 एव विष्णु सर्वगत पृथगेव प्रपूजयेत् ॥५॥

श्रीकृष्ण न ब्रह्मा —अब हम शांति व्रत के विषय में वर्णन करते हैं । आप एक निश्चय मन धार होकर उमका श्रवण करिय । यह ऐसा अद्भुत व्रत है जिसके मांग सम्पादन करने पर गृहस्थियो के घर में सर्वदा पूर्ण शांति स्थित रहा करती है ॥१॥ हे पार्थिव ! वांछित काम के शुक्ल पक्ष में पंचमी तिथि में इस व्रत का आरम्भ करें और फिर एक वर्ष तक अन्न से रहित ही भोजन करना चाहिए ॥२॥ रात्रि के समय में शयन की शय्या पर विराजमान हरि देव का समर्पण करे—अनन्त के लिये चरणों का यजन करे—घृतराष्ट्र के लिये कटि का पूजन करे ॥३॥ तक्षक के लिये उदर का करे—कर्कोटक के लिये उरस्थल का अर्चन करे—पद्म सङ्ग सप के लिये दोनों कानों का करे—महापद्म के लिये क्षौर्युग का पूजन करना चाहिए ॥४॥ शलपाल के लिये वक्षस्थल का और कुलिक लिये शिर का पूजन करे । इस प्रकार से सब म रहने वाले विष्णु का पृथक् ही पूजन करे ॥५॥

क्षीरेण स्नपन कुर्याद्विरिमुद्दिश्य वाग्यत ।  
 तदग्रे होमयत्क्षीर तिलै सह विचक्षण ॥६॥  
 एव सवत्सरस्थाते कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।  
 अच्युत काचन कृत्वा सुवर्णं तु विचक्षण ॥७॥  
 गा सवत्सा वस्त्रयुग कास्यपात्र सपायसम् ।  
 हिरण्य च यथाशक्ति ब्राह्मणायोपपादयत् ॥८॥  
 एव य कुरुते भक्त्या व्रतमेतन्नराधिप ।  
 तस्य शांतिर्भवेन्नित्य नागानामभय तथा ॥९॥

शेषाहिभोगक्षयनस्थमयोगसूतिं  
 सपूज्य यज्ञपुरुष पतगेन्द्रनाथम् ।  
 य पूजयति मधुरैः सितपचमीषु  
 तेषां न नागजनित भयमभ्युपैति ॥१०॥

वाक्यत अर्थात् मौन होकर हरि का उद्देश्य लेकर क्षीर से स्नपन करे और विचक्षण पुरुष को उनके आगे तिलो के साथ क्षीर वा हवन करना चाहिए ॥६॥ इस तरह से जब सम्बरसर वा अन्त हो तब ब्राह्मणों को भोजन करावे । कचन की अच्युत प्रभु की मूर्ति निर्मित करा कर उसे और सुवर्ण ब्राह्मण को देवे ॥७॥ यौ जो वरस के सहित हा—दो वस्त्र—कौसी वा पात्र—पायस स परिपूर्ण—यथा शक्ति सुवर्ण ब्राह्मण को उपपादित करे ॥८॥ हे नराधिप । इस तरह से जो भक्ति भाव से इस व्रत को किया करता है उसको नित्य ही शान्ति होती है और नागों का सदा भय नहीं होता है ॥९॥ शेष नाग के भोग पर शयन म सन्ध्या—अयोग सूति—पतगेन्द्र नाथ यज्ञ पुरुष वा भनी मांति पूजन करके शुक्ल पत्र की पचमी मियियों म उनका मधुरा के द्वारा पूजन किया करत हैं वे नागों से उत्पन्न होने वाल भय का कभी प्राप्त नहीं होते हैं ॥१०॥

## ॥ नाग पचमी व्रत वा माहात्म्य ॥

पचमी दयिता राजप्रागानदविवर्द्धनी ।  
 पञ्चम्या क्लिप्त नागानां भवतीत्युत्सवा महान् ॥१॥  
 यामुविस्तदावश्चैव वात्रिवो माणिभद्रय ।  
 धृतराष्ट्रो रंवनश्च नर्योदवधनत्रयी ।  
 एत प्रपञ्चम्यभय प्राणिनां प्राणजीविनाम् ॥२॥  
 पञ्चम्या स्नपयन्तीह नागाक्षीरग य नगा ।  
 तेषां कुत्र प्रपञ्छन्ति अभय प्राणिनां सदा ॥३॥



शप्ता नागा यदा माता दह्यमाना दिवानिशम् ।  
निर्वापिता गवा क्षीरैस्ततः प्रभृति वल्लभाः ॥४॥  
मात्रा शप्ताः कथं नागाः किमुद्दिश्य च कारणम् ।  
कथं वा तस्य शापस्य विनाशोऽभूज्जनार्दन ॥५॥  
उच्चैःश्रवाश्चराजश्च श्वेतवर्णोऽमृतोद्भवः ।  
तं हृष्टा चाब्रवीत्कद्रूनांगाना जननी स्वसाम् ॥६॥  
अश्वरत्नमिदं श्वेतं पश्यपश्यामृतोद्भवं ।  
कृष्णाश्च वीक्ष्यसे बालान्सर्वंश्वेतानुताद्य वै ॥७॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन् । दयिता पंचमी नागों के आनन्द को बढ़ाने वाली है । इस पञ्चमी में नागों का एक महान् उत्सव होता है ॥१॥ वासुकि—तक्षक—कालिक—मणिमद्रक—धृतराष्ट्र—रैवत—कर्कोटक—ये सब प्राणों से जीवी प्राणियों को अभय प्रदान किया करते हैं ॥२॥ जो मनुष्य पञ्चमी तिथि में यहाँ लोक में नागों को क्षीर से स्नान करते हैं उनके कुल में सदा प्राणियों को अभय का दान दिया करते हैं ॥३॥ माता के द्वारा जब नाग शाप दिये गये थे तो वे अहर्निश दह्यमान् रहा करते हैं । गायों के क्षीर से जब वे निर्वापित होते हैं तो तभी से लेकर वे प्रिय होजाया करते हैं ॥४॥ युधिष्ठिर ने कहा—माता के द्वारा नागों को क्यों और कैसे शाप दिया गया था । इस शाप देने का क्या उद्देश्य था और इसका कारण भी क्या हुआ था फिर किस तरह से उस दिये हुए शाप का विनाश हुआ था ? हे जनार्दन ! यह कृपया बतलाइये ॥५॥ श्रीकृष्ण ने कहा—उच्चैःश्रवा अश्वों का राजा है । वह श्वेत वर्ण वाला है और अमृत से उसकी उत्पत्ति हुई है । उसको देखकर नागों की जननी कद्रू अपनी बहिन से बोली—॥६॥ इस श्वेत अश्वरत्न को देख-देख । यह अमृत से उद्भव प्राप्त करने वाला है । कृष्ण वर्ण वाले बाल भी सब श्वेत ही दिखलाई देते हैं ॥७॥

सर्वंश्वेतो ह्यवरो नाय कृष्णो न लोहितः ।

कथं त्वं वीक्ष्यसे कृष्णं विनतोवाच ता स्वसाम् ॥८॥

वीक्षेऽहमेकनयना कृष्णबाल समन्वितम् ।  
 द्विनेत्रा च त्वं विनते न पश्यसि पण कुरु ॥६॥  
 अह दासी भवित्री ते कृष्णकेशे प्रदर्शिते ।  
 नचेद्दृश्यसे कद्रू मम दासी भविष्यसि ॥१०॥  
 एव ते विपण कृत्वा गते क्रोधसमन्विते ।  
 सुपुत्रे प्राज्यदोषे तु कद्रू जिह्वामचित्तयत् ॥११॥  
 आहूय पुत्रान्प्रोवाच बाला भूत्वा हयोत्तमे ।  
 तिष्ठध्व विपणी जेष्ये विनता जयगृद्धिनीम् ॥१२॥  
 प्रोचुस्ते जिह्वबुद्धि ता नागा कद्रू विगृह्य च ।  
 अधर्म एष तु महा-करिष्यामौ न ते वच ।  
 अशपद्रुषिता कद्रू पावको व प्रघक्षयति ॥१३॥  
 गते बहुतिथे काले पाडवो जनमेजय ।  
 संपंसस स वर्ता वै भूमावन्ये सुदुष्करम् ॥१४॥

विनता ने कहा—यह हयवर समी दवेत है । न तो यह कृष्ण वर्ण वाला कहीं भी है और न लोहित है । तुम इस को कैसे कृष्ण वर्ण माना देख रही हो—विनता ने इस तरह अपनी बहिन से कहा था ॥६॥ कद्रू ने कहा—एक नयन वाली मैं इसको कृष्ण वाली से समन्वित देख रही हूँ । हे विनते ! आप तो दो नली वाली है फिर भी नहीं देख रही हो—साओ कुछ शर्तें बढ लो ॥६॥ विनता ने कहा—यदि कृष्ण केश हम के दिखला दिये तो मैं आपकी दासी हो जाऊँगी और यदि हे कद्रू ! तुम ऐसा नहीं दिखा सकी तो फिर मेरी दासी तुम को होता होगा ॥१०॥ इस प्रकार से वे दोनों शर्तें लगाकर क्रोध से समन्वित होती हुई चली गई थी । प्राज्यदोष के सुपुत्र हो जाने पर कद्रू ने एक जिह्वा (कुटिलता) का चिन्तन किया था । अपने पुत्रों को बुला कर कहा—तुम सब बान बन कर उस उत्तम अश्व में स्थित हो जाओ । तुम वहीं पर स्थित रहोगे । मैं शर्तें में जीत जाऊँगी क्योंकि यह विनता जय-गृद्धिनी हो रही है ॥११-१२॥ नागों ने जिह्वा बुद्धि वाली उस कद्रू को पकड कर कहा—यह तो महान् अश्व का काम है । हम अपना यह

वचन नहीं करेंगे । तब तो कद्रू ने रोप में भर कर उन पुत्रों को शाप दे दिया था कि पावक तुमको जलावेगा ॥१३॥ बहुत-समय व्यतीत हो जाने पर पाण्डव जनमेजय सर्प सत्र करेगा जोकि अन्य लोगों के द्वारा महान् कठिन है ॥१४॥

तस्मिन्सत्रे च तिग्माशु पावको भक्षयिष्यति ।

एव शप्त्वा तदा कद्रू प्रत्युवाच न किंचन ॥१५॥

माता शप्तस्तदा नाग कर्तव्य नान्वपद्यत ।

वासुकिदुःखसतप्त पपात भुवि मूर्छित ॥१६॥

वासुकि दुःखित दृष्ट्वा ब्रह्मा प्रोवाच सात्वयन् ।

मा शुचो वासुवेऽत्यर्थं शृणु मद्बचन परम् ॥१७॥

यायावरकुले जातो जरत्कारुरिति द्विज ।

भविष्यति महातेजास्तस्मिन्वाले तपोनिधि ॥१८॥

भगिनी च जरत्कारु तस्य त्व प्रतिदास्यसि ।

भविता तस्य पुत्रोऽसावस्तीव इति विश्रुत ॥१९॥

स तत्सन प्रवृद्ध वै नागानां भयद महत् ।

निषेधयिष्यति मुनिर्वाग्भि सपूज्य पार्थिवम् ॥२०॥

तदिय भगिनी नाग रूपोदायगुणान्विता ।

जरत्कारुर्जरत्कारो प्रदेया ह्यविचारतः ॥२१॥

उस सत्र में तिग्म किरणों वाला पावक खाजायगा एवमादि रीति से शाप देकर कद्रू ने फिर कुछ भी नहीं कहा था ॥१५॥ माता के द्वारा शाप दिये गये नाग उस समय में कुछ भी अपना कर्त्तव्य न खोज सके थे । वासुकि तो इसके महान् दुःख स सतप्त होकर मूर्छित होकर भूमि में गिर गया था ॥१६॥ वासुकि को इस भाँति अति दुःखित देख कर ब्रह्मा जी ने उसे सात्वना देने हुए कहा—हे नामुके ! इसका तुम अत्यन्त रज मत करो और भरा जो परम वचन है उसका श्रवण करो ॥१७॥ यायावर कुल में जरत्कारु नाम वाला द्विज उत्पन्न हुआ है । उस समय में वह तपोनिधि महान् तेजस्वी हो जायगा ॥१८॥ उस जरत्कारु को तुम अपनी भगिनी होगी । उसका एक पुत्र आम्तीक नाम

से प्रसिद्ध होगा ॥१९॥ वह मुनि इस प्रवृद्ध और नागों को महान् नय का देने वाले सत्र का अपनी वाणियों से पाथिव का सम्पूजन करके निषेध करेगा ॥२०॥ सो हे नाग ! रूप और औदार्य गुण से मुक्त भगिनी को जरतकार को बिना कुछ विचार किये अवश्य ही दे देनी चाहिए ॥२१॥

यदासौ प्रार्थ्यतेऽरण्ये भक्तिञ्चित्प्रवदिष्यति ।

तत्कर्तव्यमशेषेण इच्छेच्छ्रेयस्तथात्मनः ॥२२॥

पितामहवचः श्रुत्वा वासुकिः प्रणिपत्य च ।

तथाकरोद्यथा चोक्तं यत्न परममास्थितः ॥२३॥

तच्छ्रुत्वा पद्मगाः सर्वे प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः ।

पुनर्जातिमिवात्मानं मेनिरे भुजगोत्तमाः ॥२४॥

अप्लवे तु निमग्नानां घोरे यज्ञाग्निसागरे ।

आस्तीवस्तत्र भविता प्लवभूतोऽभयप्रदः ॥२५॥

श्रुत्वा स चाग्निराजानमृत्विजस्तदनतरम् ।

निवर्तमिष्यति याग नागानां मोहन परम् ॥२६॥

पञ्चम्या तच्च भविता ब्रह्मा प्रोवाच लेलिहान् ।

तस्मादियं महाराज पञ्चमी दयिता शुभा ॥२७॥

नागानां हर्षजननी दत्ता वै ब्रह्मणा पुरा ।

दत्त्वा तु भोजनं पूर्वं ब्राह्मणानां तु कामतः ॥२८॥

जिस समय में यह अरण्य में प्रार्थ्यमान हो और जो कुछ भी कहेंगी वह पूर्णतया कर डालना चाहिए यदि अपना ध्येय तुम चाहते हो ॥२२॥ पितामह के इस वचन का ध्यान कर वासुकि ने उनकी प्रणाम किया था और परम यत्न में समास्थित होकर वही किया था जो कुछ भी उससे कहा गया था ॥२३॥ यह सुन कर सभी पद्मग हर्ष से उत्फुल्ल नेत्रों वाले होगये थे । सब भुजगोत्तमों ने अपने आपको पुनः जन्म प्राप्त करने वाला माना था ॥२४॥ बिना किसी प्लव के घोर यज्ञ की अग्नि रूपी सागर में डूबने वालों को वहाँ पर आस्तीव अभय प्रदान करने वाला प्लव (तरण का साधन) ने समान होगा ॥२५॥ वह अग्नि इसे

सुन कर तदनन्तर ऋत्विजगण नागों का परम मोहन यज्ञ को निवृत्त कर देंगे ॥२६॥ ब्रह्माजी ने उन सर्पों से कहा—वह पंचमी मे होगा । हे महाराज ! इसी कारण से यह पञ्चमी शुभा दयिता कही जाती है ॥२७॥ यह नागों को हर्ष के उत्पन्न करने वाली है और ब्रह्माजी ने ही पहिले इसे दिया था । कामना से पहिले ब्राह्मणों को भोजन का धान करे ॥२८॥

विसृज्य नागा प्रीयता ये केचित्पृथिवीतले ।  
हिमाचले ये वसन्ति येऽन्तरिक्ष दिविस्थिता ।  
ये नदीषु महानागा ये सर स्वभिंगामिन ॥२९॥  
ये वापीषु तडागेषु तेषु सर्वेषु वै नमः ॥३०॥  
नागान्विप्राश्च संपूज्य विसृज्य च यथार्थतः ।  
ततः पश्चाच्च मुञ्जीयात्सह भृत्यैर्नराधिप ॥३१॥  
पूर्वं मधुरमश्नीयात्स्वेच्छया यदनन्तरम् ।  
एव नियमयुक्तस्य यत्फल यन्निबोध मे ॥३२॥  
मृतो नागपुर याति पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ।  
विमानवरमारूढो रमते बालमीप्सितम् ॥३३॥  
इह चागत्य राजासौ सर्वराजवरो भवेत् ।  
सर्वरत्नसमृद्धश्च बाहनाढ्याश्च जायते ॥३४॥  
पञ्चजन्मभ्यसौ राजा द्वापरेद्वापरे भवेत् ।  
आधिष्ठ्याधिविनिमुक्तः पत्नीपुत्रसहायवान् ।  
तस्मात्पूज्याश्च नागाश्च घृतक्षीरादिना सदा ॥३५॥

वित्तजन करके समस्त नाग जो भी इस पृथिवी तल मे कोई स्थित हैं प्रसन्न होंगे । जो हिमालय मे निवास करते हैं या अन्तरिक्ष मे एष दिवलोक मे स्थित हैं । जो महानाग नदियों मे स्थित रहते हैं । और जो सरोवरों मे विराजमान हैं ॥२९॥ जो वावडियों मे-तालाबों मे स्थित है उन सबके लिये नमस्कार है ॥३०॥ नागों का और विप्रों का भली भाँति अचन करके फिर उन सबका विसर्जन कर देवे जोकि वास्तविक रूप से ब्रिया जावे इसके पश्चात् हे नराधिप ! अपने भृत्यों के सहित

भोजन करे। ३१। सब से पूर्व जो मधुर पदार्थ हो उनका भक्षण करे उसके अनन्तर फिर स्वेच्छा से भोजन करे। इस प्रकार से जो नियम मैं युक्त होता है उसका जो पान प्राप्त होता है उसे भी भुज्य से जानो ॥३२॥ मरने के पश्चात् वह नागपुर को प्राप्त होता है जहाँ पर अप्सराओं के समूहों द्वारा पूज्यमान हुआ करता है। एक परम श्रेष्ठ विमान पर समावृद्ध होकर अपने अभीष्ट समय पर तत्त रमण किया करता है ॥३३॥ फिर जब भूमि में प्राप्त होता है तो वह ममस्व राजाओं में श्रेष्ठ राजा होता है जो समस्त रत्नों से समृद्ध और वाहनो से आरुह्य हुआ करता है ॥३४॥ द्वापर द्वापर में यह पाप जन्मा तक राजा होता है जो सभी आधि और व्याधियों से विमुक्त होकर परती तथा पुत्रों की सहायता पाता हुआ करता है। इस कारण मैं राजा का मन्त्र पृत और क्षीर आदि प द्वारा पूजन अवश्य हो करना चाहिए ॥३५॥

यह आप मेरे सामने विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ॥३६॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन् ! जो मनुष्य नाग के द्वारा दष्ट होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है वह अघ पतित होता है । अघोभाग में जाकर वह निर्विप संप होता है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥३७॥ युधिष्ठिर ने कहा—जिसका पिता नाग से दष्ट हो—माई—माता सुहृत्—पुत्र भगिनी—पुत्री—भार्या कोई भी तो फिर उसका क्या कर्त्तव्य है—यह मुझे बतलाइये ॥३८॥ हे गोविन्द ! उस दष्ट हुए प्राणी के मोक्ष के लिए कोई दान—व्रत या उपवास हो तो हे यदुशाद्वंस ! मुझे बतलाइये जिससे वह स्वर्गति को प्राप्त कर सके ॥३९॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन् ! नागों के पुष्टि का वर्द्धन करने वाली यही पञ्चमी है इसी का उपवास उसे करना चाहिए । यह उपवास भी पूरे एक वर्ष पर्यन्त करे । हे राजेन्द्र ! इसका जो विधान है उसका आप अब श्रवण करिये ॥४०॥ हे महीपते ! भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष में जो पञ्चमी है वह परम पुण्यतम कही गयी है । सद्गति की कामना से इसका ही ग्रहण करना चाहिए ॥४१॥ हे भरतर्षभ ! वर्ष के अन्त तक बारह पञ्चमी तिथियाँ जाननी चाहिए । चतुर्थी के एक बार उसमें रात्रि में बसाया गया है अर्थात् भोजन करे ॥४२॥

| भूरिचन्द्रमय नागमथवा कलघोतजम् ।

कृत्वा दारमग चापि उताहो मृन्मय नृप ॥४३॥

पञ्चम्या मर्चयेद्भुवत्या नाग पञ्चफण शृणु ।

१। वरवीरंस्तथा पद्मं जनीपुष्पं सुशोभनं ॥४४॥

गन्धपुष्पं सनंवेद्यं पूज्य पद्मगसत्तमम् ।

ग्राह्याणां भोजयेत्पश्चाद् घृतपायसमोदकं ॥४५॥

नारायणमलिं कार्यं सर्पदष्टस्य देहि न ।

दाने पिडप्रदाने च ग्राह्याणाम् च तर्पयेत् ॥४६॥

वृषोत्सर्गंस्तु वर्तव्यं गते मवत्सरे नृप ।

स्नानं कृत्स्वोदकं दद्यात्कृष्णोऽथ प्रीयतामिति ॥४७॥

अननो वानुविः शेषः पद्मः कम्बल एव च ।

तथा तक्षक नागश्च नागश्चास्त्रपङ्कजे नृप ॥४८॥

धृतराष्ट्र शङ्खपाल बालियस्तक्षकस्तथा ।

पिगलश्च महानागो मासिमासि प्रकीर्तिता ।

वत्सराते पारणस्यान्महाब्राह्मणभोजनम् ॥४६॥

भूरि चन्द्रमय अथवा सुवर्ण वा निर्मित तथा काष्ठ से विरचित या है नृप ! मिट्टी का बनाया हुआ नाग पंचमी तिथि में पाँच फणा वाले नाग का भक्तिभाव से अर्चन करे—उसका विधान सुनो । वर वीर के पुण्य हो—पद्मपुण्य हो अथवा परम शोभन जाती के पुण्य हो जो गंध युक्त हो उही से मनन करना चाहिए ॥४३-४४॥ नैवेद्य भी उनके साथ में लेकर थोड़ा पन्नग का पूजन करके पीछे ब्राह्मणों को धृतपायस से तथा मोदकों से भोजन करावे ॥४५॥ जो मनुष्य सप के द्वारा काटा गया है और उससे उसकी मृत्यु हुई हो उस देहधारी की नारायण बलि अवश्य ही करानी चाहिए । दान में तथा पिण्ड प्रदान के कर्म में ब्राह्मणों को तृप्त करे ॥४६॥ हे नृप ! जब एक वत्सर समाप्त होजाय तो उसी के उद्देश्य से वृष का उत्सव करे । स्नान करके उदक देकर यहाँ पर धीकृष्ण प्रसन्न होवें—यह कह कर करे ॥४७॥ अनन्त—वासुकि शप—पद्म कम्बल—तथा तक्षक नाग और है नृप ! अश्वतर नाग धृतराष्ट्र महानाग मास मास में कीर्तित किये गये हैं । वष के अंत में पारण करे तथा महा ब्राह्मण भोजन करावे ॥४८-४९॥

इतिहासविदे नाग काचनेन कृतो नृप ।

तथार्जुनी प्रदातव्या सबत्सा कास्यदोहना ॥५०॥

एष पारणके पाथ विधि प्रोक्तो विचक्षणं ।

कृते व्रतवरे तस्मिन्सद्गतिं याति वाचवा ॥५१॥

ये ददशूकरदनदष्टा प्राप्ता ह्यधोगतिम् ।

वषमेक चरिष्यति भवत्या ये व्रतमुत्तमम् ।

दाष्ट्रिक मोक्ष्यते तेषां शुभ स्थानमवाप्स्यति ॥५२॥

यश्च द शृणुयान्नित्यं पठेद्भक्त्या समर्पित ।

न चै कुटुम्बे नागेभ्यो भय भवति कुत्रचित् ॥५३॥



तद्वद्भाद्रपदे मासि पञ्चम्या श्रद्धयान्वित ।  
 यस्त्वालित्य नरो नागान्कृष्णवर्णादिवर्णकै ।  
 पूजयेद्गन्धपुष्पैस्तु सर्पिर्गुग्गुलुपायसं ॥५४॥  
 तस्य तुष्टिः समायाति पद्मगास्तक्षकादयः ।  
 आसप्नमात्कुलात्तस्य न भय नागनो भवेत् ॥५५॥  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नागान्सपूजयेद्बुधः ॥  
 तथा चाश्वयुजे मासि पञ्चम्या कुरुनदन ॥५६॥

हे नृप ! इतिहास के जाता के लिए काश्चन से निर्मित कराया हुआ नाग तथा अर्जुनी सवस्मा और कास्य दोहना प्रदान करनी चाहिए ॥५०॥ हे पार्थ ! विचक्षण पुरुषों के द्वारा यही पारण मे विधि बतलाई गई है । इस श्रेष्ठ व्रत के करने पर जो बान्धव सर्प दष्ट होकर दुर्गति हो वे सद्गति को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥५१॥ जो दन्द शूक के दाँतो से दष्ट होकर अधोगति को प्राप्त हुए हो उनकी सद्गति के लिये एक वर्ष पर्यन्त भक्तिभाव से जो इस व्रत का समाहरण करेंगे उनका दार्ष्टिक मोक्ष हो जाया करता है और फिर शुभ स्थान भी प्राप्त होता है ॥५२॥ जो इस महा शुभ व्रत की कथा का नित्य ही श्रवण किया करता है या भक्ति से समन्वित होने हुए पाठ करता है उसके कुटुम्ब मे नागों से फिर कहीं पर भी कोई भय नहीं रहता है ॥५३॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—इसी भाँति भाद्रपद मास मे पञ्चमी तिथि मे श्रद्धा भाव से संयुक्त होकर जो मनुष्य कृष्ण वर्ण वाले रंगों से नागों का आलेखन करे और फिर गन्धाक्षत पुष्पादि से एवं सर्पि (घृत) गुग्गुल पायस आदि से पूजन करना चाहिए ॥५४॥ उसके इस पूजन से तक्षकादि पद्मग परम तुष्टि को प्राप्त हुआ करते हैं और उनके सात कुलों तक बन्धु भी नाग से भय नहीं होता है ॥५५॥ इससे सब प्रकार के प्रयत्न से बुध पुरुष को हे कुरु नन्दन ! आश्विन मास मे पञ्चमी मे नागों का भले प्रकार से पूजन करना चाहिए ॥५६॥

व्रत्वा कुशमयाभ्रागानिद्राण्या सह पूजयेत् ।

घृतोदकाभ्या पयसा स्नपयित्वा विशापते ॥५७॥

गोधूमै पयसा स्विन्नैर्भक्ष्यैश्च विविघैस्तथा ।  
 यस्त्वस्या विविधानागाञ्छुचिर्मक्त्या समन्वित ॥५८॥  
 पूजयेत्कुरुशार्दूल तस्य शेषादयो नृप ।  
 नागा प्रीता भवन्तीह शांतिं प्राप्नोति शोभनाम् ।  
 स शांतिं लोक मासाद्य मोदत शाश्वती समा ॥५९॥  
 इत्येतत्कथितं वीर पञ्चमीव्रतमुत्तमम् ।  
 तत्रायमुच्यते मत्त सर्वदोषनिपेधक ॥६०॥

( ॐ कुरुकुल्ले हु फट् स्वाहा )

भक्तेन भक्ति सहिता शतपञ्चमीषु ये  
 पूजयति भुजगाकुसुमोपहारैः ।  
 तेषां गृहेष्वभयदा हि सदैव सर्पा शश्वत्प्र  
 मोदपरमा रुचयो भवति ॥६१॥

कुशमय नागो का निर्माण करके इन्द्राणी के साथ पूजन करे । हे  
 विष्णुपते ! पहिले घृत—उदक और पय से स्नपन करके ही अर्चन करे  
 ॥५७॥ पयसे स्विन्न गोधूम तथा अनेक प्रकार के भक्ष्यो से जो पुरुष  
 पञ्चमी में विविध विधान पूर्वक शुचि होकर भक्ति की भावना से समन्वित  
 होकर पूजा किया करता है हे कुरु शार्दूल नृप ! उस पर शेष आदि  
 नाग परम प्रसन्न होते हैं और उ हे परम शोभन शांति की प्राप्ति होती  
 है । फिर वह पुरुष शांति लोक की प्राप्ति करके शाश्वती समा पय त  
 परमानन्द प्राप्त किया करता है ॥५८ ५९॥ हे वीर ! यह परमोत्तम  
 पञ्चमी के व्रत का विधान हमने आपको बतला दिया है । वहा पर सर्पों  
 के दोष का निवारण करने वाला यह मात्र भी कहा जाता है—‘ ॐ  
 कुरुकुल्ले ॥ फट् स्वाहा —यह मत्त का आकार है । जो भक्तिभाव  
 के सहित शत पञ्चमियों में कुसुमों के उपहारों के द्वारा भुजगों का पूजन  
 किया करते हैं उनके घर में सदा ही सर्प निरन्तर प्रमोद युक्त होकर  
 अति प्रसन्न रुचि वाले अभय देने वाले होते हैं ॥६० ६१॥

## ॥ श्री पचमी के व्रत का माहात्म्य ॥

कथमासाद्यते लक्ष्मोर्दुर्लभा भुवनत्रये ।  
दानेन तपसा वापि व्रतन नियमेन वा ॥१॥  
जपहोमनमस्कारैः सस्कारैर्वा पृथग्विधैः ।  
एतद्वद यदुत्थेष्ट सर्ववित्त्वं मतो मम ॥२॥  
भृगो व्यास्या समुत्पन्ना पूर्वं श्री श्रूतते शुभा ।  
वासुदेवाय सा दत्ता मुनिना मानवृद्धये ॥३॥  
वासुदेवोऽपि ता प्राप्य पीनोन्नतपयोधराम् ।  
पद्मपत्रविशालाक्षी पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥४॥  
भाभासितदिगाभोगा साक्षाद्भानो प्रभामिव ।  
नितवाडवरवती मत्तमातङ्गगामिनीम् ।  
रेमे सह तथा राजन्विभ्रमोद्भ्रातचित्तया ॥५॥  
सा च विष्णु जगज्जिष्णु पतिं त्रिजगता पतिम् ।  
प्राप्य कृतार्थमात्मान मेने मानपशोधना ॥६॥  
हृष्ट पुष्ट जगत्सर्वमभवद्भाविता तथा ।  
लक्ष्म्या निरीक्षित चैव सानद हि महोत्तलम् ॥७॥

युधिष्ठिर ने कहा—यह लक्ष्मी जो तीनो भुवनो में महा दुर्लभा है किस प्रकार से प्राप्त की जाया करती है ? इसके प्राप्त करने के लिये कोई दान है—तप है—व्रत है या कोई नियमों का पालन होता है ? ॥१॥  
जाप—होम—नमस्कारों के द्वारा या कोई पृथक् प्रकार के सस्कारों के द्वारा इसकी प्राप्ति होती है ? हे यदु उत्थेष्ट ! आप तो सभी कुछ के ज्ञाता हैं । अतएव मुझे यह बतसाने की कृपा करें ॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा—  
पहिने यह परम शुभा थी भृगु मुनि से व्यासि म समुत्पन्न हुई थी—ऐसा मुना जाता है । उस मुनि न मान की वृद्धि के लिये उन थी वो वासुदेव भगवान् के लिये दे दिया था ॥३॥ वासुदेव ने भी उस पीन एवं उन्नत स्तनों वाली—पद्म दलों के समान नगरी वाली—पूर्ण चन्द्र के तुल्य मुख से सम्प्रदा अपनी बाति से दिशाओं के आभोगों को भासित करन वाली—

नितम्बो के ब्राह्मन्वर से पूर्ण—मस्त हाथी के समान गमन करने वाली साक्षात् सूर्य की प्रभा के ही तुल्य उसे प्राप्त करके विभ्रमो से उद्भ्रान्त चित्त वाली उसके साथ रमण किया था ॥४-५॥ उसने भी जगत् विष्णु-तीनों लोको के स्वामी भगवान् विष्णु को अपना पति प्राप्त करके मान और यश के धनवाली वह अपने आपको परम कृतार्थ मानती थी ॥६॥ उसक द्वारा भावित यह सम्पूर्ण जगत् हृष्ट पुष्ट हो गया था । लक्ष्मी के द्वारा केवल निरीक्षित होने पर ही यह महीतल आनन्द संयुक्त था ॥७॥

क्षेम सुभिक्षमारोग्यमनाक्रन्दमनाकुलम् ।

जगदासीदनुद्भ्रान्त प्रशातोपद्रव तथा ॥८॥

दिवि देवा मुमुदिरे दानवा दैत्यमागताः ।

विस्फारितफणाभोगा नागाश्चैव रसातले ॥९॥

हृदये ब्राह्मणैर्वह्नी भुज्यते सिदिवह्वि ।

चातुर्वर्ण्यमसकीर्णं पाल्यते पार्थ पार्थिव ॥१०॥

विरोचनप्रभृतिभिर्हृष्टैर्वा दैत्यसत्तमैः ।

तपस्तप्तुमथारब्धमग्निमाश्रित्य सयतं ॥११॥

सोमसस्थाह्वि सस्थापाकसख्यादिभिर्मखैः ।

सदाचारैः समारब्धमिष्टं स्वेष्टाभिलाषिभिः ॥१२॥

एव धर्मप्रधानैस्तैर्वेदवादरतात्मभिः ।

जगदासीत्समाक्रात विक्रमेण क्रमेण तु ॥१३॥

लक्ष्मीविलासप्रभवो देवानामभवन्मदः ।

मदाच्छील च शौचं च सत्यं सद्यो व्यनीनशन् ॥१४॥

उस देवी लक्ष्मी के दृष्टिपात से ही सोम—सुभिक्ष—आरोग्य—अनाक्रन्द और अनाकुल—अनुद्भ्रान्त तथा प्रशात उपद्रवों वाला यह जगत था ॥८॥ दिशाओं में देवगण परमानन्द पूर्ण हो गये थे और दैत्यगण दीनता को प्राप्त हो गये थे । रसातल में नागवृन्द विस्फारित फणा वाले थे ॥९॥ हे पाय ! हृदय में ब्राह्मणों के द्वारा अग्नि में देवगण ह्वि का भोग किया करते थे तथा राजाओं के द्वारा चारों वर्णों का असकीर्णता से पालन किया जाता था ॥१०॥ विरोचन प्रभृति श्रेष्ठ दैत्यों ने इस प्रकार

की अवस्था को देख कर परम सयत होकर तपश्चर्या का करना अग्नि का आश्रय ग्रहण करके करा दिया था ॥१॥ अपने अभीष्ट की प्राप्ति की अभिलाषा वाले दैत्यो ने सोम सस्या—हवि सस्या एव पाक सख्या आदि मखो के द्वारा सदा चारो से इष्ट करना आरम्भ कर दिया था ॥१२॥ इस प्रकार से धर्म की ही प्रधानता वाले—वेदो के बाद रत आत्मा वाले उन दैत्यो के द्वारा क्रम से विक्रम से यह सम्पूर्ण जगत् समाक्रान्त हो गया था ॥१३॥ लक्ष्मी के विलास से समुत्पन्न देवो को उधर मद हो गया था । उस मद का ऐसा प्रभाव हुआ कि शील—शौच और सत्य सभी तुरन्त ही विनष्ट हो गये थे ॥१४॥

सत्यशौचविहीनास्ता-देवान्सत्यज्य चञ्चलान् ।

जगाम दानवकुल कुलदेवानुरागत ॥१५

लक्ष्म्या भावितदेहेस्तै पुनरुद्धतमानसै ।

यबहुतुं समारब्धम-यायेन मदोद्धतं ॥१६

वय वेदा वय यज्ञा वय विद्या वय जगत् ।

ब्रह्माविष्णुशकराद्या वय सर्वे दिवौकसः ॥१७

अहकारविमूढास्ताञ्ज्ज्ञात्वा दानवसत्तमान् ।

सागर सा विवेगाथ भ्रातचित्ता भृगोः सुता ॥१८

क्षीराब्धिमध्यगतया लक्ष्म्या क्षीणार्थसचयम् ।

निरानन्दगतश्रीवमभवद्भुवन्त्रयम् ॥१९

गनश्रीवमयात्मान भत्वा शबरसूदनः ।

पप्रच्छागिरस विप्र ब्रूहि विश्विद्वन्न मम ॥२०

येन सप्राप्यते लक्ष्मीलंघ्या न चलते पुनः ।

निश्चलापि सुहृन्मित्रं भोग्या भवति सा मुने ॥२१

सत्य और शौच स जब देवगण विहीन हो गये तो उन चञ्चल देवो का त्याग करके वह लक्ष्मी कुल दवों ने अनुराग से दानव कुल में चली गयी थी ॥१५॥ जब लक्ष्मी सम्भावित देहों जाने के हो गये थे तो उन्होंने भी मद में उड़ना प्राप्ति करली थी और यबहरण करना अन्याय में उन मद में उड़नों ने आरम्भ कर दिया था ॥१६॥ हय ही वेद हैं—हम

हो यज्ञ है—हम ही विद्या और जगत् हैं तथा ब्रह्मा-विष्णु और शंकर आदि सब देव भी हम ही हैं ॥१७॥ इस तरह का अहंभाव उनमें लक्ष्मी के विनाश में समुत्पन्न हो गया था तब लक्ष्मी ने अहंकार से विमूढ़ उन दानवों को समझ कर वह भ्रान्त चित्त वाली भृशुमुनि की पुत्री सागर में प्रवेश कर गयी थी ॥१८॥ जब लक्ष्मी देवी क्षीर सागर के मध्य में खनी गई तो यह प्रभाव हुआ कि उसके यहां न रहने पर क्षीण अर्थ के संजय वाला—निरानन्द में प्राप्त—श्री शून्य यह भुवन त्रय हो गया था ॥१९॥ फिर शम्बर के सुदन करने वाले ने श्रीविहीन अपने आपको मानकर आगिरस विष से पूछा था—यह बतलाओ कि इसके लिये मुझे क्या व्रत ग्रहण करना चाहिए ॥२०॥ जिसके करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होवे और प्राप्त हुई वह फिर खल न हो सके । हे मुने ! वह निश्चला होकर रहे जिसका मेरे सभी मुहूर्त् और मित्र भली-भाँति भोग कर सके अर्थात् सब ही के भोग के योग्य होवे ॥२१॥

न सा श्रीत्यभिमन्तव्या कन्या सा पाल्यते गृहे ।

परार्थं या सुहृन्मित्रभृत्यैर्नैवोपभुज्यते ॥२२॥

शाकस्यैतद्वचः श्रुत्वा बृहस्पतिरुदारधीः ।

कथयामास सचित्य शुभं श्रीपञ्चमीव्रतम् ॥२३॥

यत्पुरा कस्यचित्प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।

तदस्मै कथयामास सरहस्यमशेषतः ॥२४॥

तच्छ्रुत्वा कर्तुं भारब्धं सुरेशेन सुरैस्तथा ।

दैत्यदानवगणैर्वैद्यैः प्रक्षीणकल्मषैः ॥२५॥

सिद्धैः प्रसिद्धचरितैर्विष्णुना प्रभविष्णुना ।

ब्राह्मणैर्ब्रह्मतत्त्वज्ञैः समर्थैः पार्थिवैः सह ॥२६॥

कैश्चित्सात्त्विकभावेन राजसेनापरैरपि ।

तामसेन तथा कैश्चित्कृतं व्रतमिदतथा ॥२७॥

व्रते समाप्ते भूमिष्ठे निष्ठया परया प्रभो ।

देवानां दानवानां च युद्धमासीदयोद्धतम् ॥२८॥

मुझे ऐसा श्री अभिमतव्य नहीं है जो एक कन्या की भाँति अपने ही घर में पानी जाया करती है और दूसरों के अर्थ में न आवे तथा मुहूर्त् एव मित्रों के द्वारा जिनका कोई भी उपयोग न किया जा सके ॥२२॥ शक्र के इस वचन का श्रवण करके उदार बुद्धि वाले बृहस्पति ने भली-भाँति विचार करके यह परम शुभ तथा व्रतो में उत्तम श्री पचमी का व्रत कहा था । और उस व्रत को रहस्य के सहित पूर्ण रूप से जो कि पहिल किसी का बताया हुआ था इंद्र के लिये अच्छी तरह से बतला दिया था ॥२३-२४॥ यह श्रवण करके सुरेश ने तथा अन्य सुरो न और दैत्य दानव-गन्धर्व और यक्षो ने इसका करना आरम्भ कर दिया था जिसने सभी प्रक्षीण कल्मषो धावे हा गये थे ॥ २५॥ सिद्धो में जिनके चरित परम प्रसिद्ध थे-विष्णु ने जो प्रभा विष्णु थे—ब्राह्मणों ने जो ब्रह्म के तत्त्व के पूर्ण ज्ञान थे और समय राजाओं ने भी इसे करना आरम्भ कर दिया था ॥२६॥ इन सभी व्रत करने वालों में कुछ तो ऐन थे जो इस व्रत को परम सात्त्विक भाव से कर रहे थे—कुछ राजम भाव में ही इसको करते थे तथा कुछ ऐसे भी जो व्रत तो करते थे किन्तु उनका तामस भाव ही था ॥२७॥ इस भूमिष्ठ के व्रत के समाप्त होने पर ही हे प्रभो ! जो कि परानिष्ठा से किया गया था देवो और दानवों का महान् उद्वेग मुद हो गया था ॥२८॥

निमध्य भुजवोर्येण सागर सरिता पतिम् ।

समाहरामो ह्यमृत हिताय त्रिदिवीकसाम् ॥२९॥

इत्येव समय कृत्वा ममयुवरुणालयम् ।

मयान मदर कृत्वा नेत्र कृत्वा तु वामुकिम् ॥३०॥

मथ्यमानजलाज्जान श्रन्द्र क्षोताशुखज्वल ।

अगतर समुत्पन्ना रश्मो क्षीराब्धिर्मध्यत ॥३१॥

तथा विलाकिता सर्वे दैत्यदानवसत्तमा ।

आलाक्य सा जगामामुविष्णोवद स्थलशुभम् ॥३२॥

विधिना विष्णुना श्रीर्ण व्रत तनाद्विसमवा ।

प्ररीरम्या बभूवास्य विभ्रमोद्भातलोचना ॥३३॥

किं च राजसभावेन शक्रेणैतत्कृतं यतः ।

तत्तस्मिन्भुवनैश्वर्यं प्राप्तं तेन महर्द्धिकम् ॥३४॥

तमसावृतचित्तैस्तु संचीर्णं दैत्यदानवैः ।

तेन तेषामथैश्वर्यं दृष्टनष्टमभूत्किल ॥३५॥

एवं सश्रीकमभवत्सदेवासुरमानुषम् ।

जरञ्च जगतां श्रेष्ठ व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥३६॥

भुजाओं के वीर्य के द्वारा सरिताओं के स्वामी इस विशाल सागर का निर्मन्थन करके देवों के हित के लिये अमृत का समाहरण करें,—इस प्रकार का परस्पर में समय करके उन्होंने बरुणालय सागर का मन्थन किया था । उस मन्थन की क्रिया में मन्दर गिरि को मंथान बनाया था और वासुकि सर्पराज को उसकी डोरी (नेत्र) बनाया था ॥३६-३७॥ जब वह सागर मन्थन किया गया तो उसके जल से शीत किरणों वाला अति उज्ज्वल चन्द्रमा उत्पन्न हुआ था । इसके पश्चात् उस क्षीर सागर के मध्य से लक्ष्मी उत्पन्न हुई थी ॥३८॥ उस लक्ष्मी ने वे वहाँ पर उपस्थित सभी देवों तथा दानवों को देखा था । उसने देख कर वह शीघ्र ही भगवान् विष्णु के शुभ वक्षःस्थल में चली गयी थी ॥३९॥ विष्णु में विधि पूर्वक उस व्रत को किया था इसी ॥ यह अवधि से समुत्पन्न होने वाली इनके शरीर में विभ्रम से उद्घ्रान्त चित्त वाली होती हुई सन्स्थित हो गई थी ॥४०॥ क्योंकि इन्द्र ने इसी व्रत को राजस भाव से किया था इसलिये उसने महान् श्रद्धि में सम्पन्न त्रिभुवन का ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था ॥४१॥ जो तम से समावृत चित्त वाले दैत्य दानव ये उन्होंने इसी व्रत को किया था इसी कारण से उनका सम्पूर्ण ऐश्वर्य दृष्ट-नष्ट हो गया था ॥४२॥ इस प्रकार मे देवामुर मानुष सभी हे जगतां में श्रेष्ठ ! इस व्रत के प्रभाव से श्री से मुसम्पन्न हो गये थे ॥४३॥

यथमेतद्व्रतं कृष्ण क्रियते मनुजैः कदा ।

प्रारभ्यते पार्यते च सर्वे वद यद्वृत्तम् ॥४४॥

मार्गशीर्षे मिते पक्षे पंचम्यां पतगोदये ।

उपवासस्य नियमं कुर्यादाशु सहस्रदि ॥४५॥



स्वर्णरौप्यारकूटोत्था ताम्रमृत्काष्ठजाथ वा ।

चित्रपट्टगता देवी लक्ष्मी दम्भापाल कारयेत् ॥३६॥

पद्महस्ता पद्मवर्णा पद्मा पद्मदलेक्षणाम् ।

दिग्गजेन्द्रैः स्नाप्यमाना काचने कलशोत्तमं ॥३७॥

ततो यामत्रये जाते निम्नगाया गृहेऽथ वा ।

स्नान कुर्यादसम्प्राप्त शङ्खबहुपचारतः ॥३८॥

देवान्पितॄन्श्च सतर्प्य ततो देवगृहं व्रजेत् ।

तत्रस्था पूजयेद्देवीं पुष्पं स्तत्कालसमयं ॥३९॥

राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे श्री कृष्ण ! मनुष्यो की किम समय मे और किस रीति से इस व्रत को करना चाहिए । हे यदुत्तम ! किम विधि से इसका आरम्भ किया जाता है—कैसे पारण किया जाता है—यह सभी कुछ कृपा करके मुझे बतलाइये ॥३७॥ श्रीकृष्ण ने कहा— मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष मे पञ्चमी तिथि मे मूर्खोदय हो जाने पर सुहृद् को शीघ्र ही इस उपवास का नियम करना चाहिए ॥३८॥ स्वर्ण—शङ्ख—आर कूट—ताम्र—मृत्तिका अथवा काष्ठ की या चित्रपट पर रहने वाली लक्ष्मी देवी की प्रतिमा का निर्माण हे दम्भापाल ! कराना चाहिए ॥३६॥ उस प्रतिमा का स्वरूप ऐसा हो—हाथों मे पद्म—पद्म के समान—पद्ममयी और पद्म के दलों के तुल्य लोचन दिशामे स्थित गजेन्द्रों के द्वारा सुवर्ण के सुन्दर एवं उत्तम वनशो से स्नाध्य मान होने वाली हो ॥३७॥ फिर तीन प्रहरों के समाप्त हो जाने पर चौथे प्रहर मे किसी नदी मे अपना गृह मे ही शङ्ख की भाँति उपचार मे सम्प्राप्ति शून्य होकर स्नान करना चाहिए ॥३८॥ फिर देवगण तथा पितरों का तर्पण करके देवगृह मे गमन करे । वहा पर विराजमाना लक्ष्मी देवी का उस समय मे सम्प्राप्त पुष्पों से पूजन करना चाहिए ॥३९॥

चपलायं नमः पादौ चचलायं च जानुनी ।

वटि कमलवामिन्यै नाभिं स्यात्यं नमोनम ॥४०॥

स्तनी मन्मथ वामिन्यै स्तितायै भ्रूजद्वयम् ।

उत्पट्टिनायै वण्ठ च माधव्यं मुत्रमण्डलम् ॥४१॥

नम श्रियै शिर पूज्य दद्यात्तवेद्यमादरात् ।  
 फलानि च यथालाभ विरूढान्धान्यसचयान् ॥४५॥  
 तत सुवासिनी पूज्या कुसुमैः कुकुमेन च ।  
 भोजयेन्मधुरान्नेन प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥४६॥  
 ततस्तु तडुलप्रस्थ घृतपात्रेण सयुतम् ।  
 ब्राह्मणाय प्रदातव्यं श्रीं संप्रीयतामिति ॥४७॥  
 निवर्त्य तदशेषेण ततो भुञ्जीत वाग्यतः ।  
 मासानुमास कृतव्यं विधिना नेन भारत ॥४८॥  
 श्रीलक्ष्मीं कमला सपद्मना नारायणीं तदा ।  
 पद्मा धृति स्थितिं पुष्टिश्चैद्धि सिद्धियथाक्रमम् ।  
 मासानुमास राजेन्द्र प्रीयतामिति कीर्तये ॥४९॥

कपला के निय चरणो म नमस्कार है । कपला क लिय जानुओ मे  
 मेरा नमस्कार है । कमलवासिनी की सेवा म कटि की नमस्कार सम  
 पित है । ख्याति देवी के लिये नाभि का बारम्बार नमस्कार है ॥४३॥  
 ममय वासिनी के लिये स्तनो को मरा नमस्कार है । ललिता देवी के  
 लिय दोनों भुजाओ को मेरा प्रणाम है । उत्कण्ठिता के लिये कण्ठ को  
 मरा नमस्कार है तथा भाग्यवी देवी क लिये मुख मण्डल को मरा प्रणाम  
 निवेन्ति है ॥४४॥ श्रीदेवी के निय शिर को मरा नमस्कार है—इस  
 प्रकार से पूजन करके आदर व साथ भैरव समर्पित करना चाहिए ।  
 तथा लाभ फल तथा विरूढ धान्य मजदो को दियेनि करे ॥४५॥  
 इमं पश्चात् कुसुमो म और कुकुम म सुवासिनीयों पर पूजन करना  
 चाहिए । उनका मधुर अन्न स भोजन कराव और अन्न म प्राणिपात  
 करके उनका विमर्जन करे ॥४६॥ इमं पश्चात् तब प्रत्य तण्डुल घृत  
 धान स युक्त करके बिर्गी योग्य ब्राह्मण का देना चाहिए और उग समय  
 म यह कहना चाहिए कि श्री क ईश प्रभु मुझ पर प्रगप्र हाने ॥४७॥  
 यह ममा करके समाप्त करके पाठे अन्न म मौन का पूजन स्वयं भोजन  
 कर । ह भक्त ! मासानुमास कर्षात् प्रतिमास म दद्या विधान म यत्  
 करना चाहिए ॥४८॥ श्री—नमो—नमो—नमो—नमो—नमो—

धृति-स्थिति-पुष्टि-श्रद्धा और सिद्धि इन नामों का उस समय में यथा-क्रम कीर्तन करके हे राजेन्द्र ! आप प्रसन्न होवें-ऐसा भासानुमास में कहना चाहिए ॥४६॥

ततश्च द्वादशे मासि संप्राप्ते पचमे दिने ।

वस्त्रमडपिका कृत्वा पुष्पगन्धाधिवासिताम् ॥५०

शय्याया स्थापयेत्लक्ष्मी सर्वोपस्करसयुताम् ।

भौक्तिकाष्टकसयुक्ता नेत्रपट्टावृतस्तनीम् ॥५१

सप्तधान्यसमोपेता रसधातुसमन्विताम् ।

पादुकोपानहच्छत्रभाजनासनसत्कुंताम् ॥५२

दद्यात्सपूज्य विधिवद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।

व्यासाय वेदविदुषे यस्य वा रोजते स्वयम् ।

सोपस्करा सवत्सा च धेनु दत्त्वा क्षमापयेत् ॥५३

क्षीरादिप्रमथनोद्धूते विष्णोवक्ष्य स्थलालये ।

सर्वकामप्रदे देवि श्रद्धां यच्छ नमोऽस्तु ते ॥५४

इससे उपरान्त आगहवें मास के प्राप्ति होने पर पाँचवें दिन में वस्त्रों के द्वारा एक मनुष्य की रचना करके जो कि पुष्पों और गन्ध से अधि-वासित किया गया हो ॥५०॥ एक शय्या पर सम्पूर्ण उपस्करों के सहित लक्ष्मी देवी को स्थापित करे । भौक्तिकाष्टक से समन्वित तथा नेत्र पट्ट से आवृत स्तनी वाली लक्ष्मी देवी होनी चाहिए ॥५१॥ सप्त धान्यों से उपेत एवं रस धातुओं से सयुक्त-पादुका, उपानत, छत्र, भाजन और आसन आदि स सत्कुन देवी को कर ॥५२॥ उम देवी का विधि-विधान से भरी-भरीत ममर्चन करके किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को दे देना चाहिए । वह विप्र ग्राम हो-वेदों का विद्वान् हो अथवा जो कोई भी सुयोग्य पात्र हो निम्नो स्वरूप पण्डित किया जावे । उपस्करों में युक्त-वस्त्र वाली धेनु का भी दान करके अन्त में क्षमापन करना चाहिए ॥५३॥ हे क्षीर सागर के मर्चन करने पर समुत्पन्न होन वाली देवि ! आपका आलप तो भगवान् विष्णु का वक्ष्य्य है । आप गन्धुगों कामनाओं का पूर्ण

करने वाली हैं । हे देवि ! आप मुझे ऋद्धि प्रदान कीजिए । आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है ॥५४॥

ततः सुवासिनीः पूज्य वस्त्रैः राभरणैः शुभैः ।  
भोजयित्वा स्वयं पश्चाद्भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥५५॥

एवं यः कुरुते पार्यं भक्त्या श्रीपञ्चमीव्रतम् ।  
तस्य श्रीभवंने भाति कुलानामेकविंशतिः ॥५६॥

नारी वा कुरुते या तु प्राप्यानुज्ञां स्वभर्तृतः ।  
सुभगा दर्शनीया च बहुपुत्रा च जायते ॥५७॥

श्रीपञ्चमीव्रतमिदं दयितं मुरारेभक्त्या  
समाचरति पूज्यभृगोस्तनूजाम् ।  
राज्यं निजं स भुवि भव्यजनोपभोगान्-  
भुक्त्वा प्रयाति भुवनं मधुमूदनम् ॥५८॥

। इसके पश्चात् सुवासिनी नारियो का पूजन करे और वस्त्र तथा आभरण उन्हें समर्पित करे जो परम शुभ हो । उनको भोजन कराकर पीछे बन्धुओं के साथ स्वयं भोजन करना चाहिए ॥५५॥ हे पार्य ! इस विधि से जो भी कोई भक्ति से श्री पंचमी का यह व्रत किया करता है उगरे भवन में इष्टीत पुत्रों तक श्री शोभा दिया करती है ॥५६॥ अथवा कोई नारी अपने स्वामी से अनुज्ञा प्राप्त करके इस व्रत को दिया करती है वह परम सुभगा—दर्शन करने के योग्य और बहुत से पुत्रों वाली होती है ॥५७॥ यह श्री पंचमी का व्रत भगवान् मुरारि का अति प्रिय व्रत है । इसका पूज्य भृगु मुनि की पुत्री के व्रत को जो कोई भक्तिभाव से समाचरित किया करता है वह मनुष्य इस भूमण्डल में अपना निज का राज्य प्राप्त किया करता है और यहाँ पर वह भव्य जनो के भोगने योग्य उपभोगों का सुख भोग कर धन में मधुमूदन प्रभु के भुवन में प्राप्त हो जाता है ॥५८॥

✓ ॥ विशोकपष्ठी व्रत का माहात्म्य ॥

पष्ठीविधानमधुना कथयस्व जनार्दन ।

सर्वव्याधिप्रशमन सर्वकर्मफलप्रदम् ॥१॥

श्रुत मया पूज्यमामो भानु सर्वं प्रयच्छति ।

दिवाकराराधन मे तस्मात्कथय केशव ॥२॥

विशोक पष्ठीमतुला वक्ष्यामि मनुजोत्तम ।

यामुपोष्य नर शोक न कदाचिदिह जायते ॥३॥

माघे कृष्णतिलं स्नात पञ्चम्या शुक्लपक्षत ।

कृताहार वृशरया दत्तधावनपूर्वकम् ॥४॥

उपवासव्रत कृत्वा ग्रहाचारी भवेत्तृप्ति ।

तत प्रभात चोत्थाय कृतस्नानस्तत शुचि ॥५॥

कृत्वा तु काञ्चन पद्ममर्चोप्यमिति पूजयेत् ।

करवीरेण रक्तेन रक्तवस्त्रयुगलं च ॥६॥

यया विशोक भवन त्ययंवादित्यसवदा ।

तथा विशोकता मे स्यात्त्वद्भक्तिजन्मजन्मनि ॥७॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे जनार्दन । अब आप पष्ठी के विधान का बखान कीजिए जो समस्त व्याधियों का प्रशमन करने वाला है और समस्त कामनाओं के पला का प्रदान करने वाला है ॥१॥ मैंने ऐसा गुना है कि पूज्यमान भानु सभी कुछ प्रदान किया करते हैं । हे केशव । अतएव भगवान् दिया करके आराधन करने का सभी विधान मुझ बतलाइय ॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे मनुजोत्तम श्रेष्ठ । इस अतुलनीय विशोक-पष्ठी के विषय में मैं बतलाता हूँ जिसका उपवास करके मनुष्य इस समार में कभी भी शोक को प्राप्त नहीं होता है ॥३॥ माघ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी में रात तिनी स स्नान कर और वृशर का आहार दत्त धावन करने के पश्चात् करना चाहिए ॥४॥ उपवास का पक्ष की करके रात्रि में ग्रहाचार्य का पावन करे । फिर प्रभात में उठकर

स्नान करके शुचि हो जाना चाहिए ॥५॥ एक सुवर्ण के पद्म की रचना कराकर उसी को यह सूर्यदेव है—ऐसा मान कर पूजित करना चाहिए । रक्त करवीर के पुष्पो से और रक्त दो वस्त्रों के द्वारा पूजन करे । जिससे हे आदित्य देव ! सवदा आपके ही द्वारा शोक से रहित रहे और मेरी ऐसी विशोक्तता ही सवदा बनी रहनी चाहिए तथा जन्म जन्मांतर आपके चरणों में मेरी भक्ति रहे ॥६॥

एव सपूज्य पष्ठया तुशक्त्या सपूजयेद्विजान् ।

सुप्त्या सप्राश्य गोमूत्रमुत्थाय कृतनिश्चय ॥८॥

सपूज्य विप्रमन्त्रेण गुडपात्रसमन्वित ।

सुसूक्ष्मवस्त्रयुगल ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥९॥

अतैललवण भुक्त्वा सप्तम्या मौनसयुत ।

तत पुराणश्रवण कतव्य भूतिमिच्छता ॥१०॥

अनेन विधिना सबभुग्योरपि पक्षयो ।

कुर्याद्यावत्पुनर्माघशुक्लपक्षस्य सप्तमी ॥११॥

व्रताते कलश दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् ।

शय्या सोपस्करा तद्वत्कपिला च पयस्विनीम् ॥१२॥

अनेन विधिना यस्तु विसृज्याविवर्जित ।

विशोकपष्ठी कुरुते स याति परमा गतिम् ॥१३॥

इस भाँति पष्ठी तिथि में पूजन करके अपनी शक्ति के अनुसार द्विजों की भी अचना करनी चाहिए । मोकर भनी भाँति गोमूत्र का सम्प्राशन करके निश्चय करके उठ जावे ॥८॥ गुड पात्र में समन्वित होकर मात्र के द्वारा विप्र का पूजन करे तथा वारीक वस्त्रों का एक जोड़ा ब्राह्मण के लिए समर्पित करना चाहिए ॥९॥ तैल और लवण से रहित पदाय का भोजन करके सप्तमी तिथि में मौन रहना चाहिए । इसके पश्चात् भूति की इच्छा वाल पुरुष का पुराणों का श्रवण करना चाहिए ॥१०॥ इस विधि से दोनों पक्षों में सब करना चाहिए जब तक फिर माघ मास की भुवन पक्ष की सप्तमी न आवे ॥११॥ यत्त क अतः सुवर्ण कमल से युक्त कलश देना चाहिए । उपस्वरो से युक्त एव शय्या और पयस्विनी

कपिला गौ का भी दान करे ॥१२॥ इस विधि से वित्त पाठ्य स रहित होकर अर्थात् धन होते हुए कजूसी न कर जो पुष्ट इस विशोक पद्धि को करता है वह परम गति को प्राप्त होना है ॥१३॥

यावज्जन्मसहस्राणा साग्रकोटिशत भवेत् ।

ताव न शोकमभ्यति रोगदौर्गत्यवर्जित ॥१४॥

यय प्रार्थयते काम तत प्राप्नोति पुष्कलम् ।

किं काम कुरुत यस्तु स पर ब्रह्म गच्छति ॥१५॥

य पठेच्छृणुयाद्वापि पद्धि शोच विनाशिनीम् ।

सोपीद्व लोकमाप्नोति न दुःखी जायते क्वचित् ॥१६॥

ये भास्वर दिनकर करवीरपुष्पं

सपूजयत्यभिनमति कृतोपवासा ।

ते दुःखशोकरहिता सहिता सहस्रिभूमौ

विहृत्य रविलोकमवाप्नुवति ॥१७॥

जब तक सहस्र जन्म धारण करे और अग्र कोटिशत के सहित हावे तब तक वह पुष्ट कभी भी शोक को प्राप्त नहीं होना है तथा राग एव दुःखति स भी वर्जित रहता है ॥१४॥ जिस जिस कामना के पूर्ण होने की प्रायना करता है उस-उसी को पुष्कलता के साथ प्राप्त कर लेता है । ना वित्कुन निष्काम होकर इस विधान को करता है वह तो पर-ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ॥१५॥ जो कोई भी इस विधान का पाठ करता है या ध्वज किया करता है जोकि यह पद्धि शोको का विनाश करने वाली है वह भी इन्द्र लोक को प्राप्त हो जाता करता है और कभी भी किसी समय में दुःखित नहीं हुया करता है ॥१६॥ जो लोग दिनकर भास्वर भगवान् का करवीर क पुष्पों के द्वारा पूजन किया करते हैं और उपवास करके उनका अभिनमन करते हैं वे दुःख एव शोक से रहित हान हुए मित्वा के साथ इन्द्र भूमण्डल में निवास किया करते हैं और जब अन्त में इन्द्रावस्थाग करते हैं तो फिर मोक्ष मूर्धन्य को प्राप्त करते हैं ॥१७॥

✓ ॥ कमलपष्ठी व्रत का माहात्म्य ॥

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि पद्मपष्ठीं शुभां तथा ।

यामुपोष्य नरः पापविमुक्तः स्वर्गं भाग्भवेत् ॥१॥

मार्गशीर्षे शुभे मासि पञ्चम्यां नियतव्रतः ।

पष्ठीमुपोष्य कमलं कारयित्वा सुकाञ्चनम् ॥२॥

शर्करासंयुतं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।

रूपं च काञ्चनं कृत्वा फलस्यैकस्य धर्मवित् ॥३॥

दद्यात्प्रातः कृतस्नानो भानुर्मे प्रीयतामिति ।

भवत्या तु विप्रान्संपूज्य सप्तम्यां क्षीरभोजनम् ॥४॥

कृत्वा कुर्यात्फलत्योगं या च स्यात्कृष्णसप्तमी ।

एतामुपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु ॥५॥

यद्द्वै हैमं फलं दत्त्वा सुवर्णं कमलान्वितम् ।

शर्करापात्रसंयुक्तं वस्त्रमालासमन्वितम् ॥६॥

पष्ठचोरमयोर्महाराज ॥ ५२॥ ततः ।

उपोष्य दद्यात्क्रमशः ॥ ५३॥ येत ॥७॥



शकरा के पान से युक्त तथा वस्त्र एवं माला से समन्वित दान करे ॥६॥ हे महाराज ! दोनो वर्षों की पश्रियों मे जब तक एक वष पून हो उपवास करके क्रय से दान करे और सूर्य के मन्त्रा का उच्चारण करना चाहिए ॥७॥

भानुरर्को रविर्ब्रह्मा सूर्य शुक्रो हरि शिव ।  
श्रीमान्विभावसुस्त्वष्टा वरुण प्रीयतामिति ॥८॥

प्रतिमास च सप्तम्यामेकैक नाम कीर्तयेत् ।

प्रतिपक्ष फलत्यागमेतत्कुवन्समाचरेत् ॥९॥

व्रताते विप्रमियुन पूजयेद्वस्त्रभूषणं ।

शकराकलश दद्याद्दमपक्षफलान्वितम् ॥१०॥

यथा फलकरो भासस्त्वद्भक्ताना सदा ख ।

तथानतफलावाप्तिरस्तु जन्मनिजन्मनि ॥११॥

इमामनतफलदा फलपष्ठी करोति य ।

(स सर्वपापनिर्मुक्त सूर्यलोके महीयते ॥१२॥

सुरापानादिक किञ्चिद्यदत्रामुत्र वा कृतम् ।

तत्सर्वं नाशमायाति सूर्यलोक स गच्छति ॥१३॥

भूताभ्यन्वाश्रय पुरुषास्तारयेदेकविंशतिम् ।

शृणुयाद्य पठेद्वापि सोऽपि कल्याणभाग्भवेत् ॥१४॥

हैम फल सकमल कलश सिताया

पष्ठीमुपोष्य विधिवद्विजपु गवाय ।

दद्यात्सुरामुरशिरोमणिघृष्टपाद भानु

प्रणम्य फलसिद्धिमुपति मत्य ॥१५॥

भानु-अक- रवि-ब्रह्मा-सूर्य-शुक्र- हरि-शिव-श्रीमान्-विभावसु  
स्त्वष्टा और वरुण प्रसन्न होवें ॥८॥ प्रत्येक मास मे सप्तमी तिथि मे  
उपयुक्त नामो मे से एक नाम का कीर्तन करे । प्रतिपक्ष मे फल  
का त्याग करे । और यह करते हुए इत व्रत का समाचरण करना चाहिए  
॥९॥ व्रत के अन्त मे विप्र के जोड़े का वस्त्र-भूषणो से पूजन करे ।  
सुवर्ण के पद्म एवं फल से युक्त शकरा के कलश का दान करना

## ✓॥ कमलपष्ठी व्रत का माहात्म्य ॥

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि पद्मपष्ठी शुभा तथा ।  
 यामुपोष्य नर पापविमुक्त स्वर्गं भाग्भवेत् ॥१॥  
मागशीर्षे शुभे मासि पञ्चम्या नियतव्रत ।  
पष्ठीमुपोष्य कमल कारयित्वा सुवाञ्छनम् ॥२॥  
 शकरासयुत दद्याद्ब्राह्मणाय कुटु बिने ।  
 रूपं च काचन कृत्वा फलस्यैकस्य धमवित् ॥३॥  
 दद्यात्प्रातः कृतस्नानो भानुर्मे प्रीयतामिति ।  
 भक्त्या तु विप्रांसपूज्य सप्तम्या क्षीरभोजनम् ॥४॥  
 कृत्वा कुर्यात्फलयोगं या च स्यात्कृष्णसप्तमी ।  
 एतामुपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु ॥५॥  
 यद्वै हैम फलं दत्त्वा सुवर्ण कमलान्वितम् ।  
 शकरापात्रसमुक्तं वस्त्रमालासमवितम् ॥६॥  
 पष्ठघोरुभयोमहाराज यावत्सवत्सरं ततः ।  
 उपोष्य दद्यात्क्रमशः सूयमक्षानुदीरयेत् ॥७॥

श्रीकृष्ण ने कहा—मैं एक अथ भी परम शुभ पद्मपष्ठी के विषय में तुमका बतलाता हूँ । जिसका उपवास करके मनुष्य पापों से विमुक्त हो कर स्वर्गवास का अधिकारी हो जाता करता है ॥१॥ मागशीर्ष परम शुभ मास में पञ्चमी तिथि में नियत व्रत वाला रह कर पष्ठी का उपवास करे । एक गुवर्ण का कमल निर्माण करावे ॥२॥ शकरा से उत समवित्त करके किसी योग्य कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये दान में देवे । चाहे रूप या (चाँदी का) हो या सुवर्ण का हो एक हा का फल प्राप्त होता है । धर्म में वृत्ता पुरुष को देना चाहिए ॥३॥ प्रातः स्नान करके दान दान दान और भानुदत्त मुद्रा पर प्राति मातृ हावे—यह उपचारण करके कह । भक्ति भाव में विप्रा का पूजन करके गण्धर्वादि म क्षीर का भक्षण कर ॥४॥ क्षीर नाकर फल दान करे । और जो कृष्ण पक्ष का गण्धर्वा जाना है । इसी समय में विधि पूरक उपवास करना चाहिए ॥५॥ हैम देकर जोति गुवर्ण व कमल व मणि ॥६॥

शंकरा के पात्र से युक्त तथा वस्त्र एवं माला से समन्वित दान करे ॥६॥ हे महाराज ! दोनों पक्षों की पश्रियों में जब तक एक वर्ष पूर्ण हो उपवास करके कृप से दान करे और सूर्य के मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए ॥७॥

भानुरर्को रविर्ब्रह्मा सूर्यः शुक्रो हरिः शिवः ।

श्रीमान्विभावसुस्त्वष्टा वरुणः प्रीयतामिति ॥८॥

प्रतिमासं च सप्तम्यामेकैकं नाम कीर्तयेत् ।

प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत्कुर्वन्समाचरेत् ॥९॥

व्रताते विप्रमियुन पूजयेद्वस्नभूषणैः ।

शंकराकलश दद्याद्दमपद्मफलान्वितम् ॥१०॥

यथा फलकरो मासस्त्वद्भुक्तानां सदा रवे ।

तथानतफलावाप्तिरस्तु जन्मनिजन्मनि ॥११॥

इमामनतफलदा फलपष्ठी करोति यः ।

स सर्वपापनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥१२॥

सुरापानादिकं किञ्चिदत्रामुत्र वा कृतम् ।

तत्सर्वं नाशमायाति सूर्यलोकं स गच्छति ॥१३॥

भूतान्भव्याश्च पुरुषास्तारयेदेकविंशतिम् ।

शृणुयाद्यः पठेद्वापि सोऽपि कल्याणभाग्भवेत् ॥१४॥

हैर्म फल सकमल कलशं सितायाः

पष्ठीमुपोष्य विधिवद्विजपु गवाय ।

दद्यात्पुराभुरशिरोमणिघृष्टपाद भानुं

प्रणम्य फलसिद्धिमुपैति मर्त्यः ॥१५॥

भानु-अर्क-रवि-ब्रह्मा-सूर्य-शुक्र-हरि-शिव-श्रीमान्-विभावसु-  
स्त्वष्टा और वरुण प्रसन्न हों ॥८॥ प्रत्येक मास में सप्तमी तिथि में  
उपर्युक्त नामों में से एक नाम का कीर्तन करे । प्रतिपक्ष में फल  
का त्याग करे । और यह करते हुए इस व्रत का समाचरण करना चाहिए  
॥९॥ व्रत के अन्त में विप्र के जोड़े का वस्त्र-भूषणों से पूजन करे ।  
सुवर्ण के पद्म एवं फल से युक्त शंकरा के कलश का दान करना

चाहिए ॥१०॥ हे रवे ! जिस प्रकार से आपके भक्तों का यह मास सदा फल के करने वाला है उसी प्रकार से जन्म ज म मे अनन्त फल की प्राप्ति होवे ॥११॥ इस अनन्त फलों के प्रदान करने वाली फलपष्ठी को जो कोई भी पुरुष किया करता है वह सभी पापों से छुटकार पाकर सूर्य लोक में प्रतिष्ठित होता है ॥१२॥ सुरापान आदि जो कुछ भी इस में लोक में या परलोक में किया हो उस सब का नाश हो जाता है और वह सूर्यलोक को जाता है ॥१३॥ पहिले हुए और आने होने वाले इक्कीस पुरुषों का सारण कर देता है जो इसका श्रवण करता है, या पाठ किया करता है । यह भी बल्याण प्राप्त करने का भागी होता है ॥१४॥ शुक्ल पक्ष की पष्ठी का उपवास करके सुवर्ण का कलश-फल और वसन का विधि पूर्वक किसी श्रेष्ठ द्विज को दान में देने चाहिए । सूर्य एवं असुरों के शिरो रत्न से धूँठ चरण वाले भानु को प्रणाम करके मनुष्य फल की सिद्धि का लाभ प्राप्त किया करता है ॥१५॥

### ✓ ॥ विजय सप्तमी माहात्म्य ॥

सप्तमी च यदा देव केन कालेन पूज्यते ।  
 विफला नियमः विश्विद्वद् देवकिनन्दन ॥१॥  
 शुक्लपक्षे तु सप्तम्या यदादित्यदिन भवेत् ।  
 सप्तमी विजया नाम तत्र दत्त महाफलम् ॥२॥  
 स्नान दान जपो होम उपवासस्तथैव च ।  
 सर्वं विजयसप्तम्या महापातननाशनम् ॥३॥  
 प्रदक्षिणा य कुरते फलं पुष्पदिवाकरम् ।  
 स सर्वगुणसपन्न पुत्र प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥४॥  
 प्रथमा नालिकेरस्तु द्वितीया रत्ननागरं ।  
 तृतीया मातुलु गैश्च चतुर्थी बदलीफलं ॥५॥

पञ्चमी वरकृष्माण्डैः पष्ठी पक्वैस्तु तैदुकैः ।  
 वृत्ताकैः सप्तमी देया अष्टोत्तरशतेन च ॥६॥  
 मौक्तिकैः पद्मरागैश्च नीलैः कर्कतैस्तथा ।  
 गोमेदं वज्रवैडूर्यैः शतेनाष्टाधिकेन तु ॥७॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे देव ! जब यह सप्तमी हो तो उसका पूजन किस समय में किया जाता है । इसके पूजन करने का क्या फल होता है और उसके क्या नियम हैं ? हे देवकी नन्दन ! यह सब आप बतलाइये ॥१॥ श्रीकृष्ण ने कहा—शुक्ल पक्ष में जब सप्तमी तिथि में आदित्य का दिन हो वह सप्तमी विजया नाम वाली होती है । उस समय में दिया हुआ महान् फल वाला होता है ॥२॥ स्नान—दान—जप—होम तथा उपवास यह सब विजय सप्तमी में जो किया जाता है उससे महापातकों का नाश हो जाया करता है ॥३॥ जो पुरुष फलों और पुष्पों से दिवाकर की परिक्रमा करता है वह समस्त सद्गुणों से सम्पन्न परमोत्तम पुत्र का लाभ किया करता है ॥४॥ प्रथम प्रदक्षिणा नारिकेलों से देवे—दूसरी रक्त नागरो से—तीसरी मातुंग फलों से और चौथी परिक्रमा कदली के फलों से देनी चाहिए ॥५॥ पाँचवीं वरकृष्माण्डों से—छटवीं पके हुए तैन्दुकों से देवे । सातवीं वृत्ताकों से प्रदक्षिणा देनी चाहिए तथा अष्टोत्तर शत से देवे ॥६॥ मौक्तिक—पद्मराग—नील—कर्कत—गोमेद—वज्रवैडूर्य इन रत्नों से अष्टाधिक शत देवे ॥७॥

अक्षोर्द्वंदरं बित्त्वं करमर्द्धं सखं वरे ।  
 आम्नाम्नातकजवीरं जंबुवर्कोटिकाफलैः ॥८॥  
 पुष्पैर्धूपैः फले पत्रैर्मोदकैर्गुणकैः शुभैः ।  
 एभिर्विजयसप्तम्या भानोः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥९॥  
 अन्यं फलैश्च काम्यैश्च ऐक्षवेग्रैश्चिर्वर्जितं ।  
 रवे प्रदक्षिणा देया फलेन फलमादिशेत् ॥१०॥  
 न विशेषं च सजन्पेन च कश्चिद्बदेदपि ।  
 एकचित्ततया भानुश्चिन्तनाय प्रयच्छति ॥११॥

वसोर्धारा प्रदातव्या भानोर्गन्धेन सर्पिषा ।

चन्द्रातपत्रं बध्नीयाज्जय किंकिणिकायुतम् ॥१२

कुंकुमेन समालभ्य पुष्पधूपैश्च पूजयेत् ।

शुभं निवेद्य नैवेद्यं ततः पश्चात्क्षमापयेत् ॥१३

भानो भास्कर मातृण्ड चण्डरश्मे दिवाकर ।

आरोग्यमायुर्विजय पुत्र देहि नमोऽस्तुते ॥१४

अक्षोट-बदर-विल्व-करमंदं-सबंदर-आम्रा-आम्रातक-जम्बीर-

जम्बुक-कोटिका फल से तथा पुष्पो से-धूपो से-फलो और पत्रो से-  
मौदवो से एवं शुभ गुणको से इन सबसे विजय सप्तमी में भानुदेवी की  
प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥१२-१३॥ अन्य फलो से-काम्य ऐक्षवो से एवं  
जो ग्रन्थ से रहित हो रविदेव की प्रदक्षिणा देनी चाहिए । फल से  
फल का आदेश करे ॥१०॥ प्रवेश न करे-भाषण भी नहीं करे और  
किसी से भी बातचीत न करे । एक चित्तता से यह सब करे तो भानु  
जो भी चिन्तित हो उसे देते हैं ॥११॥ भानुदेव के लिये गाय के घृत से  
बसुधारा देवे । चन्द्रातपत्र देवे एवं किंकिणिका युत जय सूत्र बांधे  
॥१२॥ कुंकुम से समालभन कर पुष्प और धूप से पूजन करना चाहिए ।  
परम शुभ नैवेद्य को निवेदित करके इसके पश्चात् क्षमापन करना  
चाहिए ॥१३॥ हे भानो ! भास्कर ! हे मातृण्ड ! चण्ड रश्मे ! हे  
दिवाकर ! आप मुझको आरोग्य-आयु-विजय और पुत्र प्रदान कीजिये ।  
आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है ॥१४॥

उपवासेन नक्तैर्न तर्धवाया चित्तेन च ।

शृता नियममुक्तेन या त्विय जयसप्तमी ॥१५

रोगी विमुच्यते रोगाद्दृष्टि धियमाप्नुयात् ।

अपुत्रो लभते पुत्रं विद्या विद्यार्थिनो भवेत् ॥१६

शुक्लपक्षे यदा पार्थ सादित्यसप्तमी भवेत् ।

तदा नक्तैर्न मुद्गशाशी क्षपयेत्सप्त सप्तमी ॥१७

भूमौ पलाशपत्रेषु स्नात्वा ह्रत्वा यथाविधि ।

समाप्ते तु यत्ते दद्यात्सौवर्णं मुद्गमिश्रितम् ॥१८

मुद्ग श्रेष्ठाय विप्राय वाचकाय विशेषत ।

सप्तम्या सप्तिसयुक्त आदित्येन नरोत्तम ॥१६

उपोष्य विधिनानेन मन्त्रप्राशनपूजनं ।

पङ्क्षरेण मन्त्रेण सर्वं कार्यं विजानता ॥२०

अचन वह्निकार्यं च शतमष्टोत्तर नर ।

समाप्ते तु व्रते पश्चात्सुवर्णेन घटापितम् ॥२१

उपवास रात्रि का करे तथा अवाचित भोजन का करना चाहिए । इस तरह नियम से युक्त होकर की हुई यह विजय सप्तमी है । इसका फल यह है कि रोगी रोग से विमुक्त हो जाया करता है—दरिद्र श्री का लाभ प्राप्त करता है—जो पुत्र से रहित है वह पुत्र पाता है और विद्या के अर्थी को विद्या हो जाती है ॥१५ १६॥ हे पार्थ [शुक्ल पक्ष में जब भी यह आदित्य सप्तमी होवे तब रात्रि में मुद्गा का अशन करे । इस प्रकार सात सप्तमी बिता देनी चाहिए ॥१७॥ इस व्रत के समाप्त होने पर जो भूमि में शयन—पलाश के पत्तों पर भोजन—स्नान करके यथा विधि हवन कर मुद्गों से मिश्रित सुवर्ण विरचित का दान करना चाहिए ॥१८॥ हे नरोत्तम । किसी श्रेष्ठ विप्र के लिये और विशेष करके वाचक के लिये मुद्ग को सात सप्तमियों से समुक्त आदित्य के साथ ही देवे ॥१९॥ इस विधि से उपवास करके जो कि मन्त्र—प्राशन—और पूजन से समन्वित हो करे । जाता पुरुष को छै अक्षरी वाले मन्त्र से ही सम्पूर्ण काय करना चाहिए ॥२०॥ अचना—अग्नि का काय और अष्टोत्तर व्रत जप मनुष्य को करना चाहिए जब कि यह व्रत समाप्त हो आवे तो फिर पीछे सुवर्ण के द्वारा घटापित सुवर्ण का ही सूय बनवावे ॥२१॥

सौवर्णं भास्कर पार्थं रुक्मपात्रगत शुभम् ।

रक्तावर च काषाय ग घ दद्यात्सदक्षिणम् ॥२२

मन्त्रेणामेन विप्राय कर्मसिद्धयै द्विजातये ।

ॐ भास्कराय सुदेवाय नमस्तुभ्य यशस्कर ॥२३

ममाद्य समीहितार्थप्रदो भव नमोनम ।

दानानि च प्रदेयानि गृहाणि शयनानि च ॥२४

श्राद्धानि पितृदेवानां शाश्वती तृप्तिमिच्छता ।  
 यात्राप्रशस्ता यातृणां राज्ञा च जयमिच्छताम् ॥२५॥  
 विजयो जायतेऽवश्यं यतीनां च नृणां तदा ।  
 अतोऽर्थं विधुता लोके सदा विजयसप्तमी ॥२६॥  
 एवमेवातिथिं पार्थं इह कामप्रदा नृणाम् ।  
 परं सुखदा सौम्या सयलोकप्रदायिनी ॥२७॥  
 दाता भोगी च चतुरो दीर्घायुर्निरुज सुखी ।  
 इहागत्य भवेद्राजा हस्त्यश्वधनरत्नवान् ॥२८॥  
 नारी वा क्रुते या तु सापि तत्पुण्यभागिनी ।  
 भवत्यत्र न सदेहं कार्यं पार्थं त्वया क्वचित् ॥२९॥  
 स्वर्गा समीहितमुखाथंफलप्रदा च या  
 मृग्यते मुनिवरैः प्रवरा तिथीनाम् ।  
 सा भानुपादकमलार्चनचित्तकानां पुंसां  
 सदैव विजया विजयं ददाति ॥३०॥

हे पाथ ! उस सुवर्ण के भास्कर को किसी शुभ सुवर्ण के पात्र में  
 स्थित करे । साल वस्त्र और कापाय तथा गन्ध दक्षिणा के सहित दान  
 करे ॥२२॥ कम की सिद्धि के लिये द्विजाति विप्र के लिये इस निम्न-  
 लिखित मन्त्र से ही देना चाहिए । हे यशस्कर ! सुदेव भास्कर के आपके  
 लिये नमस्कार है । यह मन्त्र का अर्थ है ॥२३॥ आज मेरे समभीषित  
 अथ के प्रदान करने वाले आप होंगे । आपको बारम्बार नमस्कार है ।  
 गृह और शयन आदि के दान देने चाहिए ॥२४॥ शाश्वती (सदा  
 स्थित रहने वाली) तृप्ति की इच्छा रखने वाले पुरुष को पितृ गण और  
 देवों का श्राद्ध भी करना चाहिए । यात्रा करने वालों की यात्रा प्रशस्त  
 होती है तथा जय की इच्छा रखने वाले राजाओं की जय होती है  
 ॥२५॥ यतिगण और मनुष्यों का उस समय में अवश्य ही विजय होती  
 है । इसी लिये ही मदा यह विजय सप्तमी—इस नाम से लोक में प्रसिद्ध  
 हुई है ॥२६॥ इस प्रकार से हे पाथ ! यह तिथि यहा सप्ताह में मनुष्यों  
 की कामनाओं का प्रदान करने वाली है । परलाक में भी मुक्त देने वाली



परम सौम्य एव सूर्यलोक को दिलाने वाली होती है ॥२७॥ दानशील-  
भोक्ता-शीर्षापुष्प-नीरोग एव सुख सम्पन्न यहाँ ससार में आकर हाथी घोड़े  
घन और रत्नो से परिपूर्ण राजा हुवा करता है ॥२८॥ जो भी कोई नारी  
इस व्रत को किया करती है वह भी उसके पुष्प की अधिकारिणी होती  
है—इसमें कुछ भी सदेह नहीं करना चाहिए । हे पार्थ ! आप इसको  
सबका सत्य ही समझें ॥२९॥ बड़े २ भुगवरो के द्वारा इस स्वर्ग देने  
वाली—समीहित सुख और अर्थों का प्रदान कराने वाली—समस्त अन्य  
तिथियो में परम श्रेष्ठ तिथि की खोज को जाया करती है । वह भानुदेव  
के पद कमल के अर्चन का चिंतन करने वाले पुरुषों का यह विजया  
तिथि सदा ही विजय प्रदान करती है ॥३०॥

### ✓ ॥ आदित्य मण्डल विधान ॥

अयान्यदपि ते वच्मि दान श्रेयस्कर परम् ।  
आदित्यमण्डल नाम सर्वाशुभविनाशनम् ॥१॥  
यवचूर्णेन शुभ्रेण कुर्यादगोधूमजेन वा ।  
सुपक्वं भानुर्बिवाभ गृहगव्याज्यपूरितम् ॥२॥  
संपूज्य भास्वर भक्त्या तदग्रे मण्डल शुभम् ।  
रक्तचन्दनज कुर्यात्कु कुम्भ वा विशेषतः ॥३॥  
मण्डल तत्र सस्याप्य रक्तवर्णं सुपूजितम् ।  
ब्राह्मणाय प्रदातव्यं मन्त्रेणानेन पादव ॥४॥  
आदित्यनेजमोत्पन्नं राजत विधिनिर्मितम् ।  
श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतिगृह्णामि मण्डलम् ॥५॥  
यामद घनद घर्म्यं पुत्रद सुखद तव ।  
आदित्यप्रीतये दत्तं प्रतिगृह्णामि मण्डलम् ॥६॥  
एव दत्त्वा नरो राज-सूर्यवद्वि राजते ।  
सर्वकामममृदार्थो मण्डलाधिपतिर्नवेत् ॥७॥

दातव्य जयसप्तम्या तदारभ्य दिनेदिने ।

भास्करस्य महाराज शक्त्या भावेन भावित ॥८॥

गोधूमचूर्णजनित यवचूर्णज वा

आदित्यमण्डलमखण्डगुडाद्यपूर्णम् ।

कृत्वा द्विजाय विधिवत्प्रतिपादयेद्यो ।

भूमौ भवत्यमितमण्डलमडितोऽसौ ॥९॥

श्रीकृष्ण ने कहा—इसके उपरान्त एक अन्य भी दान मैं आपको बतलाता हूँ जो परम श्रेय करने वाला दान है । उस दान का नाम आदित्य मण्डल दान है जो सभी प्रकार के अशुभों का विनाश करने वाला है ॥१॥ परम शुभ्र जो के चून से अथवा गैहू के चून से ही करना चाहिए । एक सुपक्व भानु के बिम्ब की आभा वाला गुह गव्य आज्य से पूरित करे ॥२॥ भास्कर देव का भली भाँति भक्ति से पूजन करके उसके आगे उस शुभ मण्डल को रक्त चन्दन से युक्त अथवा विशेष रूप से कुकुम युक्त करे ॥३॥ वहा पर मण्डल को सस्यापित करके रक्त वस्त्रों से सुपूजित करे और फिर हे पाण्डव ! इस मन्त्र से किसी ब्राह्मण को प्रदान कर देना चाहिए ॥४॥ आदित्य के तेज से समुत्पन्न राजत एव विधि द्वारा निर्मित हे विप्र ! इस उत्तम मण्डल को जो परम श्रेयस्कर है भेरे श्रेय सम्पादन करने के लिये आप ग्रहण कीजिए ॥५॥ यही दान देने का मन्त्र है ब्राह्मण को भी फिर यह कहना चाहिए—कामनाओं को पूरा करने वाला—धन दाता—धन से युक्त पुत्र और सुख का प्रदान करने वाला तुम्हारा दिया हुआ यह मण्डल आदित्य देव की प्रीति के लिये मैं अब ग्रहण करता हूँ ॥६॥ यही प्रतिग्रह का मन्त्र होता है । हे राजन् ! इस प्रकार से मनुष्य दान करके दिव लोक में सुख की भाँति ही विराज मान होता है और सम्पूर्ण कामना तथा अर्थों से समृद्ध होकर मण्डल का अधिपति हुआ करता है ॥७॥ जय सप्तमी में ही इस दान का आरम्भ करे और फिर दिनोदिन देना चाहिए । हे महाराज ! भास्कर की शक्ति तथा भाव से भावित होकर ही इसका दान करे ॥८॥ गोधूम के चूर्ण से जनित अथवा जो चून से रश्मि अखण्ड गुह आदि में परिपूर्ण यह

आदित्य मण्डल बना कर किसी द्विज को विधि पूर्वक जो होता है वह इस भूमि में अमित मण्डल से मण्डित हुआ करता है ॥६॥

## ५ अचला सप्तमी व्रत माहात्म्य ॥

अध्रुवेण शरीरेण सुपक्वेनापि किं फलम् ।

माघस्नानविहीनेन यत्यक्तं यदुनन्दन ॥१॥

प्रातःस्नानासमर्थाया शरीरं पश्य देहिनाम् ।

किं तेन वद कर्तव्य माघे ससारभीरुणा ॥२॥

कायक्लेशसहा नार्यो न भवति यदूत्तम ।

सौकुमार्यं शरीरस्य अचलत्वात्तथैव च ॥३॥

कथं च ताः सुरूपाःस्युःसुभगाःसुप्रजास्तथा ।

सुकृतस्येह पुण्यस्य सर्वमेतत्फलं यतः ॥४॥

अल्पायासेन सुमहद्वेन पुण्यमवाप्यते ।

स्त्रीभिर्मधिमम ब्रूहि स्नानं तत्त्वं रमाधव ॥५॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे यदुनन्दन ! इस अध्रुव अर्थात् अनिश्चित काल तक रहने वाले सुपक्व शरीर से भी क्या फल प्राप्त होता है यदि माघ स्नान से रहित रहकर ही इसका त्याग कर दिया जाता है ॥१॥ देहधारियों के इस शरीर को देखो जो प्रातः काल में स्नान करने में असमर्थ हैं । उस पुरुष के द्वारा जो माघ में स्नान नहीं करता है और ससार से भीड़ भी है क्या करना चाहिए—यह बतलाइये ॥२॥ नारियाँ हे यदूत्तम ! काया के क्लेश को सहन करने वाली नहीं होती हैं । क्योंकि उनका शरीर सुकुमार होना है तथा उसमें अचलता भी होती है ॥३॥ तो वे फिर किस प्रकार से सुन्दर रूप वाली—सुभगा और सुन्दर सन्तति वाली होगी क्योंकि इस सुकृत पुण्य का ही यह सब फल हुआ करता है ॥४॥ जिस किसी थोड़े परिश्रम से सुमहान् पुण्य की प्राप्ति की जा सके और स्त्रियों के द्वारा माघ मास में वह हो जावे हे रमाधव ! वह तत्त्व स्नान आप मुझे बतला दीजिए ॥५॥

श्रूयता पाडवश्रेष्ठ रहस्यमृषिभाषितम् ।  
 यन्मया कस्यचिन्नोक्तमचलासप्तमीव्रतम् ॥६॥  
 वेश्या चेन्दुमती नाम रूपौदार्यगुणान्विता ।  
 आसीत्कुसुलश्रेष्ठ भगधस्य विलासिनी ॥७॥  
 तनुमध्या सुजघना पीनोन्नतपयोधरा ।  
 सम्यग्विभक्तावयवा पूर्णचन्द्रनिमानना ॥८॥  
 सौंदर्यं सौकुमार्यं च तस्या कामेन गीयते ।  
 यस्या सदर्शनादेव काम कामातुरो भवेत् ॥९॥  
 मूर्ति शशधरस्येव नयनानन्दकारिणी ।  
 वशीकरणाविद्यवा सर्वलोकमनोहरा ॥१०॥  
 एकस्मिन्दिवसे प्रातः सुमुखस्थितया तथा ।  
 चित्तिताह्वये सजस्तसारस्यानवस्थितिः ॥११॥  
 सन्निमज्ज्य जगदिदं विषये कायसागरे ।  
 जन्ममृत्युजराग्राहं न कश्चिदवबुद्धयते ॥१२॥  
 अपाको भूतभाण्डानां घातृशिल्पिनिमित्तम् ।  
 स्वकर्मधनसंवीतं पश्यतः बालवह्निना ॥१३॥

श्रीकृष्ण न कहा—हे पाण्डवो मे परम श्रेष्ठ । इस ऋषियो के द्वारा  
 कहे हुए परम रहस्य का आप श्रवण करिये जो कि मैंने अब तक किसी  
 से भी नहीं कहा है । वह यह अचला सप्तमी का व्रत होता है ॥६॥  
 हे कुसुल मे श्रेष्ठ । (एक इ द्रुमती नाम वाली वेश्या थी जो रूप लावण्य  
 की विलासिनी थी ॥७॥ उसका सौन्दर्य व्रतलाने हैं—उसका मध्य भाग  
 अर्थात् कटि वृश थी—जघन बहुत ही सुन्दर थे—पीन और उन्नत उसके  
 स्तन थे—उसके सभी अंग शनी-भाति विभक्त एवं सुडोल थे तथा वह  
 पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाली थी ॥८॥ उसकी सुन्दरता और सुकुमारता  
 तो ऐसी थी जिसको स्वयं कामदेव भी बन्धान किया करता है । जिसके  
 दर्शन मात्र से ही कामदेव स्वयं कामातुर हो जाया करता है ॥९॥  
 चन्द्रमा की मूर्ति के समान नयनों को आनन्द करने वाली उसकी मूर्ति  
 थी मानों वह एक वशीकरण करने की विद्या हो व समान सब लोगो

को परम मनोहर लगती थी ॥१०॥ एक दिन में प्रातः काल में सुख-पूर्वक स्थित रहने वाली उमने अपने हृदय में इस सम्पूर्ण ससार की अनवस्थिति पर विचार किया था ॥११॥ यह सम्पूर्ण जगत् विषयो में काया रूपी समुद्र में डूबता चला जा रहा है । जन्म और मृत्यु तथा बुढ़ापा ये ही इस सागर में ग्राहों के समान हैं जो उसे घरे रहा करते हैं और यह कोई भी नहीं समझता है ॥१२॥ शिल्पी घाता के द्वारा निर्मित यह भूत रूपी भाण्डों का अपाक अपने कम रूपी ई घन से युक्त होकर बाल बल्लि द्वारा पकाया जाया करता है ॥१३॥

ये याति दिवसा पु सा धमकामायवर्जिता ।

न ते पुनरिहायाति हरभवता नरा यथा ॥१४॥

स्नान दान तपो होम स्वाध्याय पितृतपणम् ।

यस्मिन्दिने न क्रियते वृथा स दिवसो नृणाम् ॥१५॥

पुत्राणां दारगृहकममासक्तं हि मानसम् ।

वृकीवोरणमासाद्य मृत्युद्वाराय गच्छति ॥१६॥

इत्येव चित्तयित्वा तु वदया चेन्दुमती ततः ।

वशिष्ठस्याश्रमं पुण्यं जगाम गजगामिनी ॥१७॥

वशिष्ठमृषिमासीनं प्रणम्य विनयात्ततः ।

वृताञ्जलिपुटा भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥१८॥

पुरुषों के जो दिन धर्म काम और अर्थ से रहित होकर व्यतीत हो जाया करते हैं वे फिर कभी वापिस लौट कर नहीं आते हैं जिस तरह भगवान् हर के भक्त फिर ससार में नहीं आते हैं ॥१४॥ स्नान-दान-तप-होम-स्वाध्याय और पितृ तपण जिस दिन में भी नहीं किय जाते हैं वह पूरा दिन ही मनुष्यों का वृथा होना है ॥१५॥ मनुष्या का मन पुत्रों-द्वारा और भूह आदि में एसा समावृत्त रहा करता है कि उरण को प्राप्त करने की भांति मृत्यु द्वार के निये जाया करता है ॥१६॥ इस प्रकार ॥ चिन्तन करके वह इन्दुमती बैग्या फिर गजगामिनी वहाँ से वशिष्ठ के पुण्य आश्रम का पत्रो गया थी ॥१७॥ वहाँ पर विराम-

मान वसिष्ठ ऋषि को विनय पूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथों को जोड़ कर इन्दुमती ऋषि से यह वचन बोली ॥१८॥

दक्षसूनासमश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वज ।

दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृप ॥१९॥

मया न दत्त न हुत नोपवासो व्रत कृतम् ।

भक्त्या न पूजित शम्भु श्रितो नङ्को घनी नर ॥२०॥

साप्रत वतमानाया व्रत किञ्चिद्ददस्व मे ।

येन दुःखाबुपापौघादुत्तरामि भवार्णवात् ॥२१॥

एतदस्या सुबहुश श्रुत्वा घर्मे परतप ।

वशिष्ठ कथयामास महाकारुणिको मुनि ॥२२॥

माघस्य सितसप्तम्या सर्वकामफलप्रदम् ।

तप सौभाग्यजनन स्नान तव वरानने ॥२३॥

कृत्वा पष्ठधामेकभक्त सप्तम्या निश्चल जलम् ।

राश्र्यते चालयेथास्त्व दत्त्वा शिरसि दीपकम् ॥२४॥

माघस्य सितसप्तम्यामचल चालित मया ।

जलामलाना सर्वेषां कृतं न चलनं तथा ॥२५॥

वशिष्ठवचनं श्रुत्वा तस्मिन्नहनि भूपते ।

सर्वं गकारेन्दुमती स्नानं दानं यथाविधि ॥२६॥

अहस्नानप्रभावेण भुक्त्वा भोग्यान्पथप्सितान् ।

इन्द्रलोकप्सरसघे नायिकात्वमवाप सा ॥२७॥

अचलासप्तमीस्नानं कथितं च विशापते ।

सर्वपापप्रशमनं सुखसौभाग्यवर्द्धनम् ॥२८॥

इन्दुमती ने कहा—दक्ष सूना के समान चक्री होता है और दश चक्रियों के समान ध्वज हुआ करता है । दशध्वजों के तुल्य एक वेश्या होती है और दश वेश्याओं के तुल्य एक नृप हुआ करता है ॥१९॥ मैंने अपने जीवन में न तो कभी कुछ दान ही दिया है—न हवन किया है—न कोई उपवास किया है और न कोई व्रत ग्रहण किया है । मैंने भक्ति भाव से कभी भगवान् शम्भु का अचन नहीं किया है और न कोई घन

सम्पन्न पुरुष का ही आश्रय ग्रहण किया है ॥२०॥ हे मुनिवर ! अब ऐसी दशा में वर्तमान रहने वाली मुझको कोई एक व्रत करने का उपदेश दीजिए जिससे दुःखाम्बु पापों के समूह वाले इस ससार सागर से मैं पार लग जाऊँ ॥२१॥ परन्तप वसिष्ठ मुनि ने इसके बहुत बार कहे हुए धर्म को सुनकर महान् दयालु मुनि ने कहा था ॥२२॥ वसिष्ठ मुनि बोले—हे बरानने ! माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी में समस्त कामनाओं के फल को प्रदान करने वाला तथा सप और सौभाग्य जन्माने वाला तुम्हारा एक मात्र स्नान ही होगा ॥२३॥ पष्ठी तिथि में एक बार भोजन करके सप्तमी में जल निश्चय होता है । रात्रि के अन्त में तुम शिर पर दीपक रख कर उसका चालन करो ॥२४॥ माघ मास की सप्त सप्तमी में मैंने अचल को चालित किया है तथा सब जलामलों का चरन नहीं किया है ॥२५॥ हे भूपते ! वसिष्ठ के इस वचन का श्रवण कर के उस दिन में इन्दुमती ने सभी स्नान दान आदि विधि पूर्वक किया था ॥२६॥ तीन दिन के स्नान के प्रभाव से यथेप्सित भोगों का उपभोग करके उसने इन्द्रलोक की अप्सराओं के समुदाय में नायिकात्वं के षट् क्री प्राप्ति की थी ॥२७॥ हे विशापते ! मैंने यह सप्तमी का स्नान वर्णित कर दिया है जो सम्पूर्ण पापों का प्रशमन करने वाला तथा सुख और सौभाग्य बढ़ाने वाला है ॥२८॥

सप्तमीस्नानमाहात्म्य श्रुतं न च विशेषतः ।

साप्रत श्रोतुमिच्छामि विधिमन्त्रसमन्वितम् ॥२९॥

एवमर्त्तन सतिष्ठेत्पठ्या सपूज्य भास्करम् ।

सप्तम्या तु व्रजेत्प्रातः सुगभीर जलाशयम् ॥३०॥

सरित्सग तडाग च देवखातमथापि वा ।

सुखावगाहसलिल दुष्टसत्त्वैरदूषितम् ॥३१॥

पशुभिः पक्षिभिश्चैव जलजैर्मत्स्यैश्चक्षुषं ।

न जलं चाल्यते यावत्तावत्स्नानं समाचरेत् ॥३२॥

नमस्ते रुद्रम्पाय रसाना पतये नमः ।

वरुणाय नमस्तस्मै हरिवासे नमोऽस्तु ते ॥३३॥

यावज्जन्म कृत पाप मया जन्मसु सप्तसु ।

तन्मे रोग च शोक च माकरी हतु सप्तमी ॥३४

जननी सर्वभूताना सप्तमी सप्तसप्तिके ।

सर्वव्याधिहरे देवि नमस्ते रविमण्डले ॥३५

पुष्पिष्ठिर ने कहा—मैंने सप्तमी के स्नान का माहात्म्य विशेष रूप से नहीं सुना है । अब मैं आपको अवगण करना चाहता हूँ जोकि विधि पूर्वक मन्त्रों से समवित हो ॥३६॥ श्रीकृष्ण ने कहा—भगवान् भास्कर देव का पूजन करके पण्ठी तिथि में एक ही बार भोजन करके रहे । सप्तमी तिथि में प्रातः काल में किसी गम्भीर जलाशय को चला जाना चाहिए ॥३७॥ वह जलाशय सरिताओं का सगम हो—नालाब हो अथवा देवखात किन्तु सुख पूर्वक अवगाहन करने वाले जल से युक्त होना चाहिए तथा दुष्ट जीवों से दूषित न होवे ॥३८॥ पशुओं के द्वारा पक्षियों से और जल में ही जल ग्रहण करने वाले मत्स्य कच्छप आदि के द्वारा जब तक जल चालित न होवे तभी तक उसमें स्नान करना चाहिए ॥३९॥ वहाँ पर यह प्रायना करे—है रुद्र के रूह वाले । आपके लिए नमस्कार है । रसों के पति के लिये नमस्कार है । वरुण देव के लिए प्रणाम है । हरि भगवान् के निवास स्थान आपके लिए नमस्कार है ॥४०॥ जब से मैंने जल धारण किया है तब से पूरे जीवन में जो पाप मैंने किये हैं और व्यतीत हुए सात जन्मों में जो पाप किये हैं उसको और मेरे रोग तथा शोक को माकरी सप्तमी हनन कर देवे ॥४१॥ हे सप्तसप्तिके ! सप्तमी समस्त भूतों की जननी है । हे सम्पूर्ण व्याधियों के हरण करने वाली देवि ! रविमण्डल में आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥४२॥

जलोपरीतर दीप स्नात्वा सतर्प्य देवता ।

चदनेन लिखेत्पद्मपत्र सर्वाणिकम् ॥४३

मध्ये शव सप्तनीक प्रणवेन तु पूजयेत् ।

भानु शक्रं दले पूज्य रवि वश्वानर दले ॥४४



याम्ये विवस्वान् ऋत्ये भास्करस्येति पूजयेत् ।  
 पश्चिमे सविता पूज्य पूज्योर्को वायुना जले ॥३८॥  
 सौम्ये सहस्रकिरण शेषे सर्वात्मनेति च ।  
 पूज्या प्रणवपूर्वास्तु नमस्कारातयोजिता ॥३९॥  
 पुष्पं सुगन्धेधूपैश्च वस्त्रेणाच्छाद्य भास्करम् ।  
 विसर्जयेत्ततः पश्चात्स्वस्थानं गम्यतामिति ॥४०॥  
 ताम्रपात्रे सुविस्तीर्णे मृन्मये वा युधिष्ठिर ।  
 स्थापयेत्तिलचूर्णं च सघृतं सगुडं तथा ॥४१॥  
 काश्चन तालकं कृत्वा ह्यासक्तस्तिलचूर्णकम् ।  
 सस्थाप्य रक्तवस्त्रेस्तु पुष्पैर्धूपैस्तथार्चयेत् ॥४२॥

जल के ऊपर इतर दीप रख और स्नान करके देवगण का भली भाँति तर्पण करे फिर चन्दन से आठ दलों वाला कर्णिका से युक्त पद्म का लेखन करे ॥३६॥ उस पद्म के मध्य भाग में पत्नी के सहित शम्भु का प्रणव से अर्चन करे । शक्रदल में भानु और वंशवानर दल में देवि का पूजन करे ॥३७॥ याम्य दल में विवस्वान् का तथा ऋत्यु दिशा वाले दल में भास्कर का पूजन करना चाहिए । पश्चिम में सविता पूजन करने के योग्य है और वायव्य जल में अर्क का यजन करे ॥३८॥ सौम्य दिशा में सहस्र किरण का अर्चन करे और शेष में सर्वात्मा से यजन करे । पूजन में प्रणव की आदि में तथा अंत में नमस्कार लगाकर ही पूजा करे ॥३९॥ पुष्पों से सुन्दर गन्ध वाली धूपों से यजन करे और वस्त्र से भास्कर देव का सामाच्छादन कर फिर उनका विसर्जन अपने स्थान को जाइये—यह कह कर करना चाहिए ॥४०॥ हे युधिष्ठिर ! एक किसी ताम्र पात्र में अथवा मृन्मय पात्र में घृत और गुड के सहित तिलों का चूर्ण स्थापित करने चाहिए ॥४१॥ सुवर्ण का तालक बनवाकर असिक्त हो तिला के चूर्ण को सस्थापित कर रक्तवर्ण के वस्त्रों और पुष्प तथा धूप से उसी भाँति अर्चना करनी चाहिए ॥४२॥

ततस्तद्वाहणे दद्याद्दत्त्वा मन्त्रेण तालकम् ।

आदित्यस्य प्रसादनं प्रातः स्नानफलं भजेत् ॥४३॥

दुष्टदोर्भाग्यदुःखेभ्यो मया दत्तं पुं तालकम् ।  
ततस्तत्तालकं कृत्वा ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥४४॥

सपुत्रपशुभृत्याय मेऽर्कोऽयं प्रीयतामिति ।  
ततो व्रतोपदेशारं पूजयेद्वस्त्रगोतिलं ॥४५॥

विप्रानन्यान्यथाशक्त्या पूजयित्वा गृहं व्रजेत् ।  
एतत्तं कथितं कार्यं रूपसौभाग्यकारकम् ॥४६॥

अचलासप्तमीस्नानं सर्वकामफलप्रदम् ॥४७॥

इति पठति य इत्थं यं शृणोति प्रसगात्क-  
लिकलुषहरं वै सप्तमीस्नानमेतत् ।

मतिमपि नयनानां यो ददाति प्रसगात्सुर-  
भवनगतोऽसौ पूज्यते देवसर्गं ॥४८॥

इसके पश्चात् उसको ब्राह्मण को दे देवे । मन्त्र से तालक को देकर फिर भगवाद् आदित्य के प्रसाद से प्रातः काल ही में स्नान के फल का सेवन करे ॥४३॥ दुष्ट दोर्भाग्य के दुःखों से मैंने तालक को दिया है । इसके अनन्तर उस तालक को करके ब्राह्मण के लिये उपपादित करता चाहिए ॥४४॥ पुत्र पशु और भृत्यों के लिये यह एक ही अंक प्रसन्न होवे । इसके उपरांत व्रत के उपदेश देने वाले का वस्त्र गौ और तिलों से पूजन करना चाहिए ॥४५॥ अथ जो भी विप्र हो उनको भी यथा शक्ति पूजित करके गृह को चला जावे । यह काम मैंने आपको बतला दिया है जो रूप और सौभाग्य का करने वाला है ॥४६॥ अचला सप्तमी का स्नान समस्त कार्यों के फल को प्रदान करने वाला होता है ॥४७॥ इसको इस प्रकार से जो भी पढ़ता है और जो कोई प्रसंग से इसका श्रवण किया करता है उसको यह कलियुग के कलुषों का हरण करने वाला सप्तमी स्नान होता है । जो कोई नयनों की मति भी प्रसंग वश देता है वह सुरभवन में जाकर देवों के समुदाय के द्वारा यह पूजा जाता है ॥४८॥

## ॥ बुधाष्टमी व्रत माहात्म्य ॥

बुधाष्टमीव्रत भूयो ब्रवीमि शृणु पाडव ।  
 येन क्षीणेन नरक नर पश्यति न क्वचित् ॥१॥  
 पुरा कृतयुगस्यादौ इलो राजा बभूव ह ।  
 बहुभृत्यसुहृन्मित्रमन्त्रिभिः परिवारित ॥२॥  
 जगाम हिमत्पार्श्वे महादेवेन वारित ।  
 योऽन्यः प्रविशते भूमौ सा स्त्री भवति निश्चितम् ॥३॥  
 स राजा मृगसगेन प्राविशत्तदुमावने ।  
 एकाकी तुरगोपेत क्षणात्स्त्रीत्वं जगाम ह ॥४॥  
 सा बभ्राम वने शून्ये पीनोन्नतयोधरा ।  
 कुतोऽहमागतेत्येव न त्वबुध्यत किंचन ॥५॥  
 ता ददशं बुधः सौम्या रूपोदार्यगुणान्विताम् ।  
 अष्टम्या बुधवारेण तस्यातुष्टो बुधो ग्रह ॥६॥  
 दधौ गर्भं तदुदरे इलाया रूपतोपित ।  
 पुनमुत्पादयामास योऽसौ व्यात पुरुरवा ॥७॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाण्डव ! फिर मैं तुम से बुधाष्टमी के व्रत को बोल रहा हूँ—इसका तुम श्रवण करो इसके क्षीण कर लेने से मनुष्य किसी समय में भी नरक का भुँह नहीं देखता है ॥१॥ पहिले समय में कृतयुग के आदि में इल नाम वाला राजा हुआ था जो बहुत से मित्र भृत्य—सुहृत् और मन्त्रियों के द्वारा परिवारित था ॥२॥ महादेव के द्वारा जिसका वारण कर दिया गया था उस हिमवान् गिरि के पार्श्व में वह चला गया था । जो कोई भी अन्य पुरुष वहाँ पर प्रवेश किया करता है वह निश्चित ही स्त्री हो जाया करता है ॥३॥ वह राजा भी एक मृग की शिकार के सङ्ग से उम उमा देवी के वन में प्रवेश कर गया था । वह अकेला ही था । केवल उसके पास एक अश्व था जिस पर वह सवार था । दोनों ही एक क्षण में स्त्रीत्वभाव को प्राप्त हो गये थे ॥४॥ वह स्त्री के स्वरूप में पीन एवं उन्नत स्तनो वाली

वन कर उस नितांत शून्य वन में श्रवण करने लगी थी । मैं वहाँ से आया था—इसको भी कुछ वह नहीं जान पाया था ॥५॥ उस रूप लावण्य से एवं उदारता से समन्वित परम सौम्या ललना की बुध ने देखा था । बुधवार से युक्त अष्टमी तिथि में उससे वह बुध ग्रह अत्यंत प्रसन्न हो गया था ॥६॥ इला के रूप से अत्यंत प्रसन्न उसने उसके उदर में गन्ध धारण कर दिया था । उसने जो पुत्र उत्पन्न किया था वह पुरुषवा नाम से विख्यात हुआ था ॥७॥

चद्रवशकरो राजा आद्य सर्वमहीक्षिताम् ।

तत प्रभृति पूज्ये यमष्टमी बुधसयुता ॥८॥

सर्वपापप्रशमनी सर्वोपद्रवनाशिनी ।

अथायदपि ते वच्मि धर्मराज कथानकम् ॥९॥

आसीद्राजा विदेहाना मिथिलाया स वैरिभिः ।

सग्रामे निहतो वीरस्तस्य भार्या दरिद्रिणी ॥१०॥

ऊर्मिना नाम बभ्राम मही बालकसयुता ।

भवती विषय प्राप्ता ब्राह्मणस्य निवेशने ॥११॥

चकारोदपूत्यथ नित्य कडनपेपणे ।

हृत्वा सा स्तोकगोधूमा ददौ बालकयोस्तदा ॥१२॥

ब्राह्मण्यान्मानृवात्सल्यात्क्षुधासपीड्यमानयो ।

कालेन बहुना साध्वी पश्चत्वमगमच्छुभा ॥१३॥

पुत्रस्तस्या विदेहाया गत्वा स्वपितुरासने ।

उपविष्ट सत्त्वयोगाद्भुजे गामनाकुल ॥१४॥

यह राजा चद्रवशकरी करने वाला सब राजाओं में प्रथम राजा था । तभी से लेकर यह बुध से सयुता अष्टमी पूज्य हो गई थी ॥८॥ यह बुधवाष्टमी गन्ध प्रवार के पापों का प्रशमा करती है और सम्पूर्ण उपद्रवों का नाश करती है । "सर्व" उपरान्त है धर्मराज । एक कथ भी इस सम्बन्ध में कथानक बताना है ॥९॥ एक राजा विदेह का मिथिल में हुआ था । वह वीर उगरे शत्रुओं के द्वारा सग्राम में निहत हो गया था । उगरी भार्या दरिद्रिणी थी ॥१०॥ ऊर्मिना नाम वाली यह बालक

से संयुक्त होकर मही मण्डल में भ्रमण किया करती थी । अक्वन्ती नामक देश में वह एक ब्राह्मण के घर में पहुँच गई थी ॥११॥ वह कण्डन पेपण के कर्म में नित्य ही अपने उदर की पूर्ति किया करती थी । थोड़े से गोधूमो (गैहूओ) का हरण करके उस समय में उसने बालको को दे दिये थे ॥१२॥ उसके हृदय में माता का वात्सल्य हो गया था और कुछ कष्ट का भाव आ गया था । इसी के बश में आकर यह अपहरण किया था । जो कि बालक सुधा से पोष्यमान हो रहे थे । बहुत काल के व्यतीत हो जाने पर वह साध्वी शुभा मृत्यु को प्राप्त हो गई थी ॥१३॥ उसका पुत्र विदेह पुरी में जाकर अपने पिता के आसन पर बैठ गया था । सत्य के योग से उसने अनाकुल होकर भूमि का भोग किया था ॥१४॥

अन्विष्य धर्मराज्ञो वै सा कन्या मिथिवशजा ।

विवाहिता हिता भर्तुं सा महानायिकाऽभवत् ॥१५॥

श्यामला नाम चारुंगी प्रसिद्धा श्रूयते श्रुतौ ।

तामुवाच वरारोहा धर्मराज स्वयं प्रियाम् ॥१६॥

वहस्व सर्वव्यापार श्यामले त्वं गृहे मम ।

कुरु स्वजनभृत्यानां दानक्षेपं यथेप्सितम् ॥१७॥

किं त्वेते पजरा सप्त कीलकैरतिग्रिताः ।

कदाचिदपि नोद्धाट्यास्त्वया वैदेहनदिनि ॥१८॥

एवमस्तिवति साप्युक्त्वा निजं कर्म चकार ह ।

कदाचिद्भ्याकुलीभूते धर्मराजे विदेहजा ।

उद्धाटयित्वा प्रथमं ददर्श जननी स्वकाम् ॥१९॥

सा पञ्चमाना क्रदती भीषणं यमकिंकरं ।

हेलया क्षिप्यत वद्धा तप्ततैले पुनः पुनः ॥२०॥

तथैव तालकं दत्त्वा शोडिता सा मनस्विनी ।

द्वितीये पजरे तद्वत्सा तामेव ददर्श ह ॥२१॥

धर्मराजा ने एक मिथि बग में ममुत्पन्न कन्या की स्तोज करने उसने उगने साध विवाह किया था । वह अपन स्वामी के परम हित चाहने

बाली थी और महाशयिका हो गई थी ॥१५॥ उसका श्यामला नाम था । उसके सभी अंग प्रयुग बहुत ही सुन्दर थे । श्रुति में वह परम प्रसिद्ध सुनी जाती थी । धर्मराज उस बरारोहा प्रिया से स्वयं एक दिन बोला था ॥१६॥ हे श्यामले ! तुम अब इस मेरे घर में सब व्यापार का बहन करो । स्वजन और भृत्यों को जैसा भी तुम चाहो दान का क्षेप किया करो ॥१७॥ किन्तु ये सात पञ्जर कीलकी से यन्त्रित है । क्या ये किसी समय में खोलने के योग्य नहीं है ? हे वंदेह नन्दिनि ! जिनको कि तुम्हीं अपने हाथ से उद्धारित कर सकोगी ॥१८॥ इसी प्रकार से होगा—यह कह कर उसने अपना कार्य किया था । किसी समय में जबकि धर्मराज व्याकुली भूत हो गया था तब उस विदेहजा ने प्रथम पञ्जर को खोल कर अपनी जननी को देखा था ॥१९॥ वह विचारी तरक म पच्यमान हो रही थी और रुदन कर रही थी । यम के किन्नरो के द्वारा बारम्बार तप्त तैल में बाँध कर हेला से फँकी जा रही थी ॥२०॥ उसी प्रकार से तालक देकर वह मनस्विनी अत्यन्त पीडित हो गई थी । फिर दूसरे पञ्जर में उसी के समान उमने उसको इसी प्रकार से देखा था ॥२१॥

सुधावल्लिष्यमाना सा शिलातल्पेष्टकेन तु ।

तृतीयपञ्जरे तद्वत्ता ददर्श स्वमातरम् ।

ऋकचै पाटयते मूर्ध्नि घण्टायुक्तं करोत्वणं ॥२२॥

चतुर्थे पञ्जरे स्थाने भीषणैर्दारुणाननैः ।

भक्ष्यमाणा श्वापदैश्च ऋदती ता पुनः पुनः ॥२३॥

पचमे निहिता भूमी वण्ठे पादेन पीडिता ।

सदर्शवन्घातैश्च विदीर्णा क्रियते रूपा ॥२४॥

पष्ठे चक्षुःश्रगता मस्तवे मुद्गराहताम् ।

सपीडयमानामनिश मुहुरामिधुपडवत् ॥२५॥

सप्तमे पञ्जरे चीणस्वना पूतिवग्धिनीम् ।

दृष्ट्वा तथा गता सा तु मातर दुःख वर्णिता ।

श्यामला म्लानवदना विचित्रोवाच भामिनी ॥२६॥

अथागत यम प्राह सरोपा श्यामला पतिम् ।

किं तवापहृत राजन्मममाता सुदारुणम् ।

येनेय विविधं घातित्वं ध्यते बहुधा त्वया ॥२७॥

यमः प्राह प्रिया दृष्ट्वा भद्रे ह्युद्धाटितास्त्वया ।

एते पञ्जरकाः सप्त निषिद्धा त्व मया पुरा ॥२८॥

शिलातल्पेष्टक से सुधा की भाँति लिप्यमान उसको तीसरे पञ्जर में उमी के समान उस अपनी माता को देखा था । कंकचों के द्वारा जो कि घण्टा से युक्त और करोत्त्रण ये उसके मूर्द्धा में पाटित की जा रही थी ॥२२॥ चतुर्थ पञ्जर के स्थान में परम भीषण और दारुण मुखों वाले श्वापदों के द्वारा भक्ष्यमाण और बार-बार क्रन्दन करती हुई देखा था ॥२३॥ पाँचवें में भूमि में निहित और कण्ठ में पाद से पीडित तथा सदृशन और वन घातों से क्रोध से विदीर्ण की जा रही थी ॥२४॥ छठवें में इक्षु यन्त्र में लगाई हुई और मस्तक में मुद्गरों द्वारा आहत की गई एवं निरन्तर सम्पीड्यमान तथा ईश के रूप में की भाँति सुदृढा देखा था ॥२५॥ सातवें पञ्जर में क्षीर्ण स्वन वाली एवं पूतिक गन्ध से युक्त उस माता को उस दशा में देख कर वह दुःख से अत्यन्त कपित हुई थी । वह श्यामला उदास मुख वाली हो गई थी और फिर वह भामिनी कुछ भी नहीं बोली थी ॥२६॥ इसके पश्चात् आगत यम को वह गोप से समन्वित हाकर श्यामला पति से बोली—हे राजन् ! क्या आपने मेरी माता को अपहृत किया है जो कि सुदारुण पीडा सह रही है । यह यहा पर बहुधा आपके द्वारा अनेक प्रकार के घातों से वध्यमान हो रही है ॥२७॥ यम प्रिया वा देख कर बोला—भद्रे ! क्या तू ने इनको उद्धारित कर लिया है । ये सात पञ्जरो के उद्धारन करने के लिये मैंन आपको पहिले ही निषेध कर दिया था ॥२८॥

तद्य मात्रा मुतस्नेहादगोधूमा ये हृताः किल ।

किं न जानामि तद्भद्रे येन रक्षा ममोपरि ॥२९॥

ग्रहास्व प्रणयाद्भुक्त दहत्यासप्तम कुलम् ।

तदेव क्षीरं मेण दहत्याचद्रताग्वम् ॥३०॥

गोधूमास्त इमे भूता. कृमिरूपा. सुदारुणा. ।  
 ये पुरा ब्राह्मणगृहे हृतास्तव कृतेऽनया ॥३१॥  
 जानामि तदहं सर्वं यन्मे माता कृतं पुरा ।  
 तथापि त्वं समासाद्य सा च जामातर शुभम् ।  
 मुच्यते कृमिराशित्वाद्यथा तदधुना कुरु ॥३२॥  
 तच्छ्रुत्वा चिन्तयाविष्टश्चिरं स्थित्वा जगाद ताम् ।  
 धर्मराज सहासीना प्रिया प्राणघनेश्वरीम् ॥३३॥  
 इतश्च सप्तमेऽतीते जन्मनि ब्राह्मणी शुभा ।  
 आसीस्तस्मिंस्त्वया सगात्सखीना पर्युपासिता ।  
 बुधाष्टमी सुसंपूर्णा यथोक्तफलदायिनी ॥३४॥  
 तत्फलं यद्दास्यस्यै सत्यं कृत्वा ममाग्रतः ।  
 तेन मुच्येत ते माता नरकात्पापसंकटात् ॥३५॥

तुम्हारी माता ने सुत के स्नेह से जो गोधूमो का हरण किया था  
 क्या हे भद्रे ! उसे तुम नहीं जानती हो ? जिसके कारण मेरे ऊपर  
 अब ऐसी वृष्टि हो रही हो ॥३६॥ प्रणय से जो ब्रह्मस्व का भोग  
 किया था वह तो सात कुल तक दहन किया ही करता है । वही यदि  
 चोरी के रूप में हरण किया जावे तो जब तक आकाश में चन्द्र और तारे  
 विद्यमान रहते हैं तब तक दहन करता है ॥३७॥ वे ये गोधूम ही सुदा-  
 रुण कृमि के रूप वाले हैं जिनको कि आप के ही लिये इसने एक ब्राह्मण  
 के घर में से हरण किया था ॥३८॥ श्यामला ने कहा—मैं इस सब को  
 भनी भानि जानती हूँ जो मेरी माता ने पहिले किया था तो भी आपको  
 परम शुभ जामाता उसने प्राप्त किया था । उस कृमि राशित्व से वह  
 छुटकारा प्राप्त करे अब वैसे ही आप करिये ॥३९॥ यह सुनकर चिन्ता  
 में आविष्ट होते हुए धर्मराज ने चिरकाल तक स्थित रहकर उससे कहा  
 था जो कि माय में बँठी हुई प्रिया और प्राण घनेश्वरी थी ॥४०॥ इससे  
 मानवें अनीत जन्म में परम शुभा ब्राह्मणी तुम थी । उसमें तुमने गधियों  
 के संग में बुधाष्टमी का सुसम्पूर्ण पर्युपासना की थी जो यथोक्त फल के  
 देने वाली है ॥४१॥ उसका फल यदि आप इसको दे देंगी और मेरे ही



आगे सत्य करके ऐसा करेंगी तो उससे यह आपकी माता पाप सकट से मुक्त नरक से मुक्त हो जायगी ॥३५॥

तच्छ्रुत्वा त्वरित स्नात्वा ददौ पुण्य स्वककृतम् ।

स्वमातुः श्यामला तुष्टा तेन मोक्ष जगाम सा ॥

ऊर्मिला रूपसपत्ना दिव्यदेहधरा शुभा ।

विमानवरमारुढा दिव्यमाल्यावरावृता ॥३६

भर्तुं समीपे स्वर्गस्या दृश्यतेऽद्यापि सा जनैः ।

बुधस्य पार्श्वे नभसि मिथिराजसमीपतः ।

विस्फुरती महाराजबुधाष्टम्या प्रभावत ॥३७

यद्यव प्रवरा ऋण मा तियिर्वै बुधाष्टमी ।

तस्या एव विधि ब्रूहि यदि तुष्टोसि मे प्रभो ॥३८

शृणु पादव यत्नेन बुधाष्टम्या विधि शुभम् ।

यदायदा सिताष्टम्या बुधवारो भवेद्यदि ।

तदा तदा च सा ग्राह्या एकभक्तशिनैर्नृभिः ॥३९

स्नात्वा नद्या तु पूर्वाह्णे गृहीत्वा कलश नवम् ।

जलपूर्णं तु सद्रव्य पूर्णप्राप्तिसमन्वितम् ॥४०

अष्टवारान्प्रवर्तव्या विधानैस्तु पृथक्पृथक् ।

प्रथमा मोदकं वार्या द्वितीया फेणकैस्तथा ॥४१

तृतीया घृतपूर्पश्च चतुर्थी वटर्कनृप ।

पञ्चमी शुभ्रवारैश्च षष्ठी सोहालकैस्तथा ॥४२

यह ध्वज करके तुरन्त ही स्नान करके अपना वह किया हुआ पुण्य उमने अपनी माता को दे दिया था । उमने वह परम मनुष्ट हो गई और मोक्ष को प्राप्त हो गई थी । ऊर्मिला रूप में सम्पन्न होकर दिव्य देह धारण करने वाली हो गई थी और शुभा वह एक श्रेष्ठ विमान पर ममारुद्ध हो गई थी तथा दिव्य मान्य एवं वस्त्रों में ममावृत हो गई थी ॥३६॥ वह अपने श्यामी क समीप में आकाश में अब भी मनुष्यों के द्वारा दिखलाई दिया करती है । बुध के पार्श्व में नभ में मिथिराज के ही समीप में है महाराज ! इस बुधाष्टमी के प्रभाव से वह विष्णुजमाणा

है ॥३७॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! यदि वह बुधाष्टमी इस प्रकार से परम प्रवर है तो हे प्रभो ! यदि परमतुष्ट हैं तो उसकी पूरी विधि बतला दीजिए ॥३८॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाण्डव ! अब आप यत्न-पूर्वक बुधाष्टमी की परम शुभ विधि का श्रवण कीजिए । जब जब भी शुक्ल पक्ष की अष्टमी में यदि बुधवार का योग होता है तब-तब ही एक वक्त में भोजन करने वाले मनुष्यों के द्वारा उसका ग्रहण करना चाहिए ॥३९॥ पूर्वाह्न में नदी में स्नान करके एक नूतन कलश का ग्रहण करे । वह जल से भरा हुआ द्रव्यों के सहित और पूर्णपात्र से समवित होना चाहिए ॥४०॥ आठ चारों चक्र पृथक्-पृथक् विधानों से उसे करना चाहिए । प्रथम मोदको से करे—दूसरी केणको से करे ॥४१॥ तीसरी घृत के पूषो से करे—हे नृप ! चौथी घटको से करे—पाँचवीं शुभ्रकारो से करे और छठवीं सुहालियो से करनी चाहिए ॥४२॥

अशोकवर्तिभि शुभ्रं सप्तमी खडसयुतं ।

अष्टमी फलपुष्पैश्च केवलाखण्डफेणिकं ।

एव क्रमेण कर्तव्या मुहुत्स्वजनवाधवै ॥४३॥

सह कृत्वा स्थितं भोज्य भोक्तव्य स्वस्थमानसै ।

उपोष्याणामिदं श्रेष्ठं कथयद्भिः शनैः शनैः ॥४४॥

श्रुत्वाष्टमीबुधस्यापि माहात्म्यं भोजनं त्यजेत् ।

तावदेव न भोक्तव्यं कथा यावत्समाप्यते ॥४५॥

तथा भुक्त्वा बुधस्याग्रे आचम्य च पुनः पुनः ।

विप्राय वेदविदुषे तं ब्रूवन्प्रतिपादयेत् ॥४६॥

साक्षतः सहिरण्यं च जातिरूपमयं शुभम् ।

अर्चितं धिविघ्नं पुष्पैर्घूर्णदोषं सुगन्धिभिः ॥४७॥

पीतवस्त्रं समाञ्छन् बुधं सोमात्मजाकृतिम् ।

मापकेण सुवर्णेन तदर्घ्येन वा पुनः ॥४८॥

ॐ बुधाय नमः । ॐ सोमात्मजाय नमः ।

ॐ दुबुद्धिनाशनाय नमः । ॐ सुबुद्धिप्रदाय नमः ।

ॐ तागजाताय नमः । ॐ मौम्यग्रहाय नमः ।

ॐ सर्वसौख्यप्रदाय नम । एतेपूजामन्त्र ।

अष्टमी तु यदा पूर्णा तदा राजपिसत्तम ।

ब्राह्मणान्भोजयेदष्टी गा तद्याच्च सवत्सिकाम् ॥४६॥

सातवी शुभ्र खाँड से युक्त अशोक वत्तियो से करे । आठवी फली और पुष्पो से और केवसा खण्ड फेणिको से करे । इसी प्रकार के क्रम से सुहृत-स्वजन और बान्धवों के साथ करनी चाहिए ॥४६॥ सबके साथ में मिल कर बरे तथा स्वस्थ मन वाले होकर भोज्य का भोजन करना चाहिए तथा उपोष्यमाणा को धीरे २ थोँठ कहत हुए ही भोजन करें ॥४७॥ इस बुधाष्टमी के व्रत का माहात्म्य श्रवण करके भोजन का त्याग कर देवे । तावत ही भोजन करे जब तक कथा की समाप्ति होवे ॥४८॥ उस प्रकार से बुध के आगे भोजन करके पुन-पुनः आचमन करके किसी वेदो के वेत्ता विप्र के लिये उसको बोलते हुए प्रतिपादन करे ॥४९॥ अक्षत-हिरण्य के सहिन-सुवर्ण मय-परम शुभ अनेक प्रकार के पुष्पो से अर्चित-धूप-दीप और सुगन्धियो से युक्त तथा पीत वर्ण के वस्त्रों से समाच्छादित सोम के आरम्यज की आकृति वाले बुध को एक मासा सुवर्ण या उससे आधा अथवा उसका भी आधा भाग से युक्त करके देवे । पूजन करने के मन्त्र निम्न लिखित हैं—ओं बुधाय नम अर्थात् बुध के लिये नमस्कार हैं—ॐ सोमात्मजाय नम —ॐ पुबुद्धि नाशाय नम —ॐ सुबुद्धि प्रदाय नम —ओ तारा जाताय नम —ओ सौम्य ग्रहाय नम —ओ सर्व सौख्य प्रदाय नम —। ये इतने मन्त्र होते हैं । जब यह बुधाष्टमी का व्रत हे राजपि थोँठ । तब समाप्त हो जावे तो फिर आठ ब्राह्मणों को भोजन करावें और वरस के सहिन गों का दान करे ॥४७ ४८॥

वस्त्रालवरणै सर्वभूषणैर्विधैरपि ।

सपत्नीक समभ्यर्च्य वर्णमात्रागुलीयकै ।

मन्त्रेणानेन कौतिय दद्यादेव समाचरन् ॥५०॥

बुधोऽय प्रतिगृह्णातु द्रव्यस्थोऽय बुध स्वयम् ।

दीयते बुधराजाय तुप्यता च बुधो मम ॥५१॥

बुध सौम्यस्तारवेयो राजपुत्र इलापति ।  
 कुमारो द्विजराजस्य य पुरुरवस पिता ॥५२॥  
 दुर्बुद्धिबाधजनित नाशयित्वा च मे बुध ।  
 सौम्य च सौमनस्य च करौतु शशिनदन ॥५३॥  
 इत्युच्चार्य गृहीत्वा तु दद्यान्मन्त्रपुर सरम् ।  
 सप्तजन्मति राजेन्द्र जातो जातिस्मरो भवेत् ॥५४॥

वस्त्र एवं अलङ्कारो के द्वारा तथा विविध प्रकार के समस्त भूषणों से परानी के सहित कर्णमात्राभुलीयको से भली-भाँति पूजन करके हे कौतेय ! इस अधोलिखित मन्त्र के द्वारा समाचरण करता हुआ दान करे ॥५०॥ यह बुध है इसको आप ग्रहण करें। यह बुध स्वयं ही द्रव्यस्य है। बुधराज के लिये दिया जाता है। यह बुध मुख पर परम तुष्ट होवे ॥५१॥ यही दान देने का मन्त्र है। यह बुध सौम्य है—तारा का पुत्र है—राजपुत्र है और इला का पति है—द्विजराज का कुमार है और पुरुरवा का पिता है ॥५२॥ यही प्रतिग्रहण का मन्त्र होता है। यह बुध दुर्बुद्धि की बाधा से जनित का मेरा नाश करके यह शशि नन्दन परम सौम्य और सौमनस्य भाव करे ॥५३॥ ऐसा उच्चारण मुख से करके ग्रहण करके मन्त्र पूर्वक दान करना चाहिए। हे राजेन्द्र ! वह सात जन्म तक जाति सार जन्म लेने वाला होता है ॥५४॥

धनधान्यसमायुक्त पुत्रपौत्रप्रवर्द्धन ।  
 दीर्घायुर्विपुलाभोग्गान्भुक्त्वा चैव महोत्तरे ॥५५॥  
 तत सुतीर्थे मरणं ध्वात्वा नारायण विभुम् ।  
 मृतोऽसौ स्वर्गमाप्नोति पुर दरसमो नर ॥५६॥  
 वसते यावदासृष्टे पुनराभूतसप्लवम् ।  
 एवमेतन्मया प्यात व्रतानामुत्तम व्रतम् ॥५७॥  
 एवं च मयाप्याता गुह्या पार्थ बुधाष्टमी ।  
 या श्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्न मवपापं प्रमुच्यते ॥५८॥

यश्चाष्टमो बुधयुता समवाप्य भक्त्या  
सम्पूजयेद्विधुसुत कनपृष्ठसस्थम् ।  
पक्वान्नपात्रसहितैः सहिरण्यवस्त्रैः  
पद्मेदसौ यमपुर न कदाचिदेव ॥५६॥

धन-धान्य से भली-भाँति सुसम्पन्न-पुत्र और पौत्रादि का बढ़ाने वाला-दीर्घ आयु से युक्त-इस महीतन में बहुत से भोगों का उपभोग करके रहता है ॥५५॥ फिर किसी सुन्दर तीर्थ स्थल में विष्णु नारायण का ध्यान करके ही उसका मरण हुआ करता है । मृत हो जाने पर वह नर इन्दु के समान होकर स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है ॥५६॥ वहाँ पर भी सृष्टि से आरम्भ करके पुन भूत सत्त्व जब तक होता है निवाम किया करता है । यह इस प्रकार से मैंने तुमको बतला दिया है । यह अन्य सभी व्रतों में परम उत्तम व्रत है ॥५७॥ यह इस तरह से है पार्य । अत्यन्त गोपनीय बुधाष्टमी का मैंने आपके समक्ष में वर्णन कर दिया है । इसकी इस कथा एवं विधान का श्रवण करके बाहे कोई ब्रह्म हत्या का पापी हो या गोहत्या करने वाला हो अपने सभी पापों से छुटकारा पा जाया करता है ॥ ८॥ जो कोई पुरुष बुधवार से युक्त अष्टमी के व्रतादि की भक्ति की भावना से ममाप्त करके कन पृष्ठ पर विराजमान विष्णु के पुत्र बुध का अच्छी तरह पूजन किया करता है वह पक्वान्न के पात्रों के सहित हिरण्य तथा वस्त्रों से युक्त होता है और वह यमपुर को कभी भी नहीं देखा करता है ॥५६॥

## ॥ जन्माष्टमी व्रत माहात्म्य ॥

जन्माष्टमीव्रत ब्रूहि विस्तरेण ममाच्युत ॥  
कस्मिन्काले समुत्पन्न किं पुण्यं वो विधि स्मृत ॥१॥  
हने कस्तसुरे दुष्टे मयुराण्यं युधिष्ठिर ।  
देवकी मा परिष्वज्य वृ गोत्सवे दरोद ह ॥२॥

तत्सैव रगवाहेन मचास्वजनोत्सवे ।

मल्लयुद्धे पुरावृते समेते कुकुराऽधके ॥३॥

स्वजनैर्वधुभि स्निग्धं सग स्त्रीभि समावृते ।

वसुदेवोऽपि तत्सैव वात्सल्यात्प्ररुद ह ॥४॥

समाकृष्ण परिष्वज्य पुत्रपुत्रैस्त्युवाच ह ।

सगदगदस्वरो दीनो वाप्पपर्याकुलेक्षण ॥५॥

वलभद्र च मा चैव परिष्वज्य मुदा पुन ।

श्रेष्ठ मे सफल जन्म जीवित यत्सुजीवितम् ॥६॥

यदुभाभ्या सुपुत्राभ्या समुद्भूत समागम ।

एव वर्षेण दापत्ये हृष्ट पुष्ट तथा ह्यभूत् ॥७॥

द्रुधिष्ठिर ने कहा—हे अश्वत्थ । अब आप कृपा करके मुझे जमा  
 शमी वृत्त का विधान विस्तार पूर्वक बतलाइये । वह वृत्त किस समय मे  
 उत्पन्न हुआ था—इस वृत्त का क्या पुण्य होता है और इसके करने की क्या  
 विधि बतनायी गयी है ॥१॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे द्रुधिष्ठिर । जिस  
 समय मे मथुरा पुरी मे अत्यन्त दुष्ट कसासुर मारा जा चुका था तो उस  
 समय मे माता देवकी ने मुझ अपनी गोद मे बिठा कर एव समालिङ्गन  
 करके रुदन किया था ॥२॥ वही पर १३३३ वाढ से सभी जनो के मचो  
 पर समाह्व होने क उत्सव मे कुकुराधक के समेत मल्ल युद्ध के पहिले  
 हो जाने पर अपने जन—वधुगण—स्नेही वग और स्त्रियो से समावृत्त होने  
 पर पिता वसुदेव भी वही रोने लग गये थे ॥३॥ ४॥ मुझ उ होने खींच कर  
 मेरा परिष्वजन किया और ह पुत्र—ऐसा कहने लगे थे । उस समय मे  
 उनका कण्ठ सगदगद हो गया था अथवा दीनता के भाव से युक्त थे तथा  
 आसुओ से उनके नेत्र भर गये थे ॥५॥ मेरे बड़े भाई वलभद्र को और  
 मुझको पुन पुन छाती से लगाकर आन द मग्न हो गये थे और यह कह  
 रहे थे कि आज मेरा जन्म सफल हुआ है और मेरा जीवन भी सुन्दर  
 जीवन बन गया है ॥६॥ इन दोनों यदुकुल मे समुत्पन्न सुपुत्रो के साथ  
 मेरा समागम हो गया है । इस प्रकार से वष भर वह दम्पति परम  
 हृष्ट—पुष्ट हो गया था ॥७॥

प्रणिपत्य जना सर्वे बभूवुस्ते प्रहर्षिता ।  
 एव महोत्सव दृष्ट्वा मामाह सकलो जन ॥८॥  
 प्रसाद क्रियता नाथ लोकस्यास्य प्रसादत ।  
 यस्मिन्दिने जगन्नाथ देवकी त्वामजीजनत् ॥९॥  
 तद्दिने देहि वैकुण्ठ कुर्मस्तेत्र नमोनम ।  
 सम्पद्भक्तिप्रपन्नाना प्रसाद कुरु केशव ॥१०॥  
 एवमुक्ते जनौघेन वसुदेवोऽतिविस्मित ।  
 विलोक्य वलमद्र च मा च कृत्वा रुरोद ह ।  
 एवमस्त्विति लोकाना कथयस्व यथातथा ॥११॥  
 ततश्च पितुरादेशात्तथा जन्माष्टमीव्रतम् ।  
 मथुराया जनौघाग्रे पार्थ सम्यक्प्रकाशितम् ॥१२॥  
 पौरजना जन्मदिन वर्षवर्षे ममोदितम् ।  
 पुनर्जन्माष्टमी लोके कुर्वंतु ब्राह्मणादय ।  
 क्षत्रिया वैश्यजातीया शूद्रा ये येऽपि धार्मिका ॥१३॥  
 सिहराणिगते सूर्ये गगने जलदाकुले ।  
 भासि भाद्रपदेऽष्टम्या कृष्णपक्षेऽधरात्रके ।  
 वृषराशिस्थिते चन्द्रे नक्षत्रे रोहिणीयुते ॥१४॥

सभी मनुष्यो ने प्रणिपात किया था और महोत्सव देख कर सभी  
 जन समुदाय ने उस समय में मुसम कहा था ॥८॥ हे नाथ ! अब ऐसा  
 प्रसाद हम सब पर कीजिए कि इस लोक के ऊपर प्रसन्नता स है जग-  
 न्नाथ ! जिस दिन मैं माता देवकी ने आपको जन्म ग्रहण कराया था  
 ॥९॥ उस दिन मैं वैकुण्ठ लोक को प्रदान कीजिए । वहा पर ऐसा ही  
 कुठ हम किया करें आपने बारम्बार प्रणाम है । हे केशव ! भनी  
 भाति भक्ति में प्रसन्न हमारे ऊपर आप अपनी कृपा कीजिए ॥१०॥ इस  
 प्रकार स उस जन समुदाय के द्वारा कहन पर वसुदेव अवगत ही  
 विस्मित होगये थे । फिर भाई वलमद्र और मेरी ओर व विलोकन  
 परके रुदन करने लगे थे । साकी व लिए एमा ही होवे-एमा यया तथा  
 आन वचन करिये ॥११॥ इसका अनन्तर विना व आदेश मे मैने ही हे

पार्थ ! मथुरा पुरी में उस महान् जन समुदाय के समक्ष में भली भाँति प्रकाशित किया था ॥१२॥ पुर के निवासी जन मेरे कहे हुए उस जन्म के दिन को प्रत्येक वर्ष में लोक में पुनः जन्माष्टमी ब्राह्मण आदि सभी लोग करें । चाहे क्षत्रिय हो या वैश्य एवं शूद्र और जो अन्य भी धार्मिक पुरुष है सभी इसे करें ॥१३॥ जिस समय में सिंह राशि पर सूर्य आते हैं और आकाश एक दम मेघों से समाकुल हो जाता है तब भाद्रपद मास में कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में अर्ध रात्रि के समय में वृष राशि पर चन्द्रमा के उदय होने पर तथा रोहिणी नक्षत्र के योग में मेरा जन्म हुआ था ॥१४॥

वसुदेवेन देवक्यामहं जातो जनाः स्वयम् ।  
 एवमेतत्समाख्यातं लोके जन्माष्टमीव्रतम् ॥१५॥  
 भगवत्पार्श्वतो राजन्वहुरूपं महोत्सवम् ।  
 मथुरायास्ततः पश्चात्लोके ख्यातिं गमिष्यति ।  
 शातिरस्तु सुखं चास्तु लोकाः सन्तु निरामयाः ॥  
 तत्कीदृशं व्रतं देव लोकैः सर्वैरनुष्ठितम् ।  
 जन्माष्टमीव्रतं नाम पवित्रं पुरुषोत्तम ॥१७॥  
 येन त्वं तुष्टिमायासि लोकानां प्रभुरव्ययः ।  
 एतन्मे भगवन्ब्रूहि प्रसादान्मधुसूदन ॥१८॥  
 पार्थ तद्विषये प्राप्ते दंतधावनपूर्वकम् ।  
 उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्तिभावितः ॥१९॥  
 एकेनैवोपवासेन कृतेन कुरनदन ।  
 सर्वजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नास संशयः ॥२०॥  
 उपावृत्तस्य पापेभ्योयस्तु वासो गुणैः सह ।  
 उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ॥२१॥

वसुदेव के द्वारा देवकी के उदर में मैं समुत्पन्न हुआ था और स्वयं ही मैंने जन्म ग्रहण किया था । मनुष्यों ने इस प्रकार से कहा था और लोक में जन्माष्टमी का व्रत हुआ था ॥१५॥ हे राजन् ! भगवान् के पार्श्व में मैं यह बहुत से रूप धारिता महान् उत्सव हो गया था । इसके पश्चात्



यह उस मथुरा पुरी से सम्पूर्ण लोक में ख्याति को प्राप्त होगया था ।  
 शांति होवे—सुखोदय होवे और सभी लोग निरामय होवें ॥१६॥  
 युधिष्ठिर ने कहा—हे देव ! वह कैसा व्रत है जो सभी लोको ने किया  
 था ? हे पुरुषोत्तम ! जन्माष्टमी नाम वाला यह व्रत परम उत्तम व्रत  
 होता है ॥१७॥ हे मधुसूदन ! आप तो अविनाशी समस्त लोको के प्रभु  
 हैं । जिससे आपको तुष्टि प्राप्त हो वही विधान मुझे बतलाइये । हे  
 भगवन् ! आपकी परम कृपा होगी ॥१८॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ !  
 जब वह पूर्वोक्त ग्रहण से युक्त दिन प्राप्त होवे तो दत्त धावन पूर्वक  
 भक्तिभाव से इस उपवास के नियम को ग्रहण करना चाहिए । हे कुन्-  
 नन्दन ! यह एक ही उपवास ऐसा अद्भुत गुणो वाला है कि इसके करने  
 पर मनुष्य सम्पूर्ण जन्मों में किये हुए सभी प्रकार के पापों से छुटकारा  
 पाजाया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२०॥ उपावृत्त पापों  
 से जो गुणों के सहित वास होता है उसी को उपवास जानना चाहिए ।  
 जो सभी भोगों से विशेष रूप से वर्जित हुआ करता है ॥२१॥

तत स्नात्वा च मध्याह्ने नद्यादौ विमले जले ।

देव्या सुशोभन कुर्याद्देवक्या सूतकागृहम् ॥२२॥

पश्चरात्रे पत्रनेत्रैर्मंडितं चर्चितं शुभैः ।

रम्यं तु वनमालाभि रक्षामणिविभूषितम् ॥२३॥

सर्वं गोकुलं वत्कायं गोपीजनसमाकुलम् ।

घण्टामदलसङ्गीतमाङ्गल्यकलशान्वितम् ॥२४॥

यवार्धं स्वस्तिका कुड्यं शिखवादिनसकुलम् ।

बद्धासुरा लोहखड्गं प्रियच्छागसमन्वितम् ॥२५॥

धान्यं विन्यस्य मुमलं रक्षितं रक्षपालकं ।

पठ्या देव्या च संपूर्णैर्वेद्यैर्विविधैः कृतं ॥२६॥

एवमादि यथाशेषं कर्तव्यं मूर्तिकागृहम् ।

एतन्मध्ये प्रतिष्ठाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता ॥२७॥

काचनी राजनी ताम्री पंत्तली मृन्मयी तथा ।

दासी मणिषयो चैव वज्रिका लिखिताश्च च ॥२८॥

पाथ । मथुरा पुरी मे उस महान् जन समुदाय के समक्ष मे भली भाँति प्रकाशित किया था ॥१२॥ पुर के निवासी जन भरे कहे हुए उस जन्म के दिन को प्रत्येक वर्ष मे लोक मे पुन जन्माष्टमी ब्राह्मण आदि सभी लोग करें । चाह क्षत्रिय हो या वैश्य एव शूद्र और जो अन्य भी धार्मिक पुरुष है सभी इसे करें ॥१३॥ जिस समय मे सिंह राशि पर सूर्य आते है और आकाश एक दम मेघो से समाकूल हो जाता है तब भाद्रपद मास मे कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि मे अघ रात्रि के समय मे वृष राशि पर चन्द्रमा के उदय होने पर तथा रोहिणी नक्षत्र के योग मे मेरा जन्म हुआ था ॥१४॥

वसुदेवेन देवक्यामह जातो जना स्वयम् ।  
 एवमेतत्समाख्यात लोके जन्माष्टमीव्रतम् ॥१५॥  
 भगवत्पाश्र्वतो राजन्बहु रूप महोत्सवम् ।  
 मथुरायास्तत पश्चात्लोक रघाति गमिष्यति ।  
 शातिरस्तु सुख चास्तु लोका सन्त निरामया ॥  
 तत्कीदृश व्रत दत्त लोके सर्वैरनुष्ठितम् ।  
 जन्माष्टमीव्रत नाम पवित्र पुरुषोत्तम ॥१७॥  
 येन त्व तुष्टिमाप्सि लोकाना प्रभुरव्यय ।  
 एतन्मे भगवन्नूहि प्रसादान्मधुसूदन ॥१८॥  
 पार्थ तद्विसे प्राप्त दत्तघावनपूर्वकम् ।  
 उपवासस्य नियम गृह्णीयाद्भक्तिभावित ॥१९॥  
 एवेनेवोपवासेन वृत्तेन कुरनदन ।  
 सवजन्मवृत्ते पापेर्मुच्यते नाल सशय ॥२०॥  
 उपावृत्तस्य पापेभ्योयस्तु वासो गुणै मह ।  
 उपवास स विज्ञेय सवभोगविवर्जित ॥२१॥

वसुदेव व द्वारा देवकी व उदर व में समुत्पन्न हुआ था और स्वयं ही मैं जन्म ग्रहण किया था । मनुष्या न इस प्रकार म कहा था और मोक्ष मे जन्माष्टमी वा व्रत हुआ था ॥१५॥ हे राजन् ! भगवान् व पार्थ व मह बहू व रूप वाला महान् उत्पन्न होगया था । इम व परवान्

यह उस मयुरा पुरी से सम्पूर्ण लोक में ख्याति को प्राप्त होगया था । शान्ति होवे—मुखोदय होवे और सभी लोग निरामय होवें ॥१६॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे देव ! वह कैसा व्रत है जो सभी लोको ने किया था ? हे पुरुषोत्तम ! जन्माष्टमी नाम वाला यह व्रत परम उत्तम व्रत होता है ॥१७॥ हे मधुसूदन ! आप तो अविनाशी समस्त लोको के प्रभु हैं । जिससे आपको तुष्टि प्राप्त हो वही विधान मुझे बतलाइये । हे भगवन् ! आपकी परम कृपा होगी ॥१८॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ ! जब वह पूर्वोक्त ग्रहण से युक्त दिन प्राप्त होवे तो दन्त धावन पूर्वक भक्तिभाव से इस उपवास के नियम को ग्रहण करना चाहिए । हे कुरु-नन्दन ! यह एक ही उपवास ऐसा अद्भुत गुणों वाला है कि इसके करने पर मनुष्य सम्पूर्ण जन्मों में किये हुए सभी प्रकार के पापों में छुटकारा पाजाया करता है—इसमें कुछ भी शंका नहीं है ॥२०॥ उपावृत्त पापों से जो गुणों के सहित वास होता है उसी को उपवास जानना चाहिए । जो सभी भोगों से विशेष रूप से वर्जित हुआ करता है ॥२१॥

तत स्नात्वा च मध्याह्ने नद्यादौ विमले जले ।

देव्या सुशोभन कुर्याद्देवक्या सूतकागृहम् ॥२२॥

पद्मरागै पद्मनेत्रैर्मण्डित चर्चित शुभै ।

रम्य तु वनमालाभी रक्षामणिविभूषितम् ॥२३॥

सर्वं गोकुलं यत्वार्यं गोपीजनसमाकुलम् ।

घण्टामदलसङ्गीतमाङ्गल्यकलशान्वितम् ॥२४॥

यवार्धं स्वस्तिवा कुड्यं शंखवादित्रसकुलम् ।

यद्वासुरा लोहखड्गं प्रियच्छागसमन्वितम् ॥२५॥

धान्ये विन्यस्य मुमल रक्षिन रक्षपालनं ।

पठ्या देव्या च सूर्णेनैवेद्यं विविधं कृतं ॥२६॥

एवमादि यथाशेषं कर्तव्यं सूतिकागृहम् ।

एतन्मध्ये प्रतिष्ठाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता ॥२७॥

काचनी राजनी ताम्री पंत्तली मृन्मयी तथा ।

दावी मणिमयी चैव वर्णिता लिपिताथ वा ॥२८॥

इसके अनन्तर मध्याह्न में किसी नदी आदि तीर्थ एवं शुद्ध जलाशय के विमल जल में स्नान कर के फिर देवकी देवी का एक अत्यन्त शोभा युक्त सूतिका-गृह बनावे ॥२२॥ वह सूतिका गृह पद्म रागों से तथा शुभ तन्त्रों से मण्डित एवं चर्चित करे और वनमालाओं से सुरम्य तथा रक्षा मणिओं से भूषित करना चाहिए ॥२३॥ उसमें सभी गोकुल के समान ही गोपीजनों से उसे समाकुल बनाना चाहिए । जिसमें घण्टा, मर्दल-संगीत एवं मंगल कलश भी विद्यमान हों ॥२४॥ यवाद्ध स्तिका कुड्यों से युक्त तथा शंख वादित्र से संकुल वह सूतिका गृह होवे । बद्धा सुरा लोह खंग से संयुक्त एवं प्रिय छाग से समन्वित उसे करे ॥२५॥ घान्य मे गुसल का विन्यास करके रक्ष पालकों द्वारा उसे रक्षित रखे । पृथ्वी देवी के सम्पूर्ण और विविध कृत नैवेद्यों से युक्त करे, इस प्रकार से जो कुछ भी शेष हो उस सब से युक्त सूतिका गृह को बना देवे । इसके मध्य में जो वह आठ प्रकार की बताई गई है उसको प्रतिष्ठापित करना चाहिए । वह सुवर्ण की हो-चांदी की-ताम्र की-पीतल की-मिट्टी की-काष्ठ की कणिका अथवा लिखित हो ॥२६-२८॥

सर्वलक्षणसम्पन्ना पर्यंकेचाद्धसुप्तिका ।

प्रतप्तकाचनाभासा मया सह तपस्विनी ॥२९॥

प्रस्तुता च प्रसूता च तत्क्षणाच्च प्रहृषिता ।

मा चापि बालकं सुप्तं पर्यंके स्तनपायिनम् ॥३०॥

श्रीवत्सवक्षसं पूर्णं नीलोत्पलदलच्छविम् ।

यशोदा चापि तत्सह प्रसूता वरकन्यकाम् ॥३१॥

तत्र देवगृहं नागा मक्षविद्याघरानराः ।

प्रणताः पुष्पमालाग्रव्यग्रहस्ताः सुरासुराः ॥३२॥

संचरंत इवाकाशे प्राकारैरुदितोदितैः ।

वसुदेवोऽपि तत्रैव खड्गचर्मधरः स्थितः ॥३३॥

कश्यपो वसुदेवोऽपि दितिश्चापि देवकी ।

दलभद्रः शेषनागो यशोदादित्यजामत ॥३४॥

नन्द प्रजापतिदंक्षो गर्गश्चापि चतुर्मुख ।

एषोवतारो राजेन्द्र कसोऽय कालनेमिज ॥३५॥

तत्र कसनियुक्ता ये दानवा विविधायुधा ।

ते च प्राहारिका सर्वे सुप्ता निद्राविमोहिता ॥३६॥

वह देवकी की प्रतिमा सब प्रकार के लक्षणों से सुसम्पन्न होनी चाहिए । एक पर्यङ्क पर अर्ध सुप्तिका दशा में स्थित करे तो प्रकर्ष रूप से तपाये हुए सुवर्ण के समान कांति वाली हो और नपस्विनी उसके साथ मुक्त को भी विराजमान किया जावे ॥३६॥ ऐसी प्रस्तुता और प्रसूता उसे वहाँ पर दिखलाया जावे जोकि उभी क्षण में परम प्रहर्षित हो रही हो । बालक के स्वरूप में पर्यङ्क पर प्रमुत्त और स्तन का पान करने वाला मुग्ध भी दिखलाया जावे ॥३७॥ मेरा स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसके वक्षस्थल में श्रोतृत्व का चिह्न हो । पूर्ण नीलोत्पल दल की छवि वाला होना चाहिए । वही पर यशोदा भी एक श्रेष्ठ कथा का प्रसव करने वाली होनी चाहिए ॥३८॥ वहाँ पर उस देव गृह को नाग, यक्ष, विद्याधर, नरगण, सुर, असुर अपने हाथों में पुष्पा की मालाओं को ग्रहण किये हुए पणाम करने वाले थे ऐसा बनावे ॥३९॥ उदितोदित प्राकारों से आकाश में सञ्चरण करने की भांति ही सब हो रहे थे ऐसी रचना करे । वहाँ पर ही वसुदेव भी खग और चर्म को धारण किए हुए स्थित दिखलाने चाहिए ॥४०॥ यह वसुदेव कश्यप और देवकी अदिति-बलभद्र शेष नाग-यशोदा दिति ने जन्म लिया था ॥४१॥ नन्द प्रजापति दश थे और चतुर्मुख गण हुए थे । हे राजेन्द्र ! यह अवतार है और यह कम काल नेमिज है ॥४२॥ वहाँ पर कस के द्वारा नियुक्त विविध आयुधों वाले जो दानव थे वे सभी प्राहारिक (पहरा देने वाले) थे । वे सभी निद्रा में विमोहित होकर सो गये थे—यह भी वहाँ प्रदर्शित करना चाहिए ॥४३॥

गोधेनुकुञ्जराश्चास्य दानवा दक्षपाणय ।

नृपत्यप्सरसो हृष्टा गंधर्वा गीततत्परा ॥४४॥

लेखनीयश्च तल्लैव कालियो यमुनाहृदे ।  
 रम्यमेव विधिं कृत्वा देवकी नवसूक्तिकाम् ॥३८॥  
 ता पार्थ पूजयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः फलैः ।  
 कुष्माण्डैर्नालिकेरैश्च खजूरैर्दाडिमीफलैः ॥३९॥  
 बीजपूरैः पूग फलैर्लङ्कुचैस्त्र्यपुसैस्तथा ।  
 कालदेशोद्भवंमृष्टैः पुष्पैश्चापि युधिष्ठिर ॥४०॥  
 ध्यात्वावतार प्रागुक्त मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥४१॥  
 गायद्भिः किन्नराद्यैः सतनपरिवृता  
 वेणुवीणानिनादभृङ्गद्वारादशंकुम्भ-  
 प्रमरकृतकरैः सेव्यमाना मुनीन्द्रैः ।  
 पर्यङ्के स्वास्तुते या मुदिततरमनाः  
 पुत्तिणी सम्यगास्ते सा देवी देवमाता  
 जयति सवदना देवकी कातरूपा ॥४२॥

गो धेनु कुञ्जर इतके और हाथी मे शस्त्र रखने वाले दानव थे ।  
 अप्सराएँ परम हृष्ट होती हुई नृत्य करती हैं—गन्धर्वगण गीतों के पावन  
 मे परायण हैं, ऐसा दृश्य विरचिन करे वही यमुना के हृद मे कालिय नाग  
 भी लिखना चाहिए । इस प्रकार की अति रम्य विधि को करके फिर उस  
 नवीन प्रमद करने वाली देवकी का पूजन हे पार्थ । गन्ध पुष्पाक्षत  
 फलादि के द्वारा भक्तिभाव से करे । फलों मे कुष्माण्ड, नालिकेर, खजूर  
 और दाडिम होने चाहिए ॥३७-३९॥ बीजपूर—पगफल—लङ्कुच और  
 त्र्यपुस भी होवे । हे युधिष्ठिर । काल और देश के अनुसार समुत्पन्न हो  
 तथा मृष्ट हो इसी भाँति पुष्प भी हो ॥४०॥ प्रथम वर्णित अवतार का  
 ध्यान करके इस मन्त्र से अर्चन करना चाहिए ॥४१॥ निरन्तर गायन  
 करने वाले किन्नरगण आदि से बराबर परिवृत रहने वाली—वेणु और  
 वीणा के निनादों के द्वारा वे लोग गायन करने वाले हैं । भृङ्गार—  
 आदशं (शीशा) कुम्भ आदि जिनके करो मे विद्यमान हैं ऐसे मुनीन्द्रों  
 के द्वारा सेव्यमान है—एक सुविस्तृत पर्यङ्क पर जो अत्यन्त मुदित मन

।ली-पुत्रिणी देव माता वह देवी भली भाँति सोई हुई है वह कान्त रूप  
।ली सुन्दर वदन वाली देवकी की जय हो ॥४२॥

पादाब्जजयती श्रीदेवक्याश्चारणातिके ।

निषण्णा पङ्कजे पूज्या नमो देव्यै च मत्ततः ॥४३॥

एवमादीनि नामानि समुच्चार्य पृथक्पृथक् ।

पूजयेयुर्द्विजाः सर्वे स्त्रीशूद्राणाममनकम् ॥४४॥

विध्यतरमपीच्छति केचिदन द्विजोत्तमाः ।

चन्द्रोदये शशाङ्काय अर्घ्यं दद्याद्धरिं स्मरेत् ॥४५॥

अनघ वामन शौरि वैकुण्ठ पुरुषोत्तमम् ।

वासुदेव हृषीकेश माधव मधुसूदनम् ॥४६॥

वाराह पुण्डरीकाक्ष नृसिंह ब्राह्मणप्रियम् ।

दामोदर पद्मनाभ केशव गरुडध्वजम् ॥४७॥

गोविन्दमच्युत कृष्ण मनतमपराजितम् ।

अधोक्षज जगद्बीज सर्वस्थित्यतवारणम् ॥४८॥

अनादिनिघन विष्णु संलोक्येश त्रिविक्रमम् ।

नारायण चतुर्बाहुं शखचक्रगदाधरम् ॥४९॥

देवकी देवी के चरणों के समीप में उनके पादों का अभ्यजन करती

श्री पद्म में निषण्ण है और पूजन के योग्य है उस देवी के लिये

से नमस्कार है ॥४३॥ ॐ देवकी के लिये नमस्कार है—इसी भाँति

व, यलमद्र—श्रीकृष्ण—मुभद्रा—नन्द और यशोदा के नाम में चतुर्यो

क्ति लगाकर पूर्व में प्रणव और अन्त में 'नम' का प्रयोग करे। इस

र के नामों को अलग-अलग उच्चारण करके द्विजगण सब अर्चन

तथा स्त्री और शूद्रों को इन मन्त्रों की पूजन में आवश्यकता नहीं

४४॥ यहाँ पर कुछ द्विजोत्तम दूसरी विधि को भी बरना चाहते

न्द्रोदय के समय में शशाङ्क को अर्घ्य समर्पित करके हरि का स्मरण

॥ चाहिए ॥४५॥ उक्त स्मरण में अधोअर्जित हरि के नामों का

रण करत हुए स्मरण करे—अनघ अर्थात् पाप से रहित—वामन—

र—वैकुण्ठ—पुरुषोत्तम—वासुदेव—हृषीकेश अर्थात् विषयेन्द्रियों के हृष—

माधव-मधुसूदन-वाराह-पुण्डरीकाक्ष अर्थात् पुण्डरीक कमल दल के समान नेत्रो वाले-नृसिंह-ब्राह्मण प्रिय अर्थात् ब्राह्मणों से प्यार करने वाले-दामोदर-पद्मनाभ-केशव-गरुडध्वज-गोविन्द-अच्युत-कृष्ण-अनन्त-अपराजित-अधोक्षज-जगद्बीज अर्थात् इस जगत् के कारण स्वरूप-सर्ग (सृष्टि), स्थिति (ससार का पालन) और अन्त (संहार) के कारण-अनादि निधन अर्थात् आदि और अन्त से रहित-विष्णु-त्रैलोक्येश अर्थात् तीनों भुवनो के स्वामी-त्रिविक्रम-नारायण-चतुर्बाहु-शस्त्र चक्र गदाधर ॥४६-४६॥

पीताम्बरधर नित्य वनमालाविभूषितम् ।

श्रीवत्साङ्ग जगत्सेतु श्रीधरे श्रीपति हरिम् ॥५०॥

योगेश्वराय योगेशभवाय योगपतये गोविन्दाय नमोनम ।

यज्ञ श्वराय यज्ञसभाय यज्ञ पतये गोविन्दाय नमोनम ॥५१॥

इत्यनुलेपनाध्याद्यचनधूपमन्त्रः ।

विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वसभवाय

विश्वपतये गोविन्दाय नमोनम. ॥५२॥

धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसभवाय गोविन्दाय नमोनम. ॥५३॥

क्षीरोदार्णवसभूत अत्रिनेत्रसमुद्भव ।

गृहाणार्घ्यं शशाकेन्दो रोहिण्या सहितो मम ॥५४॥

स्थण्डिले स्थापयेद्देव सचन्द्रा रोहिणी तथा ।

देवकी वसुदेव च यशोदा नन्दमेव च ॥५५॥

बलदेव तथा पूज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

अर्द्धरात्रे वसोर्द्धारा पातयेद्गुडसर्पिषा ॥५६॥

पीताम्बरधर-नित्य-वनमाला विभूषित-श्रीवत्साङ्ग-जगत्सेतु-श्रीधर-श्रीपति-हरि-इन भगवन्नामों का स्मरण करते हुए ॥५०॥ योगेश्वर योग भव-योग पति गोविन्द के लिये बारम्बार नमस्कार है-यह स्नान कराने का मन्त्र है । इसको कह कर स्नान करावे । योगेश्वर-यज्ञ श्वराय-यज्ञपति गोविन्द की सेवा में शशाङ्क बारम्बार है । अनुलेपन और अध्यादि अचन धूप का मन्त्र है । यह मन्त्र पितृ वरने का मन्त्र है-इसको



पड कर समर्पित करना चाहिए । विश्व-विश्वेश्वर-विश्व सम्भव-यह सभी विश्व के पति के लिये गोविन्द की सन्निधि में बारम्बार नमस्कार है । यह नैवेद्य भेंट करने का मन्त्र है । धर्म के ईश्वर-धर्म के पति-धर्म से समुत्पन्न गोविन्द प्रभु के लिये पुनः-पुनः प्रणाम है—यह दीपासन का मन्त्र है ॥५०-५३॥ हे क्षीर सागर से समुत्पन्न-अत्रि के नेत्र से समुद्भव बाले ! हे शशाकेन्दो ! रोहिणी के सहित आप मेरा यह अर्घ्य ग्रहण कीजिए ॥५४॥ स्थण्डिल में देव को स्थापित करे तथा चन्द्र के सहित रोहिणी की भी स्थापना करे—देवकी-वसुदेव-यशोदा-नन्द-बलदेव की स्थापना करे और फिर पूजन करे तो वह सब पापों से मुक्त हो जाया करता है । आधीरात में गुड़ और घृत से वसुधारा का पातन करना चाहिए ॥५५-५६॥

ततो वर्द्धापि न पक्षोनामादिकरण मम ।

कर्तव्यं तत्क्षणाद्रानौ प्रभाते नवमीदिने ॥५७

यथा मम तथा कार्यो भगवत्या महोत्सवः ।

ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या तैभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥५८

हिरण्य काञ्चनं गावो वासांसि कुसुमानि च ।

यद्यदिष्टतमं तत्तत्कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥५९

यमेव देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् ।

भौमस्य ब्रह्मणो गुण्यं तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥६०

सुजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।

शान्तिरस्तु शिव चास्त इत्युक्त्वा तु विसर्जयेत् ॥६१

एवं य कुरुते देव्या देवक्या सुमहोत्सवम् ।

वर्षेवर्षे भगवतो मद्भक्तो धर्मनन्दन ॥६२

नरो वा यदि वा नारी यशोक्तफलमाप्नुयात् ॥६३

इसके अनन्तर वर्द्धापन और मेरा पछी-नाम आदि का कर्म करना चाहिए जो कि उगी क्षण में रात्रि में ही सब करे फिर प्रभात में नवमी के दिन में जो करना चाहिए—उसे बतनाया जाता है ॥५७॥ जिस तरह में यह मेरा उम्पव करे उगी भानि भगवती का महोत्सव भी करना

चाहिए । अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन करावे और उनको दक्षिणा देनी चाहिए ॥५८॥ सुवर्ण—काश्चन—गो—वस्त्र और कुसुम जो जो भी अभीष्ट हो वह—वही देवे और कहे—भगवान् कृष्ण मुझ पर प्रसन्न होवें ॥५९॥ जिसको देवी देवकी ने वसुदेव से जन्म दिया है और भीम ब्रह्मा की रक्षा करने के लिये समुत्पन्न किया है उस ब्रह्मात्मा के लिये नमस्कार है ॥६०॥ सुजन्म वसुदेव के लिये और गौ तथा ब्राह्मणों के परम हितों के लिये शान्ति होवे शिव होवे—यह कह कर फिर विसर्जन करना चाहिए ॥६१॥ इस तरह से जो भी कोई देवी देवकी का यह परम सुन्दर महान् उत्सव किया करता है और प्रति वर्ष करता है हे धर्मनन्दन ! वह भगवान् का मेरा भक्त होता है ॥६२॥ चाहे वह कोई पुरुष हो या नारी हो उसे जैसा भी कहा गया है वह फल प्राप्त होता है ॥६३॥

पुनस्तानमारोग्य धनधान्यादिसद्गृहम् ।  
 शालीक्षुयवसपूर्णमण्डल सुमनोहरम् ॥६४॥  
 तस्मिन्नाष्ट्रे प्रभुभुक्ते दीर्घायुर्मनसन्सितान् ।  
 परचक्रभय नास्ति तस्मिन्नाज्येऽपि पाण्डव ॥६५॥  
 पर्जन्य कामवर्षा स्यादीतिभ्यो न भय भवेत् ।  
 यस्मिन्गृहे पादुपुत्र क्रियते देवकीव्रतम् ॥६६॥  
 न तत्र मृत निष्क्रातिर्न गर्भपतन तथा ।  
 न च व्याधिभय तत्र भवेदिति मतिर्मम ॥६७॥  
 न वद्यजनसयोगो न चापि कलहो गृहे ।  
 सपत्न्यापि य कश्चित्कुर्याज्जिन्माष्टमीव्रतम् ।  
 विष्णुलोकमवाप्नोति सोऽपि पाथ न सशय ॥६८॥  
 जन्माष्टमी जनमनोनयनाभिरामा  
 पपापहा सपदिनदितनदगोपा ।  
 यो देवकी सदयिता यजती ह तस्या  
 पुत्रानवाप्य समुपैति पद स विष्णो ॥६९॥

पुत्र सन्तान—आरोग्य—घनधान्य आदि से सुसम्पन्न गृह—शालि—इक्षु—यव आदि से सम्पूर्ण मण्डल जो बहुत ही मनोहर हो उस प्राप्त हुआ करता है ॥६४॥ उस राष्ट्र मे प्रभु होकर दीर्घायु और मन के सभी अभीष्ट फलो का भोग किया करता है । हे पाण्डव ! उस राज्य मे फिर परचक्र का कोई भी भय नहीं हुआ करता है ॥६५॥ वहा पर मेघ इच्छा के अनुसार वर्षा के करने वाला होता है और ईतियो का कभी कोई वहा पर भय नहीं हुआ करता है जो कि छे प्रकार की अति वृद्धि—अनावृष्टि आदि मानो गयी हैं । हे पाण्डुपुत्र ! जिस घर मे यह देवकी व्रत को किया जाता है वहा पर किसी मृत पुरुष की सकान्ति—गर्भ का पतन—व्याधियो के उत्पन्न होने का भय कभी भी नहीं होते हैं—ऐसी मेरी मति या विचार है ॥६६-६७॥ न तो उस घर मे वैद्यवने का सयोग ही होता है और न कोई किसी तरह का कलह होता है । जो कोई सपकं से भी इस जन्माष्टमी के व्रत को कर लिया करता है हे पार्थ ! वह भी अन्त मे विष्णु लोक को प्राप्त किया करना है—इसमें लेशमात्र भी सशय नहीं है ॥६८॥ यह श्रीकृष्ण जन्माष्टमी जनसमुदाय के मन और नेत्रो को अति अभिराम है । यह पापों का अपहरण करने वाली और तुरन्त ही नन्द गोपो को आनन्दित करने वाली है । जो व्यक्ति (वसुदेव) के सहित देवकी देवी का इसमे यजन किया करता है वह पुत्रपौत्रादि की प्राप्ति वर अन्त मे भगवान् विष्णु के पद को प्राप्त करता है ॥६९॥

## ॥ दशावतार चरित्र माहात्म्य ॥

पूर्वं वृतयुगस्यादौ भृगोर्भार्या महासती ।  
 दिव्यारामाश्रमे रम्या गृहवार्यवतत्परा ॥१  
 वभूव सा भृगोर्नित्य हृदयेप्सितवारिणी ।  
 तस्या मुनिर्महातेजा अग्निहोष निधाय च ॥२  
 विष्णोस्त्रासादानवाना कुलप्राणसमाकुलम् ।  
 मुक्त्वा मुद्धस्थित पाद्वे ममर्ष्य मुनिपु गवः ॥३

दत्त्वा निक्षपेक सर्व दिव्याय सुमहातपाः ।

जगाम हिमवत्पार्श्वे हर तोषयितुं रह ॥४॥

सजीवनीकृते नित्य कणैधूंममधोमुखः ।

पपो दानवराजस्य विजयाय पुरोहितः ॥५॥

आजगाम गते तस्मिन्नरुडेनाश्रितो हरिः ।

अभ्येत्य जल्पन चक्रे चक्रेणोत्कृत्तकधरम् ॥६॥

गलद्रुधिरसपन्न लोहिताणंवसनिभम् ।

दृष्ट्वासुरबल सर्वं निहत विष्णुना तदा ।

दिव्या सशप्तुकामाभूद्विष्णुं सास्त्राविलेक्षणा ॥७॥

श्रीकृष्ण ने कहा—पहिले कृत युग के आदि काल में भृगु की भार्या जो महासती थी तथा दिव्य आरामाश्रम में परम रम्य थी और गृह के सभी कार्यों में परायण रहा करती थी ॥१॥ वह नित्य ही महर्षि भृगु के हृदय के इच्छित कार्यों के करने वाली थी । महान् तेजस्वी मुनि ने उस अपनी भार्या को अग्नि हस्त के कम में नियुक्त कर दिया था ॥२॥ मुनि श्रेष्ठ ने जो महान् तपस्वी थे दानवों को विष्णु के त्रास से युक्त कुल की रक्षा के लिये परम आहुत तथा युद्ध में स्थित छोड़ कर पार्व में सब कुछ समर्पित करके और दिव्या के लिये सब कुछ निक्षेप देकर हिमालय गिरि के पार्श्व में एकान्त में भगवान् शम्भु को प्रसन्न करने के लिये चले गये थे ॥३-४॥ नित्य ही दानवराज की सजीवनी एवं विजय के लिये पुरोहित भृगु ने अधोमुख होकर कणों से धूम का पान किया था ॥५॥ उसके चले जाने पर गरुड पर समावृद्ध होकर भगवान् हरि आ गये और वहाँ आकर चक्र से उत्कृत्त (करी हुई) कन्धरा का जल्पन किया था ॥६॥ बहते हुए रुधिर से युक्त लाल सागर के समान समस्त अमुरों की सेना उस समय में विष्णु के द्वारा निहित हो गई थी । उस समय में अमुरों से मिलन भुक्त वाली दिव्या विष्णु को प्राप्य देन की इच्छा वाली हो गई थी ॥७॥

यावन्नोच्चरते वाच चक्रेण कृत्तकधरम् ।

तावन्निपानयाभाम शिरस्मस्याः मकुण्डलम् ॥८॥

प्राप्य सजीवनी विद्या यावदायात्यसौ मुनि ।  
 तावत्स दंत्यान्नापश्यत्पश्यति स्म निपातितम् ॥८॥  
 रोपाच्छ शाप च हरि भ्रुकुटीकुटिलानन ।  
 अवश्यभावभावित्वाद्विश्वस्य हितकारणात् ॥९॥  
 यस्मात्त्वया हता दंत्या ब्रह्मणो मत्परिग्रहा ।  
 तस्मात्त्व मानुषे लोके दश वारा गमिष्यसि ॥११॥  
 अतोऽयं मानुषे लोके रक्षार्थं च महीक्षिताम् ।  
 अवतार चकाराह भूयोभूय पृथग्विधम् ॥१२॥  
 पूर्वोक्त कारणं पार्थ अवतीर्णं महीनले ।  
 मा नरा येऽर्चयिष्यति तेषां वासस्त्रिविष्टये ॥१३॥

जब तब वह दिव्या शाप देने के लिये मुख से बचनो का उच्चारण नहीं कर पाती है तब तक तो विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा उमकी कंधरा को काट डाला था और उमका कुण्डलों के सहित शिर काट कर नीचे गिरा दिया था ॥८॥ यह भृगु मुनि सजीवनी विद्या को प्राप्त करके जब तक ब्रह्मा पर वापिस लौटकर आते हैं तब तक तो ब्रह्मा पर उमने दंत्यो को नहीं देखा था और सब को निपातित देख पाये थे ॥९॥ उनको यह दशा दंत्यो की देखकर बड़ा रोष उत्पन्न हो गया था तथा टेढ़ी भ्रुकुटियों वाला मुख करके भृगु ने हरि को शाप दे दिया था जो कि अवश्य भाव से भावी विश्व के हित के कारण में ही दिया था ॥१०॥ क्योंकि तू ने मुझ ब्राह्मण के परिग्रहीत दंत्यो का हनन कर डाला है इसलिये मैं यह शाप देता हू कि तुम मनुष्य लोक में दश बार जाओगे ॥११॥ इसी लिये मैंने मनुष्य लोक में राजाओं की रक्षा के लिये बारम्बार पृथक् २ प्रकार के अवतार किये थे ॥१२॥ इन पूर्व में कथित कारणों में हे पार्थ ! मैं इस मही मण्डप में अवतीर्ण हुआ था । जो नर मरी समर्चना किया करते हैं उनका निवास निश्चय ही त्रिविष्टप में होता है ॥१३॥

अत दशावतारात्म्यं कृष्ण ब्रूहि सविस्तरम् ।

समग्रं सरहस्यं च सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४॥

दत्त्वा निक्षपेक सर्व दिव्यार्थं सुमहातपा ।  
 जगाम हिमवत्पार्श्वे हर तोषयितुं रह ॥४॥  
 सजीवनीकृते नित्यं कर्णधूममधोमुख ।  
 पपी दानवराजस्य विजयाय पुरोहित ॥५॥  
 आजगाम गते तस्मिन्नारुडेनाश्रितो हरि ।  
 अभ्येत्य जल्पनं चक्रे चक्रेणोत्कृत्तकधरम् ॥६॥  
 गलद्गुधिरसपन्नं लोहिताणवसनिभम् ।  
 दृष्ट्वासुरबलं सर्वं निहतं विष्णुना तदा ।  
 दिव्यां सशप्तुकामाभूद्विष्णुं सास्त्राविलेक्षणा ॥७॥

श्रीकृष्ण ने कहा—पहिले कृत युग के आदि काल में भृगु की भार्या जो महासती थी तथा दिव्य आरामाश्रम में परम रक्ष्य थी और गृह के सभी काठ्यों में परायण रहा करती थी ॥१॥ वह नित्य ही महर्षि भृगु के हृदय के इच्छित कार्यों के करने वाली थी । महान् तेजस्वी मुनि ने उस अपनी भार्या को अग्नि हाथ के कम में नियुक्त कर दिया था ॥२॥ मुनि श्रुत ने जो महान् तपस्वी थे दानवों को विष्णु के वास में युक्त-कुल की रक्षा के लिये परम आशुन तथा युद्ध में स्थित छोड़ कर पार्श्व ॥ सब कुछ समर्पित करके और दिव्या के लिये सब कुछ निक्षेप देकर हिमालय गिरि के पार्श्व में एकान्त में भगवान् शम्भु को प्रसन्न करने के लिये चले गये थे ॥३॥ नित्य ही दानवराज की समीपनी एवं विजय के लिये पुरोहित भृगु ने अधोमुख होकर कर्णों से धूम का पान किया था ॥४॥ उसके चरण जाने पर गरुड पर समावृत्त होकर भगवान् हरि आ गये और वहाँ आकर चक्र से उत्कृत्त (करी हुई) कधरा का जल्पन किया था ॥५॥ बहते हुए गुधिर स युक्त ताल सागर के समान समस्त अमुरा की संज्ञा उस समय में विष्णु व द्वारा निहित हो गई थी । उस समय में असुरों में मग्निय भुक्त वाली त्रिव्या विष्णु को शाप देने की इच्छा वाली हो गई थी ॥६॥

यावन्मोच्यते वाचं चक्रेण वृत्तकधरम् ।  
 तावन्निपानयामास शिरस्नस्या मकुण्डम् ॥७॥

प्राप्य सजीवनी विद्या यावदायात्यसौ मुनि ।  
 तावत्स दैत्यान्नापश्यत्पश्यति स्म निपातितम् ॥८६॥  
 रोपाच्छ शाप च हरि भ्रुकुटीकुटिलानन ।  
 अवश्यभावभावित्वाद्विश्वस्य हिनकारणात् ॥८७॥  
 यस्मात्त्वया हता दैत्या ब्रह्मणो मत्परिग्रहा ।  
 तस्मात्त्व मानुषे लोके दश वारा गमिष्यसि ॥८८॥  
 अतोऽर्थं मानुषे लोके रक्षार्थं च महीक्षिताम् ।  
 अवतार चकाराह भूयोभूय पृथग्विधम् ॥८९॥  
 पूर्वोक्तं कारणै पार्थ अवतीर्णं महीनले ।  
 मा नरा येऽचयिष्यति तेषा वासस्त्रिविष्टपे ॥९०॥

जब तब वह दिव्या शाप देने के लिये मुख से वचनों का उच्चारण नहीं कर पाती है तब तक तो शिष्णु ने अपने मुदर्सन चक्र के द्वारा उसकी कंधरा को काट डाला था और उसका कण्ठ रो के सहित शिर काट कर नीचे गिरा दिया था ॥८६॥ यह भृगु मुनि सजीवनी विद्या को प्राप्त करके जब तक वहां पर वापिस नौटकर आते हैं तब तक तो वहां पर उसने दैत्यों को नहीं देखा था और सब को निपातित देख पाये थे ॥८७॥ उसको यह दशा दैत्यों की देखकर बड़ा रोष उत्पन्न हो गया था तथा टेढ़ी भ्रुकुटियों वाला मुख करके भृगु ने हरि को शाप दे दिया था जो कि अवश्य भाव से भावी विश्व के हित के कारण से ही दिया था ॥८८॥ क्योंकि तू न मुझ ब्राह्मण के परिगृहीत दैत्यों का हनन कर डाला है इसलिये मैं यह शाप देता हू कि तुम मनुष्य लोक में दश बार जाओगे ॥८९॥ इसी नियम से मनुष्य लोक में राजाओं की रक्षा के लिये बारम्बार पृथक् २ प्रकार के अवतार किये थे ॥९०॥ इन पूर्व में कथित कारणों में हे पाथ ! मैं इस मही मण्डल में अवतीर्ण हुआ था । जो नर मरी समचना किया करत हैं उनका निवास निश्चय ही त्रिविष्टप में होता है ॥९१॥

अत दशावतारात्म्य कृष्ण ब्रूहि सविस्तरम् ।

समग्र संहृत्य च सर्वपापप्रणाशनम् ॥९२॥

करावे ॥१६॥ नवम वर्ष कर्णवेष्ट और दशवें में शुभ खण्डक बनवावे । दश धेनु दशहरे दश विप्रों को दिलावे ॥२०॥ हे भरतर्षभ ! जो जिस प्रकार से बतलाया गया है उसे क्रम से खिला कर अर्द्ध का अर्द्ध पीस लेवे और अर्द्धाद्धं द्विजाति के लिये देवे । स्वतः भी अर्ध का अशन करे और किसी रम्य जलाशय में जाकर करना चाहिए ॥२१॥

दशावतारा नभ्यर्च्य पुष्पधूपविलेपनैः ।

मन्त्रेणानेन मेघावी करिभभ्युक्ष्य वारिणा ॥२२

मत्स्य कूर्मं वराह च नरसिंह त्रिविक्रमम् ।

श्रीराम राम कृष्णौ च बुद्ध चैव सक्त्किनम् ॥२३

गतोऽस्मि शरण देव हरि नारायण प्रभुम् ।

प्रणतोऽस्मि जगन्नाथ स मे विष्णु प्रसीदतु ॥२४

छिनत्तु वैष्णवी माया भक्त्या जातो जनार्दन ।

श्वेतद्वीप नयस्थस्मान्समात्मनि निवेदयेत् ॥२५

एव य कुरुते पार्थ विधिनानेन सुव्रत ।

दशावतारनामाख्य तस्य पुण्यफल शृणु ॥२६

श्रूयते यास्त्वमालोच्य पुरपाणा दशा दश ।

ताश्छिनत्ति न संदेहः शक्रप्रहरणंहरिः ॥२७

दश अवतारों का अभ्यर्चन पुष्प धूप लेपन आदि से करे । मेघावी पुष्प को इस मन्त्र से जन के द्वारा हरि का अभ्युक्षण करना चाहिए ॥२०॥ मत्स्य—कूर्म—वराह—नरसिंह—त्रिविक्रम—श्रीराम—राम—कृष्ण—बुद्ध और कल्कि देव—हरि—नारायण प्रभु की मैं शरणागति प्राप्त हो गया हूँ । जगन् के नाथ के समक्ष मैं प्रणत होता हूँ । वह भगवान् विष्णु मुझ पर प्रमत्त हों ॥२३-२४॥ भक्ति से जन्म-ग्रहण करने वाले जनार्दन प्रभु वैष्णवी माया का छेदन करें । हमको श्वेतद्वीप में ले जाने हैं । समात्मा में निवेदन करे ॥२५॥ हे पार्थ ! जो कोई इस प्रकार में करता है । हे सुव्रत ! इस वज्रित विद्या से जो इस दशावतार नाम वाले व्रत को किया करता है अब उसका पुण्य के फलों का आप श्रवण कीजिए ॥२६॥ पुरपा के जो ये दश दशाएँ हैं उनका आर्वाचन करके जो वे



धवण भी जाती हैं वे छटा कर दिया करती हैं । जिस प्रकार शक्र प्रहरणों में हरि किया करते हैं—इसमें कुछ भी मदेह नहीं है ॥२७॥

समारसागरे घोरे मज्जत तस मां हरि ।

श्वेतद्वीप नयत्वाशु व्रतेनानेन तोषित ॥२८

किं तस्य न भवत्लोके यस्य तुष्टो जनादन ।

सोऽह जनादनो राजन्कालरूपो घरासुत ।

मत्स्यलोके स्वय पाथ भूभारोत्तारकारणम् ॥२९

या स्योन्नामिद पाथं चरिष्यति मयोदितम् ।

सा लक्ष्म्याऽचलया युक्ता भर्तृपुत्रसमन्विता ॥३०

मत्स्यलोके चिर स्थित्वा विष्णुलोकं महीयते ।

विष्णुलोकाद्रुद्रलोकं ततो याति पर पदम् ॥३१

य पूजयति पुरुषा पुरुषोत्तमस्य

मत्स्यादिवारस्तु दशमीषु दशावतारान् ।

मर्त्या दशस्वपि दशासु सुखं विहृत्य

ते याति यानमधिरुह्य सुरेशलोकान् ॥३२

इस व्रत के द्वारा सत्तुष्ट भगवान् हरि ससार सागर में डूबते हुए भुक्तको वहा श्वेत द्वीप में शीघ्र ही ले जावें ॥२८॥ भगवान् जनार्दन जिससे परम सन्तुष्ट हो जावें उसको इस लोक में क्या नहीं होता है ? अर्थात् सभी कुछ उसे प्राप्त हो जाया करता है । हे पाथ ! इस मनुष्य लोक में भूमि के भार के उत्तारण के कारण से हुआ जन् । वह मैं काल रूपी घरासुत जनादन ॥२९॥ हे पाथ ! जो सती मेरे द्वारा कथित इस व्रत को करेगी वह भी अचल लक्ष्मी से युक्त होकर भर्ता और पुत्रादि से समन्वित हुआ करती है ॥३०॥ मत्स्य लोक में चिरकाल तक स्थित रह कर वह अतः विष्णु लोक में प्रतिष्ठित हुआ करती है । विष्णु लोक से रुद्र लोक में और फिर परम पद को प्राप्त हो जाती है ॥३१॥ जो पुरुष इन मत्स्य आदि पुरुषोत्तम के दश अवतारों का दशमी तिथियों में पूजन किया करते हैं व मनुष्य दशो दशाओं में सुख का त्याग करके वे यान में अधिरुहण करके सुरेश लोको को जाया करते हैं ॥३२॥

## ॥ गोवत्स-द्वादशी माहात्म्य ॥

अक्षौहिण्यो दशाष्टौ च मद्राज्यार्थे क्षय गता ।

तेन पापेन मे चित्ते जुगुप्सातीव वर्तते ॥१॥

तत्र ब्राह्मणराजन्यवैश्यशूद्रादयो हता ।

भीष्मद्रोणकल्किगादिकर्णशल्यमुयोधना ॥२॥

तेषा वधेन यत्पाप तन्मे मर्माणि कृ तति ।

पापप्रक्षालन कश्चिद्धर्मं ब्रूहि जगत्पते ॥३॥

सुमह पुण्यजनन गोवत्सद्वादशीव्रतम् ।

अस्ति पाप महाबाहो पाण्डवाना धुरधर ॥४॥

केय गोद्वादशी नाम विधान तन कीदृशम् ।

कथमपा समुत्पन्ना कस्मिन्काले जनादन ॥५॥

एतत्सर्वं हरे ब्रूहि पाहि मा नरकार्णवात् ॥६॥

युधिष्ठिर ने कहा—मरे राज्य के प्राप्त करन क लिए अठाह अक्षौहिणी सेना क्षय की प्राप्त होगई थी । उन महापाप से चित्त मे अत्यन्त जुगुप्सा घर्त्तमान रहा करती है ॥१॥ उस महामुद्ध मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रभृति सभी निहत हुए थे जिनमे पितामह भीष्म, गुरुद्रोण, कर्ण, द्रुपद, कल्कि, शल्य और सुयोधन थे ॥२॥ उन वध से जा पाप हुआ है वह मरे मम स्वर्गो का कृत्तन किया करता है । हे जगत्पते ! पापा के प्रक्षालन करने वाला कोई धर्म बतलाइय ॥३॥ श्रीकृष्ण ने कहा—एक सुमहाद् पुण्य की उत्पन्न करन वाला गोवत्स द्वादशी का व्रत होता है । हे महाबाहो ! हे पाण्डवो मे धुर धर हे पाप ! यह ऐसा ही व्रत है ॥४॥ युधिष्ठिर ने कहा—यह गोद्वादशी नाम वाली वीर की है और उसका विधान किस प्रकार का होता है ? यह कैसा उत्पन्न हुई थी ? हे जनादन ! यह भी बननाइये यह किस समय मे समुत्पन्न हुई है ? हे हरे ! यह ममा मुझ आप बननाइये और मुझ ॥ नरक रूपा सागर ॥ बचाइय ॥५॥ ६॥

पुरा कृतयुगे पार्थ मुनिकोटि समागता ।  
 तपश्चचार विपुल नामव्रतधरा गिरो ॥७  
 हर्षेण महताविष्टा देवदर्शनकाक्षया ।  
 जबूमार्गे महापुण्ये नामतीर्थविभूषिते ॥८  
 पारयात्रे सिद्धपात्रे रम्ये तदुलिकाश्रमे ।  
 टटाविरिति विख्याते उत्तमे शिखरे नृप ॥९  
 तापसारण्यमतुल दिव्यकाननमडितम् ।  
 वशिष्ठशुक्रागिरसक्रतुदक्षादिभिवृतम् ॥१०  
 बल्कलाजिनसवीतैर्भृंगोराश्रममडलम् ।  
 नानामृगगणैर्जुष्टं शखामृगगणैर्युतम् ॥११  
 प्रशान्तिसिंहहरिण सर्ववस्तुगतद्रुमम् ।  
 गहनं निर्मलं रम्यं लतासप्तानसकुलम् ॥१२  
 सिंहव्याघ्रगजैर्मन्त्रहरिणैश्च शवरैश्च शशैः ।  
 चराहैरुभिश्रितैः समतादुपशोभितम् ॥१३  
 तपस्यता तत्र तेषां मुनीनां दर्शनार्थिनाम् ।  
 व्याजचक्रे महीनाथ द्वादशाधार्धलोचन ॥१४

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ ! पहिले कृतयुग में मुनियों की कोटि समागत हुई थी जो नाम व्रत के धारण करने वाली थी उसने गिरि में विपुल तपश्चर्या की थी । यह मुनि मण्डली महान् हर्ष से समाविष्ट थी और देव के दर्शन की आकाक्षा से ही तप किया था । एक महा पुण्य-मय जम्बूमार्ग में जो नाम तीर्थ से विभूषित था ॥७८॥ वहां सिद्ध पात्र रम्य परियात तदुलिकाश्रम में हे नृप । एक टटावि—इस नाम से परम विख्यात उत्तम शिखर था ॥९॥ उसमें अनुपम तपोवन था जो दिव्य कामनो से समलकृत था और उसमें वसिष्ठ—शुक्र—आज्ञिरस—क्रतु-दक्ष आदि सभी विममान थे ॥१०॥ ये सभी मुनिगण बल्कल और मृगचर्म के धारण करने वाले थे । भृंगु का आश्रममण्डल अनेक मृगगणों के द्वारा सजित था तथा शखामृगों से भी युक्त था ॥११॥ इसमें परम प्रशान्त वाले सिंह और हरिण रहा करते थे । तथा सब वस्तु गत द्रुम

थे । यह अति गहन—निर्ऋत और सुन्दर था एव लताओं के विस्तार से सकुल था ॥१२॥ सिंह—गज और व्याघ्रों से भिन्न हरिण—शवर—शश—वराह—रुद्र जो चित्त विविन्न भाँति के थे इन सब से यह आश्रम परम शोभित था ॥१३॥ वहाँ पर देव दर्शन के अर्थी उन मुनियों के तप करने पर द्वादशार्घ्य लोचन महीनाथ ने एक व्याज(छद्म)किया था ॥१४॥

वभूव ब्राह्मणो वृद्धो जरापाङ्गुरमूढजः ।  
 श्लथञ्चर्मतनुः कुब्जो यष्टिपाणि सवेपथुः ।  
 उमापि चक्रे गोरूपं शृणु तत्पार्थ यादृशम् ॥१५॥  
 क्षीरोदतोयसभूता या. पुरामृतमंथने ।  
 पञ्च गावः शुभाः पार्थ पञ्चलोकस्य मातरः ॥१६॥  
 नन्दा सुभद्रा सुरभी सुशीला बहुला इति ।  
 एता लोकोपकाराय देवाना तर्पणाय च ॥१७॥  
 जमदग्निभरद्वाजवक्षिष्ठासितगौतमाः ।  
 जगृहुः कामदा. पञ्च गावो दत्ताः सुरैस्ततः ॥१८॥  
 गोमय रोचना मूत्र क्षीर दधि घृत गवाम् ।  
 पङ्कगानि पवित्राणि सशुद्धिकरणानि च ॥१९॥  
 गोमयादुत्थितः श्रीमान्वित्ववृक्षः शिवप्रियः ।  
 तत्रास्ते पद्महस्ता श्री. श्रीवृक्षस्तेन स स्मृतः ।  
 दीजान्मुत्पलपद्माना पुनर्जातानि गोमयात् ॥२०॥  
 गोरोचना च मागल्या पवित्रा सर्वसाधिका ।  
 गोमूत्राद्गुलुर्जातिः सुगन्धि प्रियदर्शन ।  
 आहारः सर्वदेवाना शिवस्य च विशेषतः ॥ २१॥

वह देवेश्वर एक अनि वृद्ध ब्राह्मण हो गये थे । जिसकी वृद्धता के कारण समस्त वेश पाङ्गुर वर्ण के होगये थे । शरीर का धर्म शून्य था—कुब्ज (गुबड़ा) था—हाथ में एक यष्टि (लाठी) को ग्रहण करने वाला भीरु रूप मुक्त था । उस समय में उमा देवी ने भी गोरूप धारण किया था । हे पार्थ ! वह जिस प्रकार का था उसका तुम अवश्य करो ॥१५॥

पहिले अमृत के लिये मन्थन करने के समय में क्षीर सागर के जल से जन्म ग्रहण करने वाली पाँच गीएँ परम शुभ पाँच लोक की माताएँ हुई थी ॥१६॥ नन्दा-सुभद्रा-सुरभी-सुशीला-बहुला-ये उनके नाम हैं । ये लोकों के उपकार के लिये और देवों के तपण के लिये ही समुत्पन्न हुई थी ॥१७॥ जमदग्नि-भरद्वाज-वशिष्ठ-असित-गौतम ने इन पाँच गौओं को ग्रहण किया था और सुरमण ने इनको दिया था ॥१८॥ गोमय-रोचना-मूत्र-क्षीर-दधि और गौओं का घृत ये छँ अथ परम पवित्र होने हैं तथा सशुद्धि के करने वाले भी हुआ करते हैं ॥१९॥ गोमय से श्रीमान् भगवान् शिव का प्रिय बिल्व का वृक्ष समुत्पन्न हुआ था । वहाँ पर पद्म हाथ में लेने वाली श्री विराजमाना रहती है अतएव उसे श्रीवृक्ष भी कहा गया है । फिर गोमय से उत्पन्न पद्मों के बीज उत्पन्न हुए थे ॥२०॥ गोरोचना मागलिक होती है-पवित्र है और सब की साधिका हुआ करती है । गोमूत्र गुलु उत्पन्न हुआ जो सुन्दर गंध वाला और देखने में प्रिय होता है । यह सभी देवों का आहार है तथा शिव का विशेष रूप से होता है ॥२१॥

यद्वीज जगत विश्वित्तज्ज्ञेय क्षीरसम्भवम् ।  
 दधु सर्वाणि जातानि मङ्गलान्यर्थसिद्धये ।  
 घृतादमृतमुत्पन्न देवाना तृप्तिकारणम् ॥२२॥  
 ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेक द्विधा कृतम् ।  
 एकत्र भन्नास्तिष्ठति हविरन्यत्र तिष्ठति ॥२३॥  
 गोषु यज्ञा प्रवर्तन्ते गोषु देवा प्रतिष्ठिता ।  
 गोषु वेदा समुत्कीर्णा सपङ्कगपदक्रमा ॥२४॥  
 शृङ्गमूले गवा नित्य बह्या विष्णुश्च सस्थितौ ।  
 शृङ्गाग्रं सवतीर्थानि स्यावराणि चराणि च ॥२५॥  
 शिवो मध्ये महा देव सवकारणकारणम् ।  
 ललाटे सस्थिता गौरी नासावशे च पण्मुख ॥२६॥  
 कबलाश्वतरो नागो नासापुटसमाश्रितौ ।  
 कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुर्म्यां शशिभास्वरो ॥२७॥

दतेषु वसव सर्वे जिह्वाया वरुण स्थितः ।

सरस्वती च कुहरे यमयक्षी च गण्डयोः ॥२८॥

इस जगत् का जो कुछ भी बीज है वह सब क्षीर से ही सम्भूत होने वाला है । अर्थात् की सिद्धि के लिए सभी मंगलों को धारण किया था । घृत से अमृत उत्पन्न हुआ जो देवों की वृष्टि का कारण है ॥२२॥ ब्राह्मण और गो यह एक ही कुल है जो दो प्रकार का कर दिया गया है । एक में मन्त्र अपनी स्थिति रखा करते हैं और दूसरे में हवि स्थित रहता है ॥२३॥ गौओं में यज्ञ प्रवृत्त होते हैं और गौओं में देवता लोग प्रतिष्ठित रहते हैं—गौओं में वेद समुत्कीर्ण हैं जो षडंग क्रम के सहित होते हैं ॥२४॥ गौओं के सींगों के मूल में नित्य ही ब्रह्मा और विष्णु समवस्थित रहा करते हैं । शृंग के अग्रभाग में सम्पूर्ण तीर्थ स्थावर और चर विद्यमान हैं ॥२५॥ मध्य में महान् देव शिव विराजमान हैं जो सब कारणों के भी कारण स्वरूप होते हैं । ललाट में जगदम्बा गौरी विद्यमान हैं नासा वश में यन्मुख कार्तिकेय विराजते हैं ॥२६॥ कम्बुवत्तर दा भाग नासापुट में वर्तमान हैं । दोनों कानों में अश्विनीकुमार देव रहते हैं और दोनों चक्षुओं में शशि एवं भुवन भास्कर समाधित हैं ॥२७॥ गौ के दाँतों में सब वसुमण हैं एवं जिह्वा में वरुण स्थित रहते हैं । कुहरे में सरस्वती तथा गण्ड स्थलों में यम और यक्ष दोनों रहा करते हैं ॥२८॥

सध्याद्वय तथेष्टाभ्या ग्रीवाया च पुरंदरः ।

रक्षासि ककुदे द्यौश्च पार्थिणकाये व्यवस्थिता ॥२९॥

चतुष्पात्सकलो धर्मो नित्य जघासु तिष्ठति ।

सुरमध्येषु गन्धर्वा सुराग्रेषु च पन्नगाः ॥३०॥

सुराणां पश्चिमे भागे राक्षसाः सप्रतिष्ठिताः ।

रुद्रा एकदश पृष्ठे वरुणः सवमन्धिषु ॥३१॥

श्रीगणेशस्थिता पितरः कपोलेषु च मानवाः ।

श्रीरूपानि गवा नित्य स्वाहालकारमाश्रिता ॥३२॥

आदित्या रश्मयो वाला पिण्डीभूता व्यवस्थिता ।

साक्षाद्गगा च गोमूत्रे गोमये यमुना स्थिता ॥३३

त्रयस्त्रिंशद्देवकोट्यो रोमकूपे व्यवस्थिता ।

उदरे पृथिवी सर्वा सशैलवनकानना ॥३४

चत्वार सागरा प्रोक्ता गवा ये तु पयोधरा ।

पजय क्षीरधारासु मेघा विदुर्व्यवस्थिता ॥३५

इष्टो म द्रोमो म घ्याए रहती हैं और ग्रीवा मे इन्द्र देव विराजते हैं  
गौ के ककुद मे राक्षस तथा पाण्डिकाय में द्यौ व्यवस्थित है ॥३६॥  
चारो पादो वाले सम्पूर्ण घम नित्य ही गौ के जघाओ मे स्थित रहा  
करता है । खुरो के मध्य में ग घर्ब और खुरा के अग्रभाग में पन्नग  
हैं ॥३७॥ खुरो के पश्चिम भाग म राक्षस सम्प्रतिष्ठित हैं । एकादश  
रुद्र पृष्ठभाग में तथा ममस्त सधियो में वरुण देव रहा करते हैं ।  
॥३८॥ श्रोणी तट मे स्थित पितृगण हैं तथा कपालो में मानव रहते हैं  
स्वाहा के अलकार मे समाश्रित श्री गौओ के अपान म नित्य रहती हैं  
॥३९॥ आदित्य रश्मियाँ पिण्डीभूत होकर वाच व्यवस्थित है । गो मूत्र  
साक्षात् गगा विराजमान हैं । गोमय में यमुना विद्यमान हैं ॥४०॥  
तेतीस करोड देवो की कोटियाँ रोम कूपो में विशय रूप से अवस्थित हैं ।  
गौ के उदर में सम्पूर्ण पृथिवी है जिसमें शैल वन और कानन है ॥४१॥  
जो ये गौ के चार स्तन हैं ये ही चार सागर कह जाते हैं । क्षीर की  
धाराओ में पज य तथा विदुओ म व्यवस्थित मेघ है ॥४२॥

जठरे ग।हपत्योऽग्निदक्षिणाग्निहृ दि स्थित ।

कठे आहवनीयोऽग्नि सभ्योऽग्निस्नालुनिस्थित ॥४३

अस्यव्यवस्थिता शैला मञ्जासु क्रतवस्थिता ।

ऋग्वेदोऽथर्ववेदश्च सामवेदो यजुस्तथा ॥४४

सुरक्तपीतकृष्णादौ गवा वर्णे व्यवस्थिता ।

तासा रूपमुमा स्मृत्वा सुरभीणा युधिष्ठिर ॥४५

सस्मृत्य तत्क्षणाद्गौरी इयेप सदृशी तनुम् ।

आत्मान विदधे देवी घमराज शृणुष्व ताम् ॥४६

पद्मता पञ्चनिम्ना मङ्गकाक्षी सुवालघिम् ।  
ताम्रस्तानी रौप्यकटि सुखुरी सुमुखी सिताम् ॥४०॥  
सुशीला च सुतस्नेहा सुशीरा सुपयोधराम् ।  
गोरूपिणीमुमा स्पृष्ट्वा स्वामिनी ता सवत्सिकाम् ॥४१॥  
चर्चया प्रतरन्द्दृष्टो महादेव स्वचेतसि ।  
शनैः शनैर्ययौ पार्थ विप्ररूपी महाश्रमम् ॥४२॥

गौ के जठर में माहपत्य अग्नि है और हृदय में दक्षिणाग्नि है । कण्ठ में आहवनीय अग्नि स्थित है तथा तालु में सम्य अग्नि है ॥३६॥ गौ की अस्थियों में सम्पूर्ण शूल व्यवस्थित हैं और मज्जाओं में श्रुतु विद्यमान हैं । ऋग्वेद—अथर्ववेद—सामवेद—और यजुर्वेद सुरक्त—पीत और कृष्ण आदि जो गौओं के वर्ण हैं उनमें ही व्यवस्थित रहते हैं । हे युधिष्ठिर ! उन सुरभियों के रूप को उमा देवी स्मरण किया करती हैं ॥३८॥ इस प्रकार से सस्मरण करके गौरी ने उसी क्षण में सदृश रूप की इच्छा की थी । हे धर्मराज ! देवी ने जैसा अपने आप को बनाया था—उसे अब सुनलो ॥३६॥ पद्मता—पञ्च निम्न मङ्गकाक्षी सुन्दर पूँछ और ताम्र के से स्तनो वाली—रौप्य की कटि से युक्त—सुन्दर खुरी वाली—सुमुखी—सित—सुशील—सुन्दर क्षीर वाली—सुत पर स्नेह करने वाली और सुन्दर पयोधरी वाली, रूप में स्थित वरस से युक्त—स्वामिनी उमा का स्पर्श करके महादेव अपने चित्त में प्रसन्न होकर प्रतार करते हुए हे पार्थ ! शनैः-शनैः वह उस महाश्रम में विप्र रूप वाले होकर गये थे ॥४०-४२॥

दत्त्वा कुलपते पार्श्वं भृगोस्ता गा न्यवेदयत् ।  
तपस्विना महातेजास्ता च सर्वेषु पादव ॥४३॥  
न्यासरूपा ददौ धेनु रक्षित्वा ता दिनद्वयम् ।  
यावत्स्नात्वा इतस्तीर्त्वा जवमार्गं वियाम्यहम् ॥४४॥  
रक्षिष्याम प्रतिज्ञाते मुनिभि सुरभीमिमाम् ।  
अन्तर्द्धिमगमद्देव पुनर्व्याघ्रो बभूव ह ॥४५॥  
वज्रचक्रण्यो दर्वी ज्वलत्पिगललोचन ।  
जिह्वाकरालवदनो जिह्वालागूलदारण, ॥४६॥



सप्रायादाश्रमपद ता च धेनु सवत्सिकाम् ।

त्रासयामास ता देव मुनीना दिक्षवस्थितः ॥४७॥

ऋपयोऽपि समाक्राता आर्तनाद प्रचक्रिरे ।

हाहेत्युच्चैः केचिदूचुहुं हुकारैस्तथापरे ॥४८॥

तालास्फोटान्ददुः केचिद्व्याघ्र दृष्ट्वातिभैरवम् ।

सापि हभारवाश्रक्ते गौरुत्प्लुत्य सवत्सिका ॥४९॥

कुलपति भृगु के पाण्डवों में उस गौ को देकर निवेदन किया था ।  
हे पाण्डव ! वह सब तपस्वियों में महान् तेजस्वी थे । दो दिन तक  
उसकी रक्षा करके उस धेनु को न्यास रूप में दे दिया था । यह कहा  
था कि मैं जब तक यहाँ से उतर कर स्नान करके जम्बू मार्ग में जाता  
हूँ इस गौ को आप रखिये ॥४३-४४॥ मुनियों के द्वारा इस मुरभी की  
हम रक्षा करेंगे—ऐसी प्रतिज्ञा करने पर वह देव अन्तर्धान हो गये थे  
और एक व्याघ्र बन गये थे ॥४५॥ वह वप्य चक्र के समान नखों वाला  
—दर्वी—जनते हुए पिङ्गल वर्ण के नेत्रों से युक्त—जिह्वा से कराल मुखा-  
वृत्ति वाला एक जीभ और लागूल से अत्यन्त दारुण था ॥४६॥ वह  
उसी आश्रम के स्थान में आ गया था और वस्त्र के सहित उस धेनु को  
त्रास देन लगा था । देव मुनियों की दिशाओं में अवस्थित हो गया था  
॥४७॥ ऋषि गण भी समाक्रान्त हो गये थे और सब आर्तनाद करने  
लगे थे । उनमें कुछ तो 'हा-हा' यह कहने लगे और कुछ दूगरे द्वारा  
'हुम-हुम'—ऐसा मुख से कह रहे थे ॥४८॥ कुछ तानियों की ध्वनि कर  
रहे थे जिन्होंने कि उन महा भैरव स्वर्ण वासे व्याघ्र को देरा लिया  
था । वह वरग सहित गौ भी उत्पन्न करने हमारव कर रही थी ॥४९॥

तस्या व्याघ्रमयार्तायाः कपिनाया युधिष्ठिरः ।

पलाययता शिन्नामध्ये दाण गुरचतुष्टयम् ॥५०॥

व्याघ्रवल्गवयोस्तत्र बद्धि मुरतिभरैः ।

दृष्ट्वा तन्नीय मुष्यक्तं तदद्यापि चतुष्टयम् ॥५१॥

मजस शिवलिङ्ग च धम्मोम्नीयं तदुत्तमम् ।

धम्मपूजति राजेन्द्र स गोवध्या व्यपोत्ति ॥५२॥

तत्र स्नात्वा महातीर्थे जवूमार्गे नराधिप ।  
 ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र सशयः ॥५३॥  
 ततस्ते मुनयः क्रुद्धा ब्रह्मदत्ता महास्वनाम् ।  
 जघ्नुर्घण्टा सुरैर्दत्ता गिरिकन्दरपूरणीम् ॥५४॥  
 शब्देन तेन व्याघ्रोऽपि मुक्त्वा गावः सवत्सिकाम् ।  
 विप्रैस्तत्र कृतं नाम दुष्ठागिरिरिति श्रुतिः ।  
 त प्रपश्यति ये पार्थ ते रुद्रा नात्र सशयः ॥५५॥  
 अयं प्रत्यक्षता श्रद्धस्तेषां देवो महेश्वरः ।  
 शूलपाणिस्त्रिपुरहा कामधनौ वृषभे स्थितः ॥५६॥

हे युधिष्ठिर ! व्याघ्र के भय से आत्त बहू कपिना भाग रही थी तो  
 एक ही क्षण में निला के मध्य में उसके चारो घुर हो गये थे ॥५०॥  
 वहा पर सुख और बिघ्नरो ने व्याघ्र बत्सक की वन्दना की थी । वह  
 आज भी अनुष्टुप अतीव सुष्यक्त दिखलाई देता है ॥५१॥ वह जल के  
 शिर्वालिंग शम्भु का परमोत्तम तीर्थ है । हे राजेन्द्र ! जो भी कोई उसका  
 सस्नान करता है वह ब्रह्मा का अपोहन कर दिया करता है ॥५२॥  
 उस महातीर्थ में जवूमार्ग में हे नराधिप ! स्नान करके अनुष्टुप ब्रह्मा-  
 हत्यादि पापों से छुटकारा पा जाता है—इसमें लेन मात्र भी सशय नहीं  
 है ॥५३॥ इसके उपरान्त वे मुनिगण अनि क्रुद्ध हो गये थे और उन्होंने  
 ब्रह्मा की दी हुई महान् घण्टा की बजावा पा जो सुरों के  
 द्वारा दी हुई और गिरि की कन्दराओं की भर देने वाली थी ॥५४॥  
 उस शब्द से वह व्याघ्र भी सवत्सा उस गौ की छोड़ गया था । वहा  
 पर विप्रों ने दुष्ठा गिरि—रुद्र नाम कर दिया था—एसी श्रुति है । हे  
 पार्थ ! जो उसी देवन है व रुद्र ही होने हैं—इसमें सशय नहीं है ॥५५॥  
 इससे अनन्तर श्रेष्ठ देव महेश्वर उनको प्रत्यक्ष हो गये थे । उनसे हाथ  
 में त्रिशूल था—त्रिपुर के हनन करने वाला तथा कामदेव को परम करने  
 वाले वृषभ पर समान्द्र य ॥५६॥

उमामहायो वन्दः सस्वामी भविनायकः ।

सन्निभः समस्तान् मम भी समनोऽयं ॥५७॥

वीरभद्रा च चामुण्डा घंटाकर्णादिभिवृता । .

मातृभिभूतसंघातर्यक्षराक्षसगुह्यकैः ।

देवदानवगन्धर्वमुनिविद्याधरोरगैः ॥५८

प्रणम्य देवदेवाय पत्नीभिः सहितैरुमा ।

गोहृपिणी सवत्सा च पूजिता ब्रह्मचारिभिः ॥५९

कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां नन्दिनीव्रतम् ।

ततः प्रभृति राजेन्द्र अवतीर्णं महीतले ॥६०

उत्तानपादेन तथा व्रतं चीर्णमिदं शृणु ।

उत्तानपादनामासीत्क्षत्रियः पृथिवीपते ॥६१

तस्य भार्याद्वयं चासीद्रुचिशुघ्नीति विश्रुतम् ।

शुघ्नीजातो ध्रुवः पुत्रो वामपादधरोऽलसः ॥६२

रुच्याः समर्पितः शुघ्न्या ध्रुवोऽयं रक्षयतां सखि ।

अहं करिष्ये शुश्रूपां भर्तुं स्तावत्सदा स्वयम् ॥६३

यह वरद प्रभु उमा के साथ थे—स्वामी के सहित—विनायक से संयुक्त—नन्दी के साथ—समकाल—श्रृंगी सहित और समनोहर थे ॥५७॥ वीरभद्रा चामुण्डा घण्टाकर्ण आदि से समावृत थी—मातृगण, भूत का संघात—यक्ष राक्षस और गुह्यकों के सहित थी एवं देव, दानव, गन्धर्व, मुनि—विद्याधर और उरगों के साथ थी अर्थात् इन सब से समावृत थी ॥५८॥ देवों के देव के लिये प्रणाम करके पत्नियों के सहित उमा देवी और ब्रह्मचारियों के द्वारा गो रूप वाली वत्स के सहित पूजी गई थी ॥५९॥ कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में द्वादशी तिथि के दिन यह नन्दिनी का व्रत होता है । हे राजेन्द्र ! तभी से लेकर यह इस महीतल में अवतीर्ण हुआ है ॥६०॥ उत्तान पाद राजा ने इस व्रत को जिस प्रकार से किया था उसका अवण करो । हे पृथिवीपते ! उत्तान पाद नाम वाला एक क्षत्रिय था ॥६१॥ उस राजा की दो भार्याएँ थी । उन दोनों के रुचि ओर शुघ्नी ये दो नाम विश्रुत थे । शुघ्नी से समुत्पन्न ध्रुव पुत्र वामपाद धर और अलस था ॥६२॥ शुघ्नी ने उसको रुचि को समर्पित कर

दिया था कि हे सखि ! तुम इस पुत्र की रक्षा करना । मैं तब तक सर्वदा स्वयं अपने स्वामी की शुश्रूषा करूंगी ॥६३॥

रुची रसवती नित्य प्रत्यह कुरुते गृहे ।

अकरोद्धर्तृशुश्रूषा शुघ्नी नित्य पतिव्रता ॥६४॥

कदाचित्क्रोधमान्सयात्सापत्न्य दर्शित तया ।

स्वयं रुच्या निहत्यासौ शिशुः खडलशः कृत ॥६५॥

तापिकाया तथा स्थाल्या पक्वसिद्ध सुसंस्कृतः ।

अन्नभोजनवेलाया ददाति नृपभाजने ॥६६॥

त वै भक्षयितुं दुष्टा सामिप्यं भोजनं किल ।

अथ भोजनवेलाया वयं जीवितं माप्तवान् ॥६७॥

तथैव प्रहसन्वालो मातुरुत्सगजोऽभवत् ।

त दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रुची पप्रच्छ विस्मिता ॥६८॥

किमेतद्ग्रही वृत्तात् कस्येयं व्युष्टिरुत्तमा ।

किं त्वयाचरितं किञ्चिद्गतं दत्तं हृतं तथा ॥६९॥

सत्यसत्यं पुनः सत्यं येन जीवति ते सुतः ।

मयायं सप्यं चारास्तु विशल्यं शकली कृत ॥७०॥

रुचि नित्य ही रस वात्री थी और प्रतिदिन घर में ही आनन्द किया करती थी । पतिव्रता शुघ्नी नित्य स्वामी की शुश्रूषा किया करती थी ॥६४॥ किसी समय में क्रोध मारमय से उमने सास्नी होने का भाव दिला था और इसने स्वयं रुचि के शिशु की मारकर टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे ॥६५॥ फिर तापिका में तथा स्थाली में पका कर उसे सिद्ध किया था और मली-भाति सस्वार युक्त किया था । जिस समय में अन्न के भोजन का समय समुपस्थित हुआ था उस समय में नृप के पात्र में उसे दे दिया था ॥६६॥ दुष्टा उसने उस आमिष से युक्त भोजन के गमय में बोला था कि वह जीवन को प्राप्त हो गया था ॥६७॥ उसी प्रकार स हंमता हुआ बालक माता के उत्सगज (गोद में जाना जाना) हो गया था । उसकी दग्वर महान् आश्चर्य हुआ और अत्यन्त विस्मित होते हुए रुचि ने पूछा था ॥६८॥ यह क्या वृत्तान्त है ? इसे बतलाओ ।

यह किसकी उत्तम व्युष्टि है ? क्या तूने कुछ व्रत-हवन तथा दान किया है ? ॥६६॥ सत्य-सत्य और पुन सत्य यही है जिमसे तेरा पुत्र जीवित होता है । मैंने इसको सात बार विशल्य करके टुकड़े २ किये थे ॥७०॥

पक्व स्वयं कृत स्थात्या व्यञ्जनं सह भोजनं ।

परिविष्ममाणं स पुन कथं जीवितमाप्तवान् ॥७१॥

किं ते सिद्धा महाविद्या मृतसजीवनी शुभा ।

रत्न मणिर्महारत्न योगाञ्जनमहौषधम् ॥७२॥

कथयस्व महाभागे सत्यसत्य भगिन्यसि ।

एवमुक्ते रुचिस्तस्यै व्याचष्ट्यौ वत्सगोव्रतम् ॥७३॥

कार्तिके चैव द्वादश्या यथा चानुष्ठितं पुरा ।

व्रतस्यास्य प्रभावेण पुनर्जीवति मे सुत ॥७४॥

वत्सो मे वत्सेवलाया मृतोऽर्थं लभते पुन ।

समागमश्च भवति व्रतं प्रवसितैरपि ॥७५॥

यथार्थमेतद्व्याख्यात ते च गोद्वादशीव्रतम् ।

तवापि रुचि तत्तमैर्भविष्यति शुभं प्रियम् ॥७६॥

एवमुक्तं व्रतचीण रुच्या पुनः सुखं धनम् ।

संप्राप्ता जीविताते च ध्रुवस्थाने निवेशिता ॥७७॥

ब्रह्मणा सृष्टिकारेण रुचिर्भर्त्ता सहासिता ।

दशनक्षत्रसयुक्तो ध्रुवः सोऽपि दृश्यते ।

ध्रुवर्क्षे च यदा दृष्टे लोके पार्ष्णे प्रमूच्यते ॥७८॥

मैंने इसका स्वयं ही पाक किया था और स्थाली में व्यञ्जनो के साथ इसका परिवेषण किया गया है वह फिर कैसे जीवित को प्राप्त हो गया है ॥७१॥ क्या आपको कोई महाविद्या सिद्ध है या मृत सजीवनी है ? रत्न-मणि या कोई महारत्न तथा योगाञ्जन एवं महौषध है ? ॥७२॥ हे महाभागे ! सत्य सत्य कहो आप मरी भगिनी हैं । इस प्रकार से कहने पर रुचि ने उसको वत्स गो व्रत वतनाया था ॥७३॥ कार्तिक मास में द्वादशी तिथि को पहिले मैंने इसका समाचरण किया था । इस व्रत के प्रभाव में मेरा पुत्र पुन जीवित हो गया है ॥७४॥ वत्स बेना

मे मेरा मृत वत्स पुन अर्थ को प्राप्त करता है । व्रतो से जो प्रवसित होते हैं उनका भी समागम हो जाता है ॥७५॥ मैंने तुमको यह बिल्कुल यथार्थ गो द्वादशी व्रत की व्याख्या कर दी है । नेरी भी रुचि हो तो सब प्रिय और शुभ हो जायगा ॥७६॥ इस प्रकार से कहे हुए व्रत को चीर्ण किया गया था और रुचि के पुन-मुख-घन सब प्राप्त हुए थे तथा जीवित के अन्त होने पर ध्रुव स्थान में निवेशित हुए थे ॥७७॥ दक्ष नक्षत्र से सयुक्त ध्रुव आज भी दिखलाई देना ही है और ध्रुव नक्षत्र के देख लने पर लोक पापो से प्रमुक्त हो जाया करता है ॥७८॥

कीदृश तद्विधानं च तन्मे ब्रूहि जनार्दन ।

यत्कृतं शुद्धिबचनाद्बुद्ध्या यदुकुलोद्भव ॥७९॥

संप्राप्ते कार्तिक मासि शुक्लपक्षे कुरुत्तम ।

द्वादश्या कृतसकल्प स्नात्वा पुण्ये जलाशये ।

नरो वा यदि वा नारी एकभक्त प्रकल्पयन् ॥८०॥

ततो मध्याह्नममये दृष्ट्वा धेनुं सवत्सिकाम् ।

मुशीला वत्सला श्वता कपिला रक्तहृषिणीम् ॥८१॥

ग्राह्यणक्षत्रियविशा शूद्राणां म्यौजनेश्वर ।

यथाक्रमेण पूज्यंतां गन्धपुष्पजलाक्षतैः ॥८२॥

कु कुमालतर्कदीपैर्मपानवटकैः शुभैः ।

कुसुमैर्वस्त्रक चापि मन्त्रेणानेन पाठ्य ॥८३॥

“ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूना

स्वसादित्यनाममृतस्यनाभि ।

प्रनुवोच चित्रितुषे जनाय मः

गामनागामर्दितं वधिष्ट” नमो नम स्वायाम् ॥८४॥

मुधिरि ने कहा—हे जनार्दन । वह विधान किस प्रकार का है उमे ही मुझे बतनाइय । हे यदुकुलोद्भव । शुद्धि के वचन मे रुचि ने जिसको किया था ॥७६॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे कुरुत्तम । कार्तिक मास में सम्प्राप्त होने पर शुक्ल पक्ष में द्वादशी तिथि में किसी परम पुण्यमय जनाजय में स्नान करके प्रकल्प करना चाहिए । नर हो

अथवा नारी हो एक वत्स भोजन करे ॥८०॥ इसके अनन्तर मध्याह्न समय में वत्स के सहित धेनु का दशन करे । वह धेनु अति सुशीला—वत्सला—श्वेत वर्ण वाली—कपिला या रक्त रूप वाली होनी चाहिए ॥८१॥ हे स्त्री जनेश्वर ! ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्रों की यथाक्रम से गन्ध पुण्य—जल और अक्षतों के द्वारा इसका पूजन कर ॥८२॥ हे पाण्डव ! पूजन में कुकुम—अलक्तक—दीप—माषाण्नबटक (उदं के बटक) और परम शुभ कुसुमों से वत्सक का भी इस मन्त्र से अर्चन करना चाहिए ॥८३॥ मन्त्र यह है—अर्घात् ओं रुद्रो कीं माता—वसुगण की दुहिता—आदित्यो की स्वसा—अमृत की नाभि—करने की इच्छा वाले सेवक मुझको बोल दे । गौ अनाग अदिति का वधन कर । आपको बारम्बार नमस्कार है तुम्हारे लिये समर्पित है ॥८४॥

इत्थ सपूज्य गा पृष्ट्वा पश्चात्ता च क्षमापयेत् ।

ॐ सवदेवमये देवि लोकाना शुभनदिनि ।

मातर्ममाभिलपित सफल कुरु नदिनि ॥८५॥

एवमभ्यचयेदेका गामेतद्वि गवाह्निकम् ।

पयुक्ष्य वारिणा भक्त्या प्रणम्य सुरभी तत ॥८६॥

तद्दिने तापिकापक्व स्थालीपाक च वर्जयेत् ।

भूमौ स्वयं ब्रह्मचारी शयीत फलमाप्नुयात् ॥८७॥

यावति गात्रे रोमाणि गवा कौरवनदन ।

तावत्कालं स वसति गोलोके नात्र सशय ॥८८॥

मेरो पुयष्टक रम्यमिन्द्राग्नियमरक्षसाम् ।

वरुणा निलयक्षाणा रुद्रस्य च युधिष्ठिर ।

तासामुपरि गोलोकस्तत्र याति स गोव्रती ॥८९॥

ऊर्जे सिते द्विदशतेऽहनि गा सवत्सा

या पूजयति कुसुमवटकैश्च हृद्यै ।

ता सर्वकामसुखभोगविभूतिभाजो

मर्त्ये वसति सुचिरं वट्टजीववत्सा ॥९०॥

इस प्रकार से भत्री भौनि पूजन करके गौ को पूछ कर पीछे उससे क्षमापन वरना चाहिए । ओ सर्व देवो से परिपूर्ण देवि । आप लोकों के परम शुभ नन्दिनी हा । हे नन्दिनि । मेरे अभिलषित मनोरथ को सफल करिये ॥८५॥ इस तरह स एक गौ का अभ्यञ्जन कर इस गवाहिक को भक्ति की भावना में जन के द्वारा पयुंछण करके फिर सुरभी को प्रणाम करना चाहिए ॥८६॥ उस दिन में तापिका पाक और स्थानी पाक का व्रजन कर देवे । भूमि पर ब्रह्मधर्म व्रत के नियम स रहन हुए शयन करे ता फल की प्राप्ति कर सता है ॥८७॥ हे कौरव नन्दन । गौओं के गात्र में जितन भी रोम होन हैं तब तक वह गौत्रोक में निवास किया करना है—इसमें सनिक भी सशय नहीं है ॥८८॥ मेह के ऊपर इन्द्र—अग्नि—यम—राक्षसा का अष्टक पुर हैं । इ युधिष्ठिर । वरुण—यक्ष और रदो के नियम हैं—इन सब क भी ऊगर गोलोक है वही पर वह गौ व्रत करन वाला पुरुष जाया करता है ॥८९॥ ऊज में सित पक्ष में द्वादशी के दिन में जो नारियँ सबस्मा गौ का कृत्तुम और शुभ घटकी स पूजन किया करती हैं वे समस्त कामना—मुख भोग और और विभूतियों की प्राप्ति कर मर्यलोक में बहुत स जीव वस्स वाली धिरकान पयन्त निवास किया करती हैं ॥९०॥

### ॥ भीष्मपञ्चक व्रत माहात्म्य ॥

यदेतदतुल पुण्य व्रतानामुत्तम व्रतम् ।  
वर्तव्य कार्तिके मासि प्रयत्नाद्भीष्मपञ्चकम् ॥१॥  
विधान कीदृश तस्य फल च यदुत्तमम् ।  
कथयस्व प्रसादान्मे मुनीना हितमिच्छताम् ॥२॥  
प्रक्षयामि व्रत पुण्य व्रतानामुत्तम व्रतम् ।  
यथाविधि च कत यफल चास्य यथादितम् ॥  
मयापि भृगवे प्रोक्त भृगुश्रोतनसे ददौ ।  
उशनापि हि विप्रेभ्य प्रह्लादाय च धीमत ॥४॥



तेजस्विनां यथा वह्निः पवनः शीघ्रगामिनाम् ।

विप्रो यथा च पूज्यानां दानानां काश्चनं यथा ॥५॥

भूलोकः सर्वलोकानां तीर्थानां जाह्नवी यथा ।

यथाश्वमेधो यज्ञानां मथुरा मुक्तिकाक्षिणाम् ॥६॥

युधिष्ठिर ने कहा—जो यह अनुपम पुण्य पूर्ण समस्त अन्य व्रतों में उत्तम व्रत भीष्म पञ्चक व्रत होता है जोकि कार्तिक मास में प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए ॥१॥ उस व्रत का किम तरह का विधान है ? है यदूत्तम ! उसका फल क्या हुआ करता है ? आप कृपाकर मुझे बतलाइये क्योंकि यह मुनियों का जो इच्छा रखते हैं परम हित प्रद है ॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा—यह वस्तुतः सब व्रतों में एक उत्तम व्रत है और पुण्य व्रत है इस जो मैं बतलाता हूँ । जिस विधि से इस व्रत को करना चाहिए और जो इसका फल कहा गया है ॥३॥ मैंने भी इस व्रत को भृगु ने कहा था और भृगु ने इसे उषना को दिया था । फिर उषना ने भी विप्रों को तथा धीमान् प्रह्लाद को दिया था ॥४॥ तेजस्वियों में जिस तरह अग्नि महा तेज से युक्त होता है—शीघ्र गामियों में वायु है—पूज्यवर्ग में विप्र—दानों में काश्चन—ममस्त लोकों में भूलोक—तीर्थों में गंगा—यज्ञों में अश्वमेध—मुक्ति की आकाङ्क्षा वालों के लिए मथुरा—शास्त्रों में वेद और सब देवों में जिस प्रकार से भगवान् अच्युत ही सर्वोत्तम देव हैं उसी भाँति अन्य समस्त व्रतों में सर्व श्रेष्ठ व्रत यह भीष्म पञ्चक व्रत होता है ॥५-६॥

वेदो मर्यव शास्त्राणां देवानामच्युतो यया ।

तया सर्वव्रतानां तु यरोक्तं भीष्मपञ्चकम् ॥७॥

दुष्करं भीष्ममित्याहुर्न शक्यं तदिहोच्यते ।

यस्तत्करोति राजेन्द्र तेन सर्वं कृतं भवेत् ॥८॥

यनिप्रभृगुमगांश्चोर्जं कृतयुगादिषु ।

नाभागां गावरीणां चोर्जं त्रेतायुगादिषु ॥९॥

मोरभद्रादिनिर्घृष्टैः शूद्रैर्यः पत्नी युगे ।

दिनानि पञ्च पूज्यानि चोर्जमेतन्महाव्रतम् ॥१०॥

ब्राह्मणैर्ब्रह्मचर्येण जपहोमक्रियादिभि ।

क्षत्रियैश्च तथा शक्त्या शौचव्रतपरायणै ॥११॥

पराधि परिहृतव्यो ब्रह्मचर्येण निष्ठया ।

मद्य मांस परित्यज्य मंथुन पापभाषणम् ॥१२॥

शाकाहारपरैश्चैव कृष्णार्चनपरैर्नरे ।

स्त्रीभिर्वा भर्तृवाक्येन कर्तव्यं सुखवर्द्धनम् ॥ १३ ॥

विधवाभिश्च कर्तव्यं पुत्रपौत्रादिवृद्धये ।

सर्वकामसमृद्धयर्थं मोक्षार्थमपि पाण्डव ॥१४॥

यह व्रत दुष्कर व्रत है इसी कारण से इसको भीष्म कहा जाता है । यहाँ पर यही कहा जाता है कि वह किया नहीं जा सकता है । है राजे द्र । जो भी कोई उसे कर लेता है उसने सभी कुछ कर लिया है ऐसा ही मान लेना चाहिए ॥११॥ कृत्तियुग आदि में इस व्रत को वसिष्ठ भृगु और भर्ग आदि ने चीर्ण किया था । फिर खेता आदि युगों में नाभाग—अक और अम्बरीष आदि ने इस व्रत को किया था ॥१२॥ सीरमद्र आदि वैश्यों ने तथा अय शूद्रों ने कलियुग में इस व्रत को किया है । ये पाँच दिन पूज्य होते हैं जिनमें यह महाव्रत चीर्ण होता है ॥१०॥ ब्राह्मणों के द्वारा ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते हुए जप होम और क्रियादि के द्वारा इस व्रत को करना चाहिए । क्षत्रियों को शक्ति पूर्वक शौच व्रत में परायण होते हुए इसको करना चाहिए ॥११॥ दूसरों की मन की व्यथा का हरण करना चाहिए—ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन और पूण निष्ठा से करना चाहिए । मद्य मांस मंथुन-पाप भाषण का परित्याग कर देवे ॥१२॥ केवल शाक का आहार कर और श्रीकृष्ण के अचन में तत्पर रहें । इस प्रकार पुरुषों को यह करना चाहिए । स्त्रियों को अपने स्वामी के वाक्य से इस सुख के वर्द्धन करने वाले व्रत को करना चाहिए ॥१३॥ पुत्र—पौत्रादि की वृद्धि के लिये विधवा स्त्रियों को भी इसके करने का विधान है । ह पाण्डव । समस्त कामनाओं की समृद्धि के लिए और मोक्ष का प्राप्ति के लिये भी इस महाव्रत को करे ॥१४॥

नित्य स्नानेन दानेन कार्तिकी यावदेव तु ।  
 प्रातः स्नात्वा विधानेन मध्याह्ने च तथा व्रती ॥१५॥  
 नद्य निझरगतं वा समालभ्य च गोमयम् ।  
 यवव्रीहितिलैः सम्यक्तर्पयेच्च प्रयत्नतः ॥१६॥  
 देवानृषीन्पितृन् चैव ततोऽन्यान्कामचारिणः ।  
 स्नानं मौनं नरः कृत्वा घृतवासा दृढव्रतः ॥१७॥  
 ततोऽनुपूजयेद्देवं सधपापहरं हरिम् ।  
 स्नापयञ्चाच्युतं भक्त्या मधुक्षीरघृतेन च ॥१८॥  
 तस्यैव पञ्चगव्येन गन्धचन्दनवारिणा ।  
 चन्दनेन सुगन्धेन कुकुमेनाथ केशवम् ॥१९॥  
 कर्पूरं रोशीरमिश्रणं लेपयेद्गण्डध्वजम् ।  
 अचयेद्रुचिरं पुष्पैर्गन्धधूपसमन्वितं ॥२०॥  
 गुग्गुलु धृतसंयुक्तं दहेत्कृष्णाय भक्तितः ।  
 दीपकं च दिवा रात्रौ दद्यात्पञ्चदिनं गतिं तु ॥२१॥

१ जब तक कार्तिकी पूर्णिमा हो तब तक नित्य ही स्नान और दान  
 करे । विधान पूर्वक प्रातः काल में स्नान करे तथा व्रत ग्रहण करने वाले  
 पुरुष को मध्याह्न में भी स्नान करना चाहिए ॥१५॥ नदियाँ हो या  
 कोई निझरगत हो गोमय वा समालभन करे तथा यव व्रीहि और तिलो  
 से प्रयत्न पूर्वक भली भाँति तपण करना चाहिये ॥१६॥ देवी का-  
 श्रियो वा और पितृगण का तपण करे । स्नान करके मौन व्रत  
 धारण करे—धुले हुए शुद्ध वस्त्रों को धारण करे और दृढ व्रत वाला  
 रहे ॥१७॥ इसके उपरान्त फिर सम्पूर्ण पापों के हरण करने वाले  
 देव भगवान् हरि का पूजन करना चाहिये । भक्ति की भावना से मधु-  
 क्षीर और घृत से अच्युत का स्नपन कराना चाहिए ॥१८॥ वहीं पर  
 पञ्चगव्य स-गन्ध एवं चन्दन संयुक्त जल से चन्दन सुगन्ध और गुग्गु-  
 लु स-गन्ध प्रभु का यवनाचन करे ॥१९॥ कर्पूर और रोशीर का मिश्रित  
 चन्दन से गण्डध्वज प्रभु के अंगों में तपन करना चाहिए । गन्ध धूप स-  
 गन्धित पुष्पादि द्वारा जो कि अति रुचिर हो अचन करे ॥२०॥ घृत

से समुक्त गूगल वा भक्तिभाव पूर्वक भगवान् वृष्ण के लिए दान करना चाहिए । दिन में और रात्रि में पाँच दिन पर्यन्त दीपको का दान करे ॥२१॥

नैवेद्य देवदेवस्य परमात्र निवेदयेत् ।

ॐ नमो वासुदेवायेति जपेदष्टोत्तर शतम् ॥२२॥

जुहुयाच्च घृताक्ताश्रतिलव्रीहीस्ततो व्रती ।

पङ्क्षरेण भवेण स्वाहाकारान्वितेन च ॥२३॥

उपास्य पश्चिमा सध्या प्रणम्य गरुडध्वजम् ।

जपित्वा पूर्ववन्मल क्षितिशायी भवेन्नर ॥२४॥

सर्वमेतद्विधानं च कार्यं पञ्चदिनेषु हि ।

सर्वशोत्कवले चास्मिन्पदपूर्वं शृणुष्व मे ॥२५॥

प्रथमेऽह्नि हरे पादौ पूजयेत्कमलैर्नर ।

द्वितीये बिल्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत् ॥२६॥

पूजयेच्च तृतीयेऽह्नि नाभिं भृगरसेन च ।

मध्ये बिल्वजयाभिश्च ततः सद्यो प्रपूजयेत् ॥२७॥

ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालत्या कुसुमैर्नर ।

कार्तिकया देवदेवस्य भक्त्या तद्गतमानस ॥२८॥

परमात्र नैवेद्य देवो के देव प्रभु की सेवा में समर्पित करे । फिर "ॐ नमो वासुदेवाय" — इस मन्त्र का अष्टोत्तर शत जाप करे ॥२२॥ व्रतधारी पुरुष को फिर घृत में अक्त तिल और व्रीहियों का 'स्वाहा' अन्त में लगा कर 'ॐ नमो वासुदेवाय' — इस छैं अक्षरों वाले मन्त्र से हवन करना चाहिए ॥२३॥ पश्चिम स-ध्या की उपासना करके गरुड-ध्वज प्रभु को प्रणाम करे और पूर्व की भाँति मन्त्र का जाप करके व्रती मनुष्य की भूमि पर ही शयन करने वाला होना चाहिए ॥२४॥ यह सम्पूर्ण विधान पाँच दिनों में ही करना चाहिए । इसमें कमबल पर बैठे । इसमें जो अपूर्व है उसका अब श्रवण करो ॥२५॥ मनुष्यों को प्रथम दिन में कमलों के द्वारा हरि के चरणों का पूजन करना चाहिए । दूसरे दिन में बिल्व पत्तों के द्वारा भगवान् के जानु भागों का अर्चन

करना चाहिए ॥२६॥ तीसरे दिन म भगवान् के नाभि देश म भृग रस से पूजन करना चाहिए । मध्य मे विल्व जया से करे और फिर सधि मे पूजन करना चाहिए ॥२७॥ इसके अनन्तर मालती लता के नवीन कुसुमो से भगवान् के शीर्ष का पूजन करे । कार्तिकी मे देव देव का पूजन भक्तिभाव मे तद्गत मन वाला होकर ही करे ॥२८॥

(अर्चयित्वा हृषीकेशमेकदश्या समाहित ।

सप्राश्य गोमय सम्यङ् मन्त्रवत्समुपावसेत् ॥२९

गोमूत्र मन्त्रवत्कृत्वा द्वादश्या प्राशयेद्ब्रती ।

क्षीर तत्र त्रयोदश्या चतुर्दश्या तथा दधि ॥३०

सप्राश्य कायशुद्धिचर्यं लघयेत् चतुर्दिनम् ।

पचमे तु दिने स्नात्वा विधिवत्पूज्य केशवम् ॥३१

भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।

तथोपदेशारमापि पूजयेद्वस्त्रभूषणै ॥३२

ततो नक्त समश्रीयात्पञ्चगव्यपुर सरम् ।

एव समापयेत्सम्यग्यथोक्त व्रतमुत्तमम् ॥३३

[सवपापहर पुण्य प्रत्यात भीष्मपञ्चकम् ।

भद्रापो यस्त्यजेन्मद्य जन्मनो मरणातिकम् ॥३४

तद्भीष्म पञ्चकत्यक्त्वा प्राप्नोत्यभ्यधिकफलम् ।

ब्रह्मचर्यं नरश्रीर्त्वा सुघोर नैष्ठिक व्रतम् ॥३५

एकादशी तिथि म पूणतया समाहित होकर हृषीकेश भगवान् का

अर्चन करे और गोमय का सम्प्राशन करके मन्त्रवत् करके अच्छी तरह

से उपवास करे ॥२९॥ फिर ब्रह्मचारी पुरुष को द्वादशी तिथि मे गोमूत्र

को मन्त्र वाला करके उसका ही प्राशन करना चाहिए । इसी भाँति

त्रयोदशी मे क्षीर को अभिर्मात्रित करे और चतुर्दशी मे दधि का अभि-

मन्त्रण करके अशन करना चाहिए ॥३०॥ अपने शरीर की शुद्धि के

लिय उक्त रूप से सम्प्राशन करके चार दिन पयत्त लघन करे । पाचवें

दिन मे स्नान करके विधि पूर्वक केशव, भगवान्, ४९, पूजन करना चाहिए ।

॥३१॥ ब्राह्मणो को भक्तिभाव से भोजन करावे और उनको दक्षिणा

देनी चाहिए । तथा जो इसका उपदेश देने वाला हो उसका भी वस्त्र-  
भूषणों से पूजन करे ॥३२॥ इसके अनन्तर रात्रि में पचगव्य पूर्व-  
अशन करना चाहिए । इस प्रकार से यथोक्त इस अत्युत्तम व्रत की भनी-  
भांति समाप्त करना चाहिए ॥३३॥ यह भीष्म पचक सम्पूर्ण पापों के  
हरण करने वाला और परम पुण्यमय विख्यात है । जो मद्यपान करने  
वाला हो उसे जन्म से मरण तक मद्य का त्याग कर देना चाहिए  
॥३४॥ उसका त्याग करके इस भीष्मपचक से अधिक फल की प्राप्ति  
होती है । मनुष्य ब्रह्मचर्य का चीर्ण करके इस सुषोर नैष्ठिक व्रत को  
करना चाहिए ॥३५॥

यत्प्राप्नोति महत्पुण्य तत्कृत्वा भीष्मपचकम् ।

गात्राभ्यग शिरोऽभ्यग मधु मास च मंथुनम् ॥३६॥

ब्रह्मलोकमवाप्नोति त्यक्त्वंक भीष्मपञ्चकम् ।

सर्वत्सरेण यत्पुण्य कार्तिकेन च यद्भवेत् ॥३७॥

यत्फल कार्तिकेनोक्तं भवेत्तद्भीष्मपञ्चके ।

व्रतमेतत्सुरै सिद्धं किन्नरैर्नागिगुह्यकै ॥३८॥

फल समीहित प्राप्य कृत्वाभ्यर्च्य जनार्दनम् ।

पापस्य प्रतिमा कार्या रौद्रवक्रातिभीषणा ॥३९॥

खड्गहस्तातिविकृता सर्वलोकमयी नृप ।

तिलप्रस्थोपरि स्थाप्या कृष्णवस्त्राभिवेष्टिता ॥४०॥

करवीरकुसुमापीडा चलत्काञ्चनकु डला ।

ब्राह्मणाय प्रदातव्या कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥४१॥

अन्येषामपि दातव्य यत्कृत्वा वसु धाञ्छितम् ।

कृतकृत्य स्थिरो भूत्वा विरक्त सयतो भवेत् ॥४२॥

गानों का अभ्यग—शिर का अभ्यग—मधु—मास और मंथुन का  
त्याग करके जो महान् पुण्य प्राप्त होता है वही इस भीष्म पचक व्रत के  
करने से होता है ॥३६॥ एक भीष्म पचक का त्याग करके ब्रह्म लोक  
को प्राप्त होता है । सम्बत्सर में जो पुण्य होता है और कार्तिक मास में  
जो पुण्य होता है जो फल कार्तिक में बताया गया है वह भीष्म पचक

मे होता है । सुरो के द्वारा—सिद्धो के द्वारा—किन्नर और नाग एवं गुह्यको के द्वारा किया हुआ यह व्रत है । समीहित फल को प्राप्त करके जनार्दन का अभ्यर्चन करे । एक पाप की प्रतिमा बनवानी चाहिए जो अत्यन्त रोद्र—वक्र तथा अत्यन्त भीषण हो ॥३७-३९॥ ह नृप ! उस प्रतिमा के हाथ में खग होवे और अत्यन्त विकृत तथा सर्व लोकमयी होनी चाहिए । उसको एक प्रस्य तिलो के ऊपर स्थापन करे और शृण्ण वस्त्र से वेष्टित होनी चाहिए ॥४०॥ उमका आपीड करवीर के पुष्पो का होये । चलायमान बाष्पचन के कुण्डल धारण करने वाली होवे । उस प्रतिमा को किसी ब्राह्मण को दान कर देनी चाहिए ! और दान के समय में भगवान् शृण्ण मुग पर प्रसन्न होवें—यह कहना चाहिए ॥४१॥ अन्य लोगो को भी दान देना चाहिए जिनको जो भी धन या पदार्थ वाञ्छित हो फिर श्रुत-श्रुत्य होकर स्थिर होवे तथा विरक्त एवं समन होना चाहिए ॥४२॥

शकु कर्ण और महान् ध्वनि से युक्त—बटाधारी—दो जिह्वाओं वाला—  
तामस्य—मृगराज मिह के चर्म से अर्थात् बाघम्बर से शरीर का छादन  
करने वाला ॥४४॥ ऐसे महादेव का चिन्तन करना चाहिए जिनका कि  
कोई भी रूप नहीं होता है । यह पितामह भीष्म ने मुल्ल से कहा था  
जिस समय में वे शरी की शय्या पर सस्थित थे ॥४५॥ वह ही यह दुष्कर  
भीष्म पचक व्रत मैंने तुमको बतला दिया है । हे राजाओं मे शार्ङ्ग के  
तुल्य । यह व्रत भीष्म पचक प्रवर व्रत होता है ॥४६॥ जो कोई पुरुष  
उसमे भक्ति की भावना से भगवान् अच्युत को परम तुष्ट कर लेता है  
उसको वे निश्चय मुक्ति का प्रदान कर दिया करते हैं । चाहे कोई ब्रह्म-  
चारी हो—गृहस्थ हो—वानप्रस्थाश्रमी हो या यति हो ॥४७॥ भीष्म  
पचक को भरी-भरि कर करके फिर वह वैष्णव स्थान की प्राप्ति किया  
करता है । ब्रह्म हत्यारा—मद्यपान करने वाला—चोरी करने वाला—  
गुह्यलप गामी और सदाकृती पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥४८॥

## ॥ अनन्तचतुर्दशी व्रत माहात्म्य ॥

अनतव्रतमस्त्यन्यत्सर्वपापहर शिवम् ।  
सर्वकामप्रदं नृणां स्त्रीणां चैव युधिष्ठिर ॥१॥  
शुक्लपक्षे चतुर्दश्या मासि भाद्रपदे शुभे ।  
तस्यानुष्ठानमात्रेण सर्वपापं प्रमुच्यते ॥२॥  
कृष्ण कोऽयं त्वयाट्यातो ह्यनन इति विश्रुतः ।  
किं शोपनाग आहोस्विदनतस्तक्षक स्मृतः ॥३॥  
परमात्माय वानत उताहो ब्रह्मा उच्यते ।  
क एपोऽनतसज्जो वै तथ्य ब्रूहि केशव ॥४॥  
अनत इत्यहं पार्थ मम नाम निबोधय ।  
आदित्यादिषु वारेषु यः काल उपपद्यते ॥५॥  
कलाकाष्ठां मुहूर्तादिदिनरात्रिशरीरवान् ।  
पक्षमासतुर्वर्षादियुगकल्पव्यस्थया ॥६॥



हे धर्म धारियो म श्रेष्ठ । जो यह कान मैंने आपको बतलाया है वह मैं काल यहाँ पर भूमि के भार के उतारने के लिये ही अवतीर्ण हुआ हूँ ॥७॥ युधिष्ठिर बोले—हे हरे । इस प्रकार से इस सम्पूर्ण अनन्त के व्रत की विस्तार के साथ मुझे बतलाइये । श्रीकृष्ण ने कहा—पहिले कृत-युग म सुमन्त नाम वाला एक द्विज था ॥८॥ वह वसिष्ठ गोत्र मे समुत्पन्न हुआ था और यह बहुत ही सुन्दर रूप वाला था । इमने भृगु की दीक्षा नाम वाली पुत्री के साथ अपना विवाह किया था जो कि वेदोक्त विधि से ही किया गया था ॥९॥ समय उपस्थित होने पर उसके एक अनन्त सन्तानों से सम्पन्न बन्या पैदा हुई थी । उसका नाम तो शीला था किन्तु यह थी भी बहुत सुशील और वह पिता के घर म वृद्धि को प्राप्त होने लगी थी ॥१०॥ उसकी माता हरदाह काल से पीडित होकर एक नदी के तीर म विनाश को प्राप्त हो गई थी और मृत होकर वह स्वर्ग को चली गयी थी ॥११॥ सुमन्त ने भी फिर एक अर्ध धर्म प्रमाद की पुत्री के साथ विवाह विधान से ही कर लिया था । उसका नाम भी वक्कशा थी और वैसे भी पूर्ण वक्कशा ही थी ॥१२॥

दु शीला वक्कशा चडी नित्य बलहकारिणीम् ।

सापि शीला पितुर्गृह गृहाचनरता विभो ॥१३

बुडधस्तमत्तुलाधारदेहलीतोरणादिपु ।

चातुर्वर्णकर वैश्यनीलपीतसितासितं ॥१४

स्वस्तिर्बं शगपशंभ्र अचंयन्ती पुन पुन ।

पित्रा दृष्टा सुमन्तन स्त्रीचिह्ना योवने स्थिता ॥१५

वस्मं देयामया शीला त्रिचार्यवगुदु चिन ।

पिता ददौ मुनी द्राय बौद्धिन्याय शुभे दिन ॥१६

स्मृत्युत्तशास्त्रविधिना त्रिवाहमवरोत्तदा ।

नियत्यो द्वाहिव सर्वं प्रोक्तया वक्कशा द्विज ॥१७

आदि में वैश्य नीलासित और असित वर्णों से चातुर्वर्ण्य कर तथा स्वस्तिक और शङ्ख पद्मों से बारम्बार अर्चना किया करती थी । पिता सुमन्त ने उसको एक बार देखा था कि उसके पूर्ण यौवन में स्थित स्त्री के समस्त चिह्न विद्यमान हो गये हैं ॥१४-१५॥ यह शीला कन्या अब मैं किसको दूँ—ऐसा विचार करके चरम दुःखित हो गया था । फिर पिता ने किसी शुभ दिन में मुनीन्द्र कौण्डिन्य के लिये उसका दान कर दिया था ॥१६॥ उस समय में स्मृतियों में बताये हुए शास्त्र की विधि-विधान से उसका विवाह कर दिया था । उद्वाहिक सब कृत्य से निवृत्त होकर फिर द्विज ने उस अपनी पत्नी कर्कशा से कहा था ॥१७॥

किञ्चिदायादिक देय जामातुः पारितोषिकम् ।

तच्छ्रुत्वा कर्कशा क्रुद्धा प्रोद्धृत्य गृहमण्डपम् ॥१८॥

कपाटे सुस्थिरं कृत्वा गम्यतामित्युवाच ह ।

भोज्यावशिष्टचूर्णेन पायेयं च चकार सा ॥१९॥

कौण्डिन्योपि विवाह्येनां पथि गच्छञ्छनैः शनैः ।

शीला सुशीलामादाय नवोढां गोरथेन हि ॥२०॥

मध्याह्ने भोज्यवेलाभां समुत्तीर्य सरित्तटे ।

ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससाम् ॥२१॥

चतुर्दश्यामर्चयन्तं भक्त्या देवं पृथक्पृथक् ।

उपगम्य शनैः शीला पप्रच्छ स्त्रीकदंबकम् ॥२२॥

नायं किमेतन्मे ब्रूत किनाम व्रतमीदृशम् ।

ता ऊचुर्योपितः सर्वा अनन्तो नाम विद्युतः ॥२३॥

साव्रवीदहमप्येवं करिष्ये व्रतमुत्तमम् ।

विधान कीदृशं तत्र किनदानं कस्य पूजनम् ॥२४॥

इस जमाई के लिये कुछ आयादिक पारितोषिक देना चाहिए । यह सुन कर वह कर्कशा अत्यन्त क्रुद्ध हो गई और उसने गृह-मण्डप को प्रोद्धृत करके किवाड़ों को सुस्थिर कर लिया था और कहा था—जाइये । भोज्य से अवशिष्ट जो चूर्ण था उसका उगने पायेय (मार्ग का भोजन) कर दिया था ॥१८-१९॥ कौण्डिन्य भी हमके साथ विवाह करके मार्ग

आदि से अनन्तानन्त भगवान् को अभ्यर्चन करना चाहिए ॥२५-२६॥  
 धूप-पुष्प-नैवेद्य और उनके आगे पीतालक्त चतुशत से दृढ कुंकुमाक्त  
 सदोरक सूत्र करे ॥२७॥ चौदह ग्रन्थियां से युक्त वाम भाग में स्त्री और  
 दक्षिण भाग में पुरुष हे राजेन्द्र ! इस मन्त्र से वष जब तक समाप्त  
 होता है रक्खे ॥२८॥ हे वासुदेव ! इस अनन्त ससार रूपी महा सागर  
 में मग्न होते हुए हमारा उद्धार करो । अनन्त रूप में विनियोजित  
 आत्मा वाले अनन्त रूप आपके लिये बारम्बार नमस्कार है ॥२९॥  
 यही मन्त्र है इससे हरेक को बद्ध करके स्वस्थ मन वाली को अनन्त  
 विश्व रूपी नारायण देव का ध्यान कर भोजन करना चाहिए ॥३०॥  
 भोजन करके अन्त में घर में चल जावें—यही व्रत है जो तुमको बतला  
 दिया गया है । उसने भी इसका श्रवण करके शीला ने सुदोरक को  
 बद्ध करके इस व्रत को सविधि किया था ॥३१॥

भर्ता तस्या समागत्य ता ददश महाधनम् ।

पाथेयशेष विप्राय दत्त्वा भुक्त्वा तथैव च ॥३२

पुनजगाम सा हृष्टा गोरथेन स्वमाश्रमम् ।

भर्ता सहैव शवकं प्रत्यक्ष तत्क्षणादभूत् ।

तेनान्तप्रभावेण शुभगोधनसकुल ॥३३

गृहाश्रम श्रिया युक्तो धनघान्यसमायुत ।

आकुलो व्याकुलो रम्य सवन्नातिथिपूजन ॥३४

सापि माणिवपवाञ्चीभिर्मुक्ताहारविभूषिता ।

दिव्यागवस्तसृष्टा सावित्रीप्रतिमाभवत् ॥३५

यदाचिदुपविष्टेन दृष्ट बद्ध सुदोरकम् ।

शीलाया हस्तमूले तु साधेय त्रोटित रूपा ॥३६

तेन यमविपाकरण तस्य सा श्री शय गता ।

गाधन तस्मिन्नील गृह चाग्निविदाहितम् ॥३७

यद्यदवागत गृहे तत्रनश्य नश्यति ।

स्वजनं वल्लो मिश्रेण न न जनन्तथा ॥३८

उसके स्वामी ने आकर उस महान् धन वाली को देखा था । जो पाथेय का शेष भाग था उसको विप्र के लिए देकर तथा स्वयं भोजन किया था ॥३२॥ फिर वह उसी गोरय के द्वारा परम प्रसन्न होती हुई अपने आश्रम को चली गयी थी । वह भर्ता के साथ प्रत्यक्ष उसी क्षण शिवको के साथ हो हो गयी थी । उस अनन्त भगवान् के प्रभाव से वह शुभ गोधन से सकुन हो गया था ॥३३॥ वह उसका गृहाश्रम श्री से युक्त तथा धन-धाय से समायुत-आकुल-व्याकुल-सर्वत्र अतिथियों के पूजन वाला अतोव रम्य बन गया था ॥३४॥ वह शीला भी माणव्य की काञ्चियों से युक्त-मोतियों के द्वार से विमूषित और परम दिव्य अगवस्त्रों से सच्छन्न सावित्री की प्रतिमा कतुय हो गई थी ॥३५॥ किसी समय में उपविष्ट ने वह सुदोरस बघा हुआ देखा था जो शीला के हस्त के मूल में बद्ध था । शप से आक्षप के सहित उसको तोड़ दिया था ॥३६॥ उस कम विषाक से उन्की वह श्री शय को प्राप्त होगई थी । गोधन को तस्करो न ले लिया था । घर अग्नि से दग्ध हो गया था । ३७॥ जो जो भी घर में आया था वह वही पर विनष्ट होगया था । स्वजनो के साथ कलह होने लगा था और मित्रजनो के साथ उस प्रकार का प्रेमपूर्ण बात चेत का व्यवहार नहीं रहा था ॥३८॥

अनन्ताक्षपदोपेण दारिद्र्य पतित गहे ।

न कश्चिद्ददते लोकस्तेन साढं युधिष्ठिर ॥३९॥

ततो जगाम कौडि यो निर्वेदाद्वनमह्वरम् ।

मनसा ध्यायतेनत कदा द्रक्ष्यामि केशवम् ॥४०॥

व्रत निरक्षण गह्व ब्रह्मचर्यं जप हरिम् ।

विह्वल प्रययौ पाथ अरण्य जनवर्जितम् ॥४१॥

तत्रापश्य महावृक्ष फलित पुष्पित तथा ।

तमपृच्छ च वयानत कच्चिदृष्टो महाद्रुम ।

तदब्रूहि सोप्युवाचेद नानत वेक्यह द्विज ॥४२॥

एव निराक्षितस्तन गा सवत्सकम् ।

तृणमध्ये प्रधावन्तीमितश्च तश्च पाडव ॥४३॥

सोमवीद्वेनुके ब्रूहि यद्यनततस्त्वयेक्षित ।

गौस्वाचाथ कौण्डिन्य नानत वेदम्यह विभो ॥४४

ततो जगामाथ वने गोवृष शाद्वले स्थितम् ।

दृष्ट्वा पप्रच्छ गोस्वामिन्नततो लक्षितस्त्वया ॥४५

भगवान् अनन्त वे ऊपर आक्षेप करने के प्रभाव से घर में दरिद्रता आगयी थी । हे युधिष्ठिर ! ऐसी उस की दशा होगई थी कि उससे कोई भी बात नहीं करता था ॥३६॥ इसके अनन्तर वह कौण्डिन्य निर्वेद होने के कारण किसी गह्वर वन में चला गया था । मन से अनन्त प्रभु का ध्यान करते हुए कि केशव का मैं कब दर्शन करूँगा ॥४०॥ बिना अशन वाला व्रत ग्रहण करके ब्रह्मचर्य धारण किया था और हरि का जाप करता था । हे पार्य ! परम विह्वल होकर जननीन अरण्य में वह चला गया था ॥४१॥ वहाँ पर उसने एक महान् वृक्ष को देखा था जो फलित और पुष्पित था । उससे उसने पूछा था—हे महाद्रुम ! क्या आपने भगवान् अनन्त को देखा है ? यही मुझे बतला दो । वह भी बोला—हे द्विज ! मैं अनन्त को नहीं जानता हूँ ॥४२॥ इस प्रकार से वरस के सहित एक गौ को उसने देखा । हे पाण्डव ! जो कि तृण के मध्य में इधर से उधर दौड लगा रही थी ॥४३॥ उसने कहा—हे धेनुके ! यह बतलाओ कि क्या आपने अनन्त प्रभु को देखा है ? उस गौ ने कौण्डिन्य से कहा—हे विभो ! मैं अनन्त को नहीं जानती हूँ ॥४४॥ इसके अनन्तर वह और आगे वन में गया तो उसने शाद्वल पर स्थित गो वृष का दर्शन किया था और उसे देख कर पूछा था—हे गोस्वामिन् क्या आपने अनन्त को देखा है ? ॥४५॥

गोवृषस्तमुवाचाथ नानन्तो वीक्षितो मया ।

ततो व्रजन्ददर्शाग्रे रम्य पुष्करिणीद्वयम् ॥४६

अन्योन्यजलवत्लोलवीचिभि परिशोभितम् ।

छत्र कुमुदवह्नारै कुमुदोत्पलमण्डितम् ॥४७

सेवित भ्रमरहंसैश्चक्रै वारडवैवर्कै ।

ते अपृच्छद्विजोन्नतो भवद्भ्या नोपनक्षित ॥४८

ऊचतु पुष्करिण्यो त नानन विद्वहे द्विज ।  
ततो ब्रह्मन्ददर्शाग्रे गदंभ कुञ्जर तथा ॥४६॥  
तावप्युक्तौ सुमतेन तस्यापि विनिवेदितम् ।  
नावाभ्या वीक्षितोनतस्त्वेच्छ त्वा निपसाद ह ॥४७॥  
तस्मिन्क्षणे मुनिवरे कौण्डिन्ये ब्राह्मणोत्तमे ।  
कृपयानतदेवोपि प्रत्यक्ष समजायत ॥४८॥

गावृष ने उससे कहा—मैंने अनन्न को नहीं देखा है । इसके आगे जात हुए उसने परम रम्य दो पुष्करिणियों को देखा था ॥४६॥ वे दोनों परस्पर म जल की तरंगों से जो अत्यन्त चंचल थी परम शोभा से युक्त हो रही थी । कुमुद और कङ्गार के पुष्पों से एकदम छत्र थी तथा कुमुदोत्पलों से मण्डित थी ॥४७॥ भ्रमर और हंसों के द्वारा चक्रवाक कारण्डव और बकों के द्वारा मेवित थी । द्विज ने उनसे पूछा था—क्या आपने अनन्न प्रभु को नहीं देखा है ? ॥४८॥ दोनों पुष्करिणियों ने कहा—हे द्विज ! हम उस अनन्न को नहीं जानती हैं । इसके उपरान्त फिर ब्राह्मण ने आगे एक गदंभ और कुञ्जर को देखा था ॥४९॥ सुमत ने उन दोनों से भी कहा था और उनसे भी उसको यह निवेदन दिया था कि हम दोनों ने अनन्न को नहीं देखा है । यह श्रवण करके वह बैठ गया था ॥५०॥ उसी क्षण में ब्राह्मणों में उत्तम मुनिवर कौण्डिन्य पर कृपा करके अनन्त देव स्वयं ही प्रत्यक्ष हो गये थे ॥५१॥

विभूतिभेदश्चानन्तमनन्त परमेश्वरम् ।

त दृष्ट्वा तु द्विजोनन्तमुवाच परया मुदा ॥५२॥

अद्य मे सफल जन्म जीवित च सुजीवितम् ।

चूतवृक्षो वृष कस्तु का गौ पुष्करिणीद्वयम् ।

गदंभ कुञ्जर चैव देव मे ब्रूहि तत्त्वत ॥५३॥

चूतवृक्षा हि विप्रोसौ विद्वान्यो वेदगवित ।

विद्यादानं नोपकुर्वन्निष्ठाप्यभ्यस्तृता गत ॥५४॥

विभूतियों के भेद से अनन्त एवं उस परम ऐश्वर्य वाले परमेश्वर का दर्शन कर करम अलसता से वह द्विज अनन्त से बोला ॥५२॥

हे प्रभो ! आज मेरा यह जीवन सफल हो गया है और मेरा यह जीवित भी सुन्दर जीवित बन गया है । आम का वृक्ष-वृष-कौन है ? गौ तथा ये दोनों पुष्करिणियाँ कौन हैं ? गर्दभ और कुञ्जर कौन हैं ? हे देव ! यह मुझे आप तत्त्व पूर्वक बतला दीजिए ॥५३॥ अनन्त भगवान् ने कहा—यह आम्र का वृक्ष वह विप्र है जो परम विद्वान् था और वेदों का इसको बहुत गर्व था । यह विद्या का दान करते हुए ही रहा था । अतएव वृक्ष योनि को प्राप्त हुआ है ॥५४॥

सा गौर्वसुन्धरा दृष्टा निष्फला या त्वयेक्षिता ।

स हर्षो वृषभो दृष्टो लाभार्थं यस्त्वया वृतः ॥५५॥

धर्माधर्मव्यवस्थानं तच्च पुष्करिणीद्वयम् ।

खरः क्रोधस्त्वया दृष्टः कुञ्जरो धर्मदूषकः ।

ब्राह्मणोसावनतोहं गुहाससारगह्वरे ॥५६॥

इत्युक्तं ते मया सर्वं विप्र गच्छ पुनर्गृहम् ॥५७॥

चरानंतव्रतं तत्त्वं नव वर्षाणि पंच च ।

ततस्तुष्टः प्रदास्यामि नक्षत्रस्थानमुत्तमम् ॥५८॥

भुक्त्वा च विपुलान्भोगान्सर्वान्कामान्यथेप्सितान् ।

पुत्रपौत्रैः परिवृतस्ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥५९॥

इति दत्त्वा वरं देवस्तत्त्वैवांतर्हितोऽभवत् ।

कौडिन्योप्यागतो गेहं चचारानंतसद्व्रतम् ॥६०॥

वह गौ वसुन्धरा देखी थी जो निष्फला आपके द्वारा देखी गयी थी । वह हर्ष वृषभ देखा गया था जो नाम के लिए आपने श्रम किया था ॥५५॥ धर्म और अधर्म की व्यवस्था ही वे दोनों पुष्करिणियाँ थीं । खर क्रोध था और कुञ्जर धर्म का दूषक था जो तुमने देखे थे । यह ब्राह्मण मैं ही अनन्त हूँ जो गुहा ससार गह्वर में है ॥५६॥ हे विप्र ! मैंने यह सब तुमको बतला दिया है । अब पुनः तुम अपने घर को जाओ ॥५७॥ अनन्त के व्रत को चौदह वर्ष तक निरन्तर आप करो । इसके पदचात् मैं प्रसन्न होकर उत्तम नक्षत्रों का स्थान तुम को देदूँगा ॥५८॥ वहाँ पर विपुल भोगों का सुशोभभोग करके समस्त यथेप्सित कामनाओं

की प्राप्ति करता है। पुत्र पोता से परिवृत्त होकर फिर अन्त में मोक्ष की प्राप्ति करोगे ॥५६॥ इस प्रकार से यह वरदान प्रदान करके वही पर अन्तर्धान होगये थे। कौण्डिन्य भी गृह में आगया था और उसने अनन्त के व्रत का समाचरण किया था ॥६०॥

## ॥ ग्रन्थ परिचय और समाप्ति ॥

व्यासानुगमन पूर्वं ब्रह्माण्डस्य समुद्भव ।  
माया च वैष्णवी यस्मात्ससारे दोषकीर्तनम् ॥१॥  
पापभेदस्ततस्तस्माच्छुभाशुभविनिर्णयः ।  
शकटव्रतमाहात्म्यं तिलकव्रतकीर्तनम् ॥२॥  
अशोककरवीराख्यं व्रतं तस्माच्च कोकिलम् ।  
बृहत्तपोव्रतं नाम रुद्रोपोपरणमेव च ॥३॥  
द्वितीयाव्रतमाहात्म्यमशूयं शयनं तथा ।  
कामाख्या तु तृतीया च मेषपालीव्रतं तथा ॥४॥  
पञ्चाग्निसाधना रम्या तृतीयाव्रतमुत्तमम् ।  
त्रिरात्र गोप्यदं नाम हरकाली व्रतं तथा ॥५॥  
ललिताख्या तृतीया च योगाख्या च पथापरा ।  
उमामहेश्वरं नाम तथा रमातृतीयकम् ॥६॥  
सौभाग्याख्या तृतीया च आर्द्रनिदनसूरी तथा ।  
चैत्रे भाद्रपदे माघे तृतीयाव्रतमुच्यते ॥७॥

इस अध्याय में ग्रन्थ की समाप्ति का वर्णन किया जाता है। जो वृत्तान्त इसमें आये हैं उनका विवरण दिया जाता है। सबसे प्रथम व्यास का अनुगमन है। ब्रह्माण्ड का समुद्भव का वर्णन है। फिर यह बताया गया है कि इसी ब्रह्माण्ड से वैष्णवी माया होनी है। इससे पदवात् ससार में जो दोष हैं उनका कीर्तन किया गया है ॥१॥ इसके अनन्तर पापों में बहुत सारे भेद तथा प्रभेदों का वर्णन किया जाता है। इससे पदवात् शुभ और अशुभ का विशेष निर्णय बताया गया है। शकट व्रत



हे प्रभो ! आज मेरा यह जीवन सफल हो गया है और मेरा यह जीवित भी सुन्दर जीवित बन गया है । आम का वृक्ष-वृष-कौन हैं ? गो तथा ये दोनों पुष्करिणियाँ कौन हैं ? गर्दभ और कुञ्जर कौन हैं ? हे देव ! यह मुझे आप सत्त्व पूर्वक बतला दीजिए ॥५३॥ अनन्त भगवान् ने कहा—यह आम्र का वृक्ष वह विप्र है जो परम विद्वान् था और वेदों का इसको बहुत गर्व था । यह विद्या का दान करते हुए ही रहा था । अतएव वृक्ष योनि को प्राप्त हुआ है ॥५४॥

सा गौर्वसुन्धरा दृष्टा निष्फला या त्वयेक्षिता ।

स हर्षो वृषभो दृष्टो लाभार्थं यस्त्वया वृतः ॥५५॥

धर्माधर्मव्यवस्थानं तच्च पुष्करिणीद्वयम् ।

खरः क्रोधस्त्वया दृष्टः कुंजरो धर्मदूषकः ।

ब्राह्मणोसावनंतोहं गुहासंसारगह्वरे ॥५६॥

इत्युक्तं ते मया सर्वं विप्र गच्छ पुनर्गृहम् ॥५७॥

चरानंतव्रतं तत्त्वं नव वर्षाणि पंच च ।

ततस्तुष्टः प्रदास्यामि नक्षत्रस्थानमुत्तमम् ॥५८॥

भुक्त्वा च विपुलान्भोगान्सर्वान्कामान्यथेप्सितान् ।

पुत्रपौत्रैः परिवृतस्ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥५९॥

इति दत्त्वा वरं देवस्तत्त्वैवांतर्हितोऽभवत् ।

कौडिन्योप्यागतो गेह चचारानंतसद्व्रतम् ॥६०॥

यह गौ वसुन्धरा देखी थी जो निष्फला आपके द्वारा देखी गयी थी । वह हर्ष वृषभ देखा गया था जो नाम के लिए आपने धरण किया था ॥५५॥ धर्म और अधर्म की व्यवस्था ही वे दोनों पुष्करिणियाँ थीं । खर क्रोध था और कुञ्जर धर्म का दूषक था जो तुमने देखे थे । यह ब्राह्मण मैं ही अनन्त हूँ जो गुहा संसार गह्वर में है ॥५६॥ हे विप्र ! मैंने यह सब तुमको बतला दिया है । अब पुनः तुम अपने घर को जाओ ॥५७॥ अनन्त के व्रत को चौदह वर्ष तक निरन्तर आप करो । इसके पश्चात् मैं प्रसन्न होकर उत्तम नक्षत्रों का स्थान तुम को देदूँगा ॥५८॥ यहां पर विपुल भोगों का सुखोपभोग करके समस्त यथेप्सित कामनाओं

की प्राप्ति करता है। पुत्र पोत्रा से परिवृत्त होकर फिर अन्त में मोक्ष की प्राप्ति करोगे ॥५६॥ इस प्रकार से यह वरदान प्रदान करके वही परम अन्तर्धान होगये थे। कौण्डिन्य भी गृह में आगया था और उसने अनन्त के व्रत का समाचरण किया था ॥६०॥

## ॥ ग्रन्थ परिचय और समाप्ति ॥

व्यासानुगमनं पूर्वं ब्रह्माण्डस्य समुद्भव ।  
माया च वैष्णवी यस्मात्ससारे दोषकीर्तनम् ॥१॥  
पापभेदस्ततस्तस्माच्छुभाशुभविनिर्णय ।  
शकटव्रतमाहात्म्यं तिलकव्रतकीर्तनम् ॥२॥  
अशोककरवीराख्यं व्रतं तस्माच्च कोकिलम् ।  
बृहत्तपोव्रतं नाम रुद्रोपोपणमेव च ॥३॥  
द्वितीयाव्रतमाहात्म्यमशुभशयनं तथा ।  
कामाख्या तु तृतीया च मेघपालीव्रतं तथा ॥४॥  
पञ्चाग्निसाधना रम्या तृतीयाव्रतमुत्तमम् ।  
त्रिरात्र गोष्पदं नाम हरकाली व्रतं तथा ॥५॥  
ललिताख्या तृतीया च योगाख्या च पञ्चापरा ।  
उमामहेश्वरं नाम तथा रमातृतीयकम् ॥६॥  
सीमाख्या तृतीया च आर्द्रनिदनसरी तथा ।  
चैत्रे भाद्रपदे माघे तृतीयाव्रतमुच्यते ॥७॥

इस अध्याय में ग्रन्थ की समाप्ति का वर्णन किया जाता है। जो वृत्तान्त इसमें आये हैं उनका विवरण दिया जाता है। सबसे पहला व्यास का अनुगमन है। ब्रह्माण्ड का समुद्भव का वर्णन है। फिर यह बताया गया है कि इसी ब्रह्माण्ड से वैष्णवी माया हाती है। इसके पदचान् ससार में जो दोष हैं उनका कीर्तन किया गया है ॥१॥ इसके अनन्तर पापों में बहुत से भेद तथा प्रभेद का वर्णन किया जाता है। इसके पश्चात् शुभ और अशुभ का विमोच निर्णय बनाया गया है। शकट व्रत

के माहात्म्य का वर्णन किया गया है । इसके अनन्तर तिलक व्रत के विषय में उसका विधान तथा फल आदि का कीर्तन आता है ॥२॥ अनन्तर अशोक व्रत का विधान है और उसके पश्चात् करवीर नामक व्रत का वर्णन किया गया है, इसके अनन्तर कोकिल व्रत के विषय में कहा गया है । इसके बाद में बृहत् तपोव्रत का विधान बताया गया है । फिर रुद्रोपोषण नामक व्रत का वर्णन इस ग्रन्थ में बताया गया है ॥३॥ फिर द्वितीया वै व्रत का माहात्म्य वर्णित किया गया है । तथा अशून्य शयन बताया गया है । कामाख्या और तृतीया तथा मेघपाली व्रत का वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है ॥४॥ इसके अनन्तर रम्य पश्चाम्नि साधना के विषय में वर्णन है और उत्तम तृतीया वै व्रत का माहात्म्य कहा गया है । इसके पश्चात् सीन रात्रि का गोप्यद नाम व्रत एवं हर वाली व्रत का वर्णन किया गया है ॥५॥ रलिताख्या तृतीया तथा दूसरी योगाख्या का वर्णन किया गया है इसके अनन्तर उमा महेश्वर नाम याना तथा रम्भा तृतीयक व्रत का वर्णन इस ग्रन्थ में किया है इसके पश्चात् इस ग्रन्थ ॥ सीमाख्या नाम वाली तृतीया तथा आर्द्रानन्द वरी व व्रत का वर्णन किया गया है । तृतीया का व्रत चैत्र-भाद्रपद और माघ मास में कहा जाता है ॥६॥

अनतरी तृतीया च गणशास्त्रित तथा ।

सारस्वतव्रत नाम पंचमोव्रत मुच्यते ॥८॥

तथा श्रीपंचमी नाम पष्ठी शोकप्रणाशिनी ।

फलपष्ठी च मदारपष्ठीव्रतमथोच्यते ॥९॥

रलिताव्रतपष्ठी च पष्ठी वार्तिनसज्जिता ।

महत्तप सप्तमी च विभूषा गप्तमी तथा ॥१०॥

आदित्यमष्टविधिम्लयोदशीति सप्तमी ।

शृङ्गाशृङ्गवद्भा च तयंवाभयगप्तमी ॥११॥

पल्यागगप्तमी नाम शर्वरासप्तमोव्रतम् ।

गप्तमी कमसाख्या च तयान्या शुभमप्तमी ॥१२॥

स्नपनव्रतसप्तम्यौ तथैवाचल सप्तमी ।

बुधाष्टमीव्रत नाम तथा जन्माष्टमीव्रतम् ॥१३

दूर्वाकृष्णाष्टमी प्रोक्ता अनयाव्रतमष्टमी ।

अष्टम्यर्काष्टमी चाथ श्रीवृक्षनवमीव्रतम् ॥१४

इसके पश्चात् अनन्तरी तृतीया का व्रत तथा गण शान्ति व्रत का वर्णन किया गया है । फिर सारस्वत व्रत और फिर पञ्चमी व्रत कहा जाता है । फिर श्री पञ्चमी नामक व्रत का वर्णन है तथा शोक प्रणाशिनी पत्नी—कन्या और मन्दार पत्नी के व्रतों का सविधान इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया है ॥८६॥ फिर लज्जिता व्रत पत्नी तथा कार्तिक सज्जिता पत्नी के विषय में बताया गया है । इसके उपरान्त महत्प—सप्तमी तथा विभूषा सप्तमी का वर्णन हुआ है । इसके पश्चात् आदित्य मण्डप की विधि त्रयोदशी का वर्णन है । फिर सप्तमी कृष्णकुम्भलग्ना और अश्वय सप्तमी का वर्णन किया गया है ॥१०-११॥ कल्याण सप्तमी और शंकरा सप्तमी के व्रतों का वर्णन दिया गया है । इसके उपरान्त कमला नाम वाली सप्तमी के व्रतों के विषय में विधि—विधान सहित पूर्ण विवेचन बताया गया है ॥१२॥ स्नपन सप्तमी व्रत सप्तमी—और अचल सप्तमी के व्रत का सामोपाग वर्णन दिया गया है । सप्तमी व्रतों के अनन्तर फिर इस ग्रन्थ में बुधाष्टमी व्रत का वर्णन दिया है । जन्माष्टमी और दूर्वा कृष्णाष्टमी के व्रत के विषय में वर्णन किया है । जन्माष्टमी व्रत और अर्काष्टमी व्रत का वर्णन दिया गया है । अष्टमी व्रतों के पश्चात् इस विशाल ग्रन्थ में नवमी के व्रत का वर्णन किया गया है ॥१३-१४॥

ध्वजाख्या नवमी चैव उत्थाख्या नवमी तथा ।

दशावतारव्रतक तथाशादशमीव्रतम् ॥१५

रोहिणीद्वहरिशभुग्रहामूर्यावियोगकम् ।

गोवत्समादशमी नाम व्रतमुक्तं तत्र परम् ॥१६

नीराजनद्वादशी च भीष्मपंचमेव च ।

मल्लिकार्जुना द्वादशी च भीमा द्वादशीवोत्तमा ॥१७

श्रवणद्वादशी नाम संप्राप्तिद्वादशीव्रतम् ।

गोविन्दद्वादशी नाम व्रतमुक्तं तत् परम् ॥१८॥

अखण्डद्वादशी नाम तिलद्वादश्यत परम् ।

सुकृतद्वादशी नाम धरणीव्रतमेव च ॥१९॥

विशोकद्वादशी नाम विभूतिद्वादशीव्रतम् ।

पुण्यक्षद्वादशी चैव द्वादशी श्रवणक्षणा ॥२०॥

अनगद्वादशी चैव अङ्कपादव्रतं तथा ।

निम्बाकंकरवीराय यमा दशैतयोदशी ।

अनगद्वादशी चापिपालिरम्भाव्रते तथा ॥२१॥

ध्वजा नाम वाली नवमी—उल्का नाम से कही जाने वाली नवमी के व्रतों का सविवरण वर्णन दिया गया है । इसके अनन्तर दशावतारक व्रत का वर्णन किया है तथा आशा दशमी व्रत का उल्लेख किया गया है । इसके पश्चात् रोहिणीन्द्र—हरि—शम्भु—ब्रह्मा—सूर्य वियोगक का वर्णन है । इसके अनन्तर गोवत्स द्वादशी व्रत का वर्णन किया गया है ॥१५-१६॥ श्रीराजन द्वादशी भीष्म—पाचक मल्लिका नाम वाली द्वादशी—भीमा द्वादशी उत्तमा द्वादशी—श्रवण द्वादशी और सम्प्राप्ति द्वादशी व्रतों का वर्णन है । गोविन्द द्वादशी नाम वाले व्रत का वर्णन इन सब के पश्चात् दिखाया गया है ॥१७-१८॥ अखण्ड द्वादशी—तिल द्वादशी—सुकृत द्वादशी के व्रत तथा धरणी व्रत का उल्लेख किया गया ॥१९॥ फिर विशोक द्वादशी विभूति द्वादशी—पुण्यक्ष द्वादशी और श्रवणक्षणा द्वादशी के व्रतों का उल्लेख इस ग्रन्थ में किया गया ॥२०॥ इसके अनन्तर अनग द्वादशी अङ्कपाद व्रत—निम्बाक करवीरा—यमा और दशैतयोदशी के व्रतों का वर्णन किया गया है । अनगद्वादशी भी पालि-रम्भा व्रत में बताया गई है ॥२१॥

चतुर्दशीव्रतं प्रोक्तं ततोऽनन्तचतुर्दशी ।

श्रावणीव्रतं नवत च चतुर्दश्यष्टमीदिने ॥२२॥

व्रतं नियचतुर्दश्या पञ्चम्या गच्छतुर्दशी ।

यैशाग्री वार्तिथी मार्षीव्रतमेतदनन्तरम् ॥२३॥

कार्तिकायां कृतिकायोगे कृत्तिकाव्रतमीरितम् ।

फाल्गुने पूर्णिमाया तु व्रत पूर्णमनोरथम् ॥२४

अशोकपूर्णिमा नाम अनतव्रतमेव च ।

व्रत हि साभरायिष्य नक्षत्रपुरुषव्रतम् ॥२५

शिवनक्षत्रपुरुष संपूर्णं येन मुच्यते ।

कामदानव्रत नाम वृन्ताकविधिरेव च ॥२६

आदित्यस्य दिने नक्त सक्रात्युद्यापने फलम् ।

भद्राव्रतमगस्त्यार्घो नवचन्द्राकंमेव च ॥२७

अर्घः शुक्रवृहस्पत्योः पचाशीति व्रतानि च ।

माघस्नान नित्यस्नान रुद्रस्नानविधिस्तथा ॥२८

इसके पश्चात् चतुर्दशी व्रतों का वर्णन किया गया है । अनन्त चतुर्दशी व्रत—श्रावणी व्रत नक्त और चतुर्दशी अष्टमी दिन में व्रत—शिव चतुर्दशी व्रत—फल त्याग चतुर्दशी—वैशाखी—रातिकी और माघी व्रत का वर्णन दिया गया है । फाल्गुन मास की पूर्णिमा में जो व्रत होता है वह पूर्ण मनोरथ वाला व्रत होता है । कार्तिकी में कृतिका नक्षत्र के योग में कृतिका व्रत कहा गया है ॥२२-२४॥ अशोक पूर्णिमा नाम वाला व्रत तथा अनन्त व्रत—मामरा यिष्य व्रत—नक्षत्र पुरुष व्रत—शिव नक्षत्र पुरुष व्रत सम्पूर्ण बताये गये हैं जिनसे मानव मुक्त हो जाना है । काम-दान नामक व्रत तथा वृन्ताक विधि वाला व्रत का वर्णन दिया गया है ॥२५-२६॥ आदित्य के दिन में रात्रि में सक्रान्ति के उद्यापन में फल होना है । भद्रा व्रत—अगस्त्यार्घ—नव चन्द्राकं—शुक्र और वृहस्पति का अर्घ इन प्रकार से पिचवासी व्रतों का वर्णन माघ मास के स्नान—नित्य स्नान और रुद्र स्नान की विधि का वर्णन किया है ॥२७-२८॥

चन्द्रार्कग्रहणे स्नान विधिश्चाग्राजने तथा ।

वापीवृषतडागानामुत्सर्गो वृषायाजनम् ॥२९

देवपूजादीपदानवृषोत्सर्गविधिस्तथा ।

फाल्गुन्युत्सवक नाम तथान्यः मदनोत्सवः ॥३०

भूतमाता च श्रावण्या रक्षा बधविधिस्तथा ।  
 विधिस्तथा नवम्यास्तु तथा चन्द्रमहोत्सव ॥३१॥  
 दीपमालिकाया तु होमो लक्षहोमविधिस्तथा ।  
 कोटिहोमो महाशीतिगणनाथस्य शातिका ॥३२॥  
 तथा नक्षत्रहोमोथ गोदानविधिरेव च ।  
 गुडधेनुघृतधेनु तिलधेनुव्रत तथा ॥३३॥  
 जलधेनुविधि प्रोक्तो लवणस्य तथा परा ।  
 धेनु कार्या सम ज्ञात्वा नवनीतस्य चापरा ।  
 सुवर्णधेनुश्च तथा देवकार्यं चिकीर्षुभि ॥३४॥

चन्द्र ग्रहण और सूर्य ग्रहण में स्नान तथा अन्न के अशन की विधि का वर्णन किया गया है । बावड़ी—कूआ—तालाब इनका उत्सर्ग और घृतो का याजन भी इस प्रथम में वर्णित किया गया है ॥३१॥ देवताओं का पूजन—दीपो का गान—घृतो का उत्सर्ग—इन सब की जो विवरण पुण्य के पात्र हैं, विधि विधान का वर्णन इस प्रथम में किया गया है जिनके करने से महापाप का क्षय होता है । फाल्गुनी का उत्सव तथा अथ सदानात्सव—श्रावणी में भूत माता तथा रक्षा भूत के व्रतन की विधि—नवमी की विधि एवं चन्द्र महोत्सव का पूरा विवरण के सहित इस महाप्रथम में वर्णन किया गया है ॥३०-३१॥ दीप मालिका में होम तथा लक्ष होम की विधि—कोटि होम—महाशीति—गणनाथ की शांति का वर्णन पूरा तथा किया गया है ॥३२॥ नक्षत्र होम का वर्णन तथा गोदान की विधि का वर्णन दिया गया है । गुड धेनु—घृत धेनु—जल धेनु व्रत का वर्णन भी इस प्रथम में नर कल्याणाय दिया गया है जिनके करने से ब्रह्म में पापों का क्षय हो जाता है ॥३३-३४॥